ॐ

परमात्मने नमः

श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित

पञ्चास्तिकाय संग्रह

श्रीमद् जयसेनाचार्य द्वारा रचित
'तात्पर्यवृत्ति' नामक संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद

हिन्दी अनुवाद एवं सम्पादन
बाल ब्रह्मचारिणी कल्पना जैन
एम.ए. शास्त्री
सागर / जयपुर

प्रकाशन सहयोग
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल
उदयपुर (राज.)

प्रकाशक
तीर्थधाम मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट
सासनी-204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश) भारत

प्रथम संस्करण : 2000 प्रतियाँ
(**तीर्थधाम मङ्गलायतन** के सप्तम वार्षिकोत्सव के
अवसर पर 01 फरवरी से 06 फरवरी 2010)

न्योछावर राशि : रुपये 50.00

प्राप्तिस्थान :

— **तीर्थधाम मङ्गलायतन**
अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी - 204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश)
Website : www.mangalayatan.com; e-mail : info@mangalayatan.com

— **पण्डित टोडरमल स्मारक भवन**
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राजस्थान)

— **श्री हितेन ए. सेठ**
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्ण-कुंज, प्लॉट नं. - 30
नवयुग सीएचएस लि., वी.एल. मेहता मार्ग
विलेपार्ले (पश्चिम), मुम्बई - 400056
e-mail : vitragva@vsnl.com / shethhiten@rediffmail.com

— **श्री कुन्दकुन्द कहान जैन साहित्य केन्द्र**
सोनगढ़ (गुजरात)

— **श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल उदयपुर**
द्वारा - श्री दिगम्बर जैन चन्द्रप्रभ चैत्यालय
मुखर्जी चौक, सब्जी मण्डी के पास, उदयपुर (राजस्थान)

टाइप सेटिंग :
मङ्गलायतन ग्राफिक्स, अलीगढ़

मुद्रक :
मङ्गलायतन मुद्रणालय, अलीगढ़

प्रकाशकीय

आज से लगभग २६०० वर्ष पूर्व तीर्थङ्कर भगवान महावीर, इस भारतभूमि पर विचरण करते थे, उनकी आयु ७२ वर्ष थी और ३० वर्ष की उम्र में दीक्षा लेकर १२ वर्ष तक मुनिधर्म की साधना करने के बाद ४२ वर्ष की उम्र में उन्हें दिव्य केवलज्ञान की प्राप्ति हुई, उसके बाद उनकी दिव्यदेशना – दिव्यध्वनि के माध्यम से नि:सृत होकर सम्पूर्ण भारतवर्ष में ३० वर्षों तक अनवरतरूप से प्रसारित होती रही।

तीर्थङ्कर महावीर के महा परिनिर्वाण के बाद तीन अनुबद्ध केवलियों एवं पाँच श्रुतकेवलियों के माध्यम से भी भगवान महावीर के द्वारा प्रतिपादित दिव्य तत्त्वज्ञान प्रसारित होता रहा। अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु हुए, उन्हीं की शिष्य-परम्परा में आज से लगभग २००० वर्ष पूर्व आचार्य कुन्दकुन्द इस भारतभूमि पर अवतरित हुए और उनके माध्यम से अवतरित हुआ – यह वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र '**पञ्चास्तिकायसंग्रह**'।

प्रस्तुत ग्रन्थ पर आचार्य अमृतचन्द्रदेव कृत समयव्याख्या नामक संस्कृत टीका एवं आचार्य जयसेन कृत तात्पर्यवृत्ति टीका उपलब्ध होती है। श्री प्रभाचन्द्राचार्य ने भी इस ग्रन्थ पर संस्कृत टीका की रचना की है। आचार्य अमृतचन्द्र कृत समयव्याख्या नामक टीका का प्रकाशन तो पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की उपस्थिति में सोनगढ़, सौराष्ट्र से होता रहा है किन्तु आचार्य जयसेन कृत टीका का शब्दश: हिन्दी अनुवाद अभी तक अनुपलब्ध था। इस ग्रन्थ पर प्रवचन करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री ने कई जगह आचार्य जयसेन की टीका के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। जिससे मुमुक्षु समाज में इस टीका के अध्ययन की रुचि जागृत हुई है। उसी रुचि की पूर्ति का यह प्रयास है।

आचार्य कुन्दकुन्द और उनके द्वारा रचित पञ्च परमागमों पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने अपनी अध्यात्मरस झरती वाणी में प्रवचन करके सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज में प्रचारित-प्रसारित किया है। आज यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि आचार्य कुन्दकुन्द के समग्र ग्रन्थों के प्रचार -प्रसार का एकमात्र श्रेय पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने स्थानकवासी श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में जन्म लिया तथा मात्र चौबीस वर्ष की उम्र में उस सम्प्रदाय की साधु दीक्षा भी अङ्गीकार कर ली परन्तु सत्य की शोध निरन्तर

चलती रही। विधि के धन्य पल में विक्रम संवत् १९७८ को भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित 'समयसार' परमागम को पाकर पूज्य गुरुदेवश्री को सत्यमार्ग प्राप्त हो गया। तभी से उन्होंने उपलब्ध प्राय: सभी दिगम्बर जैन ग्रन्थों का स्वाध्याय किया। उनके सस्ते एवं सुन्दर प्रकाशन समाज को उपलब्ध कराये। साथ ही सोनगढ़ (सौराष्ट्र) में महावीरस्वामी कुन्दकुन्द परमागम मन्दिर का निर्माण कराकर, पञ्च परमागमों को टीकासहित संगमरमर पर उत्कीर्ण करा दिया। आज यह जिनमन्दिर एवं सोनगढ़ सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज का आस्था तीर्थ बन चुका है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद्भक्त बहिनश्री चम्पाबेन के पुण्य प्रभावनायोग में स्थापित तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा सत्साहित्य का प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार द्रुत गति से किया जा रहा है। इसी शृङ्खला में पञ्चास्तिकायसंग्रह की आचार्य जयसेन कृत प्रस्तुत टीका के बाल ब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन द्वारा किये गये शब्दश: अनुवाद को प्रकाशित करते हुए, हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। हमारे अनुरोध को स्वीकार करके बाल ब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन ने यह कार्य शीघ्रता से पूर्ण किया एवं प्रूफ रीडिंग इत्यादि में भी काफी श्रम किया, तदर्थ हम उनके आभारी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन सहयोगकर्ता के रूप में **श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, उदयपुर (राज०)** का सहयोग प्राप्त हुआ है। इसके लिए हम मण्डल के समस्त साधर्मीजनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन के पूर्व ही पाँच सौ प्रतियाँ जिन मन्दिरों, विद्वानों, एवं पुस्तकालयों को नि:शुल्क प्रदान करने हेतु क्रय करके श्री निहालचन्द पाण्ड्या, जयपुर ने हमारा उत्साहवर्धन किया है, तदर्थ हम आभारी हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जिन-जिन सहयोगियों ने हमें सहयोग प्रदान किया है, उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए, समस्त साधर्मीजनों से इस ग्रन्थ के गम्भीरतापूर्वक अध्ययन हेतु अनुरोध करता हूँ। साथ ही यदि किसी प्रकार की मुद्रण सम्बन्धी त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवश्य सूचित करेंगे - ऐसी अपेक्षा रखता हूँ।

पवन जैन
तीर्थधाम मङ्गलायतन

ॐ

श्रीमद् भगवद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव के सम्बन्ध में प्राप्त

महत्त्वपूर्ण उल्लेख

१. वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कोण्डकुन्दः, कुन्द-प्रभा-प्रणय-कीर्ति-विभूषिताशः।
यश्चारु-चारण-कराम्बुजचञ्चरीकः, चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम्॥

(- चन्द्रगिरि पर्वत का शिलालेख)

अर्थात् कुन्दपुष्प की प्रभा धारण करनेवाली जिनकी कीर्ति द्वारा दशों दिशाएँ विभूषित हुई हैं, जो चारणों [अर्थात् चारणऋद्धिधारी महामुनियों] के सुन्दर हस्त-कमलों के भ्रमर थे और जिन पवित्रात्मा ने भरतक्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा की, वे विभु कुन्दकुन्द, इस पृथ्वी पर किससे वन्द्य नहीं हैं ?

२. **.... कोण्डकुन्दो यतीन्द्रः॥**
रजोभिरस्पृष्टतमत्वमन्त-र्बाह्येऽपि संव्यञ्जयितुं यतीशः।
रजःपदं भूमितलं विहाय, चचार मन्ये मतुरङ्गुलं सः॥

(- विन्ध्यगिरि पर्वत का शिलालेख)

अर्थात् यतीश्वर (श्री कुन्दकुन्दस्वामी) रजःस्थान [अर्थात् भूमितल] को छोड़ कर, चार अङ्गुल ऊपर आकाश में गमन करते थे, उसके कारण मैं ऐसा समझता हूँ कि वे अन्तरङ्ग तथा बाह्य रज से [अपनी] अत्यन्त अस्पृष्टता (अन्तरङ्ग में रागादिक मल से और बाह्य में धूल से अस्पृष्टता) व्यक्त करते थे।

३. **जइ पउमणंदिणाहो, सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।**
ण विवोहइ तो समणा, कहं सुमग्गं पयाणंति॥ *(- दर्शनसार)*

अर्थात् (महाविदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थङ्करदेव) श्री सीमंधरस्वामी से प्राप्त हुए दिव्य ज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ ने (श्री कुन्कुन्दाचार्यदेव ने) बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते ?

४. हे कुन्दकुन्दादि आचार्यों! आपके वचन भी स्वरूपानुन्धान में इस पामर को उपकारभूत हुए हैं, उसके लिए मैं आपको अतिशय भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। *(- श्रीमद् राजचन्द्र)*

५. अहो! दिगम्बर सन्त श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य !, आज से २००० साल पहले हुए हैं — वे भगवान सीमन्धर के पास गये थे, वहाँ आठ दिन रहे थे और वहाँ से आकर उन्होंने यह शास्त्र बनाया है। *(- पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी)*

ॐ

॥ शास्त्रों का अर्थ करने की पद्धति ॥

''व्यवहारनय, स्वद्रव्य-परद्रव्य को और उनके भावों को एवं कारण-कार्यादि को, किसी को किसी में मिला कर निरूपण करता है, इसलिए ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है; अत: उसका त्याग करना चाहिए और निश्चयनय, उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता, इसलिए ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है; अत: उसका श्रद्धान करना चाहिए।

प्रश्न – यदि ऐसा है तो जिनमार्ग दोनों नयों को ग्रहण करना कहा है, उसका क्या कारण है ?

उत्तर – जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यतासहित व्याख्यान है, उसे तो 'सत्यार्थ इसी प्रकार है' – ऐसा जानना चाहिए तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यतासहित कथन है, उसे 'ऐसा है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है' – ऐसा जानना चाहिए। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है तथा दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जान कर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है' – इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तने से तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।

प्रश्न – यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है तो जिनमार्ग में उसका उपदेश क्यों दिया है ? एक निश्चयनय ही का निरूपण करना था।

उत्तर – ऐसा ही तर्क समयसार में भी किया है। वहाँ यह उत्तर दिया है –

जह ण वि सक्कमणज्जो, अण्णज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा, परमत्थुवदेसणमसक्कं ॥ ८ ॥

अर्थात् जिस प्रकार अनार्य अर्थात् म्लेच्छ को म्लेच्छभाषा के बिना, अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है; उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है, इसलिए व्यवहार का उपदेश दिया गया है।

इसी सूत्र की व्याख्या में ऐसा कहा है कि इस प्रकार निश्चय को अङ्गीकार कराने के लिए व्यवहार के द्वारा उपदेश देते हैं; किन्तु व्यवहारनय है, वह अङ्गीकार करने योग्य नहीं है।''

*- **पण्डितप्रवर श्री टोडरमलजी :** मोक्षमार्ग प्रकाशक, सातवाँ अधिकार, पृष्ठ २५१*

अनुवादिका - सम्पादिका की ओर से

आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी के अनुसार १७३ और आचार्य जयसेनस्वामी के अनुसार १८१ गाथाओं में निबद्ध, आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी कृत प्रस्तुत पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक प्राभृत ग्रन्थ संक्षिप्त रुचिवान जिज्ञासु जीवों के लिए विश्व-व्यवस्था, वस्तु-व्यवस्था, तत्त्व-व्यवस्था, निश्चय-व्यवहारात्मक मोक्षमार्ग समझने-हेतु परम उपकारी है।

आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी-कृत प्रवचनसार प्राभृत की आचार्य जयसेनस्वामी कृत तात्पर्यवृत्ति टीका का शब्दश: हिन्दी अनुवाद ३१ जुलाई सन् १९९४ को प्रकाश में आने के बाद से ही पञ्चास्तिकायसंग्रह तात्पर्यवृत्ति टीका का भी इसी प्रकार शब्दश: हिन्दी अनुवाद करने की अत्याग्रह पूर्ण प्रेरणा सतत मिलती रहने की फलश्रुति के रूप में यह अनुवाद कार्य सन् १९९५ में ही सम्पन्न हो गया था।

आचार्य अमृतचन्द्रीय समयव्याख्या और आचार्य जयसेनीय तात्पर्यवृत्ति - इन दोनों टीकाओं में समागत गाथा क्रमाङ्कों में अन्तर होने के कारण प्रस्तुत अनुवाद में यद्यपि आचार्य जयसेनस्वामी द्वारा प्रदत्त गाथा-क्रमाङ्कों को ही मुख्य किया है; तथापि स्वाध्यायियों की सुविधा-हेतु गाथा की प्रथम पंक्ति के आगे कोष्ठक ( ) में आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी द्वारा निर्देशित गाथा-क्रमाङ्कों को भी दे दिया गया है।

समग्र विषय-वस्तु को सरलतापूर्वक हृदयंगम करने-हेतु आचार्य जयसेनस्वामी द्वारा महाधिकारों, अन्तराधिकारों, स्थलों में विभक्त मूल गाथाओं की समुदाय-पातनिकाओं को प्रस्तुत अनुवाद में चार्ट शैली द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है। इसमें ग्रन्थ की मूलगाथाएँ, उनका हिन्दी पद्यानुवाद, गाथार्थ, तात्पर्यवृत्ति टीका और उसका शब्दश: हिन्दी गद्यानुवाद प्रस्तुत है। अपनी ओर से कुछ भी नहीं लिखने की भावना से यहाँ भावार्थ, विशेषार्थ आदि नहीं दिए हैं।

'आचार्य कुन्दकुन्द : व्यक्तित्व-कर्तृत्व' विविधरूपों में अनेक संस्थानों से प्रकाशित हो जाने के कारण उसे यहाँ ग्रन्थारम्भ में अति संक्षेप में निबद्ध किया है। तदुपरान्त टीकाकार आचार्य जयसेन : व्यक्तित्व-कर्तृत्व, मूलग्रन्थ और उसकी प्रस्तुत टीका पर भी प्रकाश डाला गया है। मध्य में शब्दश: हिन्दी अनुवाद के बाद ग्रन्थान्त में गाथाओं की वर्णानुक्रमणिका के उपरान्त टीकागत उद्धरणों की वर्णानुक्रमणिका भी दे दी गई है।

१५ वर्षों की दीर्घ समय-सीमा व्यतीत होने के पश्चात् पाँच समवायों की सन्निधि में अब यह 'तीर्थधाम मङ्गलायतन' के प्रकाशकत्व में प्रकाशित हो आपके समक्ष प्रस्तुत हो रहा है। इसमें प्रत्यक्ष -परोक्ष — सभी सहयोगदाताओं के प्रति मैं सहृदयतापूर्वक आभार व्यक्त करती हूँ।

सरल, संक्षिप्त, प्रवाहमयी पद्धति में निबद्ध और आत्मस्वरूप, मोक्षमार्ग के प्रतिपादक इस पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ का स्वाध्याय, अध्ययन, मनन, चिन्तन कर आत्मोन्मुखी अनन्त पुरुषार्थ द्वारा आत्मोपलब्धिरूप शाश्वत सुख-सम्पन्न जीवन जिएं — इस पुनीत भावना के साथ यह ग्रन्थ आपके कर-कमलों में सादर समर्पित कर अब मैं निश्चिन्तता-निर्भारता का वेदन कर रही हूँ।

वीर निर्वाण संवत् २५३५; दिनाङ्क १८ अक्टूबर २००९ **कल्पना जैन**

'तेरा वैभव अमर रहे माँ'

ग्रन्थकार आचार्य कुन्दकुन्द : व्यक्तित्व-कर्तृत्व

वर्तमानयुगीन वीतरागी निर्ग्रन्थ दिगम्बर परम्परा के पर्यायवाची, द्वितीय श्रुतस्कन्ध के आद्य-प्रणेता 'आचार्य कुन्दकुन्द' अध्यात्म-जगत के सर्वोपरि आचार्य हैं। अपनी कृतियों के माध्यम से आत्मार्थी -जन के हृदय में गहराई से प्रविष्ट हो जाने पर भी, आपका जीवन-परिचय अभी भी उत्कण्ठा, जिज्ञासा का केन्द्र बना हुआ है।

'रत्नकरण्डश्रावकाचार' के श्लोक ११८ में चार दानों में प्रसिद्ध व्यक्तियों के अन्तर्गत शास्त्रदाता के रूप में 'कौण्डेश' की प्रसिद्धि वर्णित है। इसकी 'प्रभाचन्द्रीय टीका' में इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है – गोविन्द नामक ग्वाले ने कोटर में स्थित शास्त्र की महिमा से अभिभूत होकर बाल्यावस्था से ही उसकी सुरक्षापूर्वक पूजा-भक्ति करते हुए, अवसर पाकर एक मुनिराज को उसे प्रदान किया था; फलस्वरूप वह अगले भव में 'कौण्डेश' नामक बहुश्रुतज्ञानी मुनि हुआ।

लगभग इस जैसी ही कथा 'पुण्यास्रव-कथाकोश' और 'आराधना-कथाकोश' में भी उपलब्ध होती है।

ऐसा घटित होना असम्भव भी प्रतीत नहीं होता, क्योंकि करणानुयोग यह प्रतिपादन करता है कि पढ़ने, अर्थ समझने में असमर्थ होने पर भी, जिनवाणी के प्रति विशिष्ट भक्ति, बहुमान, उसके माध्यम से कषायों की मन्दता इत्यादिरूप परिणाम, ज्ञानावरण कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम में कारण होते हैं।

'ज्ञान प्रबोध' के आधार पर वर्तमान जीवन सम्बन्धी कुछ उल्लेख इस प्रकार हैं –

मालवदेश-वारापुरनगर के राजा 'कुमुदचन्द्र' के राज्य में, अपनी धर्मपत्नी 'कुन्दलता' के साथ 'कुन्दश्रेष्ठी' नामक एक वणिक रहता था। उनके एक 'कुन्दकुन्द' नामक पुत्र था, जिसने 'जिनचन्द्र' नामक मुनिराज के उपदेश से प्रभावित होकर ११ वर्ष की अल्पवय में ही जिनदीक्षा धारण कर ली। ४४ वर्ष की उम्र में 'जिनचन्द्राचार्य' से ही आपको आचार्य पद प्राप्त हुआ। ९५ वर्ष, १० मास, १५ दिन तक आप आत्म-साधना, रत्नत्रय-आराधना में संलग्न रहे।

आप ईसा की प्रथम सदी के आचार्य माने जाते हैं।

'अभिधान राजेन्द्र कोश' के उल्लेखानुसार आप वि. सं. ४९ में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए थे।

आप कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, गृद्धपिच्छाचार्य, एलाचार्य और पद्मनन्दी – इन पाँच नामों से प्रसिद्ध हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से वस्तु-स्वरूप की विवेचना करते हुए आध्यात्मिक दृष्टि से नय-विवेचना द्वारा शुद्धात्म-स्वरूप के दिग्दर्शन का प्रयास आपके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है।

आपकी कृतिरूप से प्रसिद्ध साहित्य में पञ्च-परमागम सर्वमान्य हैं। १. समयसार (समयपाहुड़), २. प्रवचनसार (पवयणसारो), ३. पञ्चास्तिकायसंग्रह (पंचात्थिकायसंग्गहो), ४. नियमसार (णियमसारो), ५. अष्टपाहुड़ (अट्ठपाहुड़) — 'आचार्य कुन्दकुन्द' के ये पाँच ग्रन्थ 'पञ्च-परमागम' रूप में प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रारम्भिक तीन ग्रन्थ प्राभृतत्रयी, कुन्दकुन्दत्रयी, नाटकत्रयी, कुन्दकुन्द के तीन रत्न — इत्यादि नाम से प्रसिद्ध हैं।

इनके अतिरिक्त बारहाणुवेक्खा और प्राकृत-भक्ति भी आपकी कृतियाँ मानी जाती हैं। कितने ही विद्वान रयणसार और मूलाचार को भी आपकी ही कृतियाँ मानते हैं तथा कुछ लोग कुरलकाव्य को भी आपकी कृति मानते हैं।

समयसार : 'आचार्य अमृतचन्द्र' के अनुसार ४१५ एवं 'आचार्य जयसेन' के अनुसार ४३९ गाथाओं में ग्रथित 'समयसार', अध्यात्म-रस से ओत-प्रोत आपकी एक अजोड़ कृति है। नव तत्त्वों (पदार्थों) में छुपी हुई एक चैतन्यज्योति को बताना ही इसका मूल प्रतिपाद्य है। यही कारण है कि यहाँ नव तत्त्वों का वर्णन भी भेदविज्ञान की प्रधानता से ही करते हुए उनसे भिन्न त्रिकाली, ध्रुव, शुद्धात्मा, भगवान आत्मा को एकत्व-विभक्त्वरूप में दिखाया गया है।

प्रवचनसार : 'आचार्य अमृतचन्द्र' के अनुसार २७५ एवं 'आचार्य जयसेन' के अनुसार ३११ गाथाओं में समाहित यह ग्रन्थ, प्रमाण और प्रमेय की मीमांसा करनेवाला, दार्शनिक शैली में लिखा गया अद्वितीय ग्रन्थ है। न्याय-शास्त्र में प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण की प्रधानता से प्रमाण को विश्लेषित किया जाता है परन्तु यहाँ अतीन्द्रिय और इन्द्रियज्ञान की अपेक्षा प्रमाण का विश्लेषण किया गया है। अतीन्द्रियज्ञान, सर्वज्ञता-प्राप्ति का उपाय, सर्वज्ञता का विशद स्वरूप विवेचितकर, इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख को हेय बताते हुए, सुखमय अतीन्द्रियज्ञान का निरूपणकर, उसके विषयभूत द्रव्य-गुण -पर्यायात्मक, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक पदार्थों का, सामान्य-विशेषरूप से विशद विवेचन करते हुए सर्वपदार्थों से पृथक् निजात्मतत्त्व का निरूपण किया है। अन्त में आत्मसाधक मुनिराजों की अन्तर्बाह्य दशा आदि का विस्तार से वर्णन है।

पञ्चास्तिकायसंग्रह : 'आचार्य अमृतचन्द्र' के अनुसार १७३ एवं 'आचार्य जयसेन' के अनुसार १८१ गाथाओं में समाहित यह ग्रन्थ नवीन शास्त्राभ्यासी के लिए संक्षेप में समग्र वस्तु-व्यवस्था का परिज्ञान कराने में पूर्ण सक्षम है। यहाँ प्रारम्भ में पञ्चास्तिकाय तथा षट्द्रव्यों का संक्षिप्त विवेचनकर, बाद में स्वरूप तथा भेद-प्रभेद बताते हुए विस्तार से वर्णनकर, सात तत्त्व, नौ पदार्थों का वर्णन किया है। अन्त में निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का निरूपणकर, अभेदरत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग को संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट शैली में प्ररूपित किया गया है।

नियमसार : १८७ गाथाओं में ग्रथित, निजभावना-निमित्त लिखा गया यह ग्रन्थ शुद्धात्मसेवी साधुओं की अन्तर्बाह्य परिणति को हस्तामलकवत् प्रदर्शित करने के लिए अद्वितीय है। प्रारम्भ में

नियम, नियमफल आदि की चर्चा करते हुए, छह द्रव्यों का सामान्य विवेचनकर, ध्येयभूत शुद्धात्मतत्त्व की प्रकृष्ट-प्ररूपणाकर, व्यवहारचारित्र का वर्णन किया है। इसके बाद निश्चयपरक षडावश्यक क्रियाओं की विशद विवेचना करते हुए परमसमाधि तथा परमभक्ति को भी स्पष्ट किया है। अन्त में केवली भगवान के स्व-पर प्रकाशता सिद्ध करते हुए, केवली भगवान को बन्धरहित सिद्धकर, सिद्ध भगवान का स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

अष्टपाहुड़ : दर्शनपाहुड़, सूत्रपाहुड़, चारित्रपाहुड़, बोधपाहुड़, भावपाहुड़, लिङ्गपाहुड़ और शीलपाहुड़ — इन आठ पाहुड़ों का इसमें सङ्कलन है। इनके नाम प्रतिपाद्य-विषय के परिचायक हैं।

१. दर्शनपाहुड़ : सम्यक्रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन का स्थान विशदतापूर्वक निर्धारितकर, सम्यग्दर्शन का माहात्म्य बतानेवाली ३६ गाथाओं में निबद्ध है।

२. सूत्रपाहुड़ : २७ गाथाओं में ग्रथित इस पाहुड़ में सम्यग्ज्ञान तथा आगमज्ञान की महिमा बताते हुए, मुनिराज का स्वरूप बताकर, जिनधर्म में मान्य तीन लिङ्गों की विवेचना करते हुए, निर्ग्रन्थ -मोक्षमार्ग की स्थापना की गई है।

३. चारित्रपाहुड़ : ४५ गाथाओंवाले इस पाहुड़ में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप बताकर सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण — इस प्रकार चारित्र के दो भेद बताकर, सम्यक्त्वाचरण चारित्र का स्वरूप और माहात्म्य सिद्ध कर, संयमाचरण चारित्र के दो भेद किए हैं। सागार (गृहस्थ के एकदेश) संयमाचरण चारित्र के अन्तर्गत ग्यारह प्रतिमाओं, बारहव्रतों का उल्लेखकर, निरागार (मुनिराजों के सकल) संयमाचरण चारित्र के अन्तर्गत महाव्रत, समिति आदि और व्रतों की भावनाओं का वर्णन कर सम्यक्रत्नत्रय का माहात्म्य स्पष्ट किया है।

४. बोधपाहुड़ : इसमें ६२ गाथाओं के माध्यम से आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन, रागरहित -जिनबिम्ब, जिनमुद्रा, आत्मा के प्रयोजनरूप ज्ञान, देव, तीर्थ, अरहन्त और गुणों से विशुद्ध दीक्षा — इन ग्यारह स्थानों का जिनेन्द्र भगवान के कथनानुसार स्वरूप, उपयोगिता और माहात्म्य स्पष्ट किया गया है।

५. भावपाहुड़ : १६५ गाथाओं में समाहित इस पाहुड़ द्वारा शुद्धात्म-स्वरूपलीनतारूप भावशुद्धि के बिना व्रतादि सभी क्रियाओं को पूर्णतया निष्फल सिद्ध करते हुए, शरीर का यथार्थ स्वरूप, विश्लेषितकर, भावश्रमणता के अभाव में भव (संसार) में ही भटकनेवाले भव्यसेन आदि अनेक पुरुषों के उदाहरण देकर, तीन प्रकार के भावों का विवेचन करते हुए, अशुद्धभावों से उपलब्ध होनेवाले दु:खों का विस्तार से वर्णन कर भावशुद्धि (स्वरूपलीनता, अभेदरत्नत्रय) को ही सर्व दु:खों के विनाश का कारण सिद्ध किया है।

६. मोक्षपाहुड़ : १०६ गाथावाले इस प्राभृत में मोक्ष-प्राप्ति का उपाय बताकर, आत्मा के परमात्मा-अन्तरात्मा-बहिरात्मा – ये तीन भेद तथा उनका विवेचन करते हुए, मोक्ष-प्राप्ति की पात्रता

का वर्णनकर, रत्नत्रय का स्वरूप प्रतिपादित किया है। इससे आगे मोक्ष के साधक और बाधक कारणों का विशद विवेचनकर, सम्यक्त्व का माहात्म्य बताते हुए, अनिर्वचनीय आत्मतत्त्व का स्वरूप स्पष्टकर, परमशरणभूततत्त्व के रूप में उसका प्रतिपादन किया है।

७. लिङ्गपाहुड़ : यहाँ २२ गाथाओं द्वारा निजशुद्धात्म-स्वरूपलीनतारूप भावलिङ्ग को ही मोक्ष का कारण सिद्धकर, मात्र द्रव्यलिङ्ग से होनेवाली दुर्दशाओं का चित्रण किया है।

८. शीलपाहुड़ : यहाँ ४० गाथाओं द्वारा शील और ज्ञान की परस्पर मैत्री स्पष्टकर, दोनों से सहित को मुक्ति का पात्र तथा एक से रहित में दोनों का अभाव होने से संसार का पात्र सिद्ध करते हुए, मिथ्यामत-मिथ्याश्रुत आदि की प्रशंसा करनेवाले को शील से रहित अनाराधक सिद्ध किया है। इससे आगे जीवदया आदि धर्म के सभी अङ्गों को शील का ही परिवार विवेचित कर, शील-विहीन आत्मा को नि:सार बताते हुए, (निजशुद्धात्म-स्वरूपलीनतारूप) शील को ही मुक्ति का एकमात्र कारण सिद्ध किया है।

बारहाणुवेक्खा : इस ग्रन्थ में ९१ गाथाओं द्वारा अनित्य आदि बारह भावनाओं का वर्णन किया गया है। एकत्व-भावना में एकत्व के साथ-साथ पात्र-अपात्र का स्वरूप और भेद तथा सम्यक्त्व का माहात्म्य भी वर्णित है। संसार-भावना में पञ्च परिवर्तन का स्वरूप तथा संसार-भ्रमण के कारणों का वर्णन है। आस्रव-भावना में आस्रव के सभी भेदों के विश्लेषण के साथ ही आस्रव की हेयता का विशद-विवेचन है। संवर-भावना में शुद्धोपयोगरूप ध्यान को संवर का कारण बताकर, परमार्थनय से आत्मा को संवरभाव से भी रहित विचारने की प्रेरणा दी है।

प्राकृत-भक्ति - प्राकृतभाषा में लिखी गईं 'तीर्थङ्करभक्ति, सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, आचार्यभक्ति, निर्वाणभक्ति, नन्दीश्वरभक्ति, शान्तिभक्ति, समाधिभक्ति, पञ्च गुरुभक्ति और चैत्यभक्ति' — ये बारह भक्तियाँ आपकी कृति के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनमें नामानुसार ही तत्सम्बन्धी आराध्य का गुणानुवाद किया गया है। प्रत्येक भक्ति के अन्त में अञ्चलिकारूप गद्य है; परन्तु नन्दीश्वरभक्ति, शान्तिभक्ति, समाधिभक्ति और चैत्यभक्ति मात्र अञ्चलिकारूप गद्य परक ही हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आपकी कृतियाँ क्रमश: 'भक्ति' के माध्यम से पाठक की चित्तभूमि मृदु बनाकर, 'अष्टपाहुड़' के माध्यम से देव-शास्त्र-गुरु का यथार्थ निर्णय कराती हुईं, 'पञ्चास्तिकायसंग्रह' और 'प्रवचनसार' के माध्यम से 'सन्मात्र' वस्तु का निर्णय कराके, 'समयसार' के माध्यम से भेदज्ञान द्वारा 'चिन्मात्र' वस्तु की पृथक् प्रतीति कराती हुईं, 'बारहाणुवेक्खा' के माध्यम से समस्त परद्रव्यों के प्रति उदासीन भाव लाकर, 'नियमसार' के माध्यम से साधकदशा का विश्लेषणकर, पुन:-पुन: आत्मभावना को प्रेरितकर विशेष-स्वरूपस्थिरता के माध्यम से सिद्ध दशा को प्राप्त कराने में समर्थ हैं; इनसे ही आपका व्यक्तित्व और लक्ष्य भी परिलक्षित हो जाता है।

टीकाकार आचार्य जयसेन : व्यक्तित्व-कर्तृत्व

मात्र टीकाओं के माध्यम से ख्याति प्राप्त आचार्यों में '**आचार्य जयसेन**' का नाम अग्रगण्य है। कुन्दकुन्दत्रयी पर 'आचार्य अमृतचन्द्र' कृत प्रौढ़, सशक्त, गम्भीर टीकाएँ विद्यमान होने पर भी आपकी टीकाएँ आपके अदम्य साहस की प्रतीक हैं। ये जहाँ एक ओर आपका अध्यात्मरस से आकण्ठ आपूरित व्यक्तित्व प्रस्तुत करती हैं, तो वहीं दूसरी ओर आपकी स्वतन्त्र विचारशीलता, ग्रन्थावलोकनशीलता, अध्ययनशीलता, विद्वत्ता आदि की भी पारिचायिका हैं।

साहित्यिक क्षेत्र में 'आचार्य जयसेन' नाम से दो व्यक्ति विख्यात हैं —

(१) 'धर्मरत्नाकर' के कर्ता आचार्य जयसेन, (२) कुन्दकुन्दत्रयी के टीकाकार आचार्य जयसेन।

'धर्मरत्नाकर' में उल्लिखित एक पद्य* के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना वि. सं. १०५५ में 'सबलीकरहाटक' नामक स्थान पर पूर्ण हुई थी, अत: इसके अनुसार आपका काल ११ वीं सदी सर्वमान्य है। आप 'जयसेन प्रथम' नाम से ख्याति प्राप्त हैं।

प्रस्तुत टीकाकार '**आचार्य जयसेन**' '**जयसेन द्वितीय**' नाम से विख्यात हैं। जीवन-परिचय के सम्बन्ध में आप भी पूर्वाचार्यों के अनुसर्ता हैं। '**प्रवचनसार टीका**' के अन्त में प्रशस्तिपरक मात्र आठ पद्य प्राप्त होते हैं, जिनसे आपके जीवन सम्बन्धी यत्किञ्चित् सङ्केत मिलते हैं। वे इस प्रकार हैं —

''आप मूलसंघ के विद्वानाचार्य '**वीरसेन**' के प्रशिष्य तथा '**सोमसेन**' के शिष्य थे। आपके पितामह '**मालु साधु**' तथा पिता '**साधु महीपति**' थे। दीक्षा-पूर्व आपका नाम '**चारुभट**' था। आप सर्वज्ञ की पूजा तथा सदा आचार्यों के चरणों की आराधनापूर्वक सेवा करते थे। दिगम्बर मुनि होने पर आपका नाम '**जयसेन**' पड़ा। पिता के प्रति भक्ति-विलुप्त होने के भय से, आपने इस 'प्राभृत' नामक ग्रन्थ की, टीका की है।''

आपके द्वारा प्रदत्त उद्धरणों के आधार पर आपका समय १३ वीं सदी माना जाता है।

उपलब्ध साक्षों के आधार से ज्ञात होता है कि '**आचार्य जयसेन**' ने '**आचार्य कुन्दकुन्द**' के '**समयसार**', '**प्रवचनसार**' और '**पञ्चास्तिकायसंग्रह**' — इन तीन ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी हैं। आपकी तीनों ही टीकाओं के नाम '**तात्पर्यवृत्ति**' हैं, जो अभिप्राय स्पष्ट करनेवाली होने से '**यथानाम, तथागुण**' उक्ति को चरितार्थ करती हैं। तीनों ही प्रकाशित हैं।

'**आचार्य जयसेन**' के समक्ष '**आचार्य अमृतचन्द्रीय-टीका**' की प्रतिलिपियों में उल्लिखित गाथाओं से कुछ अधिक गाथाओंवाली प्रतिलिपियाँ विद्यमान थीं। उन गाथाओं को अपने ग्रन्थ की ही मानकर तदनुसार अन्तराधिकार आदि में गाथा-संख्याओं का उल्लेख किया है तथा तुलनात्मक पद्धति

---

*वाणेन्द्रिय सोममिते संवत्सरशुभे। ग्रन्थोऽयं सिद्धतां यात:सबलीकरहाटके॥

से विभाजन करते हुए '**अमृतचन्द्रटीकाभिप्रायेण, मूलसूत्राभिप्रायेण**' इत्यादि पदों द्वारा आचार्य अमृतचन्द्रीय टीकायुक्त गाथा संख्या का भी परिज्ञान करा दिया है।

कतिपय सङ्केतों के आधार पर यह निर्णीत है कि '**प्रवचनसार-टीका**' के पूर्व '**पञ्चास्तिकायसंग्रह -टीका**' की गयी है। यथा - **प्रवचनसार,** गाथा १०३ की टीका में आगत **पंचास्तिकाये पूर्वं कथितक्रमेण....;** गाथा १२५ की टीका में आगत **पूर्वं पंचास्तिकाये......;** गाथा १४२ और २०९ की टीका में आगत वाक्य इत्यादि।

तीनों ग्रन्थों के सम्बन्ध में आप लिखते हैं कि '**पंचास्तिकाय संग्रह**' संक्षिप्तरुचि शिष्यप्रतिबोधनार्थ, '**प्रवचनसार**' मध्यमरुचि शिष्यप्रतिबोधनार्थ तथा '**समयसार**' विस्तररुचि शिष्यप्रतिबोधनार्थ है।[१]

तीनों ही टीकाओं की लोकप्रियता का कारण इनकी सरल-सुबोध-सहजगम्यता है। संस्कृत भाषा के विशिष्ट विद्वान होने पर भी आपने टीकाओं को प्राय: सन्धि-समास से रहित रखा है, जिसे स्वयं आपने उल्लिखित किया है।[२]

गाथागत विशिष्ट शब्दों की अपवाद नियमसहित व्याख्यायों से प्राकृत भाषा तथा व्याकरण पर भी आपका विशिष्ट अधिकार परिलक्षित होता है। एतदर्थ - '**समयसार**', गाथा ३ के **विसंवादिणी; 'प्रवचनसार',** गाथा २११ के **सव्वाबाधविजुत्तो; 'पञ्चास्तिकायसंग्रह',** गाथा ६२ के **परिणामे** इत्यादि पदों का विश्लेषण द्रष्टव्य है।

आप अपनी टीका-पद्धति को '**पदखण्डान्वयी**' कहते हैं; जिसे प्रत्येक टीका के प्रारम्भ में[३] सूचित कर देते हैं।

'आचार्य कुन्दकुन्द' की गाथाओं को विषयागत आवश्यकतानुसार, आप अपनी टीकाओं में महाधिकार, अधिकार, अन्तराधिकार, अवान्तराधिकार या विशेषान्तराधिकार तथा स्थलरूप में विभक्त करते हैं। इनकी पातनिकाओं (उत्थानिकाओं) में प्राय: आप गाथा-संख्या तथा संक्षेप में वर्ण्य-विषय का उल्लेख कर देते हैं।

पातनिकाओं का प्रयोग भी प्राय: तीन रूपों में हुआ है —

(१) समुदाय पातनिका, (२) सामान्य पातनिका, (३) प्रश्नोत्तरी पातनिका।

महाधिकार, अधिकार आदि की विषय-वस्तु बताते समय प्राय: समुदाय पातनिका का तथा गाथाओं की पृथक्‌रूप से पातनिका देते समय प्राय: सामान्य या प्रश्नोत्तरी पातनिका का उपयोग हुआ है। इन सभी का यथावसर पुन:-पुन: उल्लेख होते रहने से पाठक को वर्ण्य-विषय स्मृत बना रहता है।

---

१. तीनों टीकाओं की प्रारम्भिक पंक्तियाँ।

२. समयसार, तात्पर्यवृत्ति के अन्त में; पञ्चास्तिकायसंग्रह, गाथा १ की तात्पर्यवृत्ति में।

३. तीनों ग्रन्थों सम्बन्धी गाथा १ की तात्पर्यवृत्ति।

'आचार्य जयसेन' शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ — इन पाँच अर्थों के माध्यम से प्रत्येक गाथा को स्पष्ट करना चाहते हैं। प्रस्तुत **'पञ्चास्तिकाय संग्रह'** गाथा १ तथा २७ को पाँचों ही अर्थों से स्पष्ट कर आप लिखते हैं कि व्याख्यान-काल में इसी प्रकार यथासम्भव सर्वत्र लगा लेना चाहिए।

आपकी इन टीकाओं में पुनरुक्ति दोष प्राय: नहीं है। पूर्व टीका में विस्तार से वर्णन कर देने के बाद अगली टीका में प्राय: उस विषय पर लेखनी नहीं चली है।

यथा - 'मङ्गल' सम्बन्धी व्याख्यान मात्र प्रस्तुत **'पञ्चास्तिकाय-संग्रह'** की प्रथम गाथा-टीका में, 'प्रमाण सप्तभङ्गी' मात्र यहीं १४ वीं गाथा-टीका में, 'जीवसिद्धि' तथा 'सर्वज्ञसिद्धि' प्रकरण मात्र यहीं क्रमश: २७, २९ वीं गाथा-टीका में हैं; 'केवलीभुक्ति निराकरण', 'नय सप्तभङ्गी' तथा 'स्त्रीमुक्ति निराकरण' प्रकरण मात्र प्रवचनसार ग्रन्थ की क्रमश: २१, १२५ और २४४ से २५२ वीं गाथा-टीका में हैं; इत्यादि।

गाथाओं के वर्ण्य-विषय में पुनरुक्ति की आशङ्का होने पर स्वयं प्रश्नोत्तर पद्धति से पुनरुक्ति का निषेधकर वर्ण्य-विषय का औचित्य सिद्ध किया है। यथा — प्रस्तुत ग्रन्थ गाथा १४८ की टीका में; प्रवचनसार ५६ की टीका में इत्यादि।

दैनिक जीवन में घटित होनेवाले विविध उदाहरणों से वर्ण्य-विषय को सहज हृदयङ्गम कराने का आपका प्रयास अनुकरणीय रहा है। यथा — सप्तभङ्गी, परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले धर्मयुगलों से सहित अनेकान्तात्मक वस्तु को पिता-पुत्रादि उदाहरण द्वारा सहज बोधगम्य बनाना; इत्यादि।

विषय को हृदयङ्गम कराने-हेतु यद्यपि आप आचार्य अमृतचन्द्रीय टीकाओं में समागत उदाहरणों का नि:सङ्कोच प्रयोग करते हैं; तथापि उनसे प्रतिबद्ध नहीं हैं। विषय को सरल करने-हेतु आवश्यकतानुसार अनेकानेक उदाहरणों का भी प्रयोग किया गया है। यथा — समयसार, गाथा २० की टीका में सचित्तादि को स्पष्ट करने-हेतु इत्यादि।

सामान्य पाठक को ध्यान में रखकर कहीं-कहीं पञ्चावयवी[१] अनुमान-पद्धति का भी प्रयोग हुआ है। यथा — प्रस्तुत 'पञ्चास्तिकायसंग्रह' गाथा २९ की टीका इत्यादि।

विषय को विशेष स्पष्ट करने-हेतु कठिन या नवीन शब्दों की परिभाषाएँ देते जाना आपकी अपनी प्रमुख विशेषता है। परिभाषाओं में भी आत्मतत्त्व की प्रधानता, चित्ताकर्षक वैशिष्ट्य है।

उदाहरणों में, नय प्रयोगों में, गुणस्थान परिपाटी में, तर्क-युक्तियों में — सर्वत्र ही प्रश्नोत्तर प्रणाली का उपयोग करते हुए अभिप्राय स्पष्ट करना, आपके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का सूचक है।

---

१. प्रतिज्ञा हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन – ये पाँच अवयव अनुमान के हैं। इन्हें संक्षेप में पञ्चावयवी अनुमान -पद्धति कहते हैं।

अपने विषय की विशेष स्पष्टता तथा प्रामाणिकता-हेतु ग्रन्थान्तरों के अनेक उद्धरण भी यहाँ उपलब्ध हैं। प्रस्तुत टीकागत उद्धरणों की सूची ग्रन्थान्त में संलग्न है।

धर्म आदि विषयों की स्पष्टता के लिए गुणस्थानों तथा नयों का प्रयोग भी बहुलता से हुआ है।

विषय को सरल करने के लिए यद्यपि आप विस्तृत विवेचन शैली का सहारा लेते हैं; तथापि अनावश्यक विस्तार आपको इष्ट नहीं है; यही कारण है कि सरल गाथाओं का खण्डान्वय भी आपने नहीं किया है। यथा — प्रवचनसार ग्रन्थ की २७६, २९७ गाथा आदि; प्रस्तुत ग्रन्थ की १२३ गाथा आदि।

यद्यपि आत्मपरिणामों के वाचक शब्द, आगम और अध्यात्म भाषा में भिन्न-भिन्न होते हैं; तथापि आपने उनमें सामञ्जस्य स्थापित किया है। यथा — प्रवचनसार ग्रन्थ, गाथा ८६ की टीका आदि।

इस प्रकार '**आचार्य जयसेन**' की टीका सम्बन्धी विशेषताओं को संक्षेप में निम्न वाक्यों में निबद्ध किया जा सकता है —

१- सरल-सहज-सुबोधगम्य भाषाशैली का प्रयोग।
२- गाथागत सर्वपदों का व्याख्यान।
३- वर्ण्य-विषय का पुनर्स्मरण।
४- पञ्चार्थों के माध्यम से गाथा की स्पष्टता।
५- नवीन प्रमेय का प्रतिपादन।
६- पारिभाषिक शब्दों का, आत्मतत्त्व की मुख्यता से स्पष्टीकरण।
७- युक्तिसङ्गत प्रश्नोत्तर प्रणाली से विषय का स्पष्टीकरण।
८- विषय-स्पष्टता-हेतु एकाधिक उदाहरण प्रयोग।
९- व्याख्यान की पुष्टि-हेतु उद्धरणों का प्रस्तुतीकरण।
१०- निश्चय-व्यवहार नयों का समन्वय।
११- यथाशक्य गुणस्थान परम्परा का दिग्दर्शन।
१२- आगम-अध्यात्म भाषा का सामञ्जस्य।

इस प्रकार आपके आध्यात्मिक व्यक्तित्व की अमृतमयी धारा को अबाधगति से प्रवाहितकर जन-जन के मानस तक पहुँचाने में सक्षम, विविध विशेषताओं सहित सरल-सुबोध शैली में लिखी गईं ये टीकाएँ, अन्य की अपेक्षा रखे बिना गाथा के हार्द को सुस्पष्ट करने में पूर्णतया समर्थ हैं।

मूल ग्रन्थ और उसकी प्रस्तुत टीका

शिवकुमार महाराजादि संक्षिप्त रुचिवान शिष्य के प्रतिबोधनार्थ गौण-मुख्यरूप से अन्तस्तत्त्व-बहिस्तत्त्व के प्रतिपादन-हेतु श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य-प्रणीत पञ्चास्तिकाय प्राभृत शास्त्र की १८१ गाथाओं को श्रीमद् जयसेनाचार्य ने पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य प्रतिपादक प्रथम महाधिकार, जीवादि

नव पदार्थ प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार और निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग प्रपञ्च चूलिकारूप तृतीय महाधिकार — इस प्रकार तीन भागों में विभक्त किया है।

१०१ गाथावाले प्रथम महाधिकार को ८ अन्तराधिकारों में विभक्त कर ७ गाथावाले समयशब्दार्थ पीठिका नामक प्रथम अन्तराधिकार को आप तीन स्थलों में विभाजित करते हैं। दो गाथावाले प्रथम स्थल की मङ्गलार्थ जिनेन्द्र भगवान को नमस्कारपरक पहली गाथा के प्रत्येक पद का विश्लेषण करते हुए आप लिखते हैं –

'सौ इन्द्रों से वंदित; तीनों लोकों में हितकर, मधुर, विशद वचनवाले; अनन्त गुण सम्पन्न, जितभवी जिनेन्द्र भगवान ही अकृतकृत्य / संसारी जीवों के लिए अनन्य शरण हैं — इस प्रकार चार विशेषणों द्वारा अनन्त ज्ञानादि गुणों के स्मरणरूप भाव नमस्कार करके व्युत्पत्ति द्वारा जिनेन्द्र भगवान के साथ विशेषण-विशेष्य सम्बन्ध घटित कर गाथा का शब्दार्थ बताया है।

अनन्त ज्ञानादि गुण स्मरणरूप भाव नमस्कार अशुद्ध निश्चयनय से, जिनेन्द्र को नमस्कार हो — इस प्रकार वचनात्मक द्रव्य नमस्कार असद्भूत व्यवहारनय से, स्वयं में ही आराध्य -आराधकभाव शुद्ध निश्चयनय से नमस्कार है — इस रूप में गाथा के नयार्थ को व्यक्त किया है।

ये वीतरागी-सर्वज्ञ भगवान ही नमस्कार-योग्य हैं, अन्य नहीं — इससे गाथा के मतार्थ को स्पष्ट किया है। सौ इन्द्रों से वन्दित हैं इत्यादिरूप में आगमार्थ तो प्रसिद्ध ही है। अनन्त ज्ञानादिगुणयुक्त शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेय है — यह इसका भावार्थ है।

इस प्रकार यहाँ हमने इस गाथा का शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ बताया है। व्याख्यान काल में इसी प्रकार इन्हें सर्वत्र लगाना चाहिए।'

तदनन्तर इसी गाथा की टीका में व्यवहारनय का आश्रय लेकर विस्तृत रुचिवान शिष्य को समझाने-हेतु मङ्गल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता — इन छह अधिकारों का वर्णन किया है। मङ्गल का वर्णन करते हुए यहाँ मङ्गल का शब्दश: — व्युत्पत्तिपरक अर्थ, उसका प्रयोजन, नमस्करणीय तीन प्रकार के देवता, मङ्गल के भेद, उसे करने का औचित्य विस्तार से सिद्ध करने के बाद निमित्तादि का भी इसी प्रकार वर्णन कर गाथा-टीका समाप्त की है।

तदनन्तर द्रव्यागमरूप शब्दसमय को नमस्कार कर पञ्चास्तिकायरूप अर्थ समय को कहूँगा — इस प्रकार प्रतिज्ञापूर्वक 'अधिकृत-अभिमत देवता को नमस्कार' से सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन की सूचना के रूप में दूसरी गाथा को स्पष्ट करते हुए जिनेन्द्रभगवान के सातिशय वचनों की महिमा का गुणगान कर व्याख्यान-व्याख्येय, अभिधान-अभिधेय सम्बन्ध; अज्ञान विच्छित्ति से लेकर निर्वाण सुख पर्यन्त फल का उल्लेख करते हुए दूसरी गाथा की टीका के साथ ही दो गाथावाले प्रथम स्थल को समाप्त किया है।

३ से ५ पर्यन्त ३ गाथावाले पञ्चास्तिकाय संक्षेप-व्याख्यान परक द्वितीय स्थल की पहली गाथा के पूर्वार्ध की टीका में शब्द समय, ज्ञान समय और अर्थ समय का विश्लेषण करते हुए '**शब्द समय के आधार से ज्ञान समय की प्रसिद्धि के लिए अर्थ समय का व्याख्यान प्रारम्भ करते हैं।**' यह सूचित कर उत्तरार्ध द्वारा लोक-अलोक के विभाग को स्पष्ट करते हुए टीका समाप्त हुई है।

इसकी दूसरी गाथा-टीका द्वारा पञ्चास्तिकायों की विशेष संज्ञा, सामान्य-विशेष अस्तित्व-कायत्व का प्रतिपादन करते हुए भावार्थरूप में '**इस गाथासूत्र में अनन्तज्ञानादिरूप शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेय है।**' यह बताते हुए उसकी तीसरी गाथा-टीका द्वारा अस्तित्व-कायत्व को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कर '**शुद्ध जीवास्तिकाय की अनन्तज्ञानादि गुणमय सत्ता और सिद्ध पर्यायमय सत्ता तथा शुद्ध असंख्यात प्रदेशरूप कायत्व ही उपादेय है।**' — यह भावार्थ देते हुए यह स्थल समाप्त किया है।

छठवीं-सातवीं — इन दो स्वतन्त्र गाथाओंवाले तृतीय स्थल की पहली गाथा-टीका द्वारा काल सहित पञ्चास्तिकायों की द्रव्य संज्ञा तथा दूसरी गाथा-टीका द्वारा इनके परस्पर अत्यन्त संकररूप / एक क्षेत्रावगाही रहते हुए भी अपने-अपने स्वरूप को कभी भी नहीं छोड़नेरूप परिपूर्ण स्वतन्त्रतामय विश्व-व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए निष्कर्षरूप में लिखा है कि '**यहाँ छह द्रव्यों में से ख्याति, पूजा, लाभ, दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, नील, कापोतरूप अशुभ लेश्या आदि परद्रव्य के आलम्बन से उत्पन्न समस्त सङ्कल्प-विकल्परूप कल्लोल-माला से रहित; वीतराग निर्विकल्प समाधि से समुत्पन्न परमानन्दरूप सुख रसास्वादयुक्त परम समरसीभाव स्वभावमय स्वसंवेदन ज्ञान से शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय या निश्चयनय से गम्य, प्राप्य, सालम्ब, आधार, भरितावस्थ अपने देह में ही विराजमान शुद्ध जीवास्तिकाय नामक जीव द्रव्य ही उपादेय है।**'

इसी टीका में आपने सङ्कर, व्यतिकर, सङ्कल्प, विकल्प का स्वरूप स्पष्ट कर वीतराग निर्विकल्प समाधि में 'वीतराग' विशेषण का औचित्य सिद्ध करते हुए टीका-समाप्ति के साथ ही तृतीय स्थल और समयशब्दार्थ पीठिका नामक प्रथम अन्तराधिकार के समापन को भी उद्घोषित किया है।

तदनन्तर ८ से २१ पर्यन्त १४ गाथावाले सामान्य द्रव्य पीठिका नामक द्वितीय अन्तराधिकार को पाँच स्थलवाले प्रथम सप्तक और चार स्थलवाले द्वितीय सप्तक में विभक्त कर प्रथम सप्तक के एक गाथावाले प्रथम स्थल द्वारा सत्ता का सामान्य-विशेष लक्षण बताते हुए उसे नयों द्वारा सोदाहरण स्पष्ट कर भावार्थ में शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्ध जीव द्रव्य की सत्ता को उपादेय बताया है।

इसके एक गाथावाले दूसरे स्थल में सत्ता और द्रव्य का कथञ्चित् अभिन्नपना सिद्ध कर द्रव्य का व्युत्पत्तिपरक स्वरूप स्पष्ट करते हुए एक गाथावाले तृतीय स्थल में द्रव्य का तीन प्रकार से लक्षण स्पष्ट

करते हुए तीनों को परस्पर अन्तर्गर्भित सिद्ध कर सभी मिथ्या एकान्तों के दोष बताकर परस्पर सापेक्ष द्रव्य-पर्यायात्मक अनेकान्त को निर्दोष सिद्ध किया है। टीका के मध्य में ही भावार्थ बताते हुए लिखा है कि '**मिथ्यात्व-रागादि से रहित होने के कारण शुद्ध सत्ता लक्षणवान, अगुरुलघुत्वमय षड्गुणी हानि-वृद्धिरूप से शुद्ध उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षणवान, अकृत ज्ञानादि अनन्त गुण लक्षणवान और सहज शुद्ध सिद्ध पर्याय लक्षणवान, शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्ध जीव द्रव्य ही उपादेय है।**'

तदनन्तर सर्वथा एकान्तों में दूषण बताकर अनेकान्त की सिद्धि करते हुए यह स्थल समाप्त किया है।

प्रथम सप्तक के तीन गाथावाले चतुर्थ स्थल की पहली गाथा-टीका द्वारा सोदाहरण द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य का और पर्यायार्थिकनय से पर्याय का लक्षण स्पष्ट कर पहले कहे गए क्षणिक और नित्य एकान्तमत के निराकरण को दृढ़ करते हुए अन्त में लिखा है कि '**शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से नर-नारकादि विभाव परिणाम के उत्पत्ति-विनाश से रहित और पर्यायार्थिकनय से वीतराग निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न सहज परम आनन्दरूप सुख के रसास्वादमय स्वसंवेदन ज्ञान पर्याय से परिणत-सहित शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्ध जीव द्रव्य ही उपादेय है — यह तात्पर्य है।**'

उसकी दूसरी गाथा-टीका में निश्चयनय से द्रव्य और पर्यायों का सोदाहरण अभेद स्पष्ट करते हुए शुद्ध जीव द्रव्य को उपादेय बताकर टीका समाप्त कर 'स्यात्' पद के समान सर्वत्र नयों का भी उपयोग करना चाहिए — यह मार्गदर्शन दिया है।

तदनन्तर इसकी तीसरी गाथा-टीका द्वारा '**निर्विकल्प समाधि के बल से उत्पन्न वीतराग सहज परमानन्द सुख संवित्ति, उपलब्धि, प्रतीति, अनुभूतिरूप जो स्वसंवेदनज्ञान उसी से परिच्छेद, प्राप्य, रागादि विभावरूप विकल्प जाल से शून्य होने पर भी परम अनन्त केवलज्ञानादि गुणसमूह से भरितावस्थ शुद्ध जीवास्तिकाय नामक जो शुद्धात्म द्रव्य है; वही मन से ध्यान करने-योग्य है, वचन से कथन करने-योग्य है, काय से उसके अनुकूल अनुष्ठान करने-योग्य है।**' — यह निष्कर्ष लिखकर तीन गाथावाला चौथा स्थल समाप्त किया है।

एक गाथावाले पाँचवें स्थल द्वारा सोदाहरण प्रमाण सप्तभङ्गी को स्पष्ट कर '***सप्तभंग्यात्मक षड्द्रव्यों में से शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्धात्म द्रव्य उपादेय है***' — यह भावार्थ बताकर स्थल के साथ ही पाँच स्थलवाला प्रथम सप्तक भी समाप्त किया है।

चार स्थलवाले द्वितीय सप्तक के एक गाथावाले प्रथम स्थल द्वारा बौद्धमत के निराकरणार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक द्रव्य की सोदाहरण सिद्धि कर '**छह द्रव्यों में से शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय या निश्चयनय की अपेक्षा क्रोध, मान, माया, लोभ, दृष्ट, श्रुत,**

अनुभूत भोगाकांक्षारूप निदान बन्धादि परभाव से शून्य, उत्पाद-व्यय या आदि-अन्त से रहित होने पर भी चिदानन्द एक स्वभाव से भरितावस्थ जीवास्तिकाय नामक शुद्धात्मद्रव्य ही ध्यातव्य है।' — यह अभिप्राय बताते हुए स्थल समाप्त किया है।

चार गाथावाले द्वितीयस्थल द्वारा द्रव्य के सर्वाङ्गस्वरूप को दृढ़ करते हुए तीन प्रकार की चेतना, भेद-प्रभेदसहित उपयोग, समान-असमानजातीय द्रव्य पर्याय, स्वभाव-विभावरूप गुणपर्याय; स्वभाव -विभावरूप अर्थ-व्यञ्जन पर्याय — इन सभी को सोदाहरण स्पष्ट करते हुए क्षणिक-नित्यरूप सर्वथा एकान्त का निषेध कर द्रव्य का कथञ्चित् नित्यानित्यात्मक स्वरूप व्यवस्थित कर **'यहाँ पर्यायरूप से अनित्य होने पर भी शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से अविनश्वर, अनन्त ज्ञानादिरूप शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्धात्म द्रव्य रागादि परिहारपूर्वक उपादेयरूप से भावना करने-योग्य है।'** — यह भावार्थ बताते हुए चार गाथावाला द्वितीय स्थल समाप्त किया है।

तदुपरान्त एक गाथावाले तृतीय स्थल द्वारा सिद्ध जीव का पर्यायार्थिकनय से अभूतपूर्व उत्पाद सिद्ध कर अभूतपूर्व सिद्धत्वरूप शुद्धात्मद्रव्य को ही उपादेय बताया है।

एक गाथावाले चतुर्थ स्थल द्वारा जीव के उत्पाद-व्यय, सत् के उच्छेद, असद् के उत्पाद सम्बन्धी कर्तृत्व को उपसंहाररूप में सोदाहरण विश्लेषित कर **'यहाँ विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावमय साक्षात् उपादेयभूत शुद्ध जीवास्तिकाय में जो सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणमय तद्रूप निश्चय रत्नत्रयात्मक परम-सामायिक है, उसे प्राप्त नहीं करनेवाला जीव जिस कारण दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञादि समस्त परभाव परिणामों में मूर्छित, मोहित, आसक्त होता हुआ नर-नारकादि विभाव पर्यायरूप से भाव / उत्पाद और अभाव / व्यय करता है; उस कारण उसी शुद्धात्म द्रव्य में सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरण ही सर्व तात्पर्य से कर्तव्य है।'** — यह भावार्थ बताते हुए इसके साथ ही चार स्थलवाले द्वितीय सप्तक और द्रव्यपीठिका नामक द्वितीय अन्तराधिकार को समाप्त किया है।

इसके बाद २२ से २७ पर्यन्त पाँच गाथाओं में निबद्ध तीन स्थलवाले काल द्रव्य नामक तृतीय अन्तराधिकार के एक गाथावाले प्रथम स्थल द्वारा पूर्वोक्त छह द्रव्यों के स्मरण पूर्वक पाँच द्रव्यों के अस्तिकायत्व को सिद्ध किया है।

तत्पश्चात् दो गाथावाले द्वितीय स्थल द्वारा सोदाहरण विस्तारपूर्वक निश्चय काल द्रव्य का स्वरूप प्रश्नोत्तर शैली में विश्लेषित कर **'विशुद्ध दर्शन-ज्ञान स्वभावमय शुद्ध जीवास्तिकाय को प्राप्त नहीं हुआ होने से यह जीव अतीत अनन्त काल से संसार चक्र में ही घूम रहा है; अतः वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर समस्त रागादिरूप सङ्कल्प-विकल्प कल्लोलमाला के परिहारपूर्वक जीव द्वारा वही निरन्तर ध्यातव्य है।'** — यह भावार्थ बताया है।

इसके बाद दो गाथावाले तृतीय स्थल द्वारा सोदाहरण, विस्तारपूर्वक, तर्क पद्धति से व्यवहार काल

द्रव्य का स्वरूप स्पष्ट कर **'अतीत अनन्त काल से दुर्लभ जो वह शुद्ध जीवास्तिकाय है उस चिदानन्द एक काल स्वभाव में ही सम्यक् श्रद्धान, रागादि से भिन्नरूप भेदज्ञान और रागादि विभावरूप समस्त सङ्कल्प-विकल्प जाल के त्यागरूप स्थिर चित्त कर्तव्य है।'** — यह तात्पर्य बताते हुए तृतीय अन्तराधिकार की समाप्ति के साथ ही २६ गाथावाली पञ्चास्तिकायपीठिका के समापन की घोषणा की है।

तत्पश्चात् चूलिकारूप में विस्तार से व्याख्यान करते हुए टीका में एक गाथा उद्‌धृत कर उसके विश्लेषण द्वारा १३ बिन्दुओं से छह द्रव्यों को विशेष स्पष्ट करते हुए लिखा है कि **'इन छह द्रव्यों में से वीतराग चिदानन्द एक आदि गुण स्वभावमय, शुभाशुभ मनो-वचन-काय व्यापार से रहित निज शुद्धात्म द्रव्य ही उपादेय है।'**

तदनन्तर २७ से ७९ पर्यन्त ५३ गाथाओंवाला नौ स्थलों में विभक्त जीवास्तिकाय नामक चतुर्थ अन्तराधिकार प्रारम्भ करते हुए स्थल पञ्चकवाली तेरह गाथाओं में से पहली अधिकार गाथा-टीका द्वारा मतान्तरों का निराकरण करते हुए तर्क शैली में नौ विशेषणों द्वारा विस्तारपूर्वक जीव के जीवत्व की सिद्धि की है। शब्दार्थ आदि पाँच प्रकार से इस गाथा का अर्थ स्पष्ट करते हुए यहाँ पुन: इन पाँच प्रकार से यथासम्भव प्रत्येक गाथा का अर्थ स्पष्ट करने की प्रेरणा भी दी है।

तदुपरान्त क्रमश: मोक्ष के साधक प्रभुत्व द्वारा सर्वज्ञता की सिद्धि करनेवाली दो गाथाओंमय प्रथम स्थल द्वारा तर्क अनुमानमय हेतुओं से विस्तारपूर्वक सर्वज्ञता की सिद्धि करके **'समस्त रागादि विभावों के परित्यागपूर्वक यह वीतराग-सर्वज्ञ स्वरूप ही सतत उपादेयरूप से भावना करने-योग्य है।'** — यह भावार्थ बताकर प्रकरण समाप्त किया है।

इसके बाद जीवत्व की सिद्धिमय तीन गाथाओंवाले द्वितीयस्थल द्वारा निश्चय प्राण, व्यवहार प्राण; एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय; मिथ्यात्वादि विकार-युक्त संसारी, इनसे रहित सिद्ध इत्यादि प्रकार से जीवों का वर्णन करते हुए भावार्थरूप में लिखा है कि **'मनो-वाक्-काय के निरोध और पञ्चेन्द्रिय विषयों की व्यावृत्तिपूर्वक शुद्ध चैतन्यादि शुद्ध प्राण सहित शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेयरूप से ध्यातव्य है। ...जीवित-आशारूप रागादि विकल्पों के त्यागपूर्वक सिद्ध जीव सदृश परम आल्हादरूप सुख-रसास्वाद-परिणत निज शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेय है।'**

तदनन्तर स्वदेह-प्रमाण आत्मा का आकार-निरूपक दो गाथाओंवाले तृतीय स्थल द्वारा समुद्घात दशा को छोड़कर संसारी जीव की जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अवगाहनारूप में सोदाहरण विविध आकार सिद्ध करते हुए लिखा है कि **'यहाँ शुभाशुभ सङ्कल्प-विकल्प के परिहार काल में देह से भिन्न अनन्त ज्ञानादि गुण-सम्पन्न शुद्धात्मा ही सर्वत्र सर्व प्रकार से उपादेय है।'**

इसके बाद अमूर्तत्व की प्ररूपक तीन गाथाओंवाले चतुर्थ स्थल द्वारा द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म से पूर्णतया रहित सिद्धदशा में भी केवलज्ञानादि अनन्त गुण सहित जीव की शाश्वत सत्ता है; मोक्ष में

मात्र उसके विकारों का अभाव है, स्वभाव का अभाव कभी भी नहीं होता है — यह स्पष्ट करते हुए लिखा है कि **'जो शुद्ध निश्चय से कर्म-नोकर्म की अपेक्षा कार्य-कारणरूप नहीं होता है, कर्मोदयजनित नवतर कर्मादान कारणभूत मनो-वाक्-काय के व्यापार की निवृत्ति-काल में अनन्तज्ञानादि सहित वही आत्मा ही साक्षात् उपादेय है।'** — यह भावार्थ है।

तदनन्तर त्रिविध चेतना-निरूपक दो गाथाओंवाले पञ्चम स्थल द्वारा सभी स्थावरकायिकों के कर्मफल, त्रसों के कर्म और प्राणित्व का अतिक्रम कर गए सिद्ध जीवों के ज्ञान चेतना का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि **'इन दो गाथाओं का तात्पर्य यह है कि केवल ज्ञान चेतना ही साक्षात् उपादेय है — ऐसा जानना चाहिए।'**

इसके बाद ९ स्थलों में विभक्त ४० से ५८ पर्यन्त १९ गाथावाले उपयोगाधिकार के प्रारम्भिक पाँच स्थलों में विभक्त ज्ञान-दर्शन उपयोग की प्रतिपादक ९ गाथाओं द्वारा एक गाथावाले प्रथम स्थल में ज्ञान-दर्शन — दो उपयोगों का एक गाथावाले द्वितीय स्थल में ज्ञान के आभिनिबोधिक आदि आठ भेदों का, पाँच गाथावाले तृतीय स्थल में मति आदि पाँच सम्यग्ज्ञानों का, एक गाथावाले चतुर्थस्थल में तीन अज्ञानों का, एक गाथावाले पञ्चम स्थल में चक्षु आदि चार दर्शनों का निरूपण कर मतिज्ञान के उपलब्धि, भावना और उपयोग तथा श्रुतज्ञान के लब्धि और भावना — ये भेद बताते हुए क्रमशः निष्कर्षरूप में लिखा है —

'निर्विकार शुद्ध अनुभूति के अभिमुख जो मतिज्ञान है, वही उपादेयभूत अनन्तसुख का साधन होने के कारण निश्चयनय से और उसका साधन बहिरङ्ग व्यवहार से उपादेय है।...यहाँ विशुद्धज्ञान-दर्शन स्वभावमय शुद्धात्म तत्त्व के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, अनुचरणरूप अभेद रत्नत्रयात्मक जो भावश्रुत है, वही उपादेयभूत परमात्म तत्त्व का साधक होने के कारण निश्चय से और उसका साधक बहिरङ्ग व्यवहार से उपादेय है। ...यहाँ मिथ्यात्व से विपरीत तत्त्वार्थश्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व का कारणभूत व्यवहार सम्यक्त्व और उसका फलभूत निर्विकार शुद्धात्मानुभूति लक्षण निश्चय सम्यक्त्व उपादेय है।...यहाँ केवलदर्शन का अविनाभूत, अनन्त गुणों का आधारभूत शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेय है — ऐसा अभिप्राय है।'

तदनन्तर चार स्थलों में विभक्त जीव-ज्ञान के कथञ्चित् भेदाभेद की प्रतिपादक दश गाथाओं द्वारा तीन गाथावाले प्रथमस्थल में आत्मा का ज्ञानादि गुणों के साथ कथञ्चित् संज्ञा, लक्षण, प्रयोजनादि भेद होने पर भी निश्चय से प्रदेशों की अभिन्नता आदि को सोदाहरण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अभेदतापूर्वक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि **'विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावमय आत्मतत्त्व से अन्यत्वरूप जो विषय-कषाय, उनसे रहित और उसी परम चैतन्यरूप परमात्म तत्त्व से अन्यत्व स्वरूप जो निर्विकल्प परम आल्हाद एकरूप सुखामृत रसास्वाद का अनुभव, उससे सहित पुरुषों को**

जो लोकाकाश प्रमाण असंख्येय शुद्ध प्रदेशों के साथ केवलज्ञानादि गुणों का अनन्यत्व है, वही उपादेय है।'

तदुपरान्त तीन गाथावाले द्वितीय स्थल द्वारा सोदाहरण ज्ञान-ज्ञानी के कथञ्चित् भेदाभेद सिद्ध करते हुए अत्यन्त भेद में सोदाहरण दोष दिखाते हुए निष्कर्षरूप में लिखा है कि '**जिस ज्ञान का अभाव होने से जीव जड़ होता हुआ वीतराग सहज सुन्दर आनन्दस्यन्दि पारमार्थिक सुख को उपादेय नहीं जानता हुआ संसार में घूम रहा है, वही रागादि विकल्परहित निज शुद्धात्मानुभूतिमय ज्ञान उपादेय है।'**

तत्पश्चात् दो गाथावाले तृतीय स्थल द्वारा ज्ञान और ज्ञानी का अत्यन्त भेद होने पर समवाय सम्बन्ध द्वारा भी एकत्व करना सम्भव नहीं है — इसे प्रश्नोत्तर शैली द्वारा सहेतुक सिद्ध कर गुण-गुणी के कथञ्चित् एकत्व के अतिरिक्त समवाय अन्य कुछ भी नहीं है — यह बताते हुए लिखा है कि '**यहाँ जैसे ज्ञानगुण के साथ जीव का अनादि तादात्म्य सम्बन्ध दिखाया है; उसी प्रकार जो केवलज्ञान में गर्भित अव्याबाधरूप अनन्त, अविनश्वर, स्वाभाविक, रागादि दोष-रहित, परमानन्द एक स्वभाव पारमार्थिक सुख आदि अनन्त गुण हैं; उनके साथ अनादि तादात्म्य सम्बन्ध श्रद्धातव्य, ज्ञातव्य और उसी प्रकार समस्त रागादि विकल्प त्यागपूर्वक निरन्तर ध्यातव्य है — ऐसा अभिप्राय है।'**

इसके बाद दो गाथावाले चतुर्थ स्थल द्वारा दृष्टान्त-दार्ष्टान्त पूर्वक द्रव्य और गुणों के कथञ्चित् अभिन्नता सिद्ध करते हुए लिखा है कि '**यद्यपि यहाँ उपयोग के भेद-प्रभेदों में शुद्धाशुद्ध की विवक्षा नहीं की है; तथापि निश्चयनय से आदि-मध्य-अन्त-रहित, परमानन्दमाली, परम चैतन्यशाली, भगवान आत्मा में जो अनाकुलत्व लक्षण पारमार्थिक सुख; उस उपादेयभूत के उपादान कारणभूत जो केवलज्ञान-केवलदर्शन; वे ही उपादेय, श्रद्धेय, ज्ञेय तथा आर्त-रौद्रादि समस्त विकल्प जाल के त्यागपूर्वक ध्येय हैं।'**

१९ गाथावाले उपयोगाधिकार की समाप्ति के बाद पाँच स्थलों में विभक्त ५९ से ७६ पर्यन्त १८ गाथावाले कर्म कर्तृत्व-भोक्तृत्व-संयुक्तत्व स्वरूप-निरूपक तीसरे अधिकार में तीन गाथावाले प्रथम स्थल द्वारा पाँच भावों की अपेक्षा जीवों की संख्या, स्वरूप, समय बताते हुए पर्यायार्थिकनय से उत्पाद -व्यय होते हुए भी द्रव्यार्थिकनय से ये नहीं हैं — इस प्रकार पूर्वापर विरोध का निषेध कर जीव के उत्पाद-व्यय में नर-नारकादि गति नामकर्म की कारणता स्पष्ट करते हुए लिखा है कि '**यहाँ शुद्ध निश्चयनय से मूलोत्तर प्रकृति-रहित, वीतराग परम आल्हाद एक रूप चैतन्य प्रकाश-सहित शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेय है।'**

तत्पश्चात् एक गाथावाले द्वितीय स्थल द्वारा संक्षेप में औदयिकादि पाँच भावों का स्वरूप स्पष्ट कर लिखा है कि '**यहाँ मिश्र, औपशमिक, क्षायिक मोक्ष के कारण; मोहोदय सहित औदयिक**

बन्ध का कारण और शुद्ध पारिणामिक भाव बन्ध-मोक्ष का अकारण है।'

तदनन्तर छह गाथावाले तृतीय स्थल द्वारा औदयिकादि चार भावों का निश्चयनय से जीव को कर्ता, अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से द्रव्यकर्म को उनका कर्ता सिद्ध कर; एकान्त से दोनों को उनका अकर्ता मानने पर व्यक्त हुए दोषों का निषेध करते हुए जीव और कर्म — दोनों ही अपने-अपने स्वभाव को ही करते-भोगते हैं; पारस्परिक घनिष्ठतम निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध वश ही उपचार से दोनों को एक-दूसरे का कर्ता कहा जाता है — यह बताकर लिखा है कि **'यहाँ यद्यपि जीव को अशुद्धभावों का कर्ता कहा है; तथापि वे हेय हैं; उनसे विपरीत अनन्त सुखादि शुद्धभाव उपादेय हैं। ...जैसे अशुद्ध षट्कारकरूप से परिणमित होता हुआ आत्मा को अशुद्ध करता है; उसी प्रकार शुद्धात्म तत्त्व के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, अनुष्ठानरूप अभेद षट्कारकी स्वभाव से परिणमित होता हुआ आत्मा को शुद्ध करता है।'**

तदुपरान्त एक गाथावाले चतुर्थ स्थल द्वारा — आत्मा, आत्मा को करता है; कर्म, कर्म को करता है; तब फिर कर्म आत्मा को फल क्यों देता है? आत्मा उसके फल को क्यों भोगता है? — ऐसा पूर्वपक्ष / प्रश्न उपस्थित कर ७ गाथावाले पञ्चम स्थल द्वारा परिहार करते हुए बताया है कि सूक्ष्म-बादर अनन्तानन्त पुद्गलकायों से लोक ठसाठस परिपूर्ण होने के कारण आत्मा जब अपने मोह-राग-द्वेषरूप भाव करता है; तब उनकी निमित्तता में पुद्गल स्वभाव से ही कर्मभाव को प्राप्त हो जाता है। इसे सोदाहरण स्पष्ट करते हुए इसी निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धरूप में समय आने पर पृथक् होते हुए कर्म सुख-दुःख देता है और जीव सुख-दुःख भोगता है — इसे सहेतुक स्पष्ट कर कर्तृत्व-भोक्तृत्व का उपसंहार करते हुए लिखा है कि **'शुद्ध-बुद्ध, एक स्वभावमय परमात्म तत्त्व की भावना से उत्पन्न जो सहज शुद्ध परम सुख के अनुभवनरूप फल है; सांसारिक सुख-दुःख के अनुभवनरूप शुभाशुभ कर्म का फल उससे विपरीत है।'**

यहीं दो गाथाओं द्वारा पूर्वोक्त प्रभुत्व को ही क्रमशः कर्म संयुक्तत्व और रहितत्व की मुख्यता से स्पष्ट करते हुए यह प्रकरण समाप्त किया है।

इसके बाद चूलिकारूप में दो गाथाओं द्वारा पुनः नौ अधिकार कथित जीवास्तिकाय का दश या बीस प्रकार से विशेष व्याख्यान कर, एक गाथा द्वारा मुक्त जीवों की ऊर्ध्वगति और मरण काल में संसारिओं की षड्गति को स्पष्ट करते हुए जीवास्तिकाय नामक चतुर्थ अन्तराधिकार समाप्त हुआ है।

तदनन्तर ८० से ८९ पर्यन्त १० गाथाओं में निबद्ध तीन स्थलवाले पुद्गलास्तिकाय नामक पञ्चम अन्तराधिकार द्वारा स्कन्ध-व्याख्यान की मुख्यता युक्त चार गाथावाले प्रथम स्थल में क्रमशः पुद्गल द्रव्य के स्कन्ध, स्कन्ध देश, स्कन्ध प्रदेश और परमाणु — ये चार भेद, उनका स्वरूप, स्कन्धों में व्यवहार से पुद्गलत्व की व्यवस्था, उनके सोदाहरण स्थूल-स्थूल, स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल,

सूक्ष्म, सूक्ष्म-सूक्ष्म — ये छह भेद स्पष्ट कर लिखा है कि **'यहाँ उपादेयभूत अनन्त सुखरूप शुद्ध जीवास्तिकाय से विलक्षण होने के कारण यह हेयतत्त्व है। ...उपादेयभूत परमात्म तत्त्व से पुद्गलों का भिन्नत्वरूप से परिज्ञान ही इन्हें जानने का फल है।'**

तदुपरान्त परमाणु-व्याख्यान की मुख्यता युक्त पाँच गाथावाले द्वितीय स्थल में क्रमशः सभी स्कन्धों के अन्तिम भेद, अविभागी, एक, शाश्वत, मूर्तिप्रभव, अशब्दरूप परमाणु का स्वरूप स्पष्ट कर; आदेश मात्र / कहने के लिए मूर्त, पृथ्वी आदि चार धातुओं का कारण, पारिणामिक गुणवाला परमाणु बताते हुए इसके पृथ्वी आदि जाति भेद नहीं हैं — यह निश्चित कर; शब्द को पुद्गल स्कन्ध की पर्याय बताकर उसके प्रायोगिक, वैस्रसिक आदि भेद-प्रभेद का वर्णन करते हुए **'ये सभी हेय तत्त्व हैं; इनसे भिन्न शुद्धात्म तत्त्व ही उपादेय है।'** — यह भावार्थ दिया है।

इसकी ही चौथी गाथा टीका में परमाणु को एक प्रदेश की अपेक्षा नित्य, गुणों को अवकाश देने से अनवकाश नहीं, निरंश होने से सावकाश नहीं, स्कन्धों का कर्ता-प्रविभक्ता, काल का भेदक, संख्या का मापक बताकर इन्हें सहेतुक सिद्ध किया है। अन्तिम पाँचवीं गाथा-टीका में परमाणु के गुण-पर्यायों का स्वरूप सहेतुक स्पष्ट कर यह प्रकरण समाप्त किया है।

इसके बाद एक गाथावाले तृतीय स्थल द्वारा इन्द्रियों के उपभोग्य स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द विषय; इन्द्रियों, शरीर, मन, कर्म आदि समस्त मूर्त को पुद्गल सिद्ध करते हुए पाँचवाँ अन्तराधिकार समाप्त किया है।

तदुपरान्त ९० से ९६ पर्यन्त ७ गाथाओं में निबद्ध तीन स्थलवाले धर्माधर्मास्तिकाय नामक छठवें अन्तराधिकार द्वारा धर्मास्तिकाय के स्वरूप-कथन की मुख्यतायुक्त तीन गाथावाले प्रथम स्थल में सोदाहरण, सहेतुक गति-हेतुत्वमय धर्मास्तिकाय को सिद्ध किया है। एक गाथावाले द्वितीय स्थल में इसी प्रकार स्थिति-हेतुत्वमय अधर्मास्तिकाय को सिद्ध कर; तीन गाथावाले तृतीय स्थल में धर्माधर्म द्रव्य का पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार नहीं करने पर आनेवाले दूषणों को सोदाहरण, सहेतुक स्पष्ट करते हुए निष्कर्षरूप में लिखा है कि **'यहाँ उपादेयभूत निर्विकार चिदानन्द एक स्वभावमय शुद्धात्म तत्त्व से भिन्न होने के कारण ये सभी हेयतत्त्व हैं – ऐसा अभिप्राय है।'**

तत्पश्चात् ९७ से १०३ पर्यन्त ७ गाथावाले तीन स्थलों में विभक्त आकाशास्तिकाय-निरूपक सातवें अन्तराधिकार द्वारा दो गाथावाले प्रथम स्थल में लोकाकाश और अलोकाकाश का स्वरूप तथा उनकी अवगाहना-हेतुत्व शक्ति का निरूपण है। चार गाथावाले द्वितीयस्थल में धर्माधर्म द्रव्य के गति-स्थिति हेतुत्व कार्य को आकाश का ही मान लेने पर आनेवाले दूषणों को सहेतुक सिद्ध कर तीनों द्रव्यों के पृथक्-पृथक् कार्यों की स्थापना की है। एक गाथावाले तृतीय स्थल में धर्माधर्म-लोकाकाश के परस्पर एक क्षेत्रावगाही होने के कारण व्यवहार से एकत्व दिखाकर निश्चय से लक्षणगत भिन्नत्व सिद्ध किया है।

तदनन्तर १०४ से १११ पर्यन्त ८ गाथावाले छह स्थलों में विभक्त पञ्चास्तिकाय, षड्द्रव्य चूलिका का व्याख्यान परक अन्तिम आठवें अन्तराधिकार द्वारा एक गाथावाले प्रथम स्थल में छह द्रव्यों की मूर्तामूर्तता, चेतनाचेतनता का; एक गाथावाले द्वितीय स्थल में सक्रिय-निष्क्रिय का स्वरूप स्पष्ट कर इन्हीं की सक्रियता-निष्क्रियता का; एक गाथावाले तृतीय स्थल में मूर्तामूर्त का प्रकारान्तर से पुनः निरूपण कर श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में कथञ्चित् समानता का वर्णन किया है।

दो गाथावाले चतुर्थ स्थल में व्यवहार-निश्चयकाल का स्वरूप और नित्यानित्यरूप से उसके भेद व्यवस्थित करते हुए निष्कर्षरूप में लिखा है कि **'यद्यपि जीव काललब्धि के वश से भेदाभेद -रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग को प्राप्त कर रागादि रहित, नित्यानन्द एक स्वभावमय उपादेयभूत पारमार्थिक सुख को साधता है; तथापि उसका उपादान कारण जीव ही है, काल नहीं — यह अभिप्राय है।'**

एक गाथावाले पञ्चम स्थल में काल के द्रव्यत्व, अकायत्व और उसकी संख्या का प्ररूपण कर लिखा है कि **'यहाँ केवलज्ञानादि शुद्ध गुण, सिद्धत्व-अगुरुलघुत्वादि शुद्ध पर्याय सहित शुद्ध जीव द्रव्य से भिन्न सभी द्रव्य हेय हैं — यह भाव है।'**

अन्तराधिकारसहित इस प्रथम महाधिकार की भी अन्तिम दो गाथावाले षष्ठम स्थल में पञ्चास्तिकाय के अध्ययन का अथवा मुख्य वृत्ति से उसके अन्तर्गत शुद्ध जीवास्तिकाय के परिज्ञान का फल दुःखों से परिमोक्ष बताकर उसका क्रम बताते हुए लिखा है कि जो इस प्रत्यक्षीभूत नित्य आनन्द एक शुद्ध जीवास्तिकाय नामक विशिष्ट पदार्थ को विशिष्ट स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा जानकर, उसका आश्रय कर, उस रूप रहने के लिए उद्यत होता है; वह निहतमोही, प्रशमित राग-द्वेषी हो संसार से पार, दुःखों से मुक्त हो जाता है।

११२ से १६१ पर्यन्त ५० गाथाओं में निबद्ध दश अन्तराधिकारों में विभक्त जीवादि नवपदार्थ प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार के ११२ से ११५ पर्यन्त चार गाथावाले व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप प्रतिपादन नामक प्रथम अन्तराधिकार द्वारा क्रमशः मोक्ष के कारणभूत महावीरस्वामी को नमस्कार कर उन पदार्थों के भेद और मोक्ष के मार्ग को कहूँगा — यह प्रतिज्ञा कर; विधि-निषेध शैली द्वारा मोक्षमार्ग की संक्षिप्त सूचना दे, व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप बताते हुए लिखा है कि यद्यपि साध्य-साधकभाव के ज्ञापन-हेतु निश्चय-व्यवहार दोनों का व्याख्यान है; तथापि यहाँ नव पदार्थ विषयक मोक्षमार्ग की ही मुख्यता है — यह भावार्थ है।

११६ से १३१ पर्यन्त १६ गाथावाले ६ स्थलों में विभक्त जीव पदार्थ प्रतिपादक द्वितीय अन्तराधिकार की पहली ११६वीं गाथा-टीका द्वारा सर्व प्रथम जीवादि नौ पदार्थों के नाम और स्वरूप का वर्णन है। इसके बाद ११७ वीं गाथा-टीका द्वारा जीव पदार्थ के अधिकार की सूचना देते हुए एक गाथावाला प्रथम स्थल समाप्त हुआ है।

तदनन्तर ४ गाथावाले द्वितीय स्थल में पृथ्वीकायादि पाँच भेद, अग्नि-वायुकायिक के व्यवहार से त्रसत्व, पृथ्वीकायिकादि पाँचों के एकेन्द्रियत्व, इनके चैतन्य का अस्तित्व सोदाहरण सिद्ध कर निष्कर्ष में लिखा है कि **'परमार्थ से स्वाधीन, अनन्त ज्ञान-सुख सहित होने पर भी यह जीव अज्ञानवश पराधीन, इन्द्रिय सुख में आसक्त होकर कर्मों को बाँधता है; उससे स्वयं को अण्डज आदि के समान एकेन्द्रियज दु:खों से दु:खी करता है।'**

तीन गाथावाले तृतीय स्थल में दो इन्द्रिय, तीनेन्द्रिय, चारेन्द्रिय जीवों के स्वरूप, भेदों को बताते हुए चार गाथावाले चतुर्थ स्थल द्वारा चार गतिमय पञ्चेन्द्रियों का स्वरूप, भेद-प्रभेद बताकर; गति आदि नामकर्म, आयुष्ककर्म से रचित होने के कारण देवत्व आदि सभी दशाएँ अनात्म स्वभाव हैं; अपनी लेश्या के अनुसार इन चारों गतिओं में भटकता हुआ यह जीव अनन्त चतुष्टयात्मक अपने परमात्मा में स्थिरता द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है — यह निरूपण करते हुए जीव के संसारी और सिद्ध — इन दो भेदों का वर्णन कर स्थल समाप्त किया है।

दो गाथावाले पाँचवें स्थल में जीव के असाधारण कार्यों का वर्णन करते हुए बताया है कि इन्द्रियाँ और पृथ्वीकाय आदि वास्तव में जीव के स्वरूप नहीं हैं, यह जीव तो सभी पदार्थों को जानता-देखता है, सुख चाहता है, दुख से डरता है, हित-अहित करता है और उनके फल को भोगता है।

इसके बाद एक गाथावाले षष्ठम स्थल द्वारा जीव पदार्थ-व्याख्यान के उपसंहार और अजीव पदार्थ-व्याख्यान के प्रारम्भ की सूचना देते हुए यह प्रकरण समाप्त हुआ है।

१३२ से १३५ पर्यन्त ४ गाथावाले दो स्थलों में विभक्त अजीव पदार्थ प्रतिपादक तृतीय अन्तराधिकार के तीन गाथावाले प्रथम स्थल द्वारा विविधतामय पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्यों के अचेतनता, जड़ता सिद्ध कर; ये जीव स्वरूप नहीं हैं — यह बताते हुए एक गाथावाले द्वितीय स्थल में अस्ति-नास्ति पद्धति द्वारा भेदभावना की पुष्टि परक अरस, अरूप, अगन्ध, अव्यक्त, चेतनागुण-सम्पन्न अशब्द, अलिङ्गग्रहण, अनिर्दिष्ट संस्थानरूप में जीव के स्वरूप का निरूपण किया है। टीका-समाप्ति के बाद प्रश्नोत्तर शैली द्वारा नित्यानित्यात्मक वस्तु में सप्रयोजन, सहेतुक नौ पदार्थों की व्यवस्था सिद्ध की है।

तदनन्तर तीन गाथावाले चतुर्थ अन्तराधिकार में कथञ्चित् परिणामी होने से जीव-पुद्गल का संयोग-वियोग ही पुण्यादि सात पदार्थों का कारण है — इस प्रकार से संसारी जीव के पूर्वोत्तर कारण-कार्यरूप में अनादि-अनिधन-सनिधन संसार को सिद्ध कर संसार चक्र के विनाशार्थ रागादि विकल्पों के परिहारपूर्वक अव्याबाध अनन्त सुखादि गुणोंमय निजात्मस्वरूप में भावना करने की प्रेरणा दी है।

१३९ से १४२ पर्यन्त ४ गाथावाले १-१ गाथामय चार स्थलों में विभक्त पुण्य-पाप पदार्थ प्रतिपादक पञ्चम अन्तराधिकार द्वारा पुण्य-पाप-योग्यभाव, द्रव्य-भाव पुण्य-पाप, कर्मों का मूर्तत्व, नय विभाग से कथञ्चित् मूर्त जीव का मूर्त कर्म के साथ बन्ध का प्ररूपण है।

१४३ से १४८ पर्यन्त ६ गाथावाले २ स्थलों में विभक्त आस्रव पदार्थ प्रतिपादक षष्ठम अन्तराधिकार के ४ गाथावाले पुण्यास्रव प्रतिपादक प्रथम स्थल द्वारा शुभास्रव, प्रशस्तराग, अनुकम्पा का स्वरूप बताकर चित्त की कलुषता का स्वरूप बताते हुए अकलुषता को पुण्यास्रव का कारण सिद्ध कर; निर्विकार स्वसंवित्ति के अभाव में भूमिकानुसार दुर्ध्यान से बचने के लिए ये भाव कदाचित् ज्ञानी को भी होते हैं — ऐसा निरूपण किया है।

दो गाथावाले पापास्रव प्रतिपादक द्वितीय स्थल में पापास्रव का स्वरूप, भाव पापास्रव का विस्तार करते हुए पुण्य-पाप पदार्थ का पहले निरूपण हो जाने के बाद भी पुन: पुण्य-पापास्रव के प्ररूपण का हेतु बताते हुए लिखा है कि यहाँ पुण्य-पाप के आगमन की और वहाँ आगमन के बाद स्थिति -अनुभागरूप से अवस्थान की मुख्यता है।

१४९ से १५१ पर्यन्त तीन गाथावाले संवर पदार्थ प्रतिपादक सप्तम अन्तराधिकार में गुणस्थान क्रम से पापास्रव के, पुण्य-पाप के संवर का स्वरूप बताते हुए अयोगीकेवली-जिन के समस्त पुण्य-पाप -संवरण का प्ररूपण है।

१५२ से १५४ पर्यन्त तीन गाथावाले निर्जरा पदार्थ प्रतिपादक अष्टम अन्तराधिकार में निर्जरा का स्वरूप, मुख्यरूप में उसका कारण आत्मध्यान, उसकी उत्पादक सामग्री बताते हुए विस्तारपूर्वक सोदाहरण, सहेतुक आत्मध्यान करने की प्रेरणा दी है।

१५५ से १५७ पर्यन्त तीन गाथावाले बन्ध पदार्थ प्रतिपादक नवम अन्तराधिकार में बन्ध का स्वरूप, बन्ध के अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग कारण बताकर रागादि भाव-प्रत्ययों को ही बन्ध का अन्तरङ्गकारण निरूपित किया है।

१५८ से १६१ पर्यन्त ४ गाथावाले दो स्थलों में विभक्त मोक्ष पदार्थ प्रतिपादक दशम अन्तराधिकार के दो गाथावाले प्रथम स्थल द्वारा घाति चतुष्टयमय-द्रव्यकर्म-मोक्ष हेतुभूत और परमसंवररूप भाव मोक्ष में भाव और मोक्ष का विश्लेषण किया है तथा इस महाधिकार और अन्तराधिकार की अन्तिम दो गाथावाले द्वितीय स्थल द्वारा सकल द्रव्य निर्जरा के कारणभूत ध्यान का स्वरूप बताते हुए द्रव्य परमाणु-भाव परमाणु को स्पष्ट कर परस्पर सापेक्ष निश्चय-व्यवहारनयों द्वारा साध्य-साधकभाव को जानकर ध्येय के विषय में विवाद न करने की प्रेरणा देकर सकलमोक्ष संज्ञक द्रव्यमोक्ष का सहेतुक सविस्तर प्ररूपण किया है।

१६२ से १८१ पर्यन्त २० गाथावाले एक-एक स्थलमय बारह अन्तराधिकारों में विभक्त निश्चय -व्यवहार मोक्षमार्ग प्रपञ्च चूलिका नामक तृतीय महाधिकार के एक गाथावाले जीव स्वभाव नामक प्रथम अन्तराधिकार द्वारा अनन्यमय ज्ञान, अप्रतिहत दर्शन में नियत अस्तित्वमय अनिन्दित चारित्र का जीव-स्वभावरूप में निरूपण कर इसकी ही सतत भावना करने की प्रेरणा दी है।

एक गाथावाले स्वसमय-परसमय प्रतिपादक द्वितीय अन्तराधिकार द्वारा स्वसमय-परसमय का विश्लेषण करते हुए स्वसंवित्तिलक्षण स्वसमयरूप जीवस्वभाव में नियत चारित्र ही मोक्षमार्ग है — ऐसा निरूपित किया है।

दो गाथावाले परसमय के विशेष प्ररूपक तृतीय अन्तराधिकार द्वारा परसमय-परिणत पुरुष का स्वरूप, उसके बन्धमयभाव देखकर मोक्ष का निषेध करते हुए सास्रवभाव से मोक्ष नहीं होता है — यह सिद्ध किया है।

स्वसमय के विशेष प्ररूपक, दो गाथावाले चतुर्थ अन्तराधिकार द्वारा विशेषरूप से स्वचरित प्रवृत्त पुरुष का स्वरूप बताकर, उसे प्रकारान्तर द्वारा पुनः स्पष्ट कर निर्विकल्प समाधि को ही स्वचरित सिद्ध किया है।

एक गाथावाले व्यवहार मोक्षमार्ग के प्रतिपादक पञ्चम अन्तराधिकार द्वारा उस व्यवहार मोक्षमार्ग का प्ररूपण कर उसे निश्चय मोक्षमार्ग का बहिरङ्ग साधक बताया है।

दो गाथावाले निश्चय मोक्षमार्ग प्रतिपादक षष्ठम अन्तराधिकार द्वारा यह स्पष्ट किया है कि जो आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित होता हुआ अन्य कुछ भी नहीं करता है, कुछ छोड़ता भी नहीं है; सतत स्वयं में ही तृप्त रहता है; वही वास्तविक मोक्षमार्गी है।

तदनन्तर एक गाथावाले भाव सम्यग्दृष्टि के स्वरूप प्रतिपादक सप्तम अन्तराधिकार द्वारा यह स्पष्ट किया है कि निज शुद्धात्मभावना से उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख को ही उपादेय माननेवाला सम्यग्दृष्टि है।

तत्पश्चात् एक गाथा द्वारा निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय का फल बताते हुए अष्टम अन्तराधिकार में सोदाहरण स्पष्ट किया है कि पराश्रित दर्शन-ज्ञान-चारित्र से पुण्यबन्ध और शुद्धात्माश्रित सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्र से मोक्ष होता है।

तदुपरान्त १७३ से १७७ पर्यन्त ५ गाथावाले स्थूल-सूक्ष्म परसमय के प्रतिपादक नवम अन्तराधिकार द्वारा सूक्ष्म परसमय का स्वरूप, शुद्ध संप्रयोग के पुण्यबन्ध देखकर साक्षात् मोक्ष का निषेध; शुद्धात्मोपम्भ के परद्रव्य की प्रतिबन्धकता, राग ही सर्व अनर्थ परम्पराओं का मूल बताकर रागादि विकल्प जाल के निर्मूलन-हेतु शुद्धात्मोपलब्धि करने की प्रेरणा दी है।

तदनन्तर १७८-१७९ – इन दो गाथावाले 'पुण्यास्रव से मोक्ष नहीं' के प्रतिपादक दशम अन्तराधिकार द्वारा 'नौ पदार्थों और तीर्थङ्कर के प्रति झुकाववान, शास्त्रों के प्रति रुचिवान, संयम-तप से संप्रयुक्त जीव के निर्वाण दूरतर है; अरहन्त, सिद्ध, चैत्य, शास्त्र की भक्ति करते हुए तपस्वी जीव को सुरलोक की प्राप्ति होती है; भवान्तर में निज शुद्धात्मा में स्थित होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है' — यह सिद्ध किया है।

एक गाथावाले एकादशम अन्तराधिकार द्वारा वीतरागता को ही पञ्चास्तिकाय प्राभृत शास्त्र का

तात्पर्य बताते हुए लिखा है कि निश्चय निरपेक्ष व्यवहार या व्यवहार निरपेक्ष निश्चय के अवलम्बी जीव मोक्ष प्राप्त नहीं करते हैं; अत: यह निश्चित हुआ कि निश्चय-व्यवहारमय परस्पर साध्य-साधक भाव पूर्वक रागादि विकल्परहित परमसमाधि द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है।

तदुपरान्त अन्तिम एक गाथावाले द्वादशम अन्तराधिकार द्वारा अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करते हुए ग्रन्थ-समाप्ति की घोषणा कर ***'पञ्चास्तिकाय, षड्द्रव्यादि के संक्षिप्त व्याख्यान द्वारा समस्त वस्तु का प्रकाशक होने से यह ग्रन्थ द्वादशाङ्गरूप प्रवचन का सारभूत है'*** — यह भावार्थ बताया है।

ग्रन्थ-समाप्ति के बाद टीकाकार आचार्य जयसेनस्वामी परिशिष्ट के रूप में संक्षिप्त रुचिवान शिष्य के सम्बोधन-हेतु दीक्षा, शिक्षा, गण-पोषण, आत्मसंस्कार, सल्लेखना, उत्तमार्थरूप में छह कालों का अध्यात्म-आगम की अपेक्षा वर्णन करते हुए योग के ध्याता आदि आठ अङ्गों का; तप, श्रुत, सत्त्व, एकत्व, सन्तोषरूप पाँच भावनाओं का निरूपण करते हुए अध्यात्म-आगमशास्त्र का लक्षण बताकर परस्पर सापेक्ष अभेद रत्नत्रय प्राप्त करने, आत्माराधना करने की पुनीत प्रेरणा देते हुए सार्थक नामवाली 'तात्पर्यवृत्ति' टीका समाप्त करते हैं।

इस प्रकार संक्षिप्त-प्रिय भव्यों के लिए संसार-सागर से पार उतरने-हेतु दृढ़यानवत् प्रस्तुत ग्रन्थ -टीका का अवलम्बन ले स्वरूप-साधना द्वारा हमें भी अपना जीवन अव्याबाध सुख-शान्तिमय बनाना चाहिए।

कल्पना जैन

पञ्चास्तिकायसंग्रह - विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ क्रमाङ्क
१.	प्रकाशकीय	३
२.	अनुवादिका / सम्पादिका की ओर से	७
३.	ग्रन्थकार आचार्य कुन्दकुन्द : व्यक्तित्व-कर्तृत्व	८
४.	टीकाकार आचार्य जयसेन : व्यक्तित्व-कर्तृत्व	१२
५.	मूल ग्रन्थ और उसकी प्रस्तुत टीका	१५

क्रम	पञ्चास्तिकायसंग्रह : विषयवस्तु	गाथा	पृष्ठ
१.	***पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य प्रतिपादक महाधिकार***	***१-१११ पर्यन्त***	***१-२०२***
१.	**समय शब्दार्थ पीठिका अन्तराधिकार**	**१-७**	**१-३१**
	देव-नमस्कार गाथा	१	५
	आगम-नमस्कार और ग्रन्थ-रचना की प्रतिज्ञा	२	१८
	पञ्चास्तिकाय-संक्षिप्त व्याख्यान	३-५	२१
	काल सहित पञ्चास्तिकायों की द्रव्य संज्ञा	६	२७
	संकर व्यतिकर दोष-परिहार	७	२९
२.	**द्रव्यपीठिका अन्तराधिकार**	**८-२१**	**३१-६२**
(अ)	**प्रथम सप्तक**	**८-१४**	**३३-४३**
	सामान्य-विशेष सत्ता-लक्षण	८	३३
	सत्ता-द्रव्य में अभेद, 'द्रव्य' शब्द की व्युत्पत्ति	९	३५
	द्रव्य के तीन लक्षण	१०	३६
	तीनों लक्षणों का प्रतिपादन	११-१३	३८
	प्रमाण सप्तभङ्गी	१४	४३
(ब)	**द्वितीय सप्तक**	**१५-२१**	**४६-५९**
	बौद्धमत एकान्त निराकरणार्थ द्रव्य स्थापन मुख्यता सूचक	१५	४६
	उस अधिकार गाथा का विवरण	१६-१९	४८
	पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा सिद्धों के असदुत्पाद	२०	५७
	द्रव्य पीठिका समापन	२१	५९
३	**काल द्रव्य-प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**२२-२६**	**६२-७३**
	जीवादि पाँच के अस्तिकायत्व सूचक	२२	६२
	निश्चय काल कथन	२३-२४	६३
	समयादि व्यवहार काल-मुख्यता	२५-२६	६८

४	**जीवास्तिकाय का विशेष व्याख्यानमय अन्तराधिकार**	**२७-७९**	**७४-१५७**
अ	***अन्तराधिकार पञ्चक समुदाय***	***२७-३९***	***७४-१०३***
	जीव सिद्धि-हेतु नौ अधिकार-सूचक अधिकार गाथा	२७	७४
	प्रभुत्व व्याख्यान मुख्यतापरक सर्वज्ञसिद्धि	२८-२९	८७
	जीवत्व व्याख्यान	३०-३२	९२
	जीव का स्वदेहप्रमाणत्व-स्थापन	३३-३४	९५
	जीव का अमूर्तत्व-ज्ञापन	३५-३७	९८
	अनादि चैतन्य समर्थन व्याख्यान	३८-३९	१०२
ब	**उपयोगाधिकार**	**४०-५८**	**१०४-**
(क)	***ज्ञान-दर्शन उपयोग अधिकार***	***४०-४८***	***१०४-११२***
	ज्ञान-दर्शन - दो उपयोग सूचक	४०	१०४
	आठ प्रकार का ज्ञानोपयोग	४१	१०५
	मति आदि पाँच प्रकार का सम्यग्ज्ञान	४२-४६	१०६
	तीन अज्ञान	४७	१११
	चक्षु आदि चार दर्शन	४८	११२
(ख)	**जीव-ज्ञान के कथञ्चित् भेदाभेद**	**४९-५८**	**११४-१२९**
	संक्षेप में जीव-ज्ञान की अभेदता	४९-५१	११४
	भेद में भी कथञ्चित् अभेद का समर्थन	५२-५४	११९
	नैयायिक-मान्य समवाय सम्बन्ध का निषेध	५५-५६	१२५
	कथञ्चित् अभेद में दृष्टान्त-दार्ष्टान्त	५७-५८	१२७
स	**कर्म कर्तृत्व-भोक्तृत्व-संयुक्तत्व स्वरूप**	**५९-७६**	**१३०-१५२**
	समुदाय कथन	५९-६१	१३०
	औदयिकादि पाँच भाव व्याख्यान	६२	१३४
	कर्तृत्व की मुख्यता से व्याख्यान	६३-६८	१३६
	पूर्वपक्ष गाथा	६९	१४४
	परिहार गाथाएँ - द्रव्य कर्मों का कर्ता जीव नहीं	७०-७२	१४५
	कर्मफल में भोक्तृत्व	७३	१४९
	कर्तृत्व-भोक्तृत्व का उपसंहार	७४	१५०
	कर्म संयुक्तत्व-कर्मरहितत्व	७५-७६	१५१
द	**जीवास्तिकाय चूलिका**	**७७-७९**	**१५४-१५७**
५.	**पुद्गलास्तिकाय अन्तराधिकार**	**८०-८९**	**१६०-१७४**
	पुद्गलस्कन्ध व्याख्यान	८०-८३	१६०
	परमाणु व्याख्यान	८४-८८	१६४
	पुद्गलास्तिकाय-उपसंहार	८९	१७४

६.	**धर्माधर्मास्तिकाय अन्तराधिकार**	**९०-९६**	**१७५-१८१**
	धर्मास्तिकाय का स्वरूप	९०-९२	१७५
	अधर्मास्तिकाय का स्वरूप	९३	१७८
	धर्माधर्म द्रव्य का अस्तित्व न मानने पर दूषण	९४-९६	१७९
७.	**आकाशास्तिकाय अन्तराधिकार**	**९७-१०३**	**१८३-१९०**
	लोकालोकाकाश-स्वरूप	९७-९८	१८३
	धर्माधर्म सम्बन्धी पूर्वपक्ष के निराकरणार्थ	९९-१०२	१८६
	धर्मादि तीनों के कथञ्चित् एकत्व-पृथक्त्व का प्रतिपादन	१०३	१८९
८.	**पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य चूलिका व्याख्यान अन्तराधिकार**	**१०४-१११**	**१९२-२०२**
	चेतनाचेतन-मूर्तामूर्तत्व प्रतिपादन	१०४	१९२
	सक्रिय-निष्क्रियत्व प्रतिपादन	१०५	१९३
	प्रकारान्तर से मूर्तामूर्तत्व प्रतिपादन	१०६	१९४
	व्यवहार-निश्चयकाल प्रतिपादन	१०७-१०८	१९५
	काल के द्रव्यत्व-अकायत्व का प्रतिपादन	१०९	१९८
	भावना-फल प्रतिपादन	११०-१११	२००
२.	***जीवादि नव पदार्थ प्रतिपादक महाधिकार***	***११२-१६१***	***२०३-२७३***
१.	**व्यवहार मोक्षमार्ग प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**११२-११५**	**२०३-२०८**
२.	**जीव पदार्थ प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**११६-१३१**	**२०९-२२९**
	जीवाजीवादि नौ पदार्थ सूचक	११६	२०९
	जीव पदार्थ के अधिकार की सूचना	११७	२१२
	पृथ्वीकायिकादि पञ्च स्थावर एकेन्द्रिय	११८-१२१	२१३
	विकलेन्द्रियत्रय व्याख्यान	१२२-१२४	२१७
	चतुर्गतिरूप पञ्चेन्द्रिय व्याख्यान	१२५-१२८	२१९
	भेदभावना, हिताहितकर्तृत्व-भोक्तृत्व प्रतिपादन	१२९-१३०	२२५
	जीव पदार्थ उपसंहार, अजीव पदार्थ प्रारम्भ सूचक	१३१	२२९
३.	**अजीव पदार्थ प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**१३२-१३५**	**२२९-२३१**
	अजीवत्व प्रतिपादन	१३२-१३४	२२९
	भेदभावनार्थ देहगत शुद्ध जीव प्रतिपादन	१३५	२३१
४.	**नवपदार्थ स्थापन प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**१३६-१३८**	**२३५-२३५**
५.	**पुण्यपाप पदार्थ प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**१३९-१४२**	**२३९-२४२**
	भाव पुण्य-पाप-योग्य परिणाम की सूचना	१३९	२३९
	द्रव्य-भाव पुण्य-पाप का व्याख्यान	१४०	२४०
	पुण्य-पाप का मूर्तत्व-समर्थन	१४१	२४१
	कथञ्चित् मूर्त जीव का मूर्त कर्म के साथ बन्ध प्रतिपादन	१४२	२४२

६.	**आस्रव पदार्थ प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**१४३-१४८**	**२४४-२५०**
	पुण्यास्रव प्रतिपादक	१४३-१४६	२४४
	पापास्रव प्रतिपादक	१४७-१४८	२४९
७.	**संवर पदार्थ प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**१४९-१५१**	**२५२-२५५**
८.	**निर्जरा पदार्थ प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**१५२-१५४**	**२५६-२५८**
९.	**बन्ध पदार्थ प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**१५५-१५७**	**२६२-२६४**
१०.	**मोक्ष पदार्थ प्रतिपादक अन्तराधिकार**	**१५८-१६१**	**२६६-२७१**
	भाव मोक्षरूप एकदेश मोक्ष का व्याख्यान	१५८-१५९	२६६
	द्रव्यकर्म-मोक्ष प्रतिपादन	१६०-१६१	२६८
३.	***निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग प्रपञ्च चूलिका प्रतिपादक महाधिकार***	***१६२-१८१***	***२७६-३०२***
	जीव स्वभाव	१६२	२७६
	स्वसमय-परसमय - प्रतिपादन	१६३	२७८
	परसमय का विशेष विवरण	१६४-१६५	२८०
	स्वसमय का विशेष विवरण	१६६-१६७	२८२
	व्यवहार मोक्षमार्ग का निरूपण	१६८	२८४
	निश्चय मोक्षमार्ग का प्रतिपादन	१६९-१७०	२८६
	भाव सम्यग्दृष्टि-व्याख्यान	१७१	२८८
	निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय का फल	१७२	२९०
	स्थूल-सूक्ष्म परसमय का व्याख्यान	१७३-१७७	२९१
	पुण्यास्रव से मोक्ष नहीं होता है	१७८-१७९	२९६
	पञ्चास्तिकाय प्राभृत शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता	१८०	३००
	उपसंहार रूप से शास्त्र परिसमाप्ति-हेतु	१८१	३०२
	संक्षेप रुचि शिष्य सम्बोधनार्थ दीक्षा-शिक्षा-व्यवस्था भेद		३०३
	पञ्चास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ - गाथाओं की वर्णानुक्रमणिका		३१०
	टीकागत उद्धरणों की वर्णानुक्रमणिका		३१३

ॐ

卐 श्री सर्वज्ञ-वीतरागाय नमः 卐

॥ शास्त्र-स्वाध्याय का प्रारम्भिक मङ्गलाचरण ॥

ओकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः॥ १॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालित-सकलभूतलमलकलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था, सरस्वती ! हरतु नो दुरितान्॥ २॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥ ३॥

卐 卐 卐

श्रीपरमगुरवे नमः, परम्पराचार्यश्रीगुरवे नमः

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री 'पञ्चास्तिकायसंग्रह' नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसारमासाद्य श्रीमद्भगवद्-कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचितम्।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमौ गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥ १॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥ २॥

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य-विरचित

पञ्चास्तिकाय-संग्रह

(पंचत्थिकाय-संगह)

श्रीमद् आचार्यजयसेनकृत तात्पर्यवृत्ति -

स्वसंवेदनसिद्धाय जिनाय परमात्मने।
शुद्धजीवास्तिकायाय नित्यानंदचिदे नमः॥

हिन्दी अनुवाद

हिन्दी-अनुवादिकाकृत मङ्गलाचरण –

अरहन्त सिद्ध आचार्य नमन हो उपाध्याय जिन साधु नमन।
जिनमन्दिर जिनआगम श्री जिनबिम्ब तथा जिनधर्म नमन॥
जिससे विश्वव्यवस्था वस्तुव्यवस्था का करके परिज्ञान।
हो जाता स्व-शुद्धातम में, अपनापन सद्दर्शन-ज्ञान॥
उस पञ्चास्तिकाय संग्रह टीका का, कर हिन्दी-अनुवाद।
जिसके करने से मिट जाते, मन के सारे वाद-विवाद॥
पक्षमात्र हों नष्ट सभी, पाऊँ स्वातम उद्देश्य महान।
स्व में सतत लीनता हो, हो जाऊँ सिद्ध सहज सुखखान॥

अथ श्रीकुमारनन्दिसिद्धान्तदेवशिष्यैः प्रसिद्धकथान्यायेन पूर्वविदेहं गत्वा वीतरागसर्वज्ञ-श्रीसीमंदरस्वामितीर्थकरपरमदेवं दृष्ट्वा तन्मुखकमलविनिर्गतदिव्यवाणीश्रवणावधारितपदार्था-च्छुद्धात्मतत्त्वादिसारार्थं गृहीत्वा पुनरप्यागतैः श्रीमत्कुन्डकुन्दाचार्यदेवैः पद्मनन्द्याद्यपराभिधेयैरन्तस्तत्त्व-बहिस्तत्त्वगौणमुख्यप्रतिपत्त्यर्थं अथवा शिवकुमारमहाराजादिसंक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं विरचिते पञ्चास्तिकायप्राभृतशास्त्रे यथाक्रमेणाधिकारशुद्धिपूर्वकं तात्पर्यार्थव्याख्यानं कथ्यते।

(उपोद्घातः) तद्यथा - प्रथमतस्तावत् *इंदसदवंदियाण* मित्यादिपाठक्रमेणैकादशोत्तरशत-गाथाभिः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादनरूपेण प्रथमो महाधिकारः अथवा स एवामृतचन्द्रटीकाभि-प्रायेण चतुरधिकशतपर्यन्तश्च। तदनन्तरं *अभिवंदिऊण सिरसा* इत्यादि पञ्चाशद्गाथाभिः सप्ततत्त्वनव-पदार्थव्याख्यानरूपेण द्वितीयो महाधिकारः, अथ स एवामृतचन्द्रटीकाभिप्रायेणैकोनपञ्चाशद्गाथा-पर्यन्तश्च। अथानन्तरं *जीवसहावो* इत्यादि विंशतिगाथाभिर्मोक्षमार्गमोक्षस्वरूपकथनमुख्यत्वेन तृतीयो महाधिकार इति समुदायेनैकाशीत्युत्तरशतगाथाभिर्महाधिकारत्रयं ज्ञातव्यम्।

श्लोकार्थ - स्वसंवेदन से सिद्ध, शुद्ध जीवास्तिकायमय, सतत चिदानन्द सम्पन्न जिनेन्द्र परमात्मा को नमस्कार हो।

टीकार्थ - प्रसिद्ध कथा न्याय से (पूर्व प्रचलित कथानुसार) पूर्व विदेह जाकर वीतराग सर्वज्ञ श्रीसीमन्धरस्वामी तीर्थङ्कर परमदेव को देखकर, उनके मुखकमल से निकली दिव्य वाणी को सुनकर, अवधारित पदार्थ से शुद्धात्मतत्त्वादि के सार अर्थ को ग्रहणकर, पुनः यहाँ आकर, कुमारनन्दि सिद्धान्तदेव के शिष्य पद्मनन्दि आदि अपर नामों वाले श्रीकुन्दकुन्द आचार्यदेव द्वारा गौण-मुख्य पद्धति से अन्तस्तत्त्व-बहिस्तत्त्व की जानकारी के लिए अथवा शिवकुमार महाराज आदि संक्षिप्त रुचिवाले शिष्यों को समझाने के लिए पञ्चास्तिकायप्राभृत शास्त्र रचा गया है; उसका यथाक्रम से अधिकार-शुद्धिपूर्वक तात्पर्यरूप व्याख्यान कहा जाता है/किया जाता है।

(उपोद्घात) वह इस प्रकार — सर्व प्रथम **इंदसदवंदियाणं...** इत्यादि पाठक्रम से एक सौ ग्यारह गाथाओं द्वारा पञ्चास्तिकाय — षड्द्रव्य प्रतिपादनरूप से प्रथम महाधिकार है अथवा वह ही आचार्य अमृतचन्द्रकृत टीका के अभिप्राय से एक सौ चार गाथाओं पर्यन्त है। इसके बाद **अभिवंदिऊण सिरसा...** इत्यादि पचास गाथाओं द्वारा सात तत्त्व, नौ पदार्थ के व्याख्यानरूप से दूसरा महाधिकार है, वह ही आचार्य अमृतचन्द्रीय टीका के अभिप्राय से उनन्चास गाथा पर्यन्त है। तदुपरान्त **जीवसहावो...** इत्यादि बीस गाथाओं द्वारा मोक्षमार्ग, मोक्षस्वरूप कथन की मुख्यता से तीसरा महाधिकार है। इस प्रकार समूहरूप से एक सौ इक्यासी गाथाओं द्वारा तीन महाधिकार जानना चाहिए।

तत्र प्रथम महाधिकारे पाठक्रमेणान्तराधिकाराः कथ्यन्ते। तद्यथा – एकादशोत्तरशतगाथामध्ये *इंदसद* इत्यादि गाथासप्तकं समयशब्दार्थपीठिकाव्याख्यानमुख्यत्वेन, तदनन्तरं चतुर्दशगाथाद्रव्य-पीठिकाव्याख्यानेन, अथ गाथापञ्चकं कालद्रव्यमुख्यत्वेन, तदनन्तरं त्रिपञ्चाशद्गाथा जीवास्तिकाय-कथनरूपेण, अथ गाथादशकं पुद्गलास्तिकायमुख्यत्वेन, तदनन्तरं गाथासप्तकं धर्माधर्मास्तिकाय-व्याख्यानेन, अथ गाथासप्तकमाकाशास्तिकायकथनमुख्यत्वेन, तदनन्तरं गाथाष्टकं चूलिकोपसंहार-व्याख्यानमुख्यत्वेन कथयतीत्यष्टभिरन्तराधिकारैः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्ररूपणप्रथममहाधिकारे समुदायपातनिका।

प्रस्तुत कथन की सारणी

क्रम	अधिकार संख्या	आ०जयसेनकृत अधिकार-नाम	गाथा कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ	आ०अमृतचन्द्रकृत अधिकार-नाम	गाथा कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१.	प्रथम महाधिकार	षट्द्रव्य पञ्चास्तिकाय प्रतिपादक	१ से १११	१११	पञ्चास्तिकाय षट्द्रव्य संज्ञक प्रथम श्रुत स्कन्ध	१ से १०४	१०४
२.	द्वितीय महाधिकार	सात तत्त्व-नव पदार्थ संज्ञक	११२ से १६१	५०	नव पदार्थ पूर्वक मोक्षमार्ग प्रपञ्च संज्ञक द्वितीय श्रुत स्कन्ध	१०५ से १५३	४९
३.	तृतीय महाधिकार	मोक्षमार्ग-मोक्ष-स्वरूप प्रतिपादक	१६२ से १८१	२०	मोक्षमार्ग प्रपञ्च चूलिका	१५४ से १७३	२०
तीन महाधिकार		**कुल १८१ गाथाएँ**			**कुल १७३ गाथाएँ**		

उनमें से प्रथम महाधिकार में पाठक्रम से अन्तराधिकार कहते हैं। वह इस प्रकार – एक सौ ग्यारह गाथाओं में से **इंदसद...** इत्यादि गाथा से प्रारम्भकर सात गाथाएँ समय शब्दार्थ पीठिका के व्याख्यान की मुख्यता से; तत्पश्चात् द्रव्यपीठिका-व्याख्यानरूप से चौदह गाथाएँ; तदनन्तर कालद्रव्य की मुख्यता से पाँच गाथाएँ; तदुपरान्त जीवास्तिकाय-कथनरूप से त्रेपन गाथाएँ; इसके बाद पुद्गलास्तिकाय की मुख्यता से दश गाथाएँ; तत्पश्चात् धर्माधर्मास्तिकाय के व्याख्यानरूप से सात गाथाएँ; तत्पश्चात् आकाशास्तिकाय के कथन की मुख्यता से सात गाथाएँ; तदनन्तर चूलिका-उपसंहार-व्याख्यान की मुख्यता से आठ गाथाएँ – इस प्रकार कहे गए आठ अन्तराधिकारों द्वारा पञ्चास्तिकाय-षड्द्रव्य प्ररूपक प्रथम महाधिकार में समुदाय पातनिका पूर्ण हुई।

तत्राष्टान्तराधिकारेषु मध्ये प्रथमतः सप्तगाथाभिः समयशब्दार्थपीठिका कथ्यते – तासु सप्तगाथासु मध्ये गाथाद्वयेनेष्टाधिकृताभिमतदेवतानमस्कारो मङ्गलार्थः, अथ गाथात्रयेण पञ्चास्तिकायसंक्षेपव्याख्यानं, तदनन्तरं एकगाथया कालसहितपञ्चास्तिकायानां द्रव्यसंज्ञा, पुनरेकगाथया संकरव्यतिकरदोषपरिहारमिति समयशब्दार्थपीठिकायां स्थलत्रयेण समुदायपातनिका।

प्रथम महाधिकार की सारणी – कुल १११ गाथाएँ

क्रम	**अन्तराधिकार नाम**	**कुल गाथाएँ**
१.	समय शब्दार्थ पीठिका	७
२.	द्रव्य पीठिका	१४
३.	काल व्याख्यान	५
४.	जीवास्तिकाय कथन	५३
५.	पुद्‌गलास्तिकाय वर्णन	१०
६.	धर्माधर्मास्तिकाय व्याख्यान	७
७.	आकाशास्तिकाय व्याख्यान	७
८.	चूलिका उपसंहार व्याख्यान	८
	आठ अन्तराधिकार	**कुल १११ गाथाएँ**

वहाँ आठ अन्तराधिकारों में से सर्व प्रथम सात गाथाओं द्वारा समय शब्दार्थ पीठिका कही जाती है। उन सात गाथाओं में से दो गाथाओं द्वारा मङ्गल के लिए इष्ट, अधिकृत, अभिमत देवता को नमस्कार किया गया है। इसके बाद तीन गाथाओं द्वारा पञ्चास्तिकाय का संक्षिप्त व्याख्यान; तदनन्तर एक गाथा द्वारा कालसहित पञ्चास्तिकायों की द्रव्यसंज्ञा; तदुपरान्त एक गाथा द्वारा संकर-व्यतिकर दोषों का निराकरण – इस प्रकार समय शब्दार्थ पीठिका में तीन स्थलों (मङ्गलाचरणसहित चार) द्वारा समुदायपातनिका पूर्ण हुई।

प्रथम अन्तराधिकार की सारणी

क्रम	**स्थल विषय**	**कहाँ से कहाँ पर्यन्त गाथाएँ**	**कुल गाथाएँ**
१.	मङ्गलाचरण	१-२	२
२.	संक्षिप्त पञ्चास्तिकाय व्याख्यान	३ से ५	३
३.	द्रव्य संज्ञा	६ वीं	१
४.	दोष परिहार	७ वीं	१
	चार स्थल		**कुल सात गाथाएँ**

अथ प्रथमत इन्द्रशतवन्दितेभ्य इत्यादि जिनभावनमस्काररूपमसाधारणं शास्त्रस्यादौ मंगलं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति –

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं॥ १॥

***णमोजिणाण*मित्यादिपदखण्डनरूपेण व्याख्यानं क्रियते – *णमो जिणाणं* नमः नमस्कारोऽस्तु केभ्यः ? जिनेभ्यः। कथंभूतेभ्यः ? *इंदसदवंदियाणं* इन्द्रशतवन्दितेभ्यः। पुनरपि कथंभूतेभ्यः ? *तिहुवण-हिदमधुरविसदवक्काणं* त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः। पुनरपि किंविशिष्टेभ्यः ? *अंतातीदगुणाणं* अन्तातीतगुणेभ्यः। पुनरपि। *जिदभवाणं* जितभवेभ्यः इति क्रियाकारकसम्बन्धः। इन्द्रशतवन्दितेभ्यः त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः अन्तातीतगुणेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभवेभ्यः।**

अब, सर्व प्रथम शास्त्र के प्रारम्भ में **इंद्रशतवंदितेभ्यः...** आदि द्वारा जिनेन्द्र भगवान को भाव नमस्काररूप असाधारण मङ्गल कहता/करता हूँ। – इस अभिप्राय को मन में धारणकर यह गाथा–सूत्र प्रतिपादित करते हैं –

शत इंद्र वंदित मधुर विशद त्रिलोक हितकर वचनयुत।
हो नमन जिनवर जितभवी जो हैं अनंतों गुण सहित॥ १॥

गाथार्थ : सौ इन्द्रों से पूजित, तीनों लोकों को हितकर, मधुर और विशद वचनों–युक्त, अनन्त गुणों से सम्पन्न, जितभवी (संसार को जीतनेवाले) जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार हो।

टीकार्थ : *णमो जिणाणं...* इत्यादि पदों का पद–खण्डनरूप से व्याख्यान (एक–एक पद का पृथक्–पृथक् विशेष स्पष्टीकरण) किया जाता है।

णमो नमस्कार हो। किन्हें नमस्कार हो ? ***जिणाणं*** जिन (जिनेन्द्र भगवान) को नमस्कार हो। वे कैसे हैं ? ***इंदसदवंदियाणं*** सौ इन्द्रों से वंदित हैं। वे और कैसे हैं ? ***तिहुवणहिदमधुरवि-सदवक्काणं*** तीनों लोकों को हितकर, मधुर और विशद वाक्यों से सहित हैं। वे और किन विशेषताओं से सहित हैं ? ***अंतातीदगुणाणं*** वे अनन्त गुण–सम्पन्न हैं तथा ***जिदभवाणं*** उन्होंने भव को जीत लिया है – उन जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार हो। – इस प्रकार क्रिया–कारक सम्बन्ध जानना। इसकी संस्कृत छाया इस प्रकार है –

इंद्रशतवंदितेभ्यः त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः।
अन्तातीतगुणेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभवेभ्यः॥ १॥

''*पदयोर्विवक्षितः सुबिनसमासान्तरयो*''रिति परिभाषासूत्रबलेन विवक्षितस्य संधिर्भवतीति वचनात्प्राथमिकशिष्यप्रति-सुखबोधार्थमत्र ग्रन्थे संधेर्नियमो नास्तीति सर्वत्र ज्ञातव्यम्। एवं विशेषण-चतुष्टययुक्तेभ्यो जिनेभ्यो नमः इत्यनेन मंगलार्थमनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारोऽस्त्विति संग्रहवाक्यम्।

अथैव कथ्यते – इन्द्रशतैर्वन्दिता इन्द्रशतवन्दितास्तेभ्य इत्यनेन पूजातिशयप्रतिपादनार्थम्। किमुक्तं भवति ? त एवेन्द्रशतनमस्काराहा नान्ये। कस्मात् ? तेषां देवासुरादियुद्धदर्शनात्। त्रिभुवनाय शुद्धात्मस्वरूपप्राप्त्युपायप्रतिपादकत्वाद्धितं, वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंजातसहजापूर्वपरमानन्दरूप-पारमार्थिकसुखरसास्वादपरमसमरसीभावरसिकजनमनोहारित्वान्मधुरं, चलितप्रतिपत्तिगच्छत्तृणस्पर्श-शुक्तिकारजतविज्ञानरूपसंशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन शुद्धजीवास्तिकायादिसप्ततत्त्वनवपदार्थषड्द्रव्य-

---

पदयोर्विवक्षितः सुबिनसमासान्तरयो : सुबन्त और समास के अलावा विवक्षित पदों के बीच सन्धि होती है – इस परिभाषा-सूत्र के बल से यहाँ सन्धि होना सुनिश्चित होने पर भी प्राथमिक शिष्य को सुखपूर्वक (सरलता से) ज्ञान कराने के लिए इस ग्रन्थ में सन्धि का नियम नहीं है – ऐसा सर्वत्र जान लेना चाहिए। इस प्रकार चार विशेषणों से युक्त 'जिन' को नमस्कार हो – इसके द्वारा मङ्गल के लिए अनन्त ज्ञानादि के स्मरणरूप भाव नमस्कार हो। – ऐसा यह संग्रह (संक्षिप्त) वाक्य है।

अब, इसे ही (विस्तार से) कहते हैं। वे सौ इन्द्रों से पूजित हैं – इसके द्वारा उनके प्रति पूजातिशयता का प्रतिपादन करने के लिए (यह विशेषण दिया गया है)। इससे क्या कहा गया है ? – वे ही सौ इन्द्रों द्वारा नमस्कार करने-योग्य हैं; अन्य नहीं। अन्य नमस्कार करने-योग्य क्यों नहीं हैं ? उन देव, असुर आदि के युद्ध दिखाई देने से वे नमस्कार-योग्य नहीं हैं।

तीनों लोकों के जीवों हेतु शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति के उपाय की प्रतिपादक होने से जिनकी वाणी हितकारी है; वीतराग निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न सहज अपूर्व परमानन्दरूप पारमार्थिक सुखरस के आस्वाद से परम समरसीभाव के रसिकजनों का मन मोहित करनेवाली होने से मधुर है।

चञ्चल ज्ञानरूप संशय, गमन करते समय हुए तृणस्पर्श (के सम्बन्ध में विशेष जिज्ञासा से रहित) के समान विमोह और सीप में चाँदी के ज्ञान के समान विभ्रम से रहित होने के कारण शुद्ध जीवास्तिकाय आदि सात तत्त्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय की प्रतिपादक होने से; अथवा पूर्वापर (आगे-पीछे परस्पर में) विरोधादि दोषों से रहित होने के कारण; अथवा कर्णाट, मागध, मालव, लाट, गौड, गुर्जर – इनमें से प्रत्येक की तीन-तीन – इस प्रकार अठारह

पञ्चास्तिकायप्रतिपादकत्वात् अथवा पूर्वापरविरोधादिदोषरहितत्वात् अथवा कर्णाटमागधमालवलाट-गौडगुर्जरप्रत्येकं त्रयमित्यष्टादशमहाभाषासप्तशतक्षुल्लकभाषातदन्तर्भेदगतबहुभाषारूपेण युगपत्सर्व-जीवानां स्वकीयस्वकीयभाषाया: स्पष्टार्थप्रतिपादकत्वात्प्रतिपत्तिकारकत्वात् सर्वजीवानां ज्ञापकत्वात् विशदं स्पष्टं व्यक्तं वाक्यं दिव्यध्वनिर्येषां त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्यास्तेभ्य:। तथा चोक्तं –

यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितौष्ठद्वयं, नो वांछाकलितं न दोषमलिनं नोच्छ्वासरुद्धक्रमं।

शान्तामर्षविषै: समं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभि:, तन्न: सर्वविदो विनष्टविपद: पायादपूर्वं वच:।

इत्यनेन वचनातिशयप्रतिपादनेन तद्वचनमेव प्रमाणं न चैकान्तेनापौरुषेयवचनं न चित्रकथा-कल्पितपुराणवचनं चेतीत्युक्तं भवति।

महाभाषाओं और सात सौ लघु भाषाओं तथा उनके भी अन्तर्भेदगत बहु भाषारूप से एक साथ सभी जीवों को अपनी-अपनी भाषा द्वारा स्पष्ट अर्थ की प्रतिपादक होने से, ज्ञान करानेवाली होने से, सभी जीवों को समझानेवाली होने से विशद्, स्पष्ट, व्यक्त वाक्यरूप है दिव्यध्वनि जिनकी, वे त्रिभुवन हित-मधुर-विशद वाक्य हैं; उन्हें नमस्कार हो।

वैसा ही कहा भी है – '**जो (दिव्यध्वनि) सभी आत्माओं को हितकर है, वर्णरहित / निरक्षरी है, जिसमें दोनों ओठों का कम्पन नहीं है, इच्छासहित नहीं है (बिना इच्छा के प्रगट होती है), दोषों से मलिन नहीं है, श्वासोच्छ्वास रुकने से होनेवाला क्रम जिसमें नहीं है, क्रोधरूपी विष जिनका शान्त हो गया है – ऐसे पशुगण भी एक साथ जिसे कानों से सुनते हैं; ऐसे सभी विप्रतिपत्तिओं/विसम्वादों से रहित सर्वज्ञ भगवान के वे अपूर्व वचन हमारी रक्षा करें।**'

इस प्रकार वचनों की अतिशयता प्रतिपादित होने से वे वचन ही प्रमाण हैं; एकान्त से अपौरुषेय वचन और अनेक कथाओं-युक्त कल्पित पुराण वचन प्रमाण नहीं हैं – इससे यह कहा गया है।

अन्तरहित अनन्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को जाननेवाला होने से केवलज्ञान गुण अन्तरहित अनन्त है। वह जिनके है, वे अनन्त गुण-सम्पन्न हैं, उन्हें नमस्कार हो। इसके द्वारा ज्ञान की अतिशयता प्रतिपादित होने से, बुद्धि आदि सात ऋद्धि और मतिज्ञानादि चार प्रकार के ज्ञानों से सम्पन्न गणधर देवादि योगीन्द्रों से भी वे पूज्य हैं – यह कहा गया है।

(द्रव्य आदि पञ्च परावर्तनरूप) पाँच प्रकार का संसार आजवंजव जिनने जीत लिया है, उन्हें नमस्कार हो। इसके द्वारा घातिकर्मों के नाश से अतिशय का प्रतिपादन होने से कृतकृत्यता

अन्तातीतद्रव्यक्षेत्रकालभावपरिच्छेदकत्वादन्तातीतं केवलज्ञानगुणः स विद्यते येषां तेऽन्तातीत-गुणास्तेभ्यः इत्यनेन ज्ञानातिशयप्रतिपादनेन बुद्ध्यादिसप्तर्द्धिमतिज्ञानादिचतुर्विधज्ञानसम्पन्नानामपि गणधरदेवादियोगीन्द्राणां वंद्यास्ते भवन्तीत्युक्तम्। जितो भवः पञ्चप्रकारसंसार आजवंजवो यैस्ते जितभवास्तेभ्य इत्यनेन घातिकर्मापायातिशयप्रतिपादनेन कृतकृत्यत्वप्रकटनादन्येषामकृतकृत्यानां त एव शरणं नान्य इति प्रतिपादितं भवति।

एवं विशेषणचतुष्टययुक्तेभ्यो नमः इत्यनेन मंगलार्थमनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारः कृतः।

इदं विशेषणचतुष्टयं अनेकभवगहनविषयव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनः इति व्युत्पत्तिपक्षे श्वेतशंखवत्स्वरूपकथनार्थं, अव्युत्पत्तिपक्षे नामजिनव्यवच्छेदनार्थम्। एवं विशेष्य-विशेषणसम्बन्धरूपेण शब्दार्थः कथितः।

अनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपभावनमस्कारोऽशुद्धनिश्चयनयेन, नमो जिनेभ्य इति वचनात्मक-द्रव्यनमस्कारोऽप्यसद्भूतव्यवहारनयेन, शुद्धनिश्चयनयेन स्वस्मिन्नैवाराध्याराधकभाव इति नयार्थोऽप्युक्तः।

त एव नमस्काराहा नान्ये चेत्यादिरूपेण मतार्थोऽप्युक्तः। इन्द्रशतवन्दिता इत्यागमार्थः प्रसिद्ध एव।

प्रगट हो जाने के कारण, अन्य अकृतकृत्यों के लिए वे ही शरण हैं; अन्य नहीं-यह प्रतिपादित है।

इस प्रकार के चार विशेषणों से सहित 'जिन' को नमस्कार हो। इसके द्वारा मङ्गल के लिए अनन्त ज्ञानादि गुणों के स्मरणरूप भावनमस्कार किया है।

अनेक भवरूपी वन और विषयरूपी दुःखों को प्राप्त कराने में कारणभूत कर्मरूपी शत्रुओं को जो जीतते हैं, वे 'जिन' हैं; व्युत्पत्ति पक्ष में सफेद शंख के समान स्वरूप का कथन करने के लिए तथा अव्युत्पत्तिपक्ष में नाम निक्षेपरूप 'जिन' का निराकरण करने के लिए, उन 'जिन' के ये चार विशेषण हैं। इस प्रकार विशेष्य-विशेषण सम्बन्धरूप से शब्दार्थ कहा।

अनन्त ज्ञानादि गुणों के स्मरणरूप भावनमस्कार अशुद्ध निश्चयनय से, 'जिन को नमस्कार हो' – इस प्रकार वचनात्मक द्रव्यनमस्कार भी असद्भूत व्यवहारनय से तथा शुद्ध निश्चयनय से अपने में ही आराध्य-आराधक भाव है – इस प्रकार नयार्थ भी कहा गया।

वे ही नमस्कार करने-योग्य हैं; अन्य नहीं-इत्यादि रूप से मतार्थ भी कहा गया है।

सौ इन्द्रों से पूजित हैं – ऐसा आगमार्थ प्रसिद्ध ही है।

अनन्त ज्ञानादि गुणयुक्त शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेय है – यह भावार्थ है।

अनन्तज्ञानादिगुणयुक्तशुद्धजीवास्तिकायमेवोपादेय इति भावार्थः।

अनेन प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थः। अनेन प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थ व्याख्यानकाले सर्वत्र योजनीयमिति संक्षेपेण मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारः कृतः। मंगलमुपलक्षणं निमित्तहेतुपरिमाण-नामकर्तृरूपाः पञ्चाधिकाराः यथासंभवं वक्तव्याः। इदानीं पुनर्विस्तररुचिशिष्याणां व्यवहारनयमाश्रित्य यथाक्रमेण मंगलादिषडधिकाराणामियत्तापरिमितविशेषणव्याख्यानं क्रियते –

मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणा णाम तह य कत्तारं।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरिओ॥

***वक्खाणउ* व्याख्यातु। स कः कर्ता? *आइरिओ* आचार्यः। किं? *सत्थं* शास्त्रं *पच्छा* पश्चात्। किं कृत्वा पूर्वं? *वागरिया* व्याकृत्य व्याख्याय। कान्? *छप्पि* षडपि *मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणा णाम तह य कत्तारं* मंगलनिमित्तहेतुपरिमाणनामकर्तृत्वाधिकाराणीति। तद्यथा – मलं पापं गालयति**

इस प्रकार (इस गाथा का) शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ है।

इसी प्रकार व्याख्यानकाल में सर्वत्र शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, भावार्थ लगा लेना चाहिए।

इस प्रकार संक्षेप में मङ्गल के लिए इष्ट देवता को नमस्कार किया। यहाँ मङ्गल उपलक्षण (संकेतमात्र) है; अतः निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्तारूप पाँच अधिकार यथासम्भव कह देना चाहिए।

अब, विस्तार रुचिवाले शिष्यों को व्यवहारनय का आश्रय लेकर यथाक्रम से मङ्गल आदि छह अधिकारों का इयत्ता, परिमित, विशेषणरूप से व्याख्यान किया जाता है –

'मङ्गल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता – इन छह का व्याख्यान करने के बाद ही आचार्य शास्त्र का व्याख्यान करें।' *(धवला पुस्तक १, गाथा १)*

वक्खाणऊ व्याख्यान करें। कर्तारूप कौन व्याख्यान करें? ***आइरिओ*** आचार्य व्याख्यान करें। किसका / कब व्याख्यान करें? ***सत्थं पच्छा*** शास्त्र का बाद में व्याख्यान करें। पहले क्या करके बाद में करें? ***वागरिय*** व्याख्या करके फिर करें। किनकी व्याख्या करके करें? ***छप्पि मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणा णाम तह य कत्तारं*** मङ्गल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम, कर्तृत्व – इन छह अधिकारों की व्याख्याकर बाद में करें। वह इस प्रकार –

मं = पाप को, गल = गलाता है, नष्ट करता है, वह मङ्गल है; अथवा मंग = पुण्य या

विध्वंसयतीति मंगलं अथवा मंगं पुण्यं सुखं तल्लाति आदत्ते गृह्णाति वा मंगलम्। चतुष्टयफलं समीक्ष्यमाणा ग्रन्थकाराः शास्त्रस्यादौ त्रिधा देवतायास्त्रेधा नमस्कारं कुर्वन्ति मंगलार्थम्।

नास्तिक्यपरिहारस्तु शिष्टाचारप्रपालनम्।
पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नं शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः॥

त्रिधा देवता कथ्यते। केन? इष्टाधिकृताभिमतभेदेन। आशीर्वस्तुनमस्क्रियाभेदेन नमस्कार-स्त्रिधा।

तच्च मंगलं द्विविधं मुख्यामुख्यभेदेन। तत्र मुख्यमंगलं कथ्यते –

आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः।
तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं तदविघ्नप्रसिद्धये॥

विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु न क्षुद्रदेवाः परिलंघयन्ति।
अर्थान् यथेष्टांश्च सदा लभन्ते जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन॥

सुख को, ल = लाता है, देता है, ग्रहण कराता है, वह मङ्गल है।

चार फल के इच्छुक ग्रन्थकार मङ्गल के लिए शास्त्र के प्रारम्भ में तीन प्रकार के देवताओं को तीन प्रकार से नमस्कार करते हैं –

नास्तिकता के निराकरणार्थ, शिष्टाचार का प्रपालन करने-हेतु, पुण्य-प्राप्ति और निर्विघ्न -समाप्ति के लिए आचार्य शास्त्र के प्रारम्भ में स्तुति करते हैं।

देवता तीन प्रकार के कहे गए हैं। कौन-कौन से तीन प्रकार के हैं? इष्ट-देवता, अधिकृत-देवता और अभिमत-देवता के भेद से वे तीन प्रकार के हैं। आशीर्वादात्मक, वस्तुकथनरूप और नमन क्रिया के भेद से नमस्कार तीन प्रकार के हैं।

मुख्य और अमुख्य के भेद से वह मङ्गल भी दो प्रकार का है। उसमें से मुख्य मङ्गल कहते हैं –

'निर्विघ्नता की प्रकृष्टसिद्धि के लिए जिनेन्द्र भगवान के गुण-स्तोत्ररूप मङ्गल बुद्धिमानों द्वारा (शास्त्र के) आदि, मध्य और अन्त में करने-हेतु कहा गया है।' *(धवला पु० १, श्लोक २२)*

वैसा ही कहा है - 'जिनेन्द्र भगवान का गुणगान करने से विघ्न नष्ट हो जाते हैं; किञ्चित् भी भय नहीं रहते, क्षुद्र देव उल्लङ्घन नहीं करते, यथेष्ट अर्थों को सदा प्राप्त करते हैं।'

(वही, श्लोक २१)

आई मंगलकरणे सिस्सा लहु पारगा हवंतित्ती।
मज्झे अव्वुच्छित्ति विज्जा विज्जाफलं चरिमे॥

अमुख्यमंगलं कथ्यते -

सिद्धत्थ पुण्णकुंभो वंदणमाला य पंडुरं छत्तं।
सेदो वण्णो आदस्स णाय कण्णा य जत्तस्सो॥

वयणियमसंजमगुणेहिं साहिदो जिणवरेहिं परमट्ठो।
सिद्धासण्णा जेसिं सिद्धत्था मंगलं तेण॥

पुण्णा मणोरहेहिं य केवलणाणेण चावि संपुण्णा।
अरहंता इदि लोए सुमंगलं पुण्णकुंभो दु॥

णिग्गमणपवेसम्हि य इह चउवीसंपि वंदणिज्जा ते।
वंदणमालेत्ति कया भरहेण य मंगलं तेण॥

'प्रारम्भ में मङ्गल करने से शिष्य शीघ्रता से (विद्या के) पारगामी होते हैं। मध्य में मङ्गल करने से विद्या की व्युच्छित्ति नहीं होती, निर्विघ्न रहती है। अन्त में मङ्गल करने से विद्या का फल प्राप्त होता है।' *(वही, गाथा २०)*

अमुख्य (औपचारिक) मङ्गल कहते हैं –

'सिद्धार्थ, पूर्णकुम्भ, वन्दनमाला, श्वेतछत्र, श्वेत वर्ण, आदर्श (दर्पण), नाथ (राजा), कन्या, उत्तम जाति का घोड़ा।' *(वही, गाथा १३)*

'व्रत, नियम, संयम गुणों के द्वारा जिनवरों ने परमार्थ का साधन किया है तथा जिनकी सिद्ध संज्ञा है; इसलिए वे सिद्धार्थ (सफेद सरसों) मङ्गल हैं।' *(वही, १४)*

'जो मनोरथों से पूर्ण हैं, केवलज्ञान से भी पूर्ण हैं, ऐसे अरहन्त इस लोक में पूर्णकुम्भरूप सुमङ्गल हैं।' *(वही, १५)*

'निकलते हुए या प्रवेश करते हुए वे चौबीसों तीर्थङ्कर वन्दनीय हैं; अतः भरत ने वन्दनमाला की थी, वह वन्दनमाला भी मङ्गल है।' *(वही, १६)*

'सभी जीवों के लिए मोक्ष का मार्ग बतानेवाले अरहन्त भगवान जगत को छत्र समान हैं, सिद्ध भी छत्राकार हैं, इससे वह छत्र भी मङ्गल है।' *(वही, १७)*

सव्वजणणिव्वुदियरा छत्तायारा जगस्स अरहंता।
छत्तायारं सिद्धित्ति मंगलं तेण छत्तं तं॥

सेदो वण्णो झाणं लेस्सा य अघाइसेसकम्मं च।
अरुहाणं इदि लोए सुमंगलं सेदवण्णो दु॥

दीसइ लोयालोओ केवलणाणे तहा जिणिंदस्स।
तह दीसइ मुकुरे बिंबुमंगलं तेण तं मुणह॥

जह वीयराय सव्वण्हु जिणवरो मंगलं हवइ लोए।
हयरायबालकण्णा तह मंगलमिदि विजाणाहि॥

कम्मारिजिणेविणु जिणवरेहिं मोक्खु जिणाहिवि जेण।
जं चउरउअरिबलजिणइ मंगलु वुच्चइ तेण॥

अथवा निबद्धानिबद्धभेदेन द्विविधं मंगलम्। तेनैव ग्रन्थकारेण कृतम्। निबद्धमंगलं यथा मोक्षमार्गस्य नेतारमित्यादि। शास्त्रान्तरादानीतो नमस्कारोऽनिबद्धमंगलं यथा जगत्त्रयनाथायेत्यादि।

'शेष रहे अघाति कर्मों से सहित अरहन्त भगवान के श्वेत वर्ण के समान ध्यान और लेश्या अर्थात् शुक्लध्यान और शुक्ललेश्या है; इसलिए लोक में श्वेत वर्ण भी सुमङ्गल है।' *(वही, १८)*

'जैसे जिनेन्द्र के केवलज्ञान में लोकालोक दिखाई देता है; उसी प्रकार दर्पण में भी बिम्ब दिखता है; अतः उसे भी मङ्गल माना गया है।' *(वही, १९)*

'जैसे वीतराग सर्वज्ञ जिनवर लोक में मङ्गल हैं; उसी प्रकार घोड़ा, राजा और बालकन्या को भी मङ्गल जानो।' *(वही, २०)*

'जैसे जिनवर कर्म शत्रुओं को जीतकर मोक्ष प्राप्त करते हैं; उसी प्रकार चतुरङ्गिणी शत्रु-सेना को घोड़े के माध्यम से जीता जाता है; अतः उसे भी मङ्गल कहा गया है।' *(वही, २१)*

अथवा निबद्ध और अनिबद्ध के भेद से मङ्गल दो प्रकार का है। उन्हीं ग्रन्थकार द्वारा किया गया मङ्गल निबद्धमङ्गल है; जैसे ***मोक्षमार्गस्य नेतारं...*** इत्यादि। दूसरे ग्रन्थ से लाया गया नमस्कार अनिबद्धमङ्गल है; जैसे ***जगत्त्रयनाथाय...*** इत्यादि।

इस प्रसङ्ग में शिष्य पूर्वपक्ष (प्रश्न) करता है – शास्त्र के प्रारम्भ में शास्त्रकार मङ्गल के लिए परमेष्ठी-गुणों का स्तोत्र किसलिए करते हैं? जो शास्त्र प्रारम्भ किया है, उसे ही कहना

अस्मिन्प्रस्तावे शिष्यः पूर्वपक्षं करोति – किमर्थं शास्त्रादौ शास्त्रकाराः मंगलार्थं परमेष्ठिगुणस्तोत्रं कुर्वन्ति यदेव शास्त्रं प्रारब्धं तदेव कथ्यतां मंगलमप्रस्तुतं ? न चैवं वक्तव्यं मंगलनमस्कारेण पुण्यं भवति पुण्येन निर्विघ्नं भवति इति। कस्मान्न वक्तव्यमिति चेत्? व्यभिचारात्। तथाहि – क्वापि नमस्कार-दानपूजादिकरणेऽपि विघ्नं दृश्यते, क्वापि दानपूजानमस्काराभावेऽपि निर्विघ्नं दृश्यत इति।

आचार्याः परिहारमाहुः – तदयुक्तं, पूर्वाचार्या इष्टदेवतानमस्कारपुरस्सरमेव कार्यं कुर्वन्ति। यदुक्तं भवता नमस्कारे कृते पुण्यं भवति पुण्येन निर्विघ्नं भवति इति न च वक्तव्यं, तदप्ययुक्तम्। कस्मात्? देवतानमस्कारकरणे पुण्यं भवति तेन निर्विघ्नं भवतीति तर्कादिशास्त्रे व्यवस्थापितत्वात्। पुनश्च यदुक्तं त्वया व्यभिचारो दृश्यते, तदप्ययुक्तम्। कस्मादिति चेत्? यत्र देवतानमस्कारदान-पूजादिधर्मे कृतेऽपि विघ्नं भवति, तत्रेदं ज्ञातव्यं पूर्वकृतपापस्यैव फलं तत् न च धर्मदूषणं; यत्र पुनर्देवता-नमस्कारदानपूजादिधर्माभावेऽपि निर्विघ्नं दृश्यते, तत्रेदं ज्ञातव्यं पूर्वकृतधर्मस्यैव फलं तत् न च पापस्य।

चाहिए; मङ्गल की आवश्यकता नहीं है; तथा (आपको) ऐसा भी नहीं कहना चाहिए कि मङ्गल-नमस्कार से पुण्य होता है और पुण्य से (कार्य) निर्विघ्न हो जाता है। ऐसा क्यों नहीं कहना चाहिए? यदि आपका ऐसा प्रश्न हो तो (मेरा कहना यह है कि इसमें) व्यभिचार (दोष) होने के कारण ऐसा नहीं कहना चाहिए। वह इस प्रकार – कभी/कहीं पर नमस्कार, दान, पूजा आदि करने पर भी विघ्न दिखाई देते हैं और कभी / कहीं पर दान, पूजा, नमस्कार का अभाव होने पर भी निर्विघ्न दिखाई देता है।

आचार्य परिहार कहते / करते हैं – यह तुम्हारा कथन उचित नहीं है। पूर्वाचार्य इष्ट देवता को नमस्कार करके ही कार्य करते हैं और जो आपने कहा कि 'नमस्कार करने से पुण्य होता है, पुण्य से निर्विघ्न होता है' – ऐसा नहीं कहना चाहिए; वह भी उचित नहीं है। वह उचित क्यों नहीं है? देवता को नमस्कार करने से पुण्य होता है, उससे निर्विघ्न होता है – ऐसा तर्कादि शास्त्रों में सम्यक् प्रकार से स्थापित / सिद्ध किया गया होने से वह उचित नहीं है। और जो तुमने कहा तथा व्यभिचार (दोष) दिखाया, वह भी उचित नहीं है। वह उचित क्यों नहीं है? जहाँ देवता-नमस्कार, दान, पूजादि धर्म करने पर भी विघ्न होता है, वहाँ यह जानना चाहिए कि पूर्वकृत पाप का फल है; धर्म का दोष नहीं है तथा जहाँ देवता-नमस्कार, दान, पूजादि धर्म का अभाव होने पर भी निर्विघ्न दिखाई देता है, वहाँ यह जानना चाहिए कि वह पूर्वकृत धर्म का फल है; पाप का नहीं।

पुनः शिष्य कहता है कि शास्त्र मङ्गल हैं या अमङ्गल? यदि मङ्गल हैं तो मङ्गल को

पुनरपि शिष्यो ब्रूते – शास्त्रं मंगलममंगलं वा? मंगलं चेत्तदा मंगलस्य मंगलं किं प्रयोजनं, यद्यमंगलं तर्हि तेन शास्त्रेण किं प्रयोजनम्? आचार्याः परिहारमाहुः – भक्त्यर्थं मंगलस्यापि मंगलं क्रियते। तथा चोक्तं –

प्रदीपेनार्चयेदर्कमुदकेन महोदधिम्।
वागीश्वरीं तथा वाग्भिर्मंगलेनैव मंगलम्॥

किंच। इष्टदेवतानमस्कारकरणे प्रत्युपकारं कृतं भवति। तथाचोक्तं –

श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः।
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः॥

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः, स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैर्न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥

इति संक्षेपेण मंगलं व्याख्यातम्।

मङ्गल का क्या प्रयोजन रहा? और यदि अमङ्गल हैं तो उस शास्त्र से क्या प्रयोजन रहा?

आचार्य परिहार कहते / करते हैं कि भक्ति के कारण मङ्गल का भी मङ्गल किया जाता है। वैसा कहा भी है – **'जैसे दीपक से सूर्य की, जल से महासागर की, वाणी से वाणीश्वरी (जिनवाणी) की पूजा करते हैं, उसी प्रकार मङ्गल से मङ्गल भी करें।'**

दूसरी बात यह है कि इष्ट देवता को नमस्कार करने से, हमारे प्रति किए गए उनके उपकारों की स्वीकृति होती है। वैसा ही कहा है –

'परमेष्ठियों के प्रसाद से श्रेयोमार्ग की सम्यक् सिद्धि होती है, इसलिए शास्त्र के प्रारम्भ में उनके गुणों का स्तोत्र (स्तवन) मुनिपुङ्गव / मुनिश्रेष्ठ आचार्यादि करते हैं।' *(आप्त परीक्षा -२)*

'इष्ट-फल की सिद्धि का उपाय सम्यग्ज्ञान है, वह सुशास्त्र से होता है, उसकी उत्पत्ति आप्त से होती है; इसलिए उनके द्वारा प्रबुद्ध हुए जीवों द्वारा वे पूज्य हो जाते हैं, क्योंकि सज्जन किए गए उपकार को विस्मृत नहीं होते / भूलते नहीं हैं।' *(तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक - ११)*

इस प्रकार संक्षेप में मङ्गल का व्याख्यान किया।

निमित्त का कथन करते हैं – निमित्त अर्थात् कारण। वीतराग-सर्वज्ञ की दिव्यध्वनिरूपी शास्त्र-प्रवृत्ति में कारण क्या है? भव्य जीवों के पुण्य की प्रेरणा से उनकी प्रवृत्ति होती है। वैसा ही कहा है –

निमित्तं कथ्यते – निमित्तं कारणम्। वीतरागसर्वज्ञदिव्यध्वनिशास्त्रे प्रवृत्ते किं कारणम्? भव्यपुण्यप्रेरणात्। तथा चोक्तं –

छद्दव्वणवपयत्थे सुयणाणाइच्चदिव्वतेएण।
पस्संतु भव्वजीवा इय सुअरविणो हवे उदओ॥

अथ प्राभृतग्रंथे शिवकुमारमहाराजो निमित्तं, अन्यत्र द्रव्यसंग्रहादौ सोमाश्रेष्ठ्यादि ज्ञातव्यम्। इति संक्षेपेण निमित्तं कथितम्।

इदानीं हेतुव्याख्यानं – हेतुः फलं, हेतुशब्देन फलं कथं भण्यत? इति चेत्। फलकारणात्फल-मुपचारात्। तच्च फलं द्विविधं प्रत्यक्षपरोक्षभेदात्। प्रत्यक्षफलं द्विविधं साक्षात्परंपराभेदेन। साक्षात्प्रत्यक्षं किं? अज्ञानविच्छित्तिः संज्ञानोत्पत्त्यसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरा इत्यादि। परंपराप्रत्यक्षं किं? शिष्यप्रतिशिष्यपूजाप्रशंसाशिष्यनिष्पत्त्यादि। इति संक्षेपेण प्रत्यक्षफलम्।

इदानीं परोक्षफलं भण्यते – तच्च द्विविधं अभ्युदयनिश्रेयससुखभेदात्। अभ्युदयसुखं कथ्यते – राजाधिराजमहाराजार्धमंडलीकमंडलीकमहामंडलीकार्धचक्रवर्तीसकलचक्रवर्तीन्द्रगणधरदेवतीर्थंकर-

---

'भव्य जीव श्रुतज्ञानरूपी सूर्य के दिव्य तेज द्वारा छह द्रव्य, नव पदार्थों को देखें, एतदर्थ श्रुतरूपी सूर्य का उदय होता है।' *(धवला पु० १, गाथा ३५)*

इस प्रस्तुत ग्रन्थ में शिवकुमार महाराज निमित्त हैं, अन्यत्र द्रव्यसंग्रह आदि में सोमाश्रेष्ठी आदि जानना चाहिए। इस प्रकार संक्षेप में निमित्त का कथन किया।

अब, हेतु का व्याख्यान करते हैं – हेतु अर्थात् फल। हेतु शब्द से फल कैसे कहा जाता है? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं – फल का कारण होने से उसे उपचार से फल कहते हैं। वह फल प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है। प्रत्यक्षफल भी साक्षात् और परम्परा के भेद से दो प्रकार का है। **साक्षात् प्रत्यक्षफल क्या है? अज्ञान का निराकरण, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, असंख्यात गुणश्रेणी कर्म-निर्जरा इत्यादि साक्षात् प्रत्यक्ष फल हैं। परम्परा प्रत्यक्षफल क्या है? शिष्य-प्रतिशिष्य से पूजा-प्रशंसा प्राप्त होना, शिष्यों की निष्पत्ति, प्राप्ति आदि परम्परा प्रत्यक्ष फल है।** इस प्रकार संक्षेप में प्रत्यक्षफल कहा।

अब, परोक्षफल कहते हैं – वह भी अभ्युदय और निःश्रेयस सुख के भेद से दो प्रकार का है। (उनमें से) अभ्युदय सुख का वर्णन करते हैं –

राजा, अधिराजा, महाराजा, अर्धमण्डलीक, मण्डलीक, महामण्डलीक, अर्धचक्रवर्ती,

परमदेवकल्याणत्रयपर्यन्तमिति। राजादिलक्षणं कथ्यते – कोटिप्राकारि अष्टादशश्रेणीनां पतिः स एव मुकुटधरः कथ्यते, मुकुटबद्धपंचशताधिपतिरधिराजा तस्माद्द्विगुणद्विगुणक्रमेण सकलचक्रिपर्यंत इति अभ्युदयसुखम्।

अथ निश्रेयससुखं कथ्यते। अरहन्तपदं कथ्यते –

खविदघणघाइकम्मा चउतीसातिसया पंचकल्लाणा।
अट्ठ महापाडिहेरा अरहंता मंगलं मज्झं॥

सिद्धपदं कथ्यते –

मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तकम्मउम्मुक्का।
मंगलभूदा सिद्धा अट्ठगुणातीदसंसारा॥

इति संक्षेपेण अभ्युदयनिश्रेयससुखं कथितम्। इदमत्र तात्पर्यं – यत्कोऽपि वीतरागसर्वज्ञप्रणीत-पंचास्तिकायसंग्रहादिकं शास्त्रं पठति श्रद्धत्ते तथैव च भावयति स च इत्थंभूतं सुखं प्राप्नोतीत्यर्थः।

इदानीं परिमाणं प्रतिपाद्यते – तच्च द्विविधं ग्रंथार्थभेदात्। ग्रन्थपरिमाणं ग्रन्थसंख्या यथासंभवं,

---

सकलचक्रवर्ती, इन्द्र, गणधरदेव, तीन कल्याणक पर्यन्त तीर्थङ्कर परमदेव (पदों की प्राप्तिरूप) अभ्युदय सुख है। राजा आदि का लक्षण कहते हैं – एक करोड़ प्राकारि (कोट) मय अठारह श्रेणिओं का स्वामी ही मुकुटधर कहलाता है; पाँच सौ मुकुटबद्ध राजाओं का अधिपति अधिराजा है; उससे दुगुने-दुगुने क्रम से सकल चक्रवर्ती पर्यन्त होना अभ्युदय सुख है।

निःश्रेयस (मोक्ष) सुख का वर्णन करते हैं। (उसमें भी) अरहन्त पद को कहते हैं –

'(अब) घनरूप घातिकर्मों से रहित, चौंतीस अतिशयों, पाँच कल्याणों और आठ महाप्रातिहार्यों से सम्पन्न अरहन्त मेरा मङ्गल करें।'

सिद्धपद का कथन करते हैं – 'मूलोत्तर कर्मप्रकृतिओं के बन्ध-उदय-सत्त्व से रहित, आठ गुणसहित, संसार से अतीत / रहित सिद्ध भगवान मङ्गलभूत हैं।'

इस प्रकार संक्षेप से अभ्युदय और निःश्रेयस का वर्णन किया। यहाँ तात्पर्य यह है कि **जो कोई भी वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत पञ्चास्तिकाय संग्रह आदि शास्त्र पढ़ता है, उनकी श्रद्धा करता है, भावना करता है; वह इस प्रकार के सुख को प्राप्त होता है – ऐसा अर्थ है।**

अब, **परिमाण** का प्रतिपादन करते हैं – वह भी ग्रन्थ और अर्थ के भेद से दो प्रकार का

अर्थपरिमाणमनन्तमिति संक्षेपेण परिमाणं भणितम्।

नाम कथ्यते – नाम द्विधा अन्वर्थयदृच्छभेदेन। अन्वर्थनाम किं ? यादृशं नाम तादृशोऽर्थः यथा तपतीति तपन आदित्य इत्यर्थः अथवा पंचास्तिकाया यस्मिन् शास्त्रे ग्रन्थे स भवति पंचास्तिकायः, द्रव्याणां संग्रहो द्रव्यसंग्रह इत्यादि। यदृच्छं काष्ठाभारेणेश्वर इत्यादि।

कर्ता कथ्यते – स च त्रिधा-मूलतन्त्रकर्ता-उत्तरतन्त्रकर्ता – उत्तरोत्तरतन्त्रकर्ताभेदेनेति। मूलतन्त्रकर्ता कालापेक्षया श्रीवर्धमानस्वामी अष्टादशदोषरहितोऽनन्तचतुष्टयसम्पन्न इति, उत्तरतन्त्रकर्ता श्रीगौतमस्वामी गणधरदेवश्चतुर्ज्ञानधरः सप्तर्द्धिसम्पन्नश्च, उत्तरोत्तरा बहवो यथासंभवम्। कर्ता किमर्थं कथ्यते ? कर्तृप्रामाण्याद्वचनप्रमाणमिति ज्ञापनार्थम्।

इति संक्षेपेण मंगलाद्यधिकारषट्कं प्रतिपादितं व्याख्यातम्॥ १॥

एवं मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारगाथा गता।

है। यथासम्भव ग्रन्थ की शब्द-संख्या आदि ग्रन्थपरिमाण है। अर्थपरिमाण अनन्त है। इस प्रकार संक्षेप में परिमाण कहा।

नाम का वर्णन करते हैं – अन्वर्थ (सार्थक), यदृच्छ (ऐच्छिक) के भेद से नाम दो प्रकार का है। अन्वर्थ नाम क्या है ? जैसा नाम, वैसा ही अर्थ; जैसे जो तपता है वह तपन / सूर्य ऐसा अर्थ है; अथवा पञ्चास्तिकायों का वर्णन जिस शास्त्र में है, वह पञ्चास्तिकाय; द्रव्यों का संग्रह, द्रव्यसंग्रह इत्यादि। यदृच्छ नाम-काष्ठाभार से ईश्वर (काष्ठ का भार ढोनेवाले को ईश्वर कहना) इत्यादि।

कर्ता का वर्णन करते हैं – मूल तन्त्रकर्ता, उत्तर तन्त्रकर्ता, उत्तरोत्तर तन्त्रकर्ता के भेद से वह तीन प्रकार का है। काल की अपेक्षा (वर्तमान काल सम्बन्धी) मूल तन्त्रकर्ता अठारह दोषों से रहित अनन्त चतुष्टय-सम्पन्न श्री वर्धमानस्वामी हैं; उत्तर तन्त्रकर्ता चार ज्ञानधारी और सात ऋद्धि से सम्पन्न श्री गौतमस्वामी गणधरदेव हैं; उत्तरोत्तर तन्त्रकर्ता यथासम्भव अनेकों होते हैं।

कर्ता का उल्लेख किसलिए किया जाता है ? कर्ता की प्रमाणता से वचनों में प्रामाणिकता का ज्ञान कराने के लिए, कर्ता का उल्लेख किया जाता है।

इस प्रकार संक्षेप में प्रतिपादित मङ्गल आदि छह अधिकारों का व्याख्यान किया गया॥ १॥

इस प्रकार मङ्गल के लिए इष्टदेवता नमस्कारपरक गाथा पूर्ण हुई।

अब, द्रव्यागमरूप शब्दसमय को नमस्कार कर पञ्चास्तिकायरूप अर्थसमय कहूँगा,

अथ द्रव्यागमरूपं शब्दसमयं नत्वा पंचास्तिकायरूपमर्थसमयं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञापूर्वकाधिकृताभिमतदेवतानमस्कारकरणेन सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचयामीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं निरूपयति —

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुगदिविणिवारणं सणिव्वाणं।
एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि॥ २॥

पणमिय प्रणम्य। कः कर्ता? *एसो* एषोऽहं। केन? *सिरसा* उत्तमाङ्गेन। कं? *समयं* शब्दसमयं *इणं* इमं प्रत्यक्षीभूतं। किंविशिष्टं? *समणमुहुग्गदं* सर्वज्ञवीतरागमहाश्रमणमुखोद्गतं। पुनरपि किंविशिष्टं? *अट्ठं* जीवादिपदार्थम्। पुनरपि किंरूपं? *चदुगदिविणिवारणं* नरकादिचतुर्गतिविनिवारणम्। पुनश्च कथंभूतं? *सणिव्वाणं* सकलकर्मविमोचनलक्षणनिर्वाणम्। इत्थंभूतं शब्दसमयं कथंभूतं?

गंभीरं मधुरं मनोहरतरं दोषव्यपेतं हितं,
कण्ठौष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गतं।

ऐसी प्रतिज्ञापूर्वक अधिकृत, अभिमत देवता को नमस्कार करने से सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन की सूचना देता हूँ; ऐसा अभिप्राय मन में धारणकर इस सूत्र (गाथा) का निरूपण करते हैं —

जिनवदननिर्गत अर्थमय चौगति-हरण शिवहेतु है।
इस समय को शिरसा नमन कर कहूँगा सुनना उसे॥ २॥

गाथार्थ : श्रमण के मुख से निकले हुए अर्थमय, चतुर्गति का निवारण करनेवाले, निर्वाणसहित (निर्वाण को कारणभूत) इस समय को शिरसा प्रणामकर मैं इसे कहूँगा, तुम सुनो!

टीकार्थ : ***पणमिय*** प्रणाम करके। कर्तारूप कौन प्रणाम करके? ***एसो*** यह मैं प्रणाम करके। किससे प्रणाम करके? ***सिरसा*** उत्तमाङ्गरूप शिर से/शिर झुकाकर प्रणाम करके। किसे प्रणाम करके? ***समयमिणं*** इस प्रत्यक्ष विद्यमान समय को प्रणाम करके। किस विशेषतावाले इसे प्रणामकर? ***समणमुहुग्गदं*** सर्वज्ञ-वीतराग महाश्रमण के मुख से निकले हुए को प्रणामकर। और यह किस विशेषतावाला है? ***अट्ठं*** जीवादि पदार्थमय है। और इसका क्या रूप है? ***चदुगदिविणिवारणं*** नरकादि चारों गतियों का निवारण करनेवाला है। और यह कैसा है? ***सणिव्वाणं*** सम्पूर्ण कर्मों से विशेषरूप से छूटने लक्षणरूप निर्वाणसहित है। इस प्रकार का शब्द-समय कैसा है?

जो गम्भीर, मधुर, मनोहरतर, दोषरहित, हितकर; कण्ठ, औष्ठ आदि वचो निमित्त से

स्पष्टं तदभीष्टवस्तुकथकं निःशेषभाषात्मकं,
दूरासन्नसमं समं निरुपमं जैनं वचः पातु नः ॥

तथाचोक्तं -

एनाज्ञानतमस्ततिर्विघटते ज्ञेये हिते चाहिते,
हानादानमुपेक्षणं च समभूत्तस्मिन् पुनः प्राणिनः।
येनेयं दृगपैति तां परमतां वृत्तं च येनानिशं,
तज्ज्ञानं मम मानसाम्बुजमुदेस्तत्सूर्यवर्योदयः ॥

इत्यादि गुणविशिष्टवचनात्मकं नत्वा किं करोमि ? *वोच्छामि* वक्षामि। कं ? अर्थसमयं *सुणुह* शृणुत यूयं हे भव्या इति क्रियाकारकसम्बन्धः।

अथवा द्वितीयव्याख्यानं – श्रमणमुखोद्गतं पञ्चास्तिकायलक्षणार्थसमयप्रतिपादकत्वादर्थं परंपरया चतुर्गतिनिवारणं चतुर्गतिनिवारणत्वादेव सनिर्वाणं एषोऽहं ग्रन्थकरणोद्यतमनाः कुण्डकुन्दाचार्यः प्रणम्य नमस्कृत्य नत्वा। केन ? शिरसा मस्तकेनोत्तमाङ्गेन। कं प्रणम्य ? पूर्वोक्तश्रमणमुखोद्गतादि-विशेषणचतुष्टयसंयुक्तं समयं शब्दरूपं द्रव्यागममिमं प्रत्यक्षीभूतं तं शब्दसमयं प्रणम्य। पश्चात् किं

रहित; पवन के रुकने से प्रगट नहीं होनेवाले, स्पष्ट उन अभीष्ट वस्तुओं को कहनेवाले, सर्व भाषात्मक, दूर व निकटवर्ती को समान, समतामय तथा उपमारहित हैं – जिनेन्द्र के ऐसे वचन हमारी रक्षा करें।

वैसा ही कहा भी है –

'जिसके द्वारा अज्ञानरूपी अन्धकार का विस्तार नष्ट हो जाता है तथा जिससे ज्ञेय के प्रति उपेक्षा, हित में आदान और अहित के प्रति परिहार/त्यागभाव प्राणिओं को प्रगट होता है, जिससे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सदैव मिथ्या श्रद्धा-मिथ्या चारित्र नष्ट होते हैं – ऐसा वह ज्ञानरूपी श्रेष्ठ सूर्य, मेरे मनकमल को विकसित करने-हेतु उदित होओ।'

इत्यादि गुणविशिष्ट वचनों को नमस्कारकर क्या करता हूँ। ***वोच्छामि*** कहूँगा। किसे कहेंगे ? अर्थसमय को कहूँगा। ***सुणुह*** हे भव्यो ! तुम सभी सुनो – इस प्रकार क्रिया-कारक सम्बन्ध है।

अथवा दूसरा व्याख्यान ***समणमुहुग्गदमट्ठं*** श्रमण के मुख से निर्गत पञ्चास्तिकाय लक्षण अर्थसमय का प्रतिपादक होने से अर्थ है, ***चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं*** परम्परा से चारों गतिओं की निवारणता होने से ही निर्वाणसहित है। ***एसो*** यह मैं ग्रन्थ करने के लिए

करोमि? वक्ष्यामि कथयामि प्रतिपादयामि शृणुत हे भव्या यूयम्। कं वक्ष्यामि? तमेव शब्दसमयवाच्यमर्थसमयं शब्दसमयं नत्वा पश्चादर्थसमयं वक्ष्ये ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थमिति। वीतरागसर्वज्ञमहाश्रमणमुखोद्गतं शब्दसमयं कश्चिदासन्नभव्यः पुरुषः शृणोति शब्दसमयवाच्यं पश्चात्पञ्चास्तिकायलक्षणमर्थसमयं जानाति तदन्तर्गते शुद्धजीवास्तिकायलक्षणेऽर्थे वीतराग-निर्विकल्पसमाधिना स्थित्वा चतुर्गतिनिवारणं करोति चतुर्गतिनिवारणादेव निर्वाणं लभते स्वात्मोत्थ-मनाकुलत्वलक्षणं निर्वाणफलभूतमनन्तसुखं च लभते जीवस्तेन कारणेनायं द्रव्यागमरूपशब्दसमयो नमस्कर्तुं व्याख्यातुं च युक्तो भवति।

इत्यनेन व्याख्यानक्रमेण सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचितानि भवन्ति। कथमिति चेत्? विवरणरूपमाचार्यवचनं व्याख्यानं, गाथासूत्रं व्याख्येयमिति व्याख्यानव्याख्येयसम्बन्धः, द्रव्यागमरूप-शब्दसमयोऽभिधानं वाचकः तेन शब्दसमयेन वाच्यः पंचास्तिकायलक्षणोऽर्थसमयोऽभिधेय इति

उद्यमशील मनवाला कुन्दकुन्दाचार्य ***प्रणम्य*** नमस्कार करके। कैसे नमस्कार करके? ***सिरसा*** मस्तक/उत्तमाङ्ग से/शिर झुकाकर नमस्कार करके। किसे नमस्कार कर? ***समयमिणं*** पूर्वोक्त समय को, श्रमणमुखोद्गत आदि चार विशेषणों से सहित उस प्रत्यक्षीभूत शब्दरूप द्रव्यागम शब्दसमय को प्रणाम कर। इसके बाद क्या करता हूँ? ***वक्ष्यामि*** कहता हूँ, प्रतिपादित करता हूँ; ***श्रुणुत*** हे भव्य! तुम सुनो!! किसे कहता हूँ? उसी शब्दसमय से वाच्य अर्थसमय को, शब्दसमय को नमस्कार कर, बाद में ज्ञान-समय की प्रसिद्धि के लिए अर्थसमय को कहता हूँ।

वीतराग-सर्वज्ञ महा श्रमण मुखोद्गत शब्दसमय को कोई आसन्न भव्य पुरुष सुनता है; पश्चात् शब्दसमय के वाच्यभूत पञ्चास्तिकाय लक्षण अर्थसमय को जानता है। उसके अन्तर्गत शुद्ध जीवास्तिकाय लक्षण अर्थ में वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा स्थिर होकर चारों गतिओं का निवारण करता है, चतुर्गति के निवारण से ही निर्वाण प्राप्त होता है और जीव निर्वाण-फलभूत स्वात्मोत्थ अनाकुलता लक्षण अनन्त सुख प्राप्त करता है; इस कारण यह द्रव्यागमरूप शब्दसमय नमस्कार करने और व्याख्यान करने-योग्य है।

इस प्रकार इस व्याख्यानक्रम से सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन सूचित होते हैं।

वे इससे किस प्रकार सूचित होते हैं?

विवरणरूप आचार्य के वचन व्याख्यान हैं, गाथासूत्र व्याख्येय है — इस प्रकार व्याख्यान-व्याख्येय सम्बन्ध है; द्रव्यागमरूप शब्दसमय अभिधान/वाचक है, उस शब्दसमय द्वारा वाच्य पञ्चास्तिकाय लक्षण अर्थसमय अभिधेय/वाच्य है — इस प्रकार अभिधान-अभिधेय लक्षण

अभिधानाभिधेयलक्षणसम्बन्धः, फलं प्रयोजनं चाज्ञानविच्छित्त्यादिनिर्वाणसुखपर्यन्तमिति सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि ज्ञातव्यानि भवन्तीति भावार्थः॥ २॥

एवमिष्टाभिमतदेवतानमस्कारमुख्यतया गाथाद्वयेन प्रथमस्थलं गतम्।

अथ गाथापूर्वार्धेन शब्दज्ञानार्थरूपेण त्रिधाभिधेयतां समयशब्दस्य, उत्तरार्धेन तु लोकालोकविभागं च प्रतिपादयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं कथयति, एवमग्रेऽपि वक्ष्यमाणं विवक्षिताविवक्षितसूत्रार्थं मनसि संप्रधार्य अथवास्य सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवतीत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं प्रतिपादयतीति पातनिकालक्षणमनेन क्रमेण यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम् —

समवाओ पंचण्हं समयमिणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
सो चेव हवदि लोगो तत्तो अमओ अलोयक्खं॥ ३॥

समवाओ पंचण्हं* पंचानां जीवाद्यर्थानां समवायः समूहः *समयमिणं* समयोऽयमिति *जिणवरेहिं

सम्बन्ध है। अज्ञान के नाश से लेकर निर्वाण-सुख-पर्यन्त फल और प्रयोजन है।

इस प्रकार सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन जानने-योग्य हैं — यह भावार्थ है॥ २॥

[*इस गाथा की टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने चदुग्गदिणिवारणं से पारतन्त्र्य-निवृत्ति तथा सणिव्वाणं से स्वातन्त्र्य-प्राप्ति लक्षण फल को फलित किया है।*]

इस प्रकार इष्ट-अभिमत देवता को नमस्कार की मुख्यता से दो गाथाओं द्वारा प्रथम स्थल पूर्ण हुआ।

अब, गाथा के पूर्वार्ध द्वारा समय शब्द के शब्द, ज्ञान और अर्थरूपता से तीन भेदों का कथन तथा उत्तरार्ध द्वारा लोकालोक का विभाग प्रतिपादित करता हूँ — ऐसा अभिप्राय मन में धारणकर यह गाथा कहते हैं; इसी प्रकार आगे भी कही जानेवाली विवक्षित-अविवक्षित गाथाओं के लिए मन में धारण कर अथवा इस गाथा के आगे यह ही गाथा उचित है, ऐसा निश्चयकर यह गाथा प्रतिपादित करते हैं; इस प्रकार इस क्रम से पातनिका का लक्षण यथासम्भव सर्वत्र जानना चाहिए —

समवाय पाँचों का समय है, जिनवरों ने यह कहा।
है लोक वह ही भिन्न अमित, अलोक नभ उससे कहा॥ ३॥

गाथार्थ : पाँच अस्तिकायों का समवायरूप समय, जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा गया है, वही लोक है तथा उससे आगे असीम अलोक नामक आकाश है।

पण्णत्तं **जिनवरैः प्रज्ञप्तः कथितः *सो चेव हवदि लोगो* स चैव पंचानां मेलापकः समूहो भवति। स कः? लोकः। *तत्तो* ततस्तस्मात्पंचानां जीवाद्यर्थानां समवायाद्बहिर्भूतः *अमओ* अमितोऽप्रमाणः अथवा '*अमओ*' अकृत्रिमो न केनापि कृतः न केवलं लोकः *अलोयक्खं* अलोक इत्याख्या संज्ञा यस्य स भवत्यलोकाख्यः, '*अलोय खं*' इति भिन्नपदपाठान्तरे च अलोक खं इति कोऽर्थः? खं शुद्धाकाशमिति संग्रहवाक्यम्।**

तद्यथा – समयशब्दस्य शब्दज्ञानार्थभेदेन पूर्वोक्तमेव त्रिधा व्याख्यानं विव्रीयते। पंचानां जीवाद्यस्तिकायानां प्रतिपादको वर्णपदवाक्यरूपो वादः पाठः शब्दसमयो द्रव्यागम इति यावत्, तेषामेव पंचानां मिथ्यात्वोदयाभावे सति संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन सम्यगवायो बोधो निर्णयो निश्चयो ज्ञानसमयोऽर्थपरिच्छित्तिर्भावश्रुतरूपो भावागम इति यावत् तेन द्रव्यागमरूपशब्दसमयेन वाच्यो भावश्रुतरूपज्ञानसमयेन परिच्छेद्यः पंचानामस्तिकायानां समूहोऽर्थसमय इति भण्यते। तत्र शब्दसमया-

---

टीकार्थ : ***समवाओ पंचण्हं*** जीवादि पाँच अर्थों/पदार्थों का समूह; ***समयमिणं*** यह समय है – ऐसा ***जिणवरेहिं पण्णत्तं*** जिनवरों ने कहा है। ***सो चेव हवदि*** और वही पाँचों का समूह है। वह क्या है? ***लोगो*** वह लोक है। ***तत्तो*** उन पाँचों जीवादि अर्थों के समवाय से बहिर्भूत ***अमओ*** अमित/अप्रमाण/असीम अथवा ***अमओ*** अकृत्रिम/किसी के द्वारा नहीं बनाया गया और न मात्र लोक अपितु ***अलोयक्खं*** अलोक है नाम जिसका, वह अलोकाकाश है। ***'अलोय खं'*** (पाठान्तर भी मिलता है) ऐसे भिन्न पद-पाठान्तर में अलोकाकाश है। 'अलोक ख' – इसका क्या अर्थ है? ख अर्थात् शुद्ध/मात्र आकाश 'अलोक ख' का अर्थ है; यह संग्रह वाक्य है।

वह इस प्रकार – पूर्वोक्त समय शब्द का ही शब्द, ज्ञान और अर्थ के भेद से तीन प्रकार का व्याख्यान करते हैं। जीवादि पाँच अस्तिकायों का प्रतिपादक वर्ण-पद-वाक्यरूप वाद/पाठ शब्दसमय है, उसे ही द्रव्य-आगम कहते हैं। मिथ्यात्व के उदय का अभाव होने पर उन्हीं पाँचों का संशय, विमोह, विभ्रम से रहित सम्यक् अवाय, बोध, निर्णय, निश्चय होना, ज्ञानसमय है; इसे ही पदार्थों की जानकारीमय भावश्रुतरूप भावागम कहते हैं। उस द्रव्यागमरूप शब्दसमय से वाच्य/कहने-योग्य, भावश्रुतरूप ज्ञानसमय से परिच्छेद्य/जानने-योग्य पाँच अस्तिकायों का समूह अर्थसमय कहलाता है। उनमें से शब्दसमय के माध्यम से ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के लिए यहाँ अर्थसमय का व्याख्यान प्रारम्भ किया जा रहा है।

वह अर्थसमय भी लोक कहलाता है। वह लोक कैसे/क्यों कहलाता है? जो कुछ भी पाँचों इन्द्रियों के विषय-योग्य दिखाई देता है, वह पुद्गलास्तिकाय है। जो कुछ भी चेतनारूप है,

धारेण ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थमर्थसमयोऽत्र व्याख्यातुं प्रारब्धः।

स चैवार्थसमयो लोको भण्यते। कथमितिचेत् ? यद्दृश्यमान किमपि पंचेन्द्रियविषययोग्यं स पुद्गलास्तिकायो भण्यते, यत्किमपि चिद्रूपं स जीवास्तिकायो भण्यते, तयोर्जीवपुद्गलयोर्गतिहेतुलक्षणो धर्मः, स्थितिहेतुलक्षणोऽधर्मः, अवगाहनलक्षणमाकाशं, वर्तनालक्षणः कालश्च यावति क्षेत्रे स लोकः। तथाचोक्तं – ''लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोकः तस्माद्बहिर्भूतमनन्तशुद्धाकाशमलोक'' इति सूत्रार्थः॥ ३॥

अथ पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञाः सामान्य-विशेषास्तित्वकायत्वं च प्रतिपादयति –

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मं तहेव आयासं।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता॥ ४॥

***जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मं तहेव आयासं* जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानीति पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञा अन्वर्था ज्ञातव्याः, *अत्थित्तम्हि य णियदा* अस्तित्वे सामान्यविशेषसत्तायां नियताः स्थिताः।**

वह जीवास्तिकाय है। उन जीव और पुद्गलों की गति में निमित्त बनने के लक्षणवाला धर्म; स्थिति में निमित्त बनने के लक्षणवाला अधर्म; अवगाहन लक्षणवाला आकाश और वर्तना लक्षणवाला काल, जितने क्षेत्र में है, वह लोक है। वैसा ही कहा भी है – **'जहाँ जीवादि पदार्थ देखे जाते हैं/दिखाई देते हैं, वह लोक है। उससे बहिर्भूत अनन्तमात्र आकाश अलोक है।'** – यह इस गाथा का अर्थ है॥ ३॥

अब, पाँच अस्तिकायों के विशेष नाम, सामान्य-विशेष अस्तित्व और कायत्व का प्रतिपादन करते हैं –

हैं जीव पुद्गल काय धर्म, अधर्म नभ अस्तित्व में।
हैं नियत और अनन्यमय, छोटे बड़े प्रदेश में॥ ४॥

गाथार्थ : जीव, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म और आकाश अस्तित्व में नियत, अनन्यमय और अणु-महान हैं।

टीकार्थ : ***जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मं तहेव आयासं*** जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश – ये पाँच अस्तिकायों के विशेष नाम अन्वर्थपरक (सार्थक) जानना चाहिए। ***अत्थित्तम्हि य णियदा*** वे अस्तित्व में, सामान्य-विशेष सत्ता में नियत हैं, स्थित हैं। तब फिर वे कुण्डे में बेर के समान सत्ता से भिन्न होंगे ? (ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं) ऐसा नहीं है, ***अणण्णमइया*** वे अनन्यमय, अपृथग्भूत हैं; जैसे घड़े में रूपादि, शरीर में हाथ आदि, स्तम्भ में

तर्हि सत्तायाः सकाशात्कुण्डे बदराणीव भिन्ना भविष्यन्ति? नैवम्। *अणण्णमइया* अनन्यमया अपृथग्भूताः यथा घटे रूपादयः शरीरे हस्तादयः स्तम्भे सार इत्यनेन व्याख्यानेनाधाराधेयभावेऽप्य-बिनास्तित्वं भणितं भवति।

इदानीं कायत्वं चोच्यते *अणुमहंता* अणुमहान्तः अणुना परिच्छिन्नत्वादणुशब्देनात्र प्रदेशा गृह्यन्ते, अणुभिः प्रदेशैर्महान्तः द्व्यणुकस्कन्दापेक्षया द्वाभ्यामणुभ्यां महान्तोऽणुमहान्तः इति कायत्वमुक्तम्। एकप्रदेशाणोः कथं कायत्वमिति चेत्? स्कन्दानां कारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सद्भावादुपचारेण कायत्वं भवति। कालाणूनां पुनर्बन्धकारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेरभावादुप-चारेणापि कायत्वं नास्ति। शक्त्यभावोऽपि कस्मात्? अमूर्तत्वादिति पञ्चास्तिकायानां विशेषसंज्ञा अस्तित्वं कायत्वं चोक्तम्।

अत्र गाथासूत्रेऽनन्तज्ञानादिरूपः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेय इति भावार्थः॥ ४॥

सार – इस प्रकार का व्याख्यान होने से आधार-आधेयभाव होने पर भी उनका अस्तित्व अबिनाभूत, अभिन्न कहा गया है।

अब, कायत्व कहते हैं – *अणुमहंता* अणु द्वारा ज्ञात होने से यहाँ अणु शब्द से प्रदेश लेना चाहिए। अणु अर्थात् प्रदेश से महान; द्व्यणुक स्कन्ध की अपेक्षा दो अणुओं से महान अणु-महान है। इस प्रकार कायत्व कहा गया। एक प्रदेशी अणु के कायत्व कैसे है? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं – स्कन्धों की कारणभूत स्निग्ध-रूक्षत्व शक्ति का सद्भाव होने के कारण उपचार से उसे कायत्व है। कालाणुओं के बन्ध की कारणभूत स्निग्ध-रूक्षत्वशक्ति का अभाव होने के कारण उपचार से भी कायत्व नहीं है।

प्रश्न - उनमें इस शक्ति का भी अभाव किस कारण है?

उत्तर - अमूर्तत्व होने के कारण उनमें उस शक्ति का अभाव है।

इस प्रकार पाँच अस्तिकायों के विशेष नाम अस्तित्व और कायत्व कहे गए। यहाँ गाथासूत्र में अनन्त ज्ञानादिरूप शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेय है – यह भावार्थ है॥ ४॥

[आचार्य अमृतचन्द्र, अनन्यमयता होने पर भी उन पाँच अस्तिकायों की अस्तित्व में नियतता को नय प्रयोग द्वारा स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – भगवान ने दो नय कहे हैं – द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। वहाँ देशना एक नय के अधीन नहीं है, अपितु दोनों नयों के अधीन है। पर्यायार्थिकनय से कथञ्चित् भिन्न होने पर स्वयं अस्तित्व में व्यवस्थित हैं तथा द्रव्यार्थिकनय से स्वयं ही सत् होते हुए अनन्यमय हैं।

अथ पूर्वोक्तमस्तित्वं कायत्वं च केन प्रकारेण संभवतीति प्रज्ञापयति —

जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तेल्लोक्कं॥ ५॥

जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं ते होंति अत्थि येषां पंचास्तिकायानामस्तित्वं विद्यते। स कः ? स्वभावः सत्ता अस्तित्वं तन्मयत्वं स्वरूपमिति यावत्। कैः सह ? गुणपर्यायैः। कथंभूतैः ? विचित्रैर्नानाप्रकारैस्ते अस्ति भवन्ति इत्यनेन पञ्चानामस्तित्वमुक्तमिति। वार्तिकं तथा कथ्यते — अन्वयिनो गुणाः व्यतिरेकिणः पर्यायाः, अथवा सहभुवो गुणाः क्रमवर्तिनः पर्यायास्ते च द्रव्यात्सकाशात् संज्ञा-लक्षणप्रयोजनादिभेदेन भिन्नाः प्रदेशरूपेण सत्तारूपेण वा चाभिन्नाः। पुनरपि कथंभूताः ? विचित्रा नानाप्रकाराः। केन कृत्वा ? स्वेन स्वभावविभावरूपेणार्थव्यंजनपर्यायरूपेण वा।

जीवस्य तावत्कथ्यन्ते — केवलज्ञानादयः स्वभावगुणा मतिज्ञानादयो विभावगुणाः सिद्धरूपः

इसी प्रकार अणु-महान का विश्लेषण उन्होंने अणुओं से महान, दो अणुओं से महान तथा अणु और महान, अणु-महान — इस प्रकार तीन रूपों में किया है।]

अब, पूर्वोक्त अस्तित्व और कायत्व किस प्रकार सम्भव है, इसका प्रकृष्टरूप में ज्ञान कराते हैं —

जो विविध गुण पर्याय युत, अस्तित्वमय कहते उन्हें।
हैं अस्तिकाय त्रिलोक रचना, उन्हीं से निष्पन्न है॥ ५॥

गाथार्थ : जिनका विविध गुणों और पर्यायों के साथ अस्तिस्वभाव है, वे अस्तिकाय हैं। उनसे तीन लोक निष्पन्न है।

टीकार्थ : *जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं ते होंति अत्थि* जिन पञ्चास्तिकायों के अस्तित्व है, वह कौन है ? स्वभाव, सत्ता, अस्तित्व, तन्मयत्व, स्वरूप है। यह किनके साथ है ? यह गुण-पर्यायों के साथ है। वे कैसे हैं ? विभिन्न/अनेक प्रकार के हैं — इसके द्वारा पाँचों का अस्तित्व कहा गया। वार्तिक में भी वैसा ही कहा है — **गुण अन्वयी और पर्यायें व्यतिरेकी होती हैं, अथवा गुण सहभू/सहभावी/सहवर्ती और पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं।** वे द्रव्य से संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि भेद की अपेक्षा भिन्न हैं तथा प्रदेशरूप या सत्तारूप से अभिन्न हैं। वे और कैसे हैं ? विचित्र/अनेक प्रकार के हैं। किस रूप से अनेक प्रकार के हैं ? अपने स्वभाव-विभावरूप से या अर्थ-व्यञ्जन पर्यायरूप से अनेक प्रकार के हैं।

जीव सम्बन्धी ये सब कहते हैं — केवलज्ञानादि स्वभावगुण, मतिज्ञानादि विभावगुण हैं;

स्वभावपर्यायः नरनारकादिरूपा विभावपर्यायाः। पुद्गलस्य कथ्यन्ते – शुद्धपरमाणौ वर्णादयः स्वभावगुणाः द्व्यणुकादिस्कन्दे वर्णादयो विभावगुणाः शुद्धपरमाणुरूपेणावस्थानं स्वभावद्रव्यपर्यायः वर्णादिभ्यो वर्णान्तरादिपरिणमनं स्वभावगुणपर्यायः द्व्यणुकादिस्कन्दरूपेण परिणमनं विभावद्रव्यपर्यायाः तेष्वेव द्व्यणुकादिस्कन्देषु वर्णान्तरादिपरिणमनं विभावगुणपर्यायाः। एते जीवपुद्गलयोर्विशेषगुणाः कथिताः। सामान्यगुणाः पुनरस्तित्ववस्तुत्वप्रमेयत्वागुरुलघुत्वादयः सर्वद्रव्य-साधारणाः। धर्मादीनां विशेषगुणपर्यायाः अग्रे यथास्थानेषु कथ्यन्ते। इत्थंभूतगुणपर्यायैः सह येषां पञ्चास्तिकायानामस्तित्वं विद्यते तेऽस्ति भवन्तीति।

इदानीं कायत्वं चोच्यते – *काया* कायाः इव काया बहुप्रदेशप्रचयत्वाच्छरीरवत्। किंकृतं तैः पञ्चास्तिकायैः? *णिप्पण्णं जेहिं तेल्लोक्कं* निष्पन्नं जातमुत्पन्नं यैः पञ्चास्तिकायैः। किं निष्पन्नं? त्रैलोक्यम्। अनेनापि गाथाचतुर्थपादेनास्तित्वं कायत्वं चोक्तम्। कथमितिचेत्? त्रैलोक्ये ये केचनोत्पादव्ययध्रौव्यवन्तः पदार्थास्ते उत्पादव्ययध्रौव्यरूपमस्तित्वं कथयन्ति। तदपि कथमिति चेत्? उत्पादव्यय-

---

सिद्धरूप स्वभावपर्याय है, नर-नारकादि रूप विभावपर्यायें हैं। ये ही पुद्गल सम्बन्धी कहते हैं – शुद्ध परमाणु के वर्णादि स्वभावगुण हैं, द्व्यणुकादि स्कन्धों के वर्णादि विभावगुण हैं; शुद्ध परमाणुरूप से अवस्थान स्वभाव द्रव्यपर्याय है, वर्णादि से अन्य वर्णादिरूप परिणमन स्वभाव गुणपर्याय है। द्व्यणुकादि स्कन्धरूप से परिणमन विभाव द्रव्यपर्यायें हैं, उन द्व्यणुकादि स्कन्धों में ही अन्य वर्णादिरूप परिणमन विभाव गुणपर्यायें हैं। ये जीव-पुद्गल के विशेष गुण कहे। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व आदि सामान्यगुण सभी द्रव्यों में साधारण हैं। धर्मादि के विशेष गुण-पर्याय आगे यथास्थान कहे गए हैं। इस प्रकार के गुण-पर्यायों के साथ जिन पाँच अस्तिकायों का अस्तित्व है, वे 'अस्ति' हैं।

अब, कायत्व कहते हैं – *काय* काय के समान काय, बहुप्रदेशों का प्रचय (समूह) होने के कारण शरीर के समान। उन पञ्चास्तिकायों से क्या किया गया है? ***णिप्पण्णं जेहिं*** उन पञ्चास्तिकायों से निष्पन्न उत्पन्न है। उनसे क्या निष्पन्न है? ***तइलुक्कं*** तीन लोक निष्पन्न है।

गाथा के इस चतुर्थ पाद के द्वारा ही अस्तित्व और कायत्व कहे गए हैं। इसके द्वारा वे कैसे कहे गए हैं? यदि ऐसा प्रश्न हो (तो कहते हैं) – **तीन लोक में जो कोई उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवान पदार्थ हैं; वे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप अस्तित्व कहलाते हैं। वे अस्तित्व कैसे कहलाते हैं? यदि ऐसा प्रश्न हो (तो कहते हैं) – 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त सत् है' – ऐसा वचन होने से (तत्त्वार्थसूत्र, पञ्चमोऽध्याय, सूत्र ३०) ऊर्ध्व-अधो-मध्य भागरूप से तीन लोक के आकार परिणत जीव, पुद्गल आदि के सावयवता, सांशकता, सप्रदेशता**

ध्रौव्यरूपं सदिति वचनात् ऊर्ध्वाधोमध्यभागरूपेण जीवपुद्गलादीनां त्रिभुवनाकारपरिणतानां सावयवत्वात्सांशकत्वात् सप्रदेशत्वात् कालद्रव्यं विहाय कायत्वं च विद्यते न केवलं पूर्वोक्तप्रकारेण, अनेन च प्रकारेणास्तित्वं कायत्वं च ज्ञातव्यम्।

तत्र शुद्धजीवास्तिकायस्य यानन्तज्ञानादिगुणसत्ता सिद्धपर्यायसत्ता च शुद्धासंख्यातप्रदेशरूपं कायत्वमुपादेयमिति भावार्थः ॥ ५ ॥

एवं गाथात्रयपर्यन्तं पञ्चास्तिकायसंक्षेपव्याख्यानं द्वितीयस्थलं गतम्।

अथ पञ्चास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यसंज्ञां कथयति —

ते चेव अत्थिकाया तिक्कालियभावपरिणदा णिच्चा।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता ॥ ६ ॥

***ते चेव अत्थिकाया तिक्कालियभावपरिणदा णिच्चा* ते चैव पूर्वोक्ताः पञ्चास्तिकायाः यद्यपि**

होने से कालद्रव्य को छोड़कर (शेष सभी के) कायत्व है। इस प्रकार मात्र पूर्वोक्त प्रकार से ही नहीं; इस प्रकार से भी अस्तित्व-कायत्व जानना चाहिए।

उनमें से शुद्ध जीवास्तिकाय की जो अनन्त ज्ञानादि गुणरूप सत्ता और सिद्ध पर्यायरूप सत्ता है तथा शुद्ध असंख्यात प्रदेशरूप कायत्व है, वह ही उपादेय है — यह भावार्थ है ॥ ५ ॥

[आचार्य अमृतचन्द्र ने इस गाथा-टीका में अस्तित्व और कायत्व को सतर्क सिद्ध किया है, जो मूलतः पठनीय है।]

इस प्रकार दूसरे स्थल में पञ्चास्तिकाय का संक्षेप व्याख्यानपरक तीन गाथाओं पर्यन्त प्रकरण पूर्ण हुआ।

अब, पञ्चास्तिकायों की और काल की द्रव्य संज्ञा कहते हैं —

त्रैकालवर्ती भाव परिणत, नित्य अस्तिकाय हैं।
व काल वर्तन चिह्नयुत, सब द्रव्य संज्ञा प्राप्त हैं ॥ ६ ॥

गाथार्थ : त्रिकालवर्ती भावों से परिणमित, नित्य वे ही अस्तिकाय, परिवर्तन लिङ्ग (काल) सहित द्रव्यभाव को प्राप्त होते हैं।

टीकार्थ : *ते चेव अत्थिकाया तिक्कालियभावपरिणदा णिच्चा* वे ही पूर्वोक्त पञ्चास्तिकाय यद्यपि पर्यायार्थिकनय से त्रैकालिक भाव परिणत/त्रिकालवर्ती पर्यायों रूप से

पर्यायार्थिकनयेन त्रैकालिकभावपरिणतास्त्रिकालविषयपर्यायपरिणताः संतः क्षणिका अनित्या विनश्वरा भवन्ति तथापि द्रव्यार्थिकनयेन नित्या एव। एवं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्यां नित्यानित्यात्मकाः संतः *गच्छंति दवियभावं* द्रव्यभावं गच्छन्ति द्रव्यसंज्ञां लभन्ते। पुनरपि कथंभूताः संतः ? *परियट्टण-लिंगसंजुत्ता* परिवर्तनमेव जीवपुद्गलादिपरिणमनमेवाग्नेर्धूमवत् कार्यभूतं लिङ्गं चिन्हं गमकं ज्ञापकं सूचनं यस्य स भवति परिवर्तनलिङ्गः कालाणुर्द्रव्यकालस्तेन संयुक्ताः। ननु कालद्रव्यसंयुक्ता इति वक्तव्यं परिवर्तनलिङ्गसंयुक्ता इति अव्यक्तवचनं किमर्थमिति ? नैवम्। पञ्चास्तिकायप्रकरणे कालस्य मुख्यता नास्तीति पदार्थानां नवजीर्णपरिणतिरूपेण कार्यलिङ्गेन ज्ञायते यतः कारणात् तेनैव कारणेन परिवर्तनलिङ्ग इत्युक्तम्।

अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये दृष्टश्रुतानुभूताहारभयमैथुनपरिग्रहादिसंज्ञादिसमस्तपरद्रव्यालम्बनोत्पन्न-संकल्पविकल्पशून्यशुद्धजीवास्तिकायश्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसंजात-वीतरागसहजापूर्वपरमानन्दरूपेण स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यं प्राप्यं भरितावस्थं शुद्धनिश्चयनयेन स्वकीय-देहान्तर्गतं जीवद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः ॥ ६ ॥

परिणमित होते हुए क्षणिक, अनित्य, विनश्वर हैं; तथापि द्रव्यार्थिकनय से नित्य ही हैं। इस प्रकार द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा नित्यानित्यात्मक होते हुए ***गच्छंति दवियभावं*** द्रव्यभाव को जाते हैं, द्रव्य नाम प्राप्त करते हैं। और कैसे होते हुए वे द्रव्य नाम पाते हैं ? ***परियट्टणलिंगसंजुत्ता*** अग्नि का धुएँ के समान जीव, पुद्गलादि का परिणमन ही है कार्यभूत लिङ्ग, चिह्न, गमक, ज्ञापक, सूचक जिसका, वह है परिवर्तन लिङ्ग कालाणु, द्रव्य काल, उससे सहित होते हुए द्रव्य नाम प्राप्त करते हैं।

प्रश्न - 'कालद्रव्य से संयुक्त' — ऐसा कहना चाहिए; 'परिवर्तन लिङ्ग से सहित' — ऐसा अव्यक्त वचन किसलिए कहा गया ?

उत्तर - ऐसा नहीं है। पञ्चास्तिकाय के प्रकरण में काल की मुख्यता नहीं है; क्योंकि वह पदार्थों की नवीन-पुरानी परिणतिरूप कार्यलिङ्ग द्वारा ज्ञात होता है, उस कारण से ही 'परिवर्तन लिङ्ग' — ऐसा कहा गया है।

इन छह द्रव्यों के बीच में शुद्ध निश्चय से दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, आहार-भय-मैथुन -परिग्रहादि संज्ञादि समस्त परद्रव्य के आलम्बन से उत्पन्न सङ्कल्प-विकल्प से शून्य, श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप अभेद रत्नत्रय लक्षण निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न वीतराग सहज अपूर्व परमानन्दमय स्वसम्वेदन ज्ञान द्वारा गम्य, प्राप्त, भरितावस्थ, अपने देह में विद्यमान शुद्ध जीवास्तिकाय नामक जीवद्रव्य ही उपादेय है — यह भावार्थ है ॥ ६ ॥

इस प्रकार कालसहित पञ्चास्तिकायों की संज्ञा के कथनरूप से गाथा पूर्ण हुई।

इति कालसहितपंचास्तिकायानां द्रव्यसंज्ञाकथनरूपेण गाथा गता।

अथ षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरे स्वकीयस्वकीयस्वरूपादच्यवनमुपदिशति —

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगसब्भावं ण विजहंति॥ ७॥

अण्णोण्णं पविसंता **अन्यक्षेत्रात्क्षेत्रान्तरं प्रति परस्परसम्बन्धार्थमागच्छन्तः *देंता ओगासमण्णमण्णस्स* आगतानां परस्परमवकाशदानं ददतः *मेलंतावि य णिच्चं* अवकाशदानानन्तरं परस्परमेलापकेन स्वकीयावस्थानकालपर्यन्तं युगपत्प्राप्तिरूपः संकरः परस्परविषयगमकरूपव्यतिकरः ताभ्यां बिना नित्यं सर्वकालं तिष्ठन्तोऽपि *सगसब्भावं ण विजहंति* स्वस्वरूपं न त्यजन्तीति।**

अथवा अन्योन्यं प्रविशन्तः सक्रियवन्तः जीवपुद्गलापेक्षया, आगतानामवकाशं ददतः इति सक्रियनिःक्रियद्रव्यमेलापकापेक्षया, नित्यं सर्वकालं मेलापकेन तिष्ठन्त इति धर्माधर्माकाशकालनिःक्रियद्रव्यापेक्षया।

अब, छहों द्रव्यों के परस्पर अत्यन्त संकर होने पर भी अपने-अपने स्वरूप से अच्यवन का/नहीं छूटने का उपदेश देते हैं —

प्रवेश करते परस्पर में, देते हैं अवकाश भी।
मिलते परस्पर में तथापि, स्व स्वभाव तजें नहीं॥ ७॥

गाथार्थ : वे परस्पर एक दूसरे में प्रवेश करते हैं, एक दूसरे को अवकाश देते हैं, परस्पर में मिलते भी हैं; तथापि सदैव अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं।

टीकार्थ : ***अण्णोण्णं पविसंता*** परस्पर सम्बन्ध के लिए अन्य क्षेत्र से अन्य क्षेत्र के प्रति आते हुए को ***देंता ओगासमण्णमण्णस्स*** परस्पर अवकाश-दान देते हुए ***मेलंतावि य णिच्चं*** अवकाश-दान के बाद परस्पर मिलाप से अपने अवस्थान-काल पर्यन्त युगपत्-प्राप्तिरूप संकर, परस्पर विषय-गमनरूप व्यतिकर — इन दोनों के बिना नित्य/हमेशा रहते हुए भी ***सगसब्भावं ण विजहंति*** अपने स्वरूप को नहीं छोड़ते हैं; अथवा सक्रियवान् जीव-पुद्गल की अपेक्षा परस्पर प्रवेश करते हुए; सक्रिय-निष्क्रिय द्रव्यों के मिलाप की अपेक्षा आए हुए को अवकाश देते हुए; धर्म, अधर्म, आकाश, कालरूप निष्क्रिय द्रव्यों की अपेक्षा हमेशा मिलापपूर्वक रहते हुए भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं।

इस प्रकार छह द्रव्यों में से ख्याति, पूजा, लाभ, दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, कृष्ण, नील, कापोतरूप अशुभ लेश्या आदि समस्त परद्रव्यों के आलम्बन से उत्पन्न सङ्कल्प-विकल्परूपी

इति षड्‌द्रव्यमध्ये ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतकृष्णनीलकापोताशुभलेश्यादिसमस्तपरद्रव्यालम्बनोत्पन्नसंकल्पविकल्पकल्लोलमालारहितं वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानन्दरूपसुखरसास्वादपरमसमरसीभावस्वभावेन स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यं प्राप्यं सालम्बं आधारं भरितावस्थं शुद्धपारिणामिक-परमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनेति पाठः। निश्चयनयेन स्वकीयदेहान्तर्गतं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं जीवद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः। यत्पुनरन्येषामेकान्तवादिनां रागद्वेषमोहसहितानामपि वायुधारणादि-सर्वशून्यध्यानव्याख्यानमाकाशध्यानं वा तत्सर्वं निरर्थकमेव। संकल्पविकल्पयोर्भेदः कथ्यते – बहिर्द्रव्ये चेतनाचेतनमिश्रे ममेदमित्यादिपरिणामः *संकल्पः,* अभ्यन्तरे सुख्यहं दुख्यहं इत्यादिहर्षविषादपरिणामो *विकल्प* इति संकल्पविकल्पलक्षणं ज्ञातव्यम्।

वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ वीतरागविशेषणमनर्थकमित्युक्ते सति परिहारमाह – आर्तरौद्ररूपस्य विषयकषायनिमित्तस्याशुभध्यानस्य वर्जनार्थत्वात् हेतुहेतुमद्भावव्याख्यानत्वाद्वा कर्मधारयसमासत्वाद्वा भावनाग्रन्थे पुनरुक्तदोषाभावत्वाद्वा स्वरूपस्य विशेषणत्वाद्वा दृढीकरणार्थत्वाद्वा। एवं वीतराग-निर्विकल्पसमाधिव्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यं, वीतरागसर्वज्ञनिर्दोषपरमात्मशब्दादिष्वप्यनेनैव प्रकारेण

कल्लोलमाला से रहित वीतराग निर्विकल्प समाधि से समुत्पन्न परमानन्दरूप सुख रसास्वादमय परम समरसीभाव स्वभावरूप स्वसम्वेदन ज्ञान द्वारा जानने-योग्य, प्राप्त होने-योग्य, स्वावलम्ब, आधार, भरितावस्थ (परिपूर्ण) शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से या निश्चयनय से अपने देह में विद्यमान शुद्ध जीवास्तिकाय नामक जीवद्रव्य ही उपादेय है – ऐसा भावार्थ है; और जो राग, द्वेष, मोह सहित अन्य एकान्तवादियों के वायु-धारणादि सर्व शून्य ध्यान व्याख्यान अथवा आकाशध्यान हैं, वे सभी निरर्थक हैं।

सङ्कल्प-विकल्प का भेद कहते हैं। चेतन-अचेतन-मिश्र बाह्य द्रव्य में 'यह मेरा है' – ऐसा परिणाम सङ्कल्प है; अन्तरङ्ग में 'मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ' इत्यादि प्रकार का हर्ष-विषादरूप परिणाम विकल्प है – इस प्रकार सङ्कल्प-विकल्प का लक्षण जानना चाहिए।

वीतराग निर्विकल्प समाधि का वीतराग विशेषण व्यर्थ है – ऐसा कहने पर (उसका) निराकरण करते हैं। विषय-कषाय निमित्तक आर्त-रौद्ररूप अशुभध्यान के निषेधार्थ होने से, हेतु-हेतुमद्भाव का व्याख्यान होने से, कर्मधारय समास होने से, भावनाग्रन्थ में पुनरुक्ति दोष का अभाव होने से, स्वरूप का विशेषण होने से अथवा दृढ़ करने के लिए होने से निर्विकल्प समाधि का भी वीतराग विशेषण दिया जाता है। **वीतराग निर्विकल्प समाधि के व्याख्यानकाल में इस प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए।** वीतराग, सर्वज्ञ, निर्दोष, परमात्मा इत्यादि शब्दों में भी इसी प्रकार

पूर्वपक्षे कृते यथासंभवं परिहारो दातव्यः इति। यत एव कारणाद्वीतरागस्तत एव कारणान्निर्विकल्पसमाधिः इति हेतुहेतुमद्भावशब्दस्यार्थः॥ ७॥

इति संकरव्यतिकरदोषपरिहारेण गाथा गता।

एवं स्वतन्त्रगाथाद्वयेन तृतीयस्थलं गतम्।

इति *प्रथममहाधिकारे* सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेण *समयशब्दार्थपीठिकाभिधानः प्रथमोऽन्तरा-धिकारः समाप्तः*॥

अथ *सत्ता सव्वपदत्था....* इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण चतुर्दशगाथाभिर्जीवपुद्गलादिद्रव्य-विवक्षारहितत्वेन सामान्यद्रव्यपीठिका कथ्यते। तत्र चतुर्दशगाथासु मध्ये सामान्यविशेषसत्तालक्षण-कथनरूपेण *सत्ता सव्वपदत्था* इत्यादि प्रथमस्थले गाथासूत्रमेकम्। तदनन्तरं सत्ताद्रव्ययोरभेदो द्रव्यशब्द-व्युत्पत्तिकथनमुख्यत्वेन च *दवियदि* इत्यादि द्वितीयस्थले सूत्रमेकम्। अथ द्रव्यस्य लक्षणत्रयसूचनरूपेण *दव्वं सल्लक्खणियं* इत्यादि तृतीयस्थले सूत्रमेकम्। तदनन्तरं लक्षणद्वयप्रतिपादनरूपेण *उप्पत्ती य विणासो* इत्यादि सूत्रमेकम्। अथ तृतीयलक्षणकथनेन *पज्जयरहियं* इत्यादि गाथाद्वयम्। एवं समुदायेन

से पूर्वपक्ष प्रस्तुतकर यथासम्भव परिहार करना चाहिए। जिस कारण वीतराग हैं, उसी कारण निर्विकल्प समाधि है – इस प्रकार हेतु-हेतुमद्भाव शब्द का अर्थ है॥ ७॥

इस प्रकार संकर-व्यतिकर दोष के निराकरण द्वारा गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार दो स्वतन्त्र गाथाओं द्वारा तीसरा स्थल पूर्ण हुआ।

इस प्रकार प्रथम महाधिकार में सात गाथाओं द्वारा तीन स्थल से ***समय शब्दार्थ पीठिका*** नामक ***प्रथम अन्तराधिकार*** पूर्ण हुआ।

अब ***सत्तासव्वपदत्था...*** इस गाथा से प्रारम्भ कर पाठक्रम से चौदह गाथाओं द्वारा जीव-पुद्गल आदि द्रव्यों की विवक्षा से रहित होने के कारण ***सामान्य द्रव्य पीठिका*** (नामक ***दूसरा अन्तराधिकार***) कहते हैं। वहाँ चौदह गाथाओं में से सामान्य-विशेष सत्ता-लक्षण-कथनरूप से ***सत्तासव्वपदत्था...*** इत्यादि प्रथम स्थल में एक गाथासूत्र, उसके बाद सत्ता और द्रव्य का अभेद तथा द्रव्य शब्द के व्युत्पत्ति-कथन की मुख्यता से ***दवियदि...*** इत्यादि दूसरे स्थल में एक गाथा, तत्पश्चात् द्रव्य के तीन लक्षणों की सूचनारूप से ***दव्वं सल्लक्खणियं...*** इत्यादि तीसरे स्थल में एक गाथा, तदनन्तर दो लक्षणों के प्रतिपादनरूप से ***उप्पत्ती व विणासो...*** इत्यादि एक गाथा तथा तीसरे लक्षण के कथनरूप में ***पज्जयरहियं...*** इत्यादि दो गाथाएँ – इस प्रकार सामूहिक तीन गाथाओं द्वारा, परस्पर सापेक्ष द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों के समर्थन की मुख्यता से

गाथात्रयेण द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकपरस्परसापेक्षनयद्वयसमर्थनमुख्यतया चतुर्थस्थलम्। अथ पञ्चमस्थले सर्वैकान्तमतनिराकरणार्थं प्रमाणसप्तभङ्गव्याख्यानमुख्यत्वेन *सियअत्थि* इत्यादि सूत्रमेकम्। एवं चतुर्दशगाथासु मध्ये स्थलपञ्चकसमुदायेन प्रथमसप्तकं गतम्।

अथ द्वितीयसप्तकमध्ये प्रथमस्थले बौद्धमतैकान्तनिराकरणार्थं द्रव्यस्थापनमुख्यत्वेन *भावस्स णत्थि णासो* इत्याद्यधिकारगाथासूत्रमेकं, तस्या विवरणार्थं गाथाचतुष्टयम्। तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये तस्यैवाधिकारसूत्रस्य द्रव्यगुणपर्यायव्याख्यानमुख्यत्वेन *भावा जीवादीया* इत्यादि सूत्रमेकम्। अथ मनुष्यादिपर्यायस्य विनाशोत्पादकत्वेऽपि ध्रुवत्वेन विनाशो नास्तीति कथनरूपेण *मणुअत्तणेण* इत्यादि सूत्रमेकम्। अथ तस्यैव दृढीकरणार्थं *सो चेव* इत्यादि सूत्रमेकम्। अथैवं द्रव्यार्थिकनयेन सदसतोर्विनाशोत्पादौ न स्तः पर्यायार्थिकनयेन पुनर्भवत इति नयद्वयव्याख्यानोपसंहाररूपेण *एवं सदो विणासो* इत्यादि उपसंहारगाथासूत्रमेकं इति द्वितीयस्थले समुदायेन गाथाचतुष्टयम्। तदनन्तरं तृतीयस्थले सिद्धस्य पर्यायार्थिकनयेनासदुत्पादमुख्यतया *णाणावरणादीया* इत्यादि सूत्रमेकम्। अथैवं चतुर्थस्थले द्रव्यरूपेण नित्यत्वेऽपि पर्यायार्थिकनयेन संसारिजीवस्य देवत्वाद्युत्पादव्ययकर्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन द्रव्यपीठिकासमाप्त्यर्थं वा *एवं भावं* इत्यादि गाथासूत्रमेकं; इति समुदायेन चतुर्भिःस्थलैर्द्वितीयसप्तकं गतम्। एवं चतुर्दशगाथाभिर्नवभिरन्तरस्थलैर्द्रव्यपीठिकायां समुदायपातनिका।

चतुर्थ स्थल है। इसके बाद पाँचवें स्थल में सभी एकान्त मतों के निराकरण के लिए प्रमाण सप्तभङ्गी के व्याख्यान की मुख्यता से ***सिय अत्थि...*** इत्यादि एक गाथा है। इस प्रकार चौदह गाथाओं में पाँच स्थलों के समुदाय द्वारा प्रथम सप्तक पूर्ण हुआ।

अब, द्वितीय सप्तक में से प्रथम स्थल में बौद्धमत के एकान्त का निराकरण करने के लिए द्रव्य के स्थापन की मुख्यता से ***भावस्स णत्थि णासो...*** इत्यादि एक गाथासूत्र है, उसके विवरण के लिए चार गाथाएँ हैं। उन चार गाथाओं में उसी अधिकारसूत्र का द्रव्य-गुण-पर्याय के व्याख्यान की मुख्यता से ***भावा जीवादीया...*** इत्यादि एक गाथा, मनुष्यादि पर्याय की विनाश-उत्पादकता में भी ध्रुवरूप से विनाश नहीं होता है – इस कथनरूप से **मणुअत्तणेण...** इत्यादि एक गाथा, इसके बाद उसे ही दृढ़ करने के लिए ***सो चेव...*** इत्यादि एक गाथा; उसी प्रकार द्रव्यार्थिकनय से सत् का विनाश, असत् का उत्पाद नहीं है, पर्यायार्थिकनय से वे दोनों होते हैं। – इस प्रकार दो नयों सम्बन्धी व्याख्यान के उपसंहाररूप से ***एवं सदो विणासो...*** इत्यादि एक उपसंहार गाथासूत्र – इस प्रकार दूसरे स्थल में समूहरूप से चार गाथाएँ हैं।

तत्पश्चात् तीसरे स्थल में सिद्ध के पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा असद् उत्पाद की मुख्यता से ***णाणावरणादीया...*** इत्यादि एक गाथा है। इसी प्रकार चौथे स्थल में द्रव्यरूप से नित्यता होने पर भी पर्यायार्थिकनय से संसारी जीव के देवत्व आदि (पर्यायों) के उत्पाद-व्यय सम्बन्धी

तद्यथा : अथास्तित्वस्वरूपं निरूपयति अथवा सत्तामूलानि द्रव्याणीति कृत्वा पूर्वं सत्तास्वरूपं भणित्वा पश्चात् द्रव्यव्याख्यानं करोमीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति भगवान् —

सत्ता सव्वपदत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का॥ ८॥

कर्तृत्व के व्याख्यान के उपसंहार की मुख्यता से अथवा द्रव्यपीठिका समाप्ति के लिए ***एवं भावं...*** इत्यादि एक गाथासूत्र है। इस प्रकार समूहरूप में चार स्थलों द्वारा द्वितीय सप्तक पूर्ण हुआ।

इस प्रकार चौदह गाथाओं वाले नौ अन्तरस्थलों द्वारा द्रव्यपीठिका की समुदाय पातनिका है।

द्रव्य पीठिका नामक द्वितीय अन्तराधिकार की सारणी

स्थलक्रम	**स्थलविषय**	**गाथा कहाँ से कहाँ तक**	**कुल गाथाएँ**
	प्रथम सप्तक		
१	सत्तालक्षणपरक	८ वीं	१
२	द्रव्यशब्द व्युत्पत्तिपरक	९ वीं	१
३	द्रव्य के तीन लक्षण सूचक	१० वीं	१
४	वस्तुव्यवस्थापरक दो नय की विवक्षा	११ से १३	३
५	प्रमाण सप्तभङ्गीपरक	१४ वीं	१
	द्वितीय सप्तक		
१	बौद्धमत निराकरणपरक	१५ वीं	१
२	बौद्धमत निषेध-स्पष्टीकरणार्थ	१६ से १९	४
३	अभूतपूर्व सिद्धदशापरक	२० वीं	१
४	उपसंहारपरक	२१ वीं	१
	कुल नौ स्थल		**कुल चौदह गाथाएँ**

वह इस प्रकार — अब अस्तित्व के स्वरूप का निरूपण करते हैं; अथवा द्रव्य सत्तामूलक सत्ता से सत्तामय है; अत: सर्व प्रथम सत्ता का स्वरूप कहकर, बाद में द्रव्य का व्याख्यान करता हूँ — ऐसा अभिप्राय मन में धारणकर भगवान (आचार्य कुन्दकुन्ददेव) इस सूत्र (गाथा) का प्रतिपादन करते हैं —

सर्वार्थमय व सविश्वरूप, अनंत पर्यायों मयी।
है लय जनन ध्रौव्यात्मक, सत्ता सप्रतिपक्ष एक भी॥ ८॥

हवदि **भवति। का कर्त्री ?** ***सत्ता*** **सत्ता। कथंभूता ?** ***सव्वपदत्था*** **सर्वपदार्था। पुनरपि कथंभूता ?** ***सविस्सरूवा*** **सविश्वरूपा। पुनरपि किं विशिष्टा ?** ***अणंतपज्जाया*** **अनंतपर्याया। पुनरपि किं विशिष्टा ?** ***भंगुप्पादधुवत्ता*** **भङ्गोत्पादध्रौव्यात्मिका। पुनश्च किं विशिष्टा ?** ***एक्का*** **महासत्तारूपेणैका। एवं पञ्चविशेषणविशिष्टा सत्ता किं निरंकुशा निःप्रतिपक्षा भविष्यति ? नैवम्।** ***सप्पडिवक्खा*** **सप्रतिपक्षैवेति वार्तिकम्।**

तथाहि – स्वद्रव्यादिचतुष्टयरूपेण सत्तायाः परद्रव्यादिचतुष्टयरूपेणासत्ता प्रतिपक्षः, सर्वपदार्थस्थितायाः सत्तायाः एकपदार्थस्थिता प्रतिपक्षः, मृदो घटः सौवर्णो घटः ताम्रो घट इत्यादिरूपेण सविश्वरूपाया नानारूपाया एकघटरूपा सत्ता प्रतिपक्षः अथवा विवक्षितैकघटे वर्णाकारादिरूपेण विश्वरूपायाः सत्ताया विवक्षितैकगन्धादिरूपा प्रतिपक्षः, कालत्रयापेक्षयानन्तपर्यायसत्ताया विवक्षितैकपर्यायसत्ता प्रतिपक्षः, उत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण त्रिलक्षणायाः सत्ताया विवक्षितैकस्योत्पादस्य वा व्ययस्य वा ध्रौव्यस्य वा सत्ता प्रतिपक्षः, एकस्या महासत्ताया अवान्तरसत्ता प्रतिपक्ष इति शुद्धसंग्रह-

---

गाथार्थ : सत्ता सर्व पदार्थों में स्थित, सविश्वरूप, अनन्त पर्यायमय, भङ्ग (व्यय) -उत्पाद-ध्रौव्यरूप, सप्रतिपक्ष और एक है।

टीकार्थ : ***हवदि*** है। कर्ता कौन है ? ***सत्ता*** सत्ता है। वह कैसी है ? ***सव्वपदत्था*** सर्व पदार्थमय है। और वह कैसी है ? ***सविस्सरूवा*** सविश्वरूप/अनेकरूप है। वह और किस विशेषतावाली है ? ***अणंतपज्जाया*** अनन्त पर्याययुक्त है। वह और कैसी है ? ***भंगुप्पादधुवत्ता*** भङ्ग/व्यय, उत्पाद, ध्रौव्यात्मक है। वह और किस विशेषतावाली है ? ***एक्का*** महासत्तारूप से एक है। इन पाँच विशेषणों से विशिष्ट सत्ता क्या निरङ्कुश, निःप्रतिपक्ष है ? ऐसा नहीं है, वह ***सप्पडिवक्खा*** सप्रतिपक्ष ही है – ऐसा वार्तिक है।

वह इस प्रकार – स्वद्रव्यादि चतुष्टयरूप से सत्ता की, परद्रव्यादि चतुष्टयरूप से असत्ता प्रतिपक्ष है। सभी पदार्थों में स्थित सत्ता की, एक पदार्थ में स्थित सत्ता प्रतिपक्ष है। मिट्टी का घड़ा, सुवर्ण का घड़ा, ताम्र का घड़ा इत्यादि रूप से सविश्वरूप/नानारूप सत्ता की, एक घटरूप सत्ता प्रतिपक्ष है; अथवा विवक्षित एक घड़े में वर्ण, आकार आदि रूप से विश्वरूप की, विवक्षित एक गन्धादि रूप सत्ता प्रतिपक्ष है। तीनों कालों की अपेक्षा अनन्त पर्याययुक्त सत्ता की, विवक्षित एक पर्यायरूप सत्ता प्रतिपक्ष है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप से त्रिलक्षणा सत्ता की, विवक्षित एक उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप सत्ता प्रतिपक्ष है। एक महासत्ता की, अवान्तरसत्ता प्रतिपक्ष है। इस प्रकार शुद्ध संग्रहनय की विवक्षा में एक महासत्ता; अशुद्ध संग्रहनय की विवक्षा में, व्यवहारनय

नयविवक्षायामेका महासत्ता अशुद्धसंग्रहनयविवक्षायां व्यवहारनयविवक्षायां वा सर्वपदार्थ - सविश्वरूपाद्यवान्तरसत्ता सप्रतिपक्षव्याख्यानं सर्वं नैगमनयापेक्षया ज्ञातव्यम्। एवं नैगमसंग्रहव्यवहार-नयत्रयेण सत्ताव्याख्यानं योजनीयं, अथवैका महासत्ता शुद्धसंग्रहनयेन, सर्वपदार्थाद्यवान्तरसत्ता व्यवहारनयेनेति नयद्वयव्याख्यानं कर्तव्यम्।

अत्र शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञस्य शुद्धजीवद्रव्यस्य या सत्ता सैवोपादेया भवतीति भावार्थः॥ ८॥

इति प्रथमस्थले सत्तालक्षणमुख्यत्वेन व्याख्यानेन गाथा गता।

अथ सत्ताद्रव्ययोरभिन्नत्वं प्रत्याख्याति —

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंति हि अणण्णभूदं तु सत्तादो॥ ९॥

***दवियदि* द्रवति। द्रवति *कोऽर्थः ? गच्छदि* गच्छति। क्व ? वर्तमानकाले, द्रोष्यति गमिष्यति**

की विवक्षा में सर्व पदार्थमयी, सविश्वरूप आदि अवान्तरसत्ता है। यह सभी सप्रतिपक्ष व्याख्यान नैगमनय की अपेक्षा जानना चाहिए। इस प्रकार नैगम, संग्रह, व्यवहार — इन तीन नयों से सत्ता का व्याख्यान घटित करना चाहिए; अथवा शुद्ध संग्रहनय से एक महासत्ता है, व्यवहारनय से सर्व पदार्थ स्थित आदि अवान्तरसत्ता है। — इस प्रकार दो नयों से व्याख्यान करना चाहिए।

यहाँ शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्ध जीवद्रव्य की जो सत्ता है, वह ही उपादेय है — यह भावार्थ है॥ ८॥

[इस गाथा-टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने सर्व प्रथम वस्तु को कथञ्चित् नित्यानित्यात्मक, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सिद्धकर, तत्पश्चात् उसके माध्यम से सत्ता की अन्य विशेषताओं को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया है।]

इस प्रकार प्रथम स्थल में सत्ता लक्षण की मुख्यतापरक व्याख्यान द्वारा एक गाथा पूर्ण हुई।

अब, सत्ता और द्रव्य में अभिन्नता की प्रसिद्धि करते हैं —

उन उन विविध सद्भाव पर्यय, को द्रवे या प्राप्त हो।
कहते उसे हैं द्रव्य सत्ता, से अनन्यमयी है जो॥ ९॥

गाथार्थ : उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं; जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।

भाविकाले, अदुद्रुवत् गतं भूतकाले। कान्? *ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं* तांस्तान् सद्भावपर्यायान् स्वकीयपर्यायान् *जं* यत् कर्तृ *दवियं तं भण्णंति हि* तद्द्रव्यं भणन्ति सर्वज्ञा हि स्फुटम् अथवा द्रवति स्वभावपर्यायान् गच्छति विभावपर्यायान्। इत्थंभूतं द्रव्यं किं सत्ताया भिन्नं भविष्यति ? नैवम्। *अणण्णभूदं तु सत्तादो* अनन्यभूतमभिन्नम्। कस्याः ? सत्तायाः निश्चयनयेन। यत एव संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि निश्चयनयेन सत्ताया द्रव्यमभिन्नं तत एव पूर्वगाथायां यत्सत्तालक्षणं कथितं सर्वपदार्थस्थितत्वं एकपदार्थस्थित्वं विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्वं त्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेक-रूपत्वमनेकरूपत्वं चेति तत्सर्वं लक्षणं सत्ताया अभिन्नत्वात् द्रव्यस्यैव द्रष्टव्यमिति सूत्रार्थः॥ ९॥

एवं द्वितीयस्थले सत्ताद्रव्ययोरभेदस्य द्रव्यशब्दस्य व्युत्पत्तिश्चेति कथनरूपेण गाथा गता।

अथ त्रेधा द्रव्यलक्षणमुपदिशति –

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू॥ १०॥

टीकार्थ : ***दवियदि*** द्रवता है। 'द्रवता है' का क्या अर्थ है ? ***गच्छदि*** उसको जाता है, प्राप्त होता है – ऐसा अर्थ है। कहाँ प्राप्त होता है ? वर्तमानकाल में प्राप्त होता है, भविष्यकाल में प्राप्त करेगा और भूतकाल में प्राप्त करता था। किन्हें प्राप्त करता है ? ***ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं*** उन-उन सद्भावस्वरूप अपनी पर्यायों को कर्तारूप जो प्राप्त करता है, ***दवियं तं भण्णंति हि*** उसे सर्वज्ञ स्पष्टतया द्रव्य कहते हैं। अथवा जो स्वभावपर्यायों को द्रवता है, विभावपर्यायों को प्राप्त करता है, वह द्रव्य है। इस प्रकार का द्रव्य क्या सत्ता से भिन्न होगा ? (इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं) – ऐसा नहीं है। ***अणण्णभूदं तु सत्तादो*** अनन्यभूत अभिन्न है। किससे अभिन्न है ? निश्चयनय से सत्ता से अभिन्न है; क्योंकि सत्ता, लक्षण, प्रयोजन आदि का भेद होने पर भी निश्चयनय से सत्ता से द्रव्य अभिन्न है; इसीलिए पूर्व गाथा में जो सर्व पदार्थ स्थिततत्व, एक पदार्थ स्थिततत्व; विश्वरूपत्व, एकरूपत्व; अनन्त पर्यायत्व, एक पर्यायत्व; त्रिलक्षणत्व, अत्रिलक्षणत्व और एकरूपत्व, अनेक रूपत्व सत्ता के लक्षण कहे थे, वे सभी लक्षण, सत्ता से अभिन्न होने के कारण, द्रव्य के ही जानना चाहिए – यह सूत्रार्थ है॥ ९॥

इस प्रकार दूसरे स्थल में सत्ता-द्रव्य में अभेद के और द्रव्य शब्द की व्युत्पत्ति के कथनरूप से गाथा पूर्ण हुई।

अब, तीन प्रकार के द्रव्य-लक्षण का उपदेश करते हैं –

दव्वं सल्लक्खणियं द्रव्यं सत्तालक्षणं द्रव्यार्थिकनयेन बौद्धं प्रति, *उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं* उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्तं पर्यायार्थिकनयेन, *गुणपज्जयासयं वा* गुणपर्यायाधारभूतं वा सांख्यनैयायिकं प्रति, *जं तं भण्णंति सव्वण्हू* यदेवं लक्षणत्रयसंयुक्तं तद्द्रव्यं भणंति सर्वज्ञा इति वार्तिकम्।

तथाहि – सत्तालक्षणमित्युक्ते सत्युत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं गुणपर्यायत्वलक्षणं च नियमेन लभ्यते। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमित्युक्ते सत्तालक्षणं गुणपर्यायत्वलक्षणं च नियमेन लभ्यते। गुणपर्यायवदित्युक्ते सत्युत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणत्वं सत्तालक्षणं च नियमेन लभ्यते। एकस्मिंल्लक्षणेऽभिहिते सत्यन्यलक्षणद्वयं कथं लभ्यत ? इति चेत् त्रयाणां लक्षणानां परस्पराबिनाभावित्वादिति।

अथ मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन शुद्धसत्तालक्षणं अगुरुलघुत्वषड्ढानिवृद्धिरूपेण शुद्धोत्पादव्यय-

---

है द्रव्य सत लक्षणमयी, उत्पाद-व्यय-ध्रुवता सहित।
आधार गुण पर्याय का, जो कहा जिन सकलज्ञयुत॥ १०॥

गाथार्थ : जो सत लक्षणवाला है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है अथवा गुण-पर्यायों का आश्रय है, उसे सर्वज्ञ भगवान द्रव्य कहते हैं।

टीकार्थ : *दव्वं सल्लक्खणियं* द्रव्य, द्रव्यार्थिकनय से सत्ता लक्षणवाला है, यह बौद्ध के प्रति कहा है। (बौद्धों को लक्षितकर द्रव्य का लक्षण कहा गया है)। ***उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं*** पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से संयुक्त है। ***गुणपज्जयासयं वा*** अथवा गुण -पर्यायों का आधारभूत है, यह सांख्य और नैयायिक के प्रति कहा गया है। ***जं तं भण्णंति सव्वण्हू*** जो इन तीन लक्षणों से सहित है, वह द्रव्य है, ऐसा सर्वज्ञ भगवान कहते हैं – यह वार्तिक है।

वह इस प्रकार : सत्तालक्षण – ऐसा कहने पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षण और गुण-पर्यायत्व लक्षण, नियम से प्राप्त होता है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त – ऐसा कहने पर सत्ता लक्षण और गुण-पर्यायत्व लक्षण, नियम से प्राप्त होता है। गुण-पर्यायवाला है – ऐसा कहने पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षणत्व और सत्ता लक्षण, नियम से प्राप्त हो जाते हैं। एक लक्षण कहने पर अन्य दो लक्षण कैसे प्राप्त हो जाते हैं ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं – तीनों लक्षणों के परस्पर अबिनाभावीत्व होने के कारण वे प्राप्त हो जाते हैं।

यहाँ मिथ्यात्व-रागादि से रहित होने के कारण शुद्ध सत्ता लक्षण, अगुरुलघुत्व की षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप से शुद्ध उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षण, अकृत ज्ञानादि अनन्त गुण लक्षण

ध्रौव्यलक्षणं अकृतज्ज्ञानाद्यनन्तगुणलक्षणं सहजशुद्धसिद्धपर्यायलक्षणं च शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः। क्षणिकैकान्तरूपं बौद्धमतं नित्यैकान्तरूपं सांख्यमतं उभयैकान्तरूपं नैयायिकमतं मीमांसकमतं च सर्वत्र मतान्तरव्याख्यानकाले ज्ञातव्यम्। क्षणिकैकान्ते किं दूषणं ? येन घटादिक्रिया प्रारब्धा स तस्मिन्नेव क्षणे गतः, क्रियानिष्पत्तिर्नास्तीत्यादि। नित्यैकान्ते च योऽसौ तिष्ठति स तिष्ठत्येव, सुखी सुख्येव, दुःखी दुःख्येवेत्यादिटंकोत्कीर्णनित्यत्वेन पर्यायान्तरं न घटते, परस्परनिरपेक्ष-द्रव्यपर्यायोभयैकान्ते पुनः पूर्वोक्तदूषणद्वयमपि प्राप्नोति। जैनमते पुनः परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायत्वान्नास्ति दूषणं॥ १०॥

इति तृतीयस्थले द्रव्यस्य सत्तालक्षणत्रयसूचनमुख्यत्वेन गाथा गता।

अथ गाथापूर्वार्धेन द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यलक्षणं, उत्तरार्धेन पर्यायार्थिकनयेन पर्यायलक्षणं प्रतिपादयति —

उप्पत्ती य विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
वयमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जायाः॥ ११॥

और सहज शुद्ध सिद्ध पर्याय लक्षणमय शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्ध जीवद्रव्य उपादेय है — ऐसा भावार्थ है। मतान्तरों के व्याख्यान काल में क्षणिक एकान्तरूप बौद्धमत, नित्य एकान्तरूप सांख्यमत, उभय एकान्तरूप नैयायिक और मीमांसकमत को सर्वत्र जान लेना चाहिए।

प्रश्न – क्षणिक एकान्त में क्या दोष है ?

उत्तर – जिसने घटादि क्रिया प्रारम्भ की, वह उसी क्षण नष्ट हो गया — इस प्रकार क्रिया की निष्पत्ति/उत्पत्ति नहीं बनती है इत्यादि दोष हैं।

नित्य एकान्त में जो वह है, वह वही है; सुखी सुखी ही है, दुःखी दुःखी ही है इत्यादि टङ्कोत्कीर्ण नित्यतारूप में पर्यायान्तर घटित नहीं होता; परस्पर निरपेक्ष द्रव्य-पर्याय — उभय के एकान्त में भी पूर्वोक्त दोनों ही दूषण प्राप्त होते हैं। जैनमत में परस्पर सापेक्ष द्रव्य-पर्यायत्व होने के कारण दोष नहीं है॥ १०॥

[इस गाथा-टीका में आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण और पर्याय का स्वरूप भी स्पष्ट किया है, जो मूलतया पठनीय है।]

इस प्रकार तीसरे स्थल में द्रव्य के सत्ता आदि तीन लक्षणों सम्बन्धी सूचना की मुख्यता से गाथा पूर्ण हुई।

अब, गाथा पूर्वार्ध द्वारा द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य का लक्षण और उत्तरार्ध द्वारा पर्यायार्थिकनय

उप्पत्ती य विणासो दव्वस्स य णत्थि **अनादिनिधनस्य द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेनोत्पत्तिश्च विनाशो वा नास्ति। तर्हि किमस्ति?** ***अत्थि सब्भावो*** **अस्ति विद्यते। स कः? सद्भावः सत्तास्तित्वं इत्यनेन पूर्वगाथाभणितमेव क्षणिकैकान्तमतनिराकरणं समर्थितं** ***वयमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया*** **तस्यैव द्रव्यस्य व्ययोत्पादध्रुवत्वं कुर्वन्ति। के कर्तारः? पर्यायाः।**

अनेन किमुक्तं भवति – द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यस्यैवोत्पादव्ययध्रौव्याणि न भवन्ति किंतु पर्यायार्थिकनयेन। केन दृष्टान्तेन? सुवर्णगोरसमृत्तिकाबालवृद्धकुमारादिपरिणतपुरुषेषु भंगत्रयरूपेण, इत्यनेन पूर्वगाथाभणितमेव नित्यैकान्तमतनिराकरणं दृढीकृतम्।

अत्र सूत्रे शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नरनारकादिविभावपरिणामोत्पत्तिविनाशरहितमपि पर्यायार्थिक-नयेन वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंभवेन सहजपरमानन्दरूपसुखरसास्वादेन स्वसंवेदनज्ञानरूपपर्यायेण परिणतं सहितं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यमेवोपादेयमिति सूत्रतात्पर्यम्॥ ११॥

से पर्याय का लक्षण प्रतिपादित करते हैं –

उत्पाद ना ना विनाश है, है द्रव्य का सद्भाव ही।
उसकी ही पर्यायें करें, उत्पाद व्यय ध्रुवता सभी॥ ११॥

गाथार्थ : द्रव्य का उत्पाद-विनाश नहीं है; सद्भाव है। विनाश, उत्पाद और ध्रुवता को उसकी ही पर्यायें करती हैं।

टीकार्थ : ***उप्पत्ती य विणासो दव्वस्स य णत्थि*** अनादिनिधन द्रव्य के द्रव्यार्थिकनय से उत्पत्ति या विनाश नहीं है। तो क्या है? ***अत्थि*** है। वह क्या है? ***सब्भावो*** सद्भाव, सत्ता, अस्तित्व है। इस प्रकार इसके द्वारा पूर्व गाथा में कहा गया ही स्पष्ट किया गया है तथा क्षणिक एकान्त मत का निराकरण किया गया है। ***विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया*** उसी द्रव्य की उत्पाद-व्यय-ध्रुवता को करती हैं। कर्तारूप वे कौन करती हैं? पर्यायें करती हैं।

इससे क्या कहा गया है – द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य के ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य नहीं होते हैं, किन्तु पर्यायार्थिकनय से होते हैं। किस दृष्टान्त से यह सिद्ध होता है? सुवर्ण, गोरस, मृत्तिका; बाल; वृद्ध; कुमारादि परिणत पुरुषों में तीनों भङ्गरूप से यह स्पष्ट होता है। इस प्रकार इससे पूर्व गाथा में कहे गए नित्य एकान्त मत के निराकरण को ही दृढ़ किया गया है।

इस गाथा में शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नर-नारकादि विभाव परिणामों की उत्पत्ति -विनाश से रहित तथा पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा वीतराग निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न सहज परमानन्द सुख रस के आस्वादमय स्वसम्वेदन ज्ञानपर्याय से परिणत शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्ध जीवद्रव्य ही उपादेय है – यह सूत्र/गाथा का तात्पर्य है॥ ११॥

एवं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकलक्षणनयद्वयव्याख्यानेन सूत्रं गतम्।

अथ द्रव्यपर्यायाणां निश्चयनयेनाभेदं दर्शयति —

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति॥ १२॥

पज्जयविजुदं दव्वं **दधिदुग्धादिपर्यायरहितगोरसवत्पर्यायरहितं द्रव्यं नास्ति,** ***दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि*** **गोरसरहितदधिदुग्धादिपर्यायवत् द्रव्यविमुक्ता द्रव्यविरहिताः पर्याया न संति,** ***दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति*** **यत एवमभेदनयेन द्रव्यपर्याययोर्भेदो नास्ति तत एव कारणात् द्वयोर्द्रव्यपर्याययोरनन्यभूतमभिन्नभावं सत्तामस्तित्वस्वरूपं प्ररूपयन्ति। के कथयन्ति? श्रमणा महाश्रमणाः सर्वज्ञ इति। अथवा द्वितीयव्याख्यानं द्वयोर्द्रव्यपर्याययोरनन्यभूतमभिन्नभावं पदार्थं वस्तु श्रमणाः प्ररूपयन्ति। भावशब्देन कथं पदार्थो भण्यत? इति चेत्। द्रव्यपर्यायात्मको भावः पदार्थो वस्त्विति वचनात्।**

इस प्रकार द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक दो नयों की अपेक्षा (द्रव्य के) लक्षण के व्याख्यान द्वारा गाथा पूर्ण हुई।

अब, निश्चय से द्रव्य-पर्यायों का अभेद दिखाते हैं —

पर्याय बिन न द्रव्य है, न द्रव्य बिन पर्याय भी।
हैं भाव दोनोंऽनन्यमय, यह बात श्रमणों ने कही॥ १२॥

गाथार्थ : पर्यायरहित द्रव्य और द्रव्यरहित पर्यायें नहीं होती हैं। दोनों का अनन्यभूत भाव/अभिन्नपना श्रमण प्ररूपित करते हैं।

टीकार्थ : ***पज्जयविजुदं दव्वं*** दही, दुग्ध आदि पर्यायों से रहित गोरस के समान पर्याय से रहित द्रव्य नहीं है। ***दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि*** गोरसरहित दही, दुग्ध आदि पर्यायों के समान द्रव्य से विमुक्त/द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं हैं। ***दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति*** क्योंकि अभिन्न प्रदेशों द्वारा निष्पन्न होने से अभिन्न क्षेत्रत्व होने के कारण, अभेदनय से द्रव्य और पर्याय में भेद नहीं है; इसी प्रकार द्रव्य-पर्याय — दोनों का अनन्यभूत अभिन्नभाव, सत्ता, अस्तित्व स्वरूप प्ररूपित करते हैं। ऐसा प्ररूपित कौन करते हैं? श्रमण, महाश्रमण, सर्वज्ञ भगवान ऐसा प्ररूपित करते हैं।

अथवा द्वितीय व्याख्यान : द्रव्य और पर्याय दोनों का अनन्यभूत अभिन्नभाव पदार्थ, दोनों की अभिन्न वस्तु श्रमण प्ररूपित करते हैं। भाव शब्द से पदार्थ कैसे कहते हैं? (यदि ऐसा प्रश्न

अत्र सिद्धरूपशुद्धपर्यायादभिन्नं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यं शुद्धनिश्चय-नयेनोपादेयमिति भावार्थः॥ १२॥

यस्मिन् वाक्ये नयशब्दोच्चारणं नास्ति तत्र नययोः शब्दव्यवहारः कर्तव्यः क्रियाकारकयोरन्त-राध्याहारवत् स्याच्छब्दाध्याहारवद्वा।

अथ द्रव्यगुणानां निश्चयनयेनाभेदं समर्थयति –

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा॥ १३॥

दव्वेण विणा ण गुणा* पुद्गलरहितवर्णादिवद्द्रव्येण बिना गुणा न संति *गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि* वर्णादिगुणरहितपुद्गलद्रव्यवद्गुणैर्बिना द्रव्यं न संभवति *अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि

हो तो कहते हैं) – भाव, पदार्थ या वस्तु, द्रव्य-पर्यायात्मक है – ऐसे वचन से भाव का अर्थ पदार्थ किया।

यहाँ सिद्धान्तरूप शुद्ध गुणों से अभिन्न, शुद्ध पर्यायों से अभिन्न, शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्ध जीवद्रव्य शुद्ध निश्चयनय से उपादेय है – यह भावार्थ है॥ १२॥

क्रिया-कारक में से किसी एक का उल्लेख होने पर अन्य का अध्याहार (ऊपर से ग्रहण) कर लेने के समान अथवा स्यात् शब्द के अध्याहार के समान जिस वाक्य में नय शब्द का उच्चारण नहीं हो, वहाँ दोनों नयों का शब्द-व्यवहार कर लेना चाहिए।

अब, निश्चय से द्रव्य और गुणों के अभेद का समर्थन करते हैं –

द्रव्य बिन गुण नहीं, गुण बिन द्रव्य सम्भव है नहीं।
इसलिए द्रव्य तथा गुणों में, भाव अव्यतिरिक्त ही॥ १३॥

गाथार्थ : द्रव्य के बिना गुण नहीं हैं, गुणों के बिना द्रव्य सम्भव नहीं है; इसलिए द्रव्य और गुणों के अव्यतिरिक्त/अभिन्न भाव है।

टीकार्थ : *दव्वेण विणा ण गुणा* पुद्गल से रहित वर्णादि के समान द्रव्य के बिना गुण नहीं हैं। ***गुणेहिं विणा दव्वं ण संभवदि*** वर्णादि गुण से रहित पुद्गलद्रव्य के समान गुणों के बिना द्रव्य सम्भव नहीं है। ***अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा*** द्रव्य और गुण के अभिन्न सत्ता द्वारा निष्पन्न होने से अभिन्न द्रव्यत्व होने के कारण, अभिन्न प्रदेशों द्वारा निष्पन्न होने से अभिन्नक्षेत्रत्व होने के कारण, उत्पाद-व्यय का अबिनाभावी एक काल होने से अभिन्न

_तम्हा_ द्रव्यगुणयोरभिन्न सत्तानिष्पन्नत्वेनाभिन्नद्रव्यत्वात् अभिन्नप्रदेशनिष्पन्नत्वेनाभिन्नक्षेत्रत्वात् एकका-लोत्पादव्ययाबिनाभावित्वेनाभिन्नकालत्वात् एकस्वरूपत्वेनाभिन्नभावत्वादिति, यस्मात् द्रव्यक्षेत्रकाल-भावैरभेदस्तस्मात् अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति। कोऽसौ ? भावस्सत्तास्तित्वम्। केषां ? द्रव्यगुणानाम्।

अथवा द्वितीयव्याख्यानं – अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति। स कः ? भावः पदार्थो वस्तु। केषां संभवित्वेन ? द्रव्यगुणानां; इत्यनेन द्रव्यगुणात्मकः पदार्थ इत्युक्तं भवति।

निर्विकल्पसमाधिबलेन जातमुत्पन्नं वीतरागसहजपरमानन्दसुखसंवित्त्युपलब्धिप्रतीत्यनुभूतिरूपं यत्स्वसंवेदनज्ञानं तेनैव परिच्छेद्यं प्राप्यं रागादिविभावविकल्पजालशून्यमपि केवलज्ञानादिगुणसमूहेन भरितावस्थं यत् शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं तदेव मनसा ध्यातव्यं तदेव वचसा वक्तव्यं कायेन तदनुकूलानुष्ठानं कर्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यार्थः॥ १३॥

एवं गुणपर्यायरूपत्रिलक्षणप्रतिपादनरूपेण गाथाद्वयम्।

इति पूर्वसूत्रेण सह गाथात्रयसमुदायेन चतुर्थस्थलं गतम्।

अथ सर्वविप्रतिपत्तीनां निराकरणार्थं प्रमाणसप्तभङ्गी कथ्यते –

कालत्व होने के कारण, एक स्वरूपत्व होने से अभिन्न भावत्व होने के कारण, क्योंकि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अभेद है; इसलिए अव्यतिरिक्त है, अभिन्न है। वह क्या अभिन्न है ? भाव, सत्ता, अस्तित्व अभिन्न है। किनकी सत्ता अभिन्न है ? द्रव्य-गुणों की सत्ता अभिन्न है।

अथवा द्वितीय व्याख्यान : अव्यतिरिक्त है, अभिन्न है। वह कौन अभिन्न है ? भाव, पदार्थ, वस्तु अभिन्न है। किनके होने से वह अभिन्न है ? द्रव्य-गुणों के होने से वह अभिन्न है; इस प्रकार इसके द्वारा पदार्थ द्रव्य-गुणात्मक है – ऐसा कहा गया है।

निर्विकल्प समाधि के बल से जात/उत्पन्न वीतराग सहज परमानन्द सुख की सम्वित्ति, उपलब्धि, प्रतीति, अनुभूतिरूप जो स्वसम्वेदन ज्ञान है, उससे ही परिच्छेद्य / जानने-योग्य/प्राप्त करने-योग्य; रागादि विभावरूप विकल्पजालों से शून्य/रहित; केवल (मात्र) ज्ञानादि गुणों के समूह से भरितावस्थ (परिपूर्ण) जो शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्धात्मद्रव्य है, वही मन द्वारा ध्यान करने-योग्य है, वही वचन द्वारा कहने-योग्य है तथा काय द्वारा उसके ही अनुकूल अनुष्ठान करने-योग्य है – यह गाथा का तात्पर्यार्थ है॥ १३॥

इस प्रकार गुण-पर्यायरूप तीन लक्षणों के प्रतिपादनरूप से दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

इस प्रकार पूर्व गाथा (१० वीं) के साथ तीन गाथाओं के समूह द्वारा चौथा स्थल पूर्ण हुआ।

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि॥ १४॥

''एकस्मिन्नविरोधेन प्रमाणनयवाक्यतः।
सदादिकल्पना या च सप्तभङ्गीति सा मता॥''

सिय अत्थि **स्यादस्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया अस्तीत्यर्थः।** ***सिय णत्थि*** **स्यान्नास्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया नास्तीत्यर्थः।** ***उहयं / सिय अत्थिणत्थि*** **उभयं / स्यादस्तिनास्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टया-पेक्षया अस्तिनास्तीत्यर्थः।** ***सिय अव्वत्तव्वं*** **स्यादवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण युगपद्वक्तुम-शक्यत्वात्** ***क्रमप्रवृत्तिर्भारती*** **तिवचनात् युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षयावक्तव्यमित्यर्थः।** ***पुणोवि तत्तिदयं*** **पुनरपि तत्त्रितयं** ***सिय अत्थि अव्वत्तव्वं*** **स्यादस्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च अस्त्यवक्तव्यमित्यर्थः।** ***सिय णत्थि***

अब, सभी विप्रतिपत्तिओं / विसम्वादों / शङ्का-आशङ्काओं के निराकरण के लिए प्रमाण सप्तभङ्गी कहते हैं –

स्यादस्ति स्यान्नास्ति उभय, अवक्तव्य व तीनों सहित।
आदेश वश से द्रव्य है नित सात भंगों से सहित॥ १४॥

गाथार्थ : द्रव्य वास्तव में आदेश / कथन के वश से स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, उभय / स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यात् अवक्तव्य तथा पुनः उन तीनों रूप अर्थात् स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य और स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य – इस प्रकार सात भङ्गरूप है।

टीकार्थ : 'प्रमाण और नय वाक्यों द्वारा एक ही वस्तु में अविरोधरूप से जो सत् आदि की कल्पना होती है, उसे सप्तभङ्गी माना / कहा गया है।'

सिय अत्थि स्यात् अस्ति है; स्यात् किसी अपेक्षा से, विवक्षित प्रकार से, स्वद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा है – ऐसा अर्थ है। ***सिय णत्थि*** स्यात् नास्ति है; स्यात्, किसी अपेक्षा से, विवक्षित प्रकार से, परद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा नहीं है – ऐसा अर्थ है। ***उहयं / सिय अत्थि णत्थि*** उभय / स्यात् अस्ति-नास्ति है; स्यात्, कथञ्चित्, विवक्षित प्रकार से, क्रम से स्व-पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति-नास्ति है – ऐसा अर्थ है। ***सिय अव्वत्तव्वं*** स्यात् अवक्तव्य है; स्यात्, कथञ्चित्, विवक्षित प्रकार से युगपत् कहना अशक्य होने से, 'वाणी की प्रवृत्ति क्रम

_अव्वत्तव्वं_ स्यान्नास्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्व-परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च नास्त्यवक्तव्यमित्यर्थः _सिय अत्थि णत्थि अव्वत्तव्वं_ स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च अस्तिनास्त्यवक्तव्यमित्यर्थः। संभवदि संभवति। किं कर्तृ ? _दव्वं_ द्रव्यं _खु_ स्फुटं। कथंभूतं ? _सत्तभंगं_ सप्तभंगं। केन ? _आदेसवसेण_ प्रश्नोत्तरवशेन। तथाहि – अस्तीत्यादिसप्तप्रश्नेषु कृतेषु सत्सु स्याद-स्तीत्यादिसप्तप्रकारपरिहारवशेनेत्यर्थः। इति प्रमाणसप्तभंगी।

एकमपि द्रव्यं कथं सप्तभङ्ग्यात्मकं भवतीति प्रश्ने परिहारमाह – यथैकोऽपि देवदत्तो गौणमुख्य-विवक्षावशेन बहुप्रकारो भवति। कथमिति चेत् ? पुत्रापेक्षया पिता भण्यते, सोऽपि स्वकीयपित्रापेक्षया पुत्रो भण्यते, मातुलापेक्षया भागिनेयो भण्यते, स एव भागिनेयापेक्षया मातुलो भण्यते, भार्यापेक्षया भर्ता भण्यते, भगिन्यपेक्षया भ्राता भण्यते, विपक्षापेक्षया शत्रुर्भण्यते, इष्टापेक्षया मित्रं भण्यते इत्यादि;

से होती है' – ऐसा वचन होने से युगपत् स्व-पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा अवक्तव्य है – ऐसा अर्थ है। ***पुणो वि तत्तिदयं*** और भी वे तीन अर्थात् ***सिय अत्थि अव्वत्तव्वं*** स्यात् अस्ति अवक्तव्य है; स्यात्, कथञ्चित्, विवक्षित प्रकार से, स्वद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा और युगपत् स्व-पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति अवक्तव्य है – ऐसा अर्थ है। ***सिय णत्थि अव्वत्तव्वं*** स्यात् नास्ति अवक्तव्य है; स्यात्, कथञ्चित्, विवक्षित प्रकार से, परद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा और युगपत् स्व-पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति अवक्तव्य है – ऐसा अर्थ है। ***सिय अत्थि णत्थि अव्वत्तव्वं*** स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य है; स्यात्, कथञ्चित्, विवक्षित प्रकार से, क्रम से स्व-पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा और युगपत् स्व-पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति-नास्ति अवक्तव्य है – ऐसा अर्थ है। ***सम्भवदि*** सम्यक्रूप में होता है। कर्तारूप कौन होता है ? ***दव्वं खु*** वास्तव में द्रव्य होता है। द्रव्य कैसा होता है ? ***सत्तभंगं*** वह सप्तभङ्गरूप होता है ? वह उसरूप कैसे होता है ? ***आदेसवसेण*** प्रश्नोत्तर के वश वह वैसा होता है। वह इस प्रकार-अस्ति इत्यादि सात प्रश्न किए जाने पर स्यात् अस्ति इत्यादि सात प्रकार के परिहार के वश से सात भङ्ग हो जाते हैं – ऐसा अर्थ है। यह प्रमाण सप्तभङ्गी है।

एक ही द्रव्य सप्तभङ्गात्मक कैसे होता है ? ऐसा प्रश्न होने पर परिहार करते हैं – जैसे एक ही देवदत्त गौण-मुख्य विवक्षा से अनेक प्रकार का है।

प्रश्न - वह अनेक प्रकार का कैसे है ?

उत्तर - पुत्र की अपेक्षा पिता कहलाता है, वही अपने पिता की अपेक्षा पुत्र कहा जाता

तथैकमपि द्रव्यं गौणमुख्यविवक्षावशेन सप्तभंग्यात्मकं भवतीति नास्तिदोष इति सामान्यव्याख्यानम्।

सूक्ष्मव्याख्यानविवक्षायां पुनः सदेकनित्यादिधर्मेषु मध्ये एकैकधर्मे निरुद्धे सप्तभंगा वक्तव्याः। कथमिति चेत्? स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्यमित्यादि, स्यादेकं स्यादनेकं स्यादेकानेकं स्यादवक्तव्यमित्यादि, स्यान्नित्यं स्यादनित्यं स्यान्नित्यानित्यं स्यादवक्तव्यमित्यादि। तत्केन दृष्टान्तेनेति कथ्यते – यथैकोऽपि देवदत्तः स्यात्पुत्रः स्यादपुत्रः स्यात्पुत्रापुत्रः स्यादवक्तव्यः स्यात्पुत्रोऽवक्तव्यः स्यादपुत्रोऽवक्तव्यः स्यात्पुत्रापुत्रोऽवक्तव्यश्चेति सूक्ष्मव्याख्यानविवक्षायां सप्तभङ्गीव्याख्यान-विवक्षायां सप्तभङ्गीव्याख्यानं ज्ञातव्यम्। स्यादस्ति द्रव्यमिति पठनेन वचनेन प्रमाणसप्तभङ्गी ज्ञायते। कथमितिचेत्? स्यादस्तीति सकलवस्तुग्राहकत्वात्प्रमाणवाक्यं, स्यादस्त्येव द्रव्यमिति वस्त्वेकदेश-ग्राहकत्वान्नयवाक्यम्। तथाचोक्तं – सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीनः इति। अस्ति

है; मामा की अपेक्षा भानजा कहलाता है, वही भानजे की अपेक्षा मामा कहा जाता है; पत्नी की अपेक्षा पति कहलाता है, बहिन की अपेक्षा भाई कहलाता है; विपक्ष की अपेक्षा शत्रु और इष्ट की अपेक्षा मित्र भी कहा जाता है इत्यादि; उसी प्रकार एक ही द्रव्य गौण-मुख्य विवक्षावश सप्तभङ्गात्मक होता है – इसमें दोष नहीं है। यह सामान्य व्याख्यान है। सूक्ष्म व्याख्यान की विवक्षा में सत, एक, नित्य आदि धर्मों में से एक-एक धर्म को लेकर सप्तभङ्ग कहना चाहिए।

प्रश्न – वह कैसे?

उत्तर – स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यात् अवक्तव्य इत्यादि। स्यात् एक, स्यात् अनेक, स्यात् एकानेक, स्यात् अवक्तव्य इत्यादि। स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य, स्यात् नित्यानित्य, स्यात् अवक्तव्य इत्यादि।

प्रश्न – वह किस दृष्टान्त से कही जाती है?

उत्तर – जैसे कोई एक ही देवदत्त स्यात् पुत्र, स्यात् अपुत्र, स्यात् पुत्रापुत्र, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् पुत्र अवक्तव्य, स्यात् अपुत्र अवक्तव्य, स्यात् पुत्रापुत्र अवक्तव्य है – इस प्रकार सूक्ष्म व्याख्यान की विवक्षा में, सप्तभङ्गी व्याख्यान की विवक्षा में सप्तभङ्गी-व्याख्यान जानना चाहिए।

स्यात् अस्तिद्रव्य – ऐसा पढ़ने, कहने से प्रमाण सप्तभङ्गी ज्ञात होती है।

प्रश्न – वह कैसे?

उत्तर – स्यात् अस्ति द्रव्य – यह सम्पूर्ण वस्तु को ग्रहण करनेवाला होने से प्रमाण-वाक्य है, स्यात् अस्ति एवं द्रव्य - यह वस्तु के एकदेश को ग्रहण करनेवाला होने से नय-वाक्य

द्रव्यमिति दुःप्रमाणवाक्यं अस्त्येव द्रव्यमिति दुर्नयवाक्यम्। एवं प्रमाणादिवाक्यचतुष्टयव्याख्यानं बोद्धव्यम्।

अत्र सप्तभंग्यात्मकं षड्द्रव्येषु मध्ये शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः॥ १४॥

इत्येकसूत्रेण सप्तभङ्गीव्याख्यानम्।

एवं चतुर्दशगाथासु मध्ये स्थलपंचकेन प्रथमसप्तकं गतम्।

अथ सति धर्मिणि धर्माश्चिंत्यन्ते, द्रव्यं नास्ति सप्तभंगाः कस्य भविष्यंतीति बौद्धमतानुसारि-शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति परिहाररूपेण गाथापातनिकां करोति, द्रव्यार्थिकनयेन सतः पदार्थस्य विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीतिवचनेन क्षणिकैकान्तबौद्धमतं निषेधयति –

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उत्पादो।
गुणपज्जएसु भावा उप्पादवये पकुव्वंति॥ १५॥

है। वैसा ही कहा भी है – सकल / सम्पूर्ण का कथन प्रमाण के अधीन है; विकल / एकदेश का कथन नय के अधीन है। 'अस्ति द्रव्य' – यह दुष्प्रमाण / प्रमाणाभास / मिथ्या प्रमाण का वाक्य है, 'अस्ति एव द्रव्य' – यह दुर्नय / नयाभास / मिथ्यानय का वाक्य है। इस प्रकार प्रमाणादि चार वाक्यों का व्याख्यान जानना चाहिए।

यहाँ छह द्रव्यों में से सप्तभङ्गात्मक शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्धात्मद्रव्य उपादेय है – यह भावार्थ है॥ १४॥

इस प्रकार एक गाथा द्वारा सप्तभङ्गी का व्याख्यान हुआ।

इस प्रकार पाँच स्थलों द्वारा चौदह गाथाओं में से प्रथम सप्तक पूर्ण हुआ।

अब, धर्मी के होने पर ही धर्मों का विचार किया जाता है; द्रव्य नहीं है तो सात भङ्ग किसके होंगे ? ऐसा बौद्ध मतानुसारी शिष्य द्वारा पूर्वपक्ष (प्रश्न) किए जाने पर परिहाररूप से गाथा की उत्थानिका करते हैं। द्रव्यार्थिकनय से सत पदार्थ का विनाश नहीं है, असत का उत्पाद नहीं है – इस प्रकार के वचन द्वारा क्षणिक एकान्त बौद्ध मत का निषेध करते हैं –

है भाव का ना नाश और, अभाव का उत्पाद ना।
हैं भाव गुण पर्याय में, उत्पाद व्यय करते सदा॥ १५॥

गाथार्थ : भाव का नाश नहीं है, अभाव का उत्पाद नहीं है; भाव गुण-पर्यायों में उत्पाद -व्यय करते हैं।

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उत्पादो यथा गोरसस्य गोरसद्रव्यरूपेणोत्पादो नास्ति विनाशोऽपि नास्ति, *गुणपज्जएसु भावा उप्पादवये पकुव्वंति* तथापि वर्णरसगंधस्पर्शगुणेषु वर्णरसगंधांतरादिरूपेण परिणामिषु नश्यति नवनीतपर्याय उत्पद्यते च घृतपर्यायः तथा सतो विद्यमान-भावस्य पदार्थस्य जीवादिद्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वेन नास्ति विनाशः, नास्त्यसतोऽविद्यमानभावस्य पदार्थस्य जीवादिद्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वेनोत्पादः तथापि गुणपर्यायेष्वधिकरणभूतेषु भावाः पदार्था जीवादिषड्द्रव्याणि कर्तृणि पर्यायार्थिकनयेन विवक्षितनरनारकादिद्व्यणुकादिगतिस्थित्यव-गाहनवर्तनादिरूपेण यथासंभवमुत्पादव्ययान् प्रकुर्वन्ति।

अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनेति वा पाठः, निश्चयनयेन क्रोधमानमायालोभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिपरभावशून्यमपि उत्पाद-व्ययरहितेन वा पाठः, आद्यंतरहितेन चिदानंदैकस्वभावेन भरितावस्थं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं ध्यातव्यमित्यभिप्रायः॥ १५॥

टीकार्थ : ***भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उत्पादो*** जैसे गोरस का गोरस द्रव्यरूप से उत्पाद नहीं है, विनाश भी नहीं है; ***गुणपज्जएसु भावा उप्पादवये पकुव्वंति*** तथापि वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्शरूप गुणों में अन्य वर्ण, रस, गन्धादि रूप से परिणामी में नवनीत (मक्खन) पर्याय नष्ट होती है और घृत (घी) पर्याय उत्पन्न होती है; उसी प्रकार सत / विद्यमान भाव / पदार्थरूप जीवादि द्रव्य का द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा द्रव्यत्वरूप से विनाश नहीं है, असत / अविद्यमान भाव / पदार्थरूप जीवादि द्रव्य का द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा उत्पाद नहीं है; तथापि भाव / पदार्थमयी जीवादि छह द्रव्यरूप कर्ता अधिकरणभूत गुण-पर्यायों में पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा विवक्षित मनुष्य, नारक आदि; द्व्यणुक आदि; गति, स्थिति, अवगाहन, वर्तनादि रूप से यथासम्भव उत्पाद-व्यय करते हैं।

यहाँ छह द्रव्यों में से शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय अथवा निश्चयनय की अपेक्षा क्रोध, मान, माया, लोभ, दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, भोगाकांक्षारूप निदान बन्धादि परभावों से शून्य होने पर भी उत्पाद-व्यय से रहित, आदि-अन्त से रहित चिदानन्द / एक स्वभाव से भरितावस्थ (परिपूर्ण) जीवास्तिकाय नामक शुद्धात्मद्रव्य ध्यान करने-योग्य है — ऐसा अभिप्राय है॥ १५॥

इस प्रकार द्वितीय सप्तक में से प्रथम स्थल में बौद्ध के प्रति द्रव्य की स्थापना करने के लिए गाथा पूर्ण हुई।

इति द्वितीयसप्तकमध्ये प्रथमस्थले बौद्धं प्रति द्रव्यस्थापनार्थं सूत्रगाथा गता।

अथ पूर्वगाथोक्तान् गुणपर्यायभावान् प्रज्ञापयति —

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगा।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा॥ १६॥

***भावा जीवादीया* भावाः पदार्था भवंति। कानि? जीवादिषड्द्रव्याणि। धर्मादिचतुर्द्रव्याणां गुणपर्यायानग्रे यथास्थानं विशेषेण कथयति, अत्र तावत् जीवगुणा अभिधीयंते *जीवगुणा चेदणा य उवओगा* जीवगुणा भवन्ति। के ते? शुद्धाशुद्धरूपेण द्विविधा चेतना ज्ञानदर्शनोपयोगौ चेति संग्रहवाक्यं वार्तिकं समुदायकथनं तात्पर्यार्थकथनं संपिंडितार्थकथनमिति यावत्। तद्यथा — ज्ञानचेतना शुद्धचेतना भण्यते, कर्मचेतना कर्मफलचेतना अशुद्धा भण्यते। सा त्रिप्रकारापि चेतना अग्रे चेतनाधिकारे विस्तरेण व्याख्यायते।**

इदानीमुपयोगः कथ्यते — सविकल्पो ज्ञानोपयोगो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगः। ज्ञानोपयोगोऽष्ट-

---

अब, पूर्व गाथा में कहे गए गुण-पर्यायमय भावों का प्रकृष्टरूप से ज्ञान कराते हैं —

हैं भाव जीवादि व जिव, गुण चेतना उपयोग हैं।
सुर नर नरक तिर्यंच बहुविध, जीव की पर्याय हैं॥ १६॥

गाथार्थ : जीवादि भाव हैं, चेतना और उपयोग जीव के गुण हैं तथा देव, मनुष्य, नारकी, तिर्यञ्च आदि जीव की अनेक पर्यायें हैं।

टीकार्थ : *भावा जीवादीया* भाव पदार्थ हैं। वे कौन हैं? जीवादि छह द्रव्य। धर्मादि चार द्रव्यों के गुण-पर्यायों को आगे यथास्थान विशेषरूप से कहेंगे। यहाँ तो जीव के गुण कहते हैं — ***जीवगुणा चेदणा य उवओगा*** जीव के गुण हैं। वे कौन हैं? वे शुद्धाशुद्धरूप से दो प्रकार की चेतना और ज्ञान-दर्शन उपयोग हैं — इस प्रकार यह संग्रह वाक्य, वार्तिक, समुदायकथन, तात्पर्यार्थकथन, संपिण्डितार्थ कथन है। (अब इसका विस्तार करते हैं।) वह इस प्रकार —

ज्ञानचेतना, शुद्ध चेतना कहलाती है, कर्मचेतना और कर्मफलचेतना, अशुद्ध कहलाती है। उस तीन प्रकार की चेतना का आगे चेतनाधिकार में विस्तार से व्याख्यान करते हैं।

अब उपयोग को कहते हैं — सविकल्प ज्ञानोपयोग, निर्विकल्प दर्शनोपयोग है। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान — ये पाँच सम्यग्ज्ञान और कुमति, कुश्रुत, विभङ्गरूप से तीन अज्ञान — इस प्रकार ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है। वहाँ केवलज्ञान

धामतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानीति संज्ञानपंचकं कुमतिकुश्रुतविभंगरूपेणाज्ञानत्रयमित्यष्टधा ज्ञानोपयोगः। तत्र केवलज्ञानं क्षायिकं निरावरणत्वात् शुद्धं, शेषाणि सप्त मतिज्ञानादीनि क्षायोपशमिकानि सावरणत्वादशुद्धानि। दर्शनोपयोगश्चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनरूपेण चतुर्धा। तत्र केवलदर्शनं क्षायिकं निरावरणत्वात् शुद्धं, चक्षुरादित्रयं क्षायोपशमिकं सावरणत्वादशुद्धम्।

इदानीं जीवपर्यायाः कथ्यन्ते *सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा* सुरनरनारकतिर्यंचो जीवस्य विभावद्रव्यपर्याया बहवो भवन्ति। किंच – द्विधा पर्याया द्रव्यपर्याया गुणपर्यायाश्च। द्रव्यपर्याय-लक्षणं कथ्यते – अनेकद्रव्यात्मिकाया ऐक्यप्रतिपत्तेर्निबन्धनकारणभूतो द्रव्यपर्यायः अनेकद्रव्यात्मिकै-कयानवत्। स च द्रव्यपर्यायो द्विविधः समानजातीयोऽसमानजातीयश्चेति। समानजातीयः कथ्यते – द्वे त्रीणि वा चत्वारीत्यादिपरमाणुपुद्गलद्रव्याणि मिलित्वा स्कंधा भवन्तीत्यचेतनस्यापरेणाचेतनेन सम्बन्धात्समानजातीयो भण्यते। असमानजातीयः कथ्यते – जीवस्य भवांतरगतस्य शरीरनोकर्मपुद्गलेन सह मनुष्यदेवादिपर्यायोत्पत्तिः चेतनजीवस्याचेतनपुद्गलद्रव्येण सह मेलापकादसमानजातीयः द्रव्यपर्यायो भण्यते। एते समानजातीय असमानजातीयाश्च अनेकद्रव्यात्मिकैकरूपा द्रव्यपर्याया जीवपुद्गलयोरेव

निरावरण / आवरणरहित होने से क्षायिक शुद्ध है। मतिज्ञान आदि शेष सात ज्ञान, सावरण / आवरणसहित होने से क्षायोपशमिक अशुद्ध हैं। चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवलदर्शनरूप से दर्शनोपयोग चार प्रकार का है। उनमें से केवलदर्शन निरावरण होने से क्षायिक शुद्ध है। चक्षु आदि तीन दर्शन सावरण होने से क्षायोपशमिक अशुद्ध हैं।

अब, जीव की पर्यायें कहते हैं – ***सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा*** जीव की देव, मनुष्य, नारक, तिर्यञ्चरूप विभाव द्रव्यपर्यायें अनेक हैं। विशेष यह है कि पर्यायें दो प्रकार की हैं – द्रव्यपर्यायें और गुणपर्यायें। द्रव्यपर्याय का लक्षण कहते हैं – अनेक द्रव्यस्वरूपों में एक यान के समान अनेक द्रव्यस्वरूप की एकता के ज्ञान में निबन्धन / कारणभूत पर्याय द्रव्यपर्याय है। वह द्रव्यपर्याय भी दो प्रकार की है – समानजातीय और असमानजातीय। समानजातीय (का स्वरूप) कहते हैं – दो, तीन या चार इत्यादि परमाणु पुद्‌गलद्रव्य मिलकर स्कन्ध होते हैं; इस प्रकार अचेतन का दूसरे अचेतन के साथ सम्बन्ध होने से समानजातीय कहलाती है।

असमानजातीय का स्वरूप कहते हैं – दूसरे भव में जानेवाले जीव की शरीर नोकर्मरूप पुद्‌गल के साथ मनुष्य, देवादि पर्याय में उत्पत्ति, चेतन जीव का अचेतन पुद्‌गल द्रव्य के साथ सम्बन्ध होने से असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहलाती है। अनेक द्रव्यस्वरूपों में एकरूप ये समानजातीय और असमानजातीय द्रव्यपर्यायें जीव-पुद्‌गल में ही होती हैं तथा अशुद्ध ही हैं। ये अशुद्ध क्यों हैं? अनेक द्रव्यों का परस्पर संश्लेषरूप से सम्बन्ध होने के कारण ये अशुद्ध हैं।

भवन्ति अशुद्धा एव भवन्ति। कस्मादिति चेत्? अनेकद्रव्याणां परस्परसंश्लेषरूपेण सम्बन्धात्। धर्माद्यन्यद्रव्याणां परस्परसंश्लेषसम्बन्धेन पर्यायो न घटते परद्रव्यसम्बन्धेनाशुद्धपर्यायोऽपि न घटते।

इदानीं गुणपर्यायाः कथ्यन्ते – तेऽपि द्विधा स्वभावविभावभेदेन। गुणद्वारेणान्वयरूपायाः एकत्व-प्रतिपत्तेर्निबंधनं कारणभूतो गुणपर्यायः, स चैकद्रव्यगत एव सहकारफले हरितपांडुरादिवर्णवत्। कस्य? पुद्गलस्य। मतिज्ञानादिरूपेण ज्ञानान्तरपरिणमनवज्जीवस्य। एवं जीवपुद्गलयोर्विभावगुणरूपाः पर्याया ज्ञातव्याः। स्वभावगुणपर्याया अगुरुलघुकगुणषड्ढानिवृद्धिरूपाः सर्वद्रव्यसाधारणाः। एवं स्वभाव-विभावगुणपर्याया ज्ञातव्याः।

अथवा द्वितीयप्रकारेणार्थव्यंजनपर्यायरूपेण द्विधा पर्याया भवन्ति। तत्रार्थपर्यायाः सूक्ष्माः क्षणक्षयिणस्तथावाग्गोचराविषया भवन्ति। व्यंजनपर्यायाः पुनः स्थूलश्चिरकालस्थायिनो वाग्गोचराश्-छद्मस्थदृष्टिविषयाश्च भवन्ति। एते विभावरूपा व्यंजनपर्याया जीवस्य नरनारकादयो भवन्ति, स्वभाव-

---

धर्मादि अन्य / शेष द्रव्यों के परस्पर संश्लेष सम्बन्ध से पर्याय नहीं होती है; अतः उनके परद्रव्यसम्बन्ध से (होनेवाली) अशुद्ध पर्याय भी घटित नहीं होती है।

अब, गुण-पर्यायें कही जाती हैं। वे भी स्वभाव-विभाव के भेद से दो प्रकार की हैं। गुणों की अपेक्षा अन्वयरूप से एकत्व की प्रतिपत्ति / जानकारी में निबन्धन / कारणभूत गुणपर्यायें हैं। आम्रफल में हरे-पीले आदि रङ्गों के समान वे एक द्रव्यगत ही होती हैं। हरे-पीले आदि रङ्गों रूप गुणपर्यायें किसकी हैं? मतिज्ञानादि रूप से अन्य ज्ञानरूप परिणमन करनेवाली जीव की पर्यायों के समान ये पुद्गल की हैं। इस प्रकार जीव-पुद्गल की विभाव गुणरूप पर्यायें जानना चाहिए। अगुरुलघुगुण की षट्हानि-वृद्धिरूप स्वभाव गुणपर्यायें सभी द्रव्यों की साधारण / समान हैं। इस प्रकार स्वभाव-विभाव गुणपर्यायें जानना चाहिए।

अथवा दूसरे प्रकार द्वारा (दूसरी पद्धति से) अर्थ-व्यञ्जन-पर्यायरूप से पर्यायें दो प्रकार की हैं। वहाँ सूक्ष्म, क्षणक्षयी (प्रति समय नष्ट होनेवाली) , वचनअगोचर, अविषय (छद्मस्थज्ञान की विषय न बननेवाली) अर्थपर्यायें हैं; तथा स्थूल (परम्परापेक्षा) चिरकालस्थाई (दीर्घकालपर्यन्त वैसी ही रहनेवाली), वचनगोचर, छद्मस्थ के दृष्टिगोचर (ज्ञान की विषय बननेवाली) व्यञ्जनपर्यायें हैं। जीव की ये विभावरूप व्यञ्जनपर्यायें नर-नारकादि रूप हैं। जीव की स्वभाव व्यञ्जनपर्याय सिद्धरूप है। जीव की अशुद्ध अर्थपर्यायें कषायों की षट्स्थानगत (षट्गुणी) हानि-वृद्धिरूप, विशुद्धि-संक्लेशरूप, शुभाशुभ लेश्या स्थानों के रूप में जानना चाहिए।

पुद्गल की विभाव अर्थपर्यायें द्व्यणुकादि स्कन्धों में वर्णान्तरादि (एक वर्ण से अन्य

व्यंजनपर्यायो जीवस्य सिद्धरूपः। अशुद्धार्थपर्याया जीवस्य षट्स्थानगतकषायहानिवृद्धिविशुद्धि-संक्लेशरूपशुभाशुभलेश्यास्थानेषु ज्ञातव्याः। पुद्गलस्य विभावार्थपर्याया द्व्यणुकादिस्कंदेषु वर्णान्तरादि-परिणमनरूपाः। विभावव्यंजनपर्यायाश्च पुद्गलस्य द्व्यणुकादिस्कंदेष्वेव चिरकालस्थायिनो ज्ञातव्याः। शुद्धार्थपर्याया अगुरुलघुकगुणषड्ढानिवृद्धिरूपेण पूर्वमेव स्वभावगुणपर्यायव्याख्यानकाले सर्वद्रव्याणां कथिताः। एते चार्थव्यंजनपर्यायाः पूर्वं *जेसिं अत्थिसहाओ* इत्यादिगाथायां ये भणिता जीवपुद्गलयोः स्वभावविभावद्रव्यपर्यायाः स्वभावविभावगुणपर्यायाश्च ये भणितास्तेषु मध्ये तिष्ठन्ति। अत्र गाथायां च ये द्रव्यपर्यायाः गुणपर्यायाश्च भणितास्तेषु च मध्ये तिष्ठन्ति; तर्हि किमर्थं पृथक्कथिता? इति चेदेकसमयवर्तिनोऽर्थपर्याया भण्यंते चिरकालस्थायिनो व्यंजनपर्याया भण्यंते इति कालकृतभेद-ज्ञापनार्थम्।

अत्र सिद्धरूपशुद्धपर्यायपरिणतं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः॥ १६॥

वर्णरूप होना इत्यादि) रूप होती हैं तथा पुद्गल की विभाव व्यञ्जनपर्यायें द्व्यणुकादि स्कन्धों में ही चिरकाल स्थाईरूप में जानना चाहिए।

शुद्ध अर्थपर्यायें तो अगुरुलघुगुण की षट् हानि-वृद्धिरूप से पहले ही स्वभाव गुणपर्यायों के व्याख्यान-काल में सभी द्रव्यों की कही गई हैं।

पहले ***जेसिं अत्थि सहाओ...*** इत्यादि (५ वीं) गाथा में जो जीव-पुद्गल की स्वभाव -विभाव द्रव्यपर्यायें और स्वभाव-विभाव गुणपर्यायें कही गई हैं; ये अर्थ-व्यञ्जन पर्यायें उनमें से ही हैं।

इस गाथा में जो द्रव्यपर्यायें और गुणपर्यायें कहीं हैं, वे उस ५ वीं गाथा में से ही हैं, तो यहाँ पृथक् से उन्हें किसलिए कहा गया? यदि ऐसा प्रश्न हो तो (उत्तर) एक समयवर्ती अर्थपर्यायें कहलाती हैं और चिरकाल स्थाई व्यञ्जनपर्यायें कहलाती हैं – इस प्रकार कालकृत भेद का ज्ञान कराने के लिए यहाँ उन्हें पुनः कहा है।

यहाँ सिद्धरूप शुद्धपर्याय परिणत शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्धात्मद्रव्य उपादेय है – यह भावार्थ है॥ १६॥

[इस गाथा-टीका में आचार्य अमृतचन्द्र चेतना और उपयोग गुण का स्पष्टीकरण लक्षण बताते हुए इस प्रकार करते हैं – 'ज्ञानानुभूतिस्वरूप शुद्धचेतना तथा कार्यानुभूतिस्वरूप और कर्मफलानुभूतिस्वरूप अशुद्धचेतना है। चैतन्यानुविधायी परिणामस्वरूप सविकल्प-निर्विकल्प

अथ पर्यायार्थिकनयेनोत्पादविनाशयोरपि द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादविनाशौ न भवत इति समर्थयति —

मणुअत्तणेण णट्ठो देही देवो व होदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदे ण जायदे अण्णो॥ १७॥

***मणुअत्तणेण णट्ठो देही देवो व होदि इदरो वा* मनुष्यत्वेन मनुष्यपर्यायेण नष्टो विनष्टो मृतो देही संसारी जीवः पुण्यवशाद्देवो भवति स्वकीयकर्मवशादितरो वा नारकतिर्यग्मनुष्यो भवति *उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदे ण जायदे अण्णो* उभयत्र कोऽर्थः मनुष्यभवे देवभवे वा पर्यायार्थिकनयेन मनुष्यभवे नष्टे द्रव्यार्थिकनयेन न विनश्यति तथैव पर्यायार्थिकनयेन देवपर्याये जाते सति द्रव्यार्थिक-नयेनान्योऽपूर्वो न जायते नोत्पद्यते किंतु स एव। कोऽसौ ? जीवभावो जीवपदार्थः। एवं पर्यायार्थिक-नयेनोत्पादव्ययत्वेऽपि द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादव्ययत्वं नास्तीति सिद्धम्।**

स्व उपयोग, शुद्धता-अशुद्धता के कारण सकलता-विकलता को धारण करता हुआ दो प्रकार का है।']

अब, पर्यायार्थिकनय से उत्पाद-विनाश होने पर भी द्रव्यार्थिकनय से उत्पाद-विनाश नहीं होते हैं, इसका समर्थन करते हैं —

मनुजत्व से व्ययप्राप्त देही, जन्मता देवादि से।
पर जीव भाव न नष्ट हो, ना जन्म होता अन्य से॥ १७॥

गाथार्थ : मनुष्यत्व से नष्ट हुआ देही (शरीरधारी जीव) देव या अन्यरूप में उत्पन्न होता है; (परन्तु) इन दोनों (दशाओं) में जीव भाव नष्ट नहीं हुआ है और अन्य उत्पन्न नहीं हुआ है।

टीकार्थ : ***मणुअत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा*** देही / संसारी जीव, मनुष्य से / मनुष्यपर्याय से नष्ट होता है, विनष्ट होता है, मरता है; पुण्य के वश से देव होता है अथवा अपने कर्मवश उससे भिन्न नारक, तिर्यञ्च या मनुष्य होता है। ***उभयत्त जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो*** यहाँ उभयत्र का क्या अर्थ है ? मनुष्यभव में अथवा देवभव में, पर्यायार्थिकनय से मनुष्यभव नष्ट हो जाने पर (भी) द्रव्यार्थिकनय से कुछ नष्ट नहीं होता; उसी प्रकार पर्यायार्थिकनय से देव पर्याय उत्पन्न होने पर भी द्रव्यार्थिकनय से कुछ दूसरा अपूर्व उत्पन्न नहीं होता; किन्तु वही रहता है। वह कौन है ? वह जीव भाव / जीव पदार्थ है। इस प्रकार पर्यायार्थिकनय से उत्पाद-व्ययत्व होने पर भी द्रव्यार्थिकनय से उत्पाद-व्ययत्व नहीं है — यह सिद्ध है।

अनेन व्याख्यानेन क्षणिकैकान्तमतं नित्यैकान्तमतं च निषिद्धमिति सूत्रार्थः ॥ १७॥

अथ तमेवार्थं नयद्वयेन पुनरपि द्रढयति —

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसोत्ति पज्जाओ॥ १८॥

सो चेव जादि मरणं **स च एव जीवपदार्थः पर्यायार्थिकनयेन देवपर्यायरूपां जातिमुत्पत्तिं** ***जाद*** **याति गच्छति स चैव मरणं याति** ***ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो*** **द्रव्यार्थिकनयेन पुनर्न नष्टो न चोत्पन्नः। तर्हि कोऽसौ नष्टः कोऽसौ उत्पन्नः ?** ***उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसोत्ति पज्जाओ*** **पर्यायार्थिकनयेन देवपर्याय उत्पन्नो मनुष्यपर्यायो विनष्टः। ननु यद्युत्पादविनाशौ तर्हि तस्यैव पदार्थस्य नित्यत्वं कथं ? नित्यत्वं तर्हि तस्यैवोत्पादव्ययद्वयं च कथं ? परस्परविरुद्धमिदं शीतोष्णवदिति पूर्वपक्षे परिहारमाहुः।**

इस व्याख्यान द्वारा क्षणिक एकान्त मत और नित्य एकान्त मत का निषेध किया गया है — यह सूत्रार्थ है॥ १७॥

अब, उसी अर्थ को दो नयों द्वारा और भी दृढ़ करते हैं —

जन्मे मरे वह ही तथापि, उपजता न, मरे नहीं।
वे सुर नरादि दशा ही, उत्पन्न होतीं नष्ट भी॥ १८॥

गाथार्थ : वही उत्पन्न हुआ है, वही मरण को प्राप्त होता है; तथापि न वह नष्ट होता है और न उत्पन्न होता है; देव, मनुष्य आदि पर्यायें ही उत्पन्न होती हैं, नष्ट होती हैं।

टीकार्थ : ***सो चेव जादि मरणं*** वही जीव पदार्थ, पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा देव पर्यायरूप से उत्पन्न होता है और वही मरण को प्राप्त होता है। ***ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो*** तथापि द्रव्यार्थिकनय से वह न नष्ट होता है और न उत्पन्न होता है। तब फिर वह कौन नष्ट होता है ? कौन उत्पन्न होता है ? ***उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसोत्ति पज्जाओ*** पर्यायार्थिकनय से देव पर्याय उत्पन्न होती है, मनुष्य पर्याय नष्ट होती है।

यदि उसमें उत्पाद-विनाश होता है तो उसी पदार्थ के नित्यता कैसे है ? और यदि नित्यता है तो उसके ही उत्पाद-व्यय दोनों कैसे हैं ? शीत-उष्ण के समान यह परस्पर विरुद्ध है — ऐसा पूर्वपक्ष (प्रश्न) होने पर परिहार कहते / करते हैं। जिनके मत में सर्वथा एकान्त से वस्तु नित्य है या क्षणिक है, उनके मत में यह दोष है। वह कैसे है ? जिस रूप से नित्यता है, उसी रूप से अनित्यता घटित नहीं होती है। जिस रूप से अनित्यता है, उससे ही नित्यता घटित नहीं होती।

येषां मते सर्वथैकान्तेन नित्यं वस्तु क्षणिकं वा तेषां दूषणमिदम्। कथमिति चेत्? येनैव रूपेण नित्यत्वं तेनैवानित्यत्वं न घटते, येन च रूपेणानित्यत्वं तेनैव नित्यत्वं न घटते। कस्मात्? एकस्वभावत्वाद्व-स्तुनस्तन्मते। जैनमते पुनरनेकस्वभावं वस्तु तेन कारणेन द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यरूपेण नित्यत्वं घटते पर्यायार्थिकनयेन पर्यायरूपेणानित्यत्वं च घटते। तौ च द्रव्यपर्यायौ परस्परं सापेक्षौ, तच्च सापेक्षत्वम् —

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि **(प्रस्तुतग्रन्थ, गाथाङ्क १२) इत्यादि पूर्वं व्याख्यातं तेन कारणेन द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययोः परस्परगौणमुख्यभावव्याख्यानादेकदेवदत्तस्य जन्यजनकादिभाववत् एकस्यापि द्रव्यस्य नित्यानित्यं घटते नास्ति विरोध इति सूत्रार्थः॥ १८॥**

अथैवं द्रव्यार्थिकनयेन सतो विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीति स्थितमिति निश्चिनोति —

एवं सदो विणासो असदो भावस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो॥ १९॥

एवं सदो विणासो असदो भावस्स णत्थि उप्पादो **एवं पूर्वोक्तगाथात्रयव्याख्यानेन यद्यपि**

यह किस कारण घटित नहीं होती है ? उनके मत में वस्तु का एक स्वभावत्व होने से यह घटित नहीं होती है। जैनमत में वस्तु अनेक स्वभावरूप है, उस कारण द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा द्रव्यरूप से नित्यता घटित होती है और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा पर्यायरूप से अनित्यता घटित होती है। वे द्रव्य और पर्याय परस्पर सापेक्ष हैं और वह सापेक्षता ***'पर्याय से रहित द्रव्य और द्रव्य से रहित पर्याय नहीं है'*** इत्यादिरूप में पहले (१२ वीं गाथा में) व्याख्यात होने के कारण द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय का परस्पर गौण-मुख्य भाव से व्याख्यान होने के कारण, एक देवदत्त के जन्य-जनक / पुत्र-पिता आदि भाव के समान एक ही द्रव्य के नित्यता-अनित्यता घटित होती है, उसमें विरोध नहीं है — यह सूत्रार्थ है॥ १८॥

अब, इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि द्रव्यार्थिकनय से सत का विनाश नहीं है और असत का उत्पाद नहीं है, इसे निश्चित करते हैं —

इस भाँति सत का व्यय, असत उत्पाद हो ना जीव के।
गति नाम आदि उतने ही हैं, सुर नरादि जीव के॥ १९॥

गाथार्थ : इस प्रकार जीव के सत का विनाश और असत का उत्पाद नहीं है; जीवों के देव, मनुष्य आदि (सम्बन्धी) गति-नाम आदि (योग्यता, कर्म) उतने ही समय के होने से (देव का जन्म, मनुष्य का मरण इत्यादि) ऐसा कहा जाता है।

टीकार्थ : ***एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो*** इस प्रकार पूर्वोक्त तीन

पर्यायार्थिकनयेन नरनारकादिरूपेणोत्पादविनाशत्वं घटते तथापि द्रव्यार्थिकनयेन सतो विद्यमानस्य विनाशो नास्त्यसतश्चाविद्यमानस्य नास्त्युत्पादः। कस्य? भावस्य जीवपदार्थस्य। ननु यद्युत्पादव्ययौ न भवतस्तर्हि पल्यत्रयपरिमाणं भोगभूमौ स्थित्वा पश्चात् म्रियते, यत् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देवलोके नारकलोके तिष्ठति पश्चान्म्रियत इत्यादि व्याख्यानं कथं घटते? *तावदिओ जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो* तावत्पल्यत्रयादिरूपं परिमाणं यज्जीवानां कथ्यते देवो मनुष्य इति योऽसौ गतिनामकर्मोदय-जनितपर्यायस्तस्य तत्परिमाणं न च जीवद्रव्यस्येति वेणुदण्डवन्नास्ति विरोधः।

तथाहि – यथा महतो वेणुदण्डस्यानेकानि पर्वाणि स्वस्थानेषु भावभाञ्जि विद्यमानानि भवन्ति परपर्वस्थानेष्वभावभाञ्ज्यविद्यमानानि भवन्ति वंशदण्डस्तु सर्वपर्वस्थानेष्वन्वयरूपेण विद्यमानोऽपि प्रथमपर्वरूपेण द्वितीयपर्वे नास्तीत्यविद्यमानोऽपि भण्यते; तथा वेणुदण्डस्थानीयजीवे नरनारकादिरूपाः पर्वस्थानीया अनेकपर्यायाः स्वकीयायुः कर्मोदयकाले विद्यमाना भवन्ति, परकीयपर्यायकाले चाविद्यमाना भवन्ति, जीवश्चान्वयरूपेण सर्वपर्वस्थानीयसर्वपर्यायेषु विद्यमानोऽपि मनुष्यादिपर्याय-

---

गाथाओं में किए गए पर्यायार्थिकनय के व्याख्यान द्वारा मनुष्य, नारकादि रूप से उत्पाद-विनाशत्व घटित होता है; तथापि द्रव्यार्थिकनय से सत / विद्यमान का विनाश और असत / अविद्यमान का उत्पाद नहीं है। यह किसका नहीं है? जीव पदार्थ का नहीं है।

यदि उत्पाद-व्यय नहीं होता है तो भोगभूमि में तीन पल्य प्रमाण रहकर बाद में मरता है; देवलोक, नरकलोक में तेतीस सागरोपम रहता है, बाद में मरता है इत्यादि व्याख्यान कैसे घटित होता है? ***तावदिओ जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो*** जीवों का जो तीन पल्य आदि रूप परिमाण कहा जाता है, वह तो वेणुदण्ड (में पर्व) के समान जो मनुष्य, देव आदि रूप गति नामकर्म के उदय से उत्पन्न पर्याय है, उसका परिमाण है; जीवद्रव्य का नहीं; अतः विरोध नहीं है।

वह इस प्रकार – जैसे एक विशाल वेणुदण्ड (बाँस) के अनेक पर्व (पोरें / दो गाँठों के बीच का भाग) अपने स्थान पर होने की योग्यतारूप में विद्यमान हैं, अन्य पर्व स्थानों पर नहीं होने की योग्यतारूप में विद्यमान नहीं हैं। वंशदण्ड (बाँस) तो सभी पर्व स्थानों में अन्वयरूप से विद्यमान होने पर भी प्रथम पर्वरूप से द्वितीय पर्व में नहीं है; अतः वहाँ अविद्यमान भी कहलाता है; उसी प्रकार वेणुदण्ड स्थानीय जीव में पर्व स्थानीय मनुष्य, नारक आदि रूप अनेक पर्यायें अपने आयुकर्म के उदयकाल में विद्यमान हैं; दूसरी पर्याय के काल में विद्यमान नहीं हैं और जीव तो अन्वयरूप से सर्व पर्व स्थानीय सभी पर्यायों में विद्यमान होने पर भी, मनुष्यादि पर्यायरूप से देवादि पर्यायों में नहीं है; अतः अविद्यमान भी कहलाता है।

रूपेण देवादिपर्यायेषु नास्तीत्यविद्यमानोऽपि भण्यते।

स एव नित्यः स एवानित्यः कथं घटत ? इति चेत् — यथैकस्य देवदत्तस्य पुत्रविवक्षाकाले पितृविवक्षा गौणा पितृविवक्षाकाले पुत्रविवक्षा गौणा, तथैकस्य जीवस्य जीवद्रव्यस्य वा द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वविवक्षाकाले पर्यायरूपेणानित्यत्वं गौणं पर्यायरूपेणानित्यत्वविवक्षाकाले द्रव्यरूपेण नित्यत्वं गौणम्। कस्मात् ? विवक्षितो मुख्य इति वचनात्।

अत्र पर्यायरूपेणानित्यत्वेऽपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनाविनश्वरमनन्तज्ञानादिरूपं शुद्धजीवास्ति-कायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं रागादिपरिहारेणोपादेयरूपेण भावनीयमिति भावार्थः॥ १९॥

एवं बौद्धमतनिराकरणार्थमेकसूत्रगाथा प्रथमस्थले पूर्वं भणिता, तस्या विवरणार्थं द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम्।

अथ यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सर्वदैव शुद्धरूपस्तिष्ठति तथापि पर्यायार्थिकनयेन सिद्धस्या-सदुत्पादो भवतीत्यावेदयति अथवा यदा मनुष्यपर्याये विनष्टे देवपर्याये जाते स एव जीवस्तथा

(एक में ही) वही नित्य, वही अनित्य कैसे घटित होता है ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — जैसे एक देवदत्त के पुत्र विवक्षा-काल में पिता की विवक्षा गौण है, पिता की विवक्षा के समय पुत्र-विवक्षा गौण है; उसी प्रकार एक जीव या जीव द्रव्य के द्रव्यार्थिकनय से नित्यत्व की विवक्षा के समय पर्यायरूप से अनित्यता गौण है; पर्यायरूप से अनित्यता की विवक्षा के समय द्रव्यरूप से नित्यता गौण है। ऐसा कैसे होता है ? 'विवक्षित (जिसे हम कहना चाहते हैं, वह) मुख्य होता है' — ऐसा वचन होने से यह बन जाता है।

यहाँ पर्यायरूप से अनित्यता होने पर भी शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से अविनश्वर, अनन्त ज्ञानादि रूप शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्धात्मद्रव्य रागादि के त्यागमय उपादेयरूप से भावना करने-योग्य है — ऐसा भावार्थ है॥ १९॥

इस प्रकार प्रथम स्थल में बौद्धमत के निराकरणार्थ एक सूत्र-गाथा पहले कही थी, उसके विवरण-हेतु द्वितीय स्थल में चार गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, यद्यपि शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से शुद्धरूप सर्वदा ही है; तथापि पर्यायार्थिकनय से सिद्ध का सतत उत्पाद होता है — ऐसा आवेदन करते हैं (मर्यादापूर्वक ज्ञान कराते हैं); अथवा जो मनुष्य पर्यायरूप से नष्ट हुआ था, देव पर्यायरूप से उत्पन्न हुआ था, वही जीव उसी प्रकार मिथ्यात्व, रागादि परिणामों का अभाव होने से, संसार पर्याय के नष्ट हो जाने पर तथा सिद्ध पर्यायरूप से उत्पन्न होने पर भी जीवत्वरूप से नष्ट नहीं हुआ है; दोनों दशाओं में वही जीव है,

मिथ्यात्वरागादिपरिणामाभावात् संसारपर्यायविनाशे सिद्धपर्याये जाते सति जीवत्वेन विनाशो नास्त्यु-भयत्र स एव जीव इति दर्शयति; अथवा परस्परसापेक्षद्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयद्वयेन पूर्वोक्तप्रकारेणा-नेकान्तात्मकं प्रतिपाद्य पश्चात्संसारावस्थायां ज्ञानावरणादिरूपबन्धकारणभूतं मिथ्यात्वरागादिपरिणामं त्यक्त्वा शुद्धभावपरिणमनान्मोक्षं च कथयतीति पातनिकात्रयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति —

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो॥ २०॥

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा ज्ञानावरणादिभावा द्रव्यकर्मपर्यायाः संसारि-जीवेन सुष्ठु संश्लेषरूपेणानादिसंतानेन बद्धास्तिष्ठन्ति तावत् *तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो* यदा कालादिलब्धिवशाद्भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं व्यवहारनिश्चयमोक्षमार्गं लभते तदा तेषां ज्ञानावरणादि-भावानां द्रव्यभावकर्मरूपपर्यायाणामभावं विनाशं कृत्वा पर्यायार्थिकनयेनाभूतपूर्वसिद्धो भवति द्रव्यार्थिकनयेन पूर्वमेव सिद्धरूप इति वार्तिकम्।

ऐसा दिखाते हैं; अथवा परस्पर सापेक्ष द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक दो नयों द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से अनेकान्तात्मक तत्त्व का प्रतिपादन करके, बाद में संसार अवस्था में ज्ञानावरणादिरूप बन्ध के कारणभूत मिथ्यात्व, रागादि परिणाम को छोड़कर शुद्धभावरूप परिणमन से मोक्ष होता है, ऐसा कहते हैं; इस प्रकार तीन पातनिका मन में धारण कर यह गाथा-सूत्र प्रतिपादित करते हैं —

वे भाव ज्ञानावरण आदि, जीव से अनुबद्ध हैं।
ये नाश कर उनका अभूतपूर्व, सिद्ध पद को प्राप्त हैं॥ २०॥

गाथार्थ : ज्ञानावरणादि भाव, जीव के साथ भली-भाँति अनुबद्ध हैं। उनका अभाव करके यह अभूतपूर्व सिद्ध होता है।

टीकार्थ : ***णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा*** ज्ञानावरणादि भाव-द्रव्यकर्म रूप पर्यायें, संसारी जीव के साथ सुष्ठु, संश्लेषरूप से अनादि परम्परा से बद्ध हैं। ***तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो*** जब कालादि लब्धि के माध्यम से भेदाभेद रत्नत्रयात्मक व्यवहार-निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त करता है, तब उन ज्ञानावरणादि भावों का, द्रव्य-भाव कर्म रूप पर्यायों का अभाव / विनाशकर पर्यायार्थिकनय से अभूतपूर्व सिद्ध होता है; द्रव्यार्थिकनय से पहले से ही सिद्धरूप है — ऐसा वार्तिक है।

वह इस प्रकार — जैसे एक महान वेणुदण्ड (बाँस) पूर्वार्ध भाग में विचित्र चित्र से खचित / शवलित / मिश्रित है (उसके पूर्वार्ध में अनेक चित्र बने हुए हैं), उससे ऊपर आधे भाग

तथाहि – यथैको महान् वेणुदण्डः पूर्वार्धभागे विचित्रचित्रेण खचितः शबलितो मिश्रितः तिष्ठति तस्मादूर्ध्वार्धभागे विचित्रचित्राभावाच्छुद्ध एव तिष्ठति तत्र यदा कोऽपि देवदत्तो दृष्ट्यावलोकनं करोति सदा भ्रान्तिज्ञानवशेन विचित्रचित्रवशादशुद्धत्वं ज्ञात्वा तस्मादुत्तरार्धभागेऽप्यशुद्धत्वं मन्यते तथायं जीवः संसारावस्थायां मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामवशेन व्यवहारेणाशुद्धस्तिष्ठति शुद्ध-द्रव्यार्थिकनयेनाभ्यन्तरे केवलज्ञानादिस्वरूपेण शुद्ध एव तिष्ठति। यदा रागादिपरिणामाविष्टः सन् सविकल्परूपेन्द्रियज्ञानेन विचारं करोति तदा यथा बहिर्भागे रागाद्याविष्टमात्मानमशुद्धं पश्यति तथाभ्यन्तरेऽपि केवलज्ञानादिस्वरूपेऽप्यशुद्धत्वं मन्यते भ्रान्तिज्ञानेन। यथा वेणुदण्डे विचित्रचित्र-मिश्रितत्वं भ्रान्तिज्ञानकारणं तथात्र जीवे मिथ्यात्वरागादिरूपं भ्रान्तिज्ञानकारणं भवति। यथा वेणुदण्डो विचित्रचित्रपक्षालने कृते शुद्धो भवति तथायं जीवोऽपि यदा गुरूणां पार्श्वे शुद्धात्मस्वरूपप्रकाशकं परमागमं जानाति। कीदृशमितिचेत् –

''एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वदा॥''

में विचित्र चित्रों का अभाव होने से शुद्ध ही है। वहाँ, जब कोई देवदत्त दृष्टि से अवलोकन करता है तो भ्रांतिज्ञानवश विचित्र चित्रों के कारण अशुद्ध जानकर, उससे ऊपर के आधे भाग में भी अशुद्धता मान लेता है; उसी प्रकार यह जीव, व्यवहार से संसार अवस्था में मिथ्यात्व, रागादि विभावपरिणामों के कारण अशुद्ध है, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय द्वारा अन्तरङ्ग में केवल ज्ञानादि स्वरूप से शुद्ध ही है। जब रागादि परिणामों से आविष्ट होता हुआ (रागादि को ही अपना मानता हुआ) सविकल्परूप इन्द्रियज्ञान से विचार करता है, तब जैसे बहिर्भाग में (वर्तमान पर्याय में) रागादि से आविष्ट आत्मा को अशुद्ध देखता है; उसी प्रकार अभ्यन्तर में (त्रैकालिक ध्रुवस्वभाव में) भी केवल ज्ञानादि स्वरूप में भी भ्रांति ज्ञान से अशुद्धता मान लेता है। जैसे वेणुदण्ड में भ्रांतिज्ञान का कारण विचित्र चित्रों की मिश्रितता है; उसी प्रकार यहाँ जीव के भ्रांतिज्ञान का कारण मिथ्यात्व, रागादिरूप परिणमन है। जैसे विचित्र चित्रों के प्रक्षालन कर देने पर वेणुदण्ड शुद्ध हो जाता है; उसी प्रकार जब यह जीव भी गुरुओं के निकट शुद्धात्मस्वरूप के प्रकाशक परमागम को जानता है –

प्रश्न – उसे कैसा जानता है ?

उत्तर – 'मैं एक, निर्मम, शुद्ध, ज्ञानी और योगीन्द्रगोचर हूँ; इसके अतिरिक्त सभी बाह्य संयोगज-भाव मुझ से सदैव भिन्न हैं।' इत्यादि रूप में उसे जानता है।

इत्यादि। तथैव च देहात्मनोरत्यन्तभेदो भिन्नलक्षणलक्षिततत्वाज्जलानलादिवदित्यनुमानज्ञानं जानाति तथैव च वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं जानाति। तदित्थंभूतागमानुमानस्वसंवेदनप्रत्यक्षज्ञानात् शुद्धो भवति।

अत्राभूतपूर्वसिद्धत्वरूपं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति तात्पर्यार्थः ॥ २० ॥

एवं तृतीयस्थले पर्यायार्थिकनयेन सिद्धस्याभूतपूर्वोत्पादव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता।

अथ जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपसंहारव्याख्यानमुद्योतयति —

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो ॥ २१ ॥

एवं भावमभावं एवं पूर्वोक्तप्रकारेण द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायार्थिकनयेन पूर्वं मनुष्य-पर्यायस्याभावं व्ययं कृत्वा पश्चाद्देवोत्पत्तिकाले भावं देवपर्यायस्योत्पादं *कुणदि* करोति *भावाभावं*

उसी प्रकार जल और अग्नि के समान भिन्न लक्षण से लक्षित होने के कारण शरीर और आत्मा का अत्यन्त भेद अनुमान ज्ञान से जानता है और उसी प्रकार वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान से जानता है। वह इस प्रकार आगम, अनुमान, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ज्ञान से शुद्ध होता है।

यहाँ अभूतपूर्व सिद्धस्वरूप शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्धात्मद्रव्य उपादेय है — यह तात्पर्यार्थ है ॥ २० ॥

इस प्रकार तीसरे स्थल में पर्यायार्थिकनय से सिद्ध के अभूतपूर्व उत्पाद के व्याख्यान की मुख्यता से गाथा पूर्ण हुई।

अब, जीव के उत्पाद-व्यय सम्बन्धी सदुच्छेद (सत् के विनाश), असदुत्पाद (असत् के उत्पाद) सम्बन्धी कर्तृत्व के उपसंहारपरक व्याख्यान को उद्योतित / प्रकाशित करते हैं —

है जीव गुण पर्यय सहित, संसरण करता भाव को।
करता अभाव रु भावाभाव, रु नित अभावोत्पाद को ॥ २१ ॥

गाथार्थ : इस प्रकार गुण-पर्यायों सहित जीव, संसरण करता हुआ भाव, अभाव, भावाभाव और अभावभाव को करता है।

टीकार्थ - ***एवं भावाभावं*** इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्यता होने पर भी पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा पहले मनुष्य पर्याय का अभाव / व्यय कर पश्चात् देवोत्पत्ति के समय देव पर्याय का भाव / उत्पाद ***कुणदि*** करता है। ***भावाभावं*** और

पुनरपि देवपर्यायच्च्यवनकाले विद्यमानस्य देवभावस्य पर्यायस्याभावं करोति *अभावभावं च* पश्चान्मनुष्यपर्यायोत्पत्तिकाले अभावस्याविद्यमानमानुष्यपर्यायस्य भावमुत्पादं करोति। स कः कर्ता ? *जीवो* जीवः। कथंभूतः ? *गुणपज्जयेहिं सहिदो* कुमतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्याय-सहितः न च केवलज्ञानादिस्वभावगुणसिद्धरूपशुद्धपर्यायसहितः। कस्मादिति चेत् ? तत्र केवलज्ञानाद्य-वस्थायां नरनारकादिविभावपर्यायाणामसंभवात् अगुरुलघुकगुणषड्ढानिवृद्धिस्वभावपर्यायरूपेण पुनस्तत्रापि भावाभावादिकं करोति नास्ति विरोधः। किं कुर्वन् सन् मनुष्यभावादिकं करोति ? *संसरमाणो* संसरन् परिभ्रमन् सन्। क्व ? द्रव्यक्षेत्रकालभवभावस्वरूपपञ्चप्रकारसंसारे।

अत्र सूत्रे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे साक्षादुपादेयभूते शुद्धजीवास्तिकाये यत्सम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुचरणं तद्रूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकं परमसामायिकं तदलभमानो दृष्टश्रुतानुभूताहारभयमैथुनपरिग्रह-संज्ञादिसमस्तपरभावपरिणाममूर्छितो मोहित आसक्तः सन् नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण भावमुत्पादं

फिर देव पर्याय से च्युत होते समय विद्यमान देवभावरूप पर्याय का अभाव करता है। ***अभावभावं च*** पश्चात् मनुष्य पर्याय की उत्पत्ति के समय अभाव का / अविद्यमान मनुष्य सम्बन्धी पर्याय का भाव / उत्पाद करता है। इन सबका कर्ता वह कौन है ? ***जीवो*** इनका कर्ता जीव है। वह जीव कैसा है ? ***गुणपज्जयेहिं सहिदो*** कुमति ज्ञानादि विभावगुण; मनुष्य, नारक आदि विभावपर्याय से सहित है; केवलज्ञानादि स्वभावगुण और सिद्धरूप शुद्धपर्याय से सहित नहीं है। इनसे सहित क्यों नहीं है ? उस केवलज्ञानादि अवस्था में मनुष्य, नारक आदि विभावपर्यायों के असम्भव होने से वह उनसे सहित नहीं है। अगुरुलघुत्वगुण सम्बन्धी षट्गुणी हानि-वृद्धिमय स्वभावपर्यायरूप से तो वहाँ भी भावाभावादि को करता है, इसमें विरोध नहीं है। क्या करता हुआ मनुष्यभावादि करता है ? ***संसरमाणो*** संसरण / परिभ्रमण करता हुआ, इन्हें करता है। कहाँ परिभ्रमण करता हुआ इन्हें करता है ? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव स्वरूप पाँच प्रकार के संसार में परिभ्रमण करता हुआ, इन्हें करता है।

इस सूत्र / गाथा में विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावी, साक्षात् उपादेयभूत शुद्ध जीवास्तिकाय में जो सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरण है, उसरूप निश्चयरत्नत्रयात्मक परम सामायिक को प्राप्त नहीं करता हुआ; जिस कारण जीव दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा आदि समस्त परभावरूप परिणामों में मूर्छित, मोहित, आसक्त होता हुआ, मनुष्य, नारक आदि विभावपर्यायरूप से भाव / उत्पाद करता है और उसी प्रकार से अभाव / व्यय करता है; उस कारण उस शुद्धात्मद्रव्य में ही सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और उसी रूप अनुचरण निरन्तर सर्व तात्पर्य से कर्तव्य है – ऐसा भावार्थ है॥ २१॥

करोति तथैव चाभावं व्ययं करोति येन कारणेन जीवस्तस्मात् तत्रैव शुद्धात्मद्रव्ये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं तथानुचरणं च निरन्तरं सर्वतात्पर्येण कर्तव्यमिति भावार्थः ॥ २१ ॥

एवं द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायार्थिकनयेन संसारिजीवस्य देवमनुष्याद्युत्पादव्ययकर्तृत्व-व्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथा गता।

इति स्थलचतुष्टयेन द्वितीयं सप्तकं गतम्।

एवं प्रथमगाथासप्तके यदुक्तं स्थलपञ्चकं तेन सह नवभिरन्तरस्थलैश्चतुर्दशगाथाभिः प्रथम-महाधिकारमध्ये *द्रव्यपीठिकाभिधानः* द्वितीयोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

अथ कालद्रव्यप्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं कथ्यते — तत्र पञ्चगाथासु मध्ये षड्द्रव्यमध्या-ज्जीवादिपञ्चानामस्तिकायत्वसूचनार्थं *जीवा पोग्गलकाया* इत्यादि सूत्रमेकं, तदनन्तरं निश्चयकाल-कथनरूपेण *सब्भावसहावाणं* इत्यादि सूत्रद्वयं, टीकाभिप्रायेण सूत्रमेकं, पुनश्च समयादिव्यवहारकाल-

---

[इस गाथा-टीका के अन्त में आचार्य अमृतचन्द्र अनेकान्तवाद की महिमा बताते हुए लिखते हैं कि वास्तव में अनेकान्तवाद का ही प्रसाद है जो इस प्रकार का विरोध भी विरोध नहीं है।]

इस प्रकार द्रव्यार्थिकनय से नित्यता होने पर भी संसारी जीव के पर्यायार्थिकनय से देव, मनुष्य आदि के उत्पाद-व्यय के कर्तृत्व सम्बन्धी व्याख्यान के उपसंहार की मुख्यता से चतुर्थ स्थल में गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार चार स्थल द्वारा द्वितीय सप्तक पूर्ण हुआ।

इस प्रकार प्रथम सात गाथाओं के जो पाँच स्थल कहे थे, उन सहित नौ अन्तरस्थलों युक्त चौदह गाथाओं द्वारा प्रथम महाधिकार में ***द्रव्य पीठिका*** नामक ***द्वितीय अन्तराधिकार*** समाप्त हुआ।

अब (तृतीय अन्तराधिकार में), कालद्रव्य के प्रतिपादन की मुख्यता से पाँच गाथाएँ कहते हैं। उन पाँच गाथाओं में से छह द्रव्यों के मध्य में जीवादि पाँच अस्तिकाय की सूचना के लिए ***जीवा पुग्गलकाया....*** इत्यादि एक गाथा है। तत्पश्चात् निश्चयकाल के कथनरूप से ***सब्भावसहावाणं....*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। टीका (समयव्याख्या) के अभिप्राय से यहाँ एक है। तदनन्तर समय आदि व्यवहारकाल की मुख्यता से ***समओ णिमिसो...*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। इस प्रकार तीन स्थल से तृतीय अन्तराधिकार में सामूहिक उत्थानिका हुई।

मुख्यत्वेन *समओ णिमिसो* इत्यादि गाथाद्वयं एवं स्थलत्रयेण तृतीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका।

अथ सामान्योक्तलक्षणानां षण्णां द्रव्याणां यथोक्तस्मरणार्थमग्रे विशेषव्याख्यानार्थं वा पञ्चानामस्तिकायत्वं व्यवस्थापयति –

जीवा पोग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा दु लोगस्स॥ २२॥

***जीवा पोग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा* जीवाः पुद्गलकाया आकाशं अस्तिकायिकौ शेषौ धर्माधर्मौ चेति एते पंच। कथंभूताः ? *अमया* अकृत्रिमा न केनापि पुरुषविशेषेण कृताः। तर्हि कथं निष्पन्नाः ? *अत्थित्तमया* अस्तित्वमयाः स्वकीयास्तित्वेन स्वकीयसत्तया निर्वृत्ता निष्पन्ना जाता इत्यनेन पञ्चानामस्तित्वं निरूपितम्। पुनरपि कथंभूताः ? *कारणभूदा दु लोगस्स* कारणभूताः। कस्य ?**

तृतीय अन्तराधिकार की सारणी

स्थलक्रम	विषय	गाथा कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	जीवादि पाँच को अस्तिकायत्व की सूचना	२२ वीं	१
२	निश्चय-काल-कथन	२३-२४ वीं	२
३	व्यवहार-काल-कथन	२५-२६ वीं	२

अब, सामान्य से कहे गए लक्षणवाले छह द्रव्यों के यथोक्त स्मरण के लिए अथवा आगे विशेष व्याख्यान के लिए पाँचों के अस्तिकायत्व की व्यवस्था बताते हैं –

ये जीव पुद्गलकाय नभ, वा शेष अस्तिकाय हैं।
वे हैं अकृत अस्तित्वमय, व लोककारणभूत हैं॥ २२॥

गाथार्थ : जीव, पुद्गलकाय, आकाश और शेष दो (धर्म, अधर्म) अस्तिकाय, अकृत अस्तित्वमय और वास्तव में लोक के कारणभूत हैं।

टीकार्थ : ***जीवा पोग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा*** जीव, पुद्गलकाय, आकाश और शेष धर्म-अधर्म अस्तिकाय – ये पाँच हैं। ये कैसे हैं ? ***अमया*** अकृत्रिम हैं; किसी पुरुष विशेष द्वारा बनाए गए नहीं हैं। तब फिर इनकी रचना कैसे हुई ? ***अत्थित्तमया*** वे अस्तित्वमय हैं; अपने अस्तित्व, अपनी सत्ता से रचित हैं, निष्पन्न हैं, उत्पन्न हुए हैं – इस प्रकार इसके द्वारा पाँच का अस्तित्व निरूपित किया गया। वे और कैसे हैं ? ***कारणभूदा दु लोगस्स*** कारणभूत हैं।

लोकस्य *''जीवादिषड्द्रव्याणां समवायो मेलापको लोक''* इति वचनात्। स च लोकः उत्पादव्यय-ध्रौव्यवान् तेनास्तित्वं लोक्यते, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति वचनात्। पुनरपि कथंभूतो लोकः? ऊर्ध्वाधोमध्यभागेन सांशः सावयवस्तेन कायत्वं कथितं भवतीति सूत्रार्थः॥ २२॥

एवं षड्द्रव्यमध्याज्जीवादिपञ्चानामस्तिकायत्वसूचनरूपेण गाथा गता।

अथात्र पञ्चास्तिकायप्रकरणेऽस्तिकायत्वेनानुक्तोऽपि कालः सामर्थ्येन लब्ध इति प्रति-पादयति —

सब्भावसभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो॥ २३॥

सब्भावसहावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च सद्भावस्सत्ता सैव स्वभावः स्वरूपं येषां ते सद्भावस्वभावास्तेषां सद्भावस्वभावानां जीवपुद्गलानां अथवा सद्भावानामित्यनेन धर्माधर्माकाशानि

वे किसके कारणभूत हैं? 'जीवादि छह द्रव्यों का समवाय, मिलाप, समूह लोक है' — ऐसा वचन होने से वे लोक के कारणभूत हैं। 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त सत् है' — *(तत्त्वार्थसूत्र, पंचमोऽध्याय, सूत्र ३०)* — ऐसा वचन होने से वह लोक उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवान् है; उसके द्वारा अस्तित्व देखा जाता है। लोक और कैसा है? ऊर्ध्व, अधो और मध्य भाग द्वारा सांश / अवयवसहित है — उससे कायत्व का कथन होता है; — ऐसा सूत्रार्थ / गाथार्थ है॥ २२॥

इस प्रकार छह द्रव्यों में से जीवादि पाँच के अस्तिकायत्व की सूचनारूप से गाथा पूर्ण हुई।

अब, यहाँ पञ्चास्तिकाय के प्रकरण में अस्तिकायरूप से अनुक्त होने पर भी सामर्थ्य से प्राप्त काल का प्रतिपादन करते हैं —

सत्ता स्वभावी जीव व, पुद्गलों के परिणमन से।
है सिद्धि ऐसे काल को, है कहा 'जिन' ने नियम से॥ २३॥

गाथार्थ : सत्ता स्वभाववाले जीवों और पुद्गलों के परिवर्तन से सिद्ध होनेवाले काल का (सर्वज्ञ द्वारा) नियम से कथन किया गया है।

टीकार्थ - ***सब्भावसहावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च*** सद्भाव अर्थात् सत्ता, वही है स्वभाव या स्वरूप जिनका, वे सद्भावस्वभाव; उन सद्भावस्वभावी जीव-पुद्गलों के अथवा ***सद्भाव*** - इसके द्वारा धर्म, अधर्म, आकाश का ग्रहण होता है। ***परियट्टणसंभूदो***

गृह्यन्ते *परियट्टणसंभूदो* परिवर्तनसंभूतः परिवर्तनं नवजीर्णरूपेण परिणमनं तत्परिवर्तनं संभूतं समुत्पन्नं यस्मात्स भवति परिवर्तनसंभूतः *कालो* कालाणुरूपो द्रव्यकालः *णियमेण* निश्चयेन *पण्णत्तो* प्रज्ञप्तः कथितः। कैः ? *सर्वज्ञैः* तथापि पञ्चास्तिकायव्याख्याने क्रियमाणे परमार्थकालस्यानुक्तस्याप्यर्थापन्नत्वमित्युक्तं पातनिकायां तत् कथं घटते ? प्रश्ने प्रत्युत्तरमाहुः – पञ्चास्तिकायाः परिणामिनः परिणामश्च कार्यं कार्यं च कारणमपेक्षते स च द्रव्याणां परिणतिनिमित्तभूतः कालाणुरूपो द्रव्यकालः इत्यनया युक्त्या सामर्थ्येनार्थापन्नत्वं द्योतितम्।

किंच समयरूपः सूक्ष्मकालः पुद्गलपरमाणुना जनितः, स एव निश्चयकालो भण्यते; घटिकादिरूपः स्थूलो व्यवहारकालो भण्यते, स च घटिकादिनिमित्तभूतजलभाजनवस्त्रकाष्ठपुरुषहस्तव्यापाररूपः क्रियादिविशेषेण जनितो न च द्रव्यकालेनेति पूर्वपक्षे परिहारमाहुः – यद्यपि समयरूपः सूक्ष्मव्यवहारकालः पुद्गलपरमाणुना निमित्तभूतेन व्यज्यते प्रकटीक्रियते ज्ञायते घटिकादिरूपस्थूल-

---

परिवर्तन-सम्भूत-परिवर्तन अर्थात् नवीन-पुरानी दशारूप से परिणमन, वह परिवर्तन जिससे होता है, वह परिवर्तन-सम्भूत काल, कालाणुरूप द्रव्यकाल ***णियमेण*** नियम से ***पण्णत्तो*** कहा गया है। किनके द्वारा कहा गया है ? सर्वज्ञों द्वारा कहा गया है। तब फिर पातनिका से पञ्चास्तिकाय का व्याख्यान किए जाने पर, नहीं कहे जानेवाले परमार्थ काल का भी अर्थापन्नत्व (सामर्थ्य से ग्रहण करना) कहा है, वह कैसे घटित होता है ? प्रश्न का उत्तर देते हैं – पञ्चास्तिकाय परिणामी हैं, परिणाम कार्य है तथा कार्य, कारण की अपेक्षा रखता है और वह कारण, द्रव्यों की परिणति में निमित्तभूत कालाणुरूप द्रव्यकाल है। – इस युक्ति से / सामर्थ्य से अर्थापन्नत्व द्योतित किया / बताया है।

विशेष यह है कि पुद्गल परमाणु द्वारा उत्पन्न / व्यक्त होनेवाला वह समयरूप सूक्ष्म काल ही निश्चयकाल कहलाता है। घटिका / घड़ी आदि रूप स्थूल काल व्यवहारकाल कहलाता है और वह घटिका आदि के निमित्तभूत पानी के बर्तन, वस्त्र, काष्ठ, पुरुष की हस्त-व्यापाररूप क्रिया आदि विशेष से उत्पन्न होता है; द्रव्यकाल से नहीं – ऐसा पूर्वपक्ष (प्रश्न) होने पर परिहार कहते / करते हैं –

यद्यपि समयरूप सूक्ष्म व्यवहारकाल निमित्तभूत पुद्गल द्वारा व्यक्त होता है, प्रगट किया जाता है, ज्ञात होता है; घड़ी आदि रूप स्थूल व्यवहारकाल घड़ी आदि के निमित्तभूत पानी-पात्र, वस्त्र आदि द्रव्य विशेष द्वारा ज्ञात होता है; तथापि उस घड़ी आदि पर्यायरूप व्यवहारकाल का कालाणुरूप द्रव्यकाल ही उपादान कारण है।

व्यवहारकालश्च घटिकादिनिमित्तभूतजलभाजनवस्त्रादिद्रव्यविशेषेण ज्ञायते; तथापि तस्य समय-घटिकादिपर्यायरूपव्यवहारकालस्य कालाणुरूपो द्रव्यकाल एवोपादानकारणम्। कस्मात्? *उपादान-कारणसदृशं कार्यमिति* वचनात्। किंवदिति चेत्? कुंभकारचक्रचीवरादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य घटकार्यस्य मृत्पिण्डोपादानकारणवत्, कुविंदतुरीवेमसलाकादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य षटकार्यस्य तंतुसमूहोपादानकारणवत्, इंधनाग्न्यादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य शाल्याद्योदनकार्यस्य शाल्यादि-तण्डुलोपादानकारणवत् कर्मोदयनिमित्तोत्पन्नस्य नरनारकादिपर्यायकार्यस्य जीवोपादानकारण-वदित्यादि॥ २३॥

अथ पुनरपि निश्चयकालस्य स्वरूपं कथयति -

ववगदपणवण्णरसो ववगददोअट्ठगंधफासो य।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालोत्ति॥ २४॥

***ववगदपणवण्णरसो ववगददोअट्ठगंधफासो य* पञ्चवर्णपञ्चरसद्विगंधाष्टस्पर्शैर्व्यपगतो वर्जित**

प्रश्न - वही उपादान कारण कैसे है?

उत्तर - 'उपादान कारण के समान कार्य होता है' — ऐसा वचन होने से कालाणुरूप द्रव्यकाल ही उसका उपादान कारण है। यह किसके समान है? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — कुम्भकार, चक्र, चीवर आदि बहिरङ्ग निमित्त से उत्पन्न घटकार्य का मिट्टी पिण्डरूप उपादान कारण के समान होने से; कुविन्द (जुलाहा), तुरी, बेम, सलाका आदि बहिरङ्ग निमित्त से उत्पन्न वस्त्ररूप कार्य का तन्तुसमूहरूप उपादानकारण के समान होने से; ईंधन, अग्नि आदि बहिरङ्ग निमित्त से उत्पन्न शालि आदि सम्बन्धी भात-कार्य का शालि आदि चावलरूप उपादान कारण के समान होने से; कर्मोदय निमित्त से उत्पन्न मनुष्य, नारक आदि पर्यायरूप कार्य का जीवरूप उपादानकारण के समान होने से; इत्यादि द्वारा यह स्पष्ट है कि कालाणुरूप द्रव्यकाल ही समय आदि पर्यायों का उपादान कारण है॥ २३॥

अब, पुनः निश्चयकाल का स्वरूप कहते हैं —

रस वर्ण पंच, स्पर्श आठ रु, गंध दो से रहित है।
वह अगुरुलघुयुत मूर्तिबिन, वर्तना लक्षण काल है॥ २४॥

गाथार्थ : कालद्रव्य पाँच वर्ण — पाँच रस से रहित, दो गन्ध-आठ स्पर्श से रहित, अगुरुलघुक, अमूर्त और वर्तना लक्षणवाला है।

टीकार्थ - ***ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासो य*** पाँच वर्ण, पाँच रस, दो

रहितः। पुनरपि कथंभूतः ? *अगुरुलहुगो* षड्ढानिवृद्धिरूपागुरुलघुकगुणः। पुनरपि किंविशिष्टः ? *अमुत्तो* यत एव वर्णादि रहितस्तत एवामूर्तः ततश्चैव सूक्ष्मोऽतीन्द्रियज्ञानग्राह्यः। पुनश्च किंरूपः ? *वट्टणलक्खो य कालोत्ति* सर्वद्रव्याणां निश्चयेन स्वयमेव परिणामं गच्छतां शीतकाले स्वयमेवाध्ययनक्रियां कुर्वाणस्य पुरुषस्याग्निसहकारिवत्, स्वयमेव भ्रमणक्रियां कुर्वाणस्य कुम्भकारचक्रस्याधस्तनशिलासहकारिवद्बहिरङ्गनिमित्तत्वाद्वर्तनालक्षणश्च कालाणुरूपो निश्चयकालो भवति।

किंच लोकाकाशाद्बहिर्भागे कालद्रव्यं नास्ति कथमाकाशस्य परिणतिरिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह - यथैकप्रदेशे स्पृष्टे सति लंबायमानमहावस्त्रायां महावेणुदण्डे वा कुंभकारचक्रे वा सर्वत्र चलनं भवति यथैव च मनोजस्पर्शनेन्द्रियविषयैकदेशस्पर्शे कृते सति रसनेन्द्रियविषये च सर्वाङ्गेन सुखानुभवो भवति, यथैव चैकदेशे सर्पदंष्टे व्रणादिके वा सर्वाङ्गेन दुःखवेदना भवति तथा लोकमध्ये स्थितेऽपि कालद्रव्ये सर्वत्रालोकाकाशे परिणतिर्भवति। कस्मात् ? अखण्डैकद्रव्यत्वात्। कालद्रव्यमन्यद्रव्याणां

गन्ध, आठ स्पर्श से रहित है; और वह कैसा है ? ***अगुरुलहुगो*** षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप अगुरुलघुकगुण से सहित है। और वह किस विशेषतावाला है ? ***अमुत्तो*** क्योंकि वह वर्णादि से रहित है; इसलिए ही अमूर्त है और इसीलिए सूक्ष्म अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा जानने-योग्य है। और वह किस स्वरूपवाला है ? ***वट्टणलक्खो य कालोत्ति*** शीतकाल में स्वयं ही अध्ययनक्रिया करते हुए पुरुष को अग्नि की सहकारिता के समान, स्वयं ही भ्रमण-क्रिया करते हुए कुम्भकार-चक्र को अधस्तन (नीचे की) शिला की सहकारिता के समान, निश्चय से स्वयं ही परिणाम को प्राप्त होते हुए सभी द्रव्यों के प्रति बहिरङ्ग निमित्तता होने से वर्तनालक्षण कालाणुरूप निश्चयकाल है।

लोकाकाश से बाह्य भाग में कालद्रव्य नहीं है, तब आकाश का परिणमन कैसे होता है ? ऐसा प्रश्न होने पर उसके प्रति उत्तर देते हैं — जैसे एक प्रदेश का स्पर्श होने पर फैले हुए महावस्त्र में या विशाल वेणुदण्ड (बाँस) में या कुम्भकार-चक्र में सर्वत्र चलन / कम्पन होता है; और जैसे कामरूप स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा विषय का एकदेश स्पर्श किए जाने पर अथवा रसना इन्द्रिय के विषय में (प्रवृत्ति होने पर) सर्वाङ्ग से सुखानुभव होता है; और जैसे एक स्थान पर सर्प के काटने पर या व्रणादिक (घाव / फोड़ा आदि) होने पर सर्वाङ्ग में दुःख वेदना होती है; उसी प्रकार लोक में ही स्थित कालद्रव्य से सर्वत्र अलोकाकाश में भी परिणमन हो जाता है।

प्रश्न - यह कैसे हो जाता है ?

उत्तर - अखण्ड एक द्रव्य होने से यह हो जाता है।

परिणतिसहकारिकारणं भवति। कालस्य किं परिणतिसहकारिकारणमिति ? आकाशस्याकाशाधारवत् ज्ञानादित्यरत्नप्रदीपानां स्वपरप्रकाशवच्च कालद्रव्यस्य परिणतेः काल एव सहकारिकारणं भवति।

अथ मतं यथा कालद्रव्यं स्वपरिणतेः स्वयमेव सहकारी तथाशेषद्रव्याण्यपि स्वपरिणतेः स्वयमेव सहकारिकारणानि भविष्यन्ति कालद्रव्येण किं प्रयोजनमिति ? परिहारमाह सर्वद्रव्यसाधारणपरिणति-सहकारित्वं कालस्यैव गुणः। कथमिति चेत् ? आकाशस्य सर्वसाधारणावकाशदानमिव, धर्मद्रव्यस्य सर्वसाधारणगतिहेतुत्वमिव तथाधर्मस्य स्थितिहेतुत्वमिव। तदपि कथमिति चेत् ? अन्यद्रव्यस्य गुणोऽन्यद्रव्यस्य कर्तुं नायाति संकरव्यतिकरदोषप्राप्तेः। किंच यदि सर्वद्रव्याणि स्वकीयस्वकीयपरिणते-रुपादानकारणवत् सहकारिकारणान्यपि भवन्ति तर्हि गतिस्थित्यवगाहपरिणतिविषये धर्माधर्माकाशद्रव्यैः

प्रश्न – कालद्रव्य अन्य द्रव्यों की परिणति में सहकारीकारण है, काल की परिणति में सहकारीकारण कौन है ?

उत्तर – आकाश का आकाश ही आधार के समान; ज्ञान, सूर्य, रत्न, प्रदीपों के स्व-पर प्रकाशक के समान; कालद्रव्य की परिणति में काल ही सहकारीकारण है।

प्रश्न – अब यह मत है कि जैसे कालद्रव्य अपने परिणमन का स्वयं ही सहकारी है; उसी प्रकार शेष द्रव्य भी अपने परिणमन के स्वयं ही सहकारीकारण हो जाएँ; कालद्रव्य से क्या प्रयोजन है ?

उत्तर – सभी द्रव्यों के परिणमन में साधारण सहकारीत्व काल का ही गुण है। वह कैसे ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं – आकाश का सभी को साधारण अवकाशदान के समान, धर्मद्रव्य का साधारण गतिहेतुत्व के समान, अधर्म का स्थितिहेतुत्व के समान, काल का परिणमनहेतुत्व है। वह भी कैसे ? यदि यह प्रश्न हो तो उत्तर देते हैं – संकर-व्यतिकर दोषों की प्राप्ति होने से अन्य द्रव्य का गुण, अन्य द्रव्य के गुणरूप नहीं किया जा सकता है।

दूसरी बात यह है कि यदि सभी द्रव्य अपने-अपने परिणमन में उपादानकारण के समान सहकारीकारण भी होते हैं तो गति, स्थिति, अवगाहनरूप परिणमन के विषय में सहकारीकारणभूत धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्यों से भी क्या प्रयोजन है ? गति, स्थिति, अवगाहन भी स्वयं ही हो जाएगा।

प्रश्न – वैसा होने पर क्या दोष है ?

उत्तर – (ऐसा होने पर) जीव-पुद्गल नामक दो ही द्रव्य होंगे और यह तो आगम से विरुद्ध है।

सहकारिकारणभूतैः किं प्रयोजनं? गतिस्थित्यवगाह्यः स्वयमेव भविष्यति। तथा सति किं दूषणं? जीवपुद्गलसंज्ञे द्वे एव द्रव्ये, स चागमविरोधः।

अत्र विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावस्य शुद्धजीवास्तिकायस्यालाभेऽतीतानंतकाले संसारचक्रे भ्रमितोऽयं जीवः ततः कारणाद्वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा समस्तरागादिरूपसंकल्पविकल्पकल्लोलमालापरिहारबलेन जीवन् स एव निरंतरं ध्यातव्य इति भावार्थः॥ २४॥

इति निश्चयकालव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्।

अथ समयादिव्यवहारकालस्य निश्चयेन परमार्थकालपर्यायस्यापि जीवपुद्गलनवजीर्णादिपरिणत्या व्यज्यमानत्वात् कथंचित्परायत्तत्वं द्योतयति –

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासोडुअयणसंवत्सरोत्ति कालो परायत्तो॥ २५॥

समओ* मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुना निमित्तभूतेन व्यक्तीक्रियमाणः समयः *णिमिसो

यहाँ विशुद्ध दर्शन-ज्ञान स्वभावी शुद्ध जीवास्तिकाय की प्राप्ति न होने के कारण अतीत अनन्त काल से यह जीव संसारचक्र में घूम रहा है, उस कारण से वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर, समस्त रागादिरूप सङ्कल्प-विकल्पमयी कल्लोलों की माला (तरङ्गसमूहों) के परिहार के बल से, यही जीव निरन्तर ध्यान करने-योग्य है – ऐसा भावार्थ है॥ २४॥

इस प्रकार निश्चयकाल-व्याख्यान की मुख्यता से दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, निश्चय से परमार्थकाल की पर्याय होने पर भी समय आदि व्यवहारकाल के जीव-पुद्गल की नवीन-पुरानी आदि परिणति से व्यक्त होने के कारण कथञ्चित् परायत्तता/पराधीनता को प्रकाशित करते हैं –

जो समय निमिष कला घड़ी, दिन रात मास ऋतु तथा।
है अयन वर्ष सभी बताते, काल पर आधीनता॥ २५॥

गाथार्थ - समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली, घड़ी से होनेवाले दिन, रात, मास, ऋतु, अयन, वर्ष – ये पराश्रितकाल हैं।

टीकार्थ - ***समओ*** निमित्तभूत, मन्दगति से परिणत पुद्गल परमाणु द्वारा व्यक्त होनेवाला समय है। ***णिमिसो*** नेत्र की पलकों के खुलने से व्यक्त होनेवाला संख्यातीत / असंख्यात समय निमिष है। ***कट्ठा*** पन्द्रह निमिषों से एक काष्ठा होती है। ***कला य*** तीस काष्ठाओं से एक कला,

नयनपुटविघटनेन व्यज्यमानः संख्यातीतसमयो निमिषः *कट्ठा* पञ्चदशनिमिषैः काष्ठा *कला य* त्रिंशत्काष्ठाभिः कला *णाली* साधिकविंशतिकलाभिर्घटिका घटिकाद्वयं मुहूर्तः *तदो दिवारत्ती* त्रिंशन्मुहूर्तैरहोरात्रः *मासो* त्रिंशद्दिवसैर्मासः *उडु* मासद्वयमृतुः *अयणं* तुत्रयमयनं *संवत्सरोत्ति कालो* अयनद्वयं वर्षं इति। इति शब्देन पल्योपमसागरोपमादिरूपो व्यवहारकालो ज्ञातव्यः। स च मंदगतिपरिणत-पुद्गलपरमाणुव्यज्यमानः समयो जलभाजनादिबहिरङ्गनिमित्तभूतपुद्गलप्रकटीक्रियमाणा घटिका, दिनकरबिंबगमनादिक्रियाविशेषव्यक्तीक्रियमाणो दिवसादिः व्यवहारकालः। कथंभूतः? *परायत्तो* कुम्भकारादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नमृत्पिण्डोपादानकारणजनितघटवन्निश्चयेन द्रव्यकालजनितोऽपि व्यवहारेण परायत्तः पराधीन इत्युच्यते।

किंच अन्येन क्रियाविशेषणादित्यगत्यादिना परिच्छिद्यमानोऽन्यस्य जातकादेः परिच्छित्तिहेतुः स एव कालोऽन्यो द्रव्यकालो नास्तीति? तन्न। पूर्वोक्तसमयादिपर्यायरूप आदित्यगत्यादिना व्यज्यमानः स व्यवहारकालः यश्चादित्यगत्यादिपरिणतेः सहकारिकारणभूतः स द्रव्यरूपो निश्चयकालः। ननु

णाली कुछ अधिक बीस कलाओं से एक घड़ी, दो घड़ी का एक मुहूर्त ***तदो दिवारत्ती*** तीस मुहूर्तों से एक दिन-रात, ***मासो*** तीस दिनों से एक मास / माह, ***उडु*** दो माहों की एक ऋतु, ***अयणं*** तीन ऋतुओं का एक अयन, ***संवत्सरोत्ति*** दो अयनों का एक वर्ष होता है। ***'इति'*** शब्द से पल्योपम, सागरोपम आदि रूप व्यवहारकाल जानना चाहिए और वह मन्दगति से परिणत पुद्गल परमाणु द्वारा व्यक्त होनेवाला समय, जलभाजन आदि बहिरङ्ग निमित्तभूत पुद्गलों से प्रगट होनेवाली घड़ी, सूर्यबिम्ब की गमनादि क्रिया-विशेष से व्यक्त होनेवाला दिवस आदि व्यवहारकाल हैं। ये व्यवहारकाल किस कारण हैं? ***परायत्तो*** कुम्भकारादि बहिरङ्ग निमित्त से उत्पन्न और मिट्टी पिण्डरूप उपादानकारण से उत्पन्न घड़े के समान, निश्चय से द्रव्यकालजनित होने पर भी व्यवहार से परायत्त / पराधीन कहलाते हैं।

प्रश्न – जो सूर्य की गति आदि क्रिया-विशेषरूप अन्य द्वारा ज्ञात होता है अथवा जो जातक / उत्पन्न होनेवाले अन्य के ज्ञान का कारण है, वही काल है; इससे भिन्न कोई द्रव्यकाल नहीं है?

उत्तर – ऐसा नहीं है। जो सूर्य की गति आदि द्वारा व्यक्त होता है, वह पूर्वोक्त समय आदि पर्यायरूप व्यवहारकाल है और जो सूर्य के गति आदि परिणमन में सहकारीकारणभूत है, वह द्रव्यरूप निश्चयकाल है।

प्रश्न – सूर्य के गति आदि परिणमन में धर्मद्रव्य सहकारीकारण है; (तब फिर) काल से क्या प्रयोजन है?

आदित्यगत्यादिपरिणतेर्धर्मद्रव्यं सहकारिकारणं कालस्य किमायातं? नैवम्। गतिपरिणतेर्धर्मद्रव्यं सहकारिकारणं भवति कालद्रव्यं च, सहकारिकारणानि बहून्यपि भवन्ति यतः कारणात् घटोत्पत्तौ कुम्भकारचक्रचीवरादिवत्, मत्स्यादीनां जलादिवत्, मनुष्याणां शकटादिवत्, विद्याधराणां विद्यामन्त्रौ-षधादिवत्, देवानां विमानवदित्यादिकालद्रव्यं गतिकारणम्। कुत्र भणितं तिष्ठतीति चेत्?

''पोग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणेहिं'' **— क्रियावंतो भवंतीति कथयत्यग्रे। ननु यावता कालेनैकप्रदेशातिक्रमं करोति पुद्गलपरमाणुस्तत्प्रमाणेन समयव्याख्यानं कृतं स एकसमये चतुर्दशरज्जुकाले गमनकाले यावंतः प्रदेशास्तावंतः समया भवंतीति? नैवम्। एकप्रदेशातिक्रमेण या समयोत्पत्तिर्भणिता सा मंदगतिगमनेन, चतुर्दशरज्जुगमनं यदेकसमये भणितं तदक्रमेण शीघ्रगत्या कथितमिति नास्ति दोषः। अत्र दृष्टांतमाह — यथा कोऽपि देवदत्तो योजनशतं दिनशतेन गच्छति स एव विद्याप्रभावेण दिनेनैकेन गच्छति तत्र किं दिनशतं भवति नैवमेकदिनमेव तथा शीघ्रगतिगमने सति चतुर्दशरज्जुगमनेऽप्येकसमय एव नास्ति दोषः इति॥ २५॥**

उत्तर – ऐसा नहीं है। गतिरूप परिणमन में धर्मद्रव्य भी सहकारीकारण है और कालद्रव्य भी; क्योंकि सहकारीकारण अनेक भी होते हैं। घट की उत्पत्ति में कुम्भकार, चक्र, चीवर आदि के समान; मछलिओं को जलादि के समान; मनुष्यों को गाड़ी आदि के समान; विद्याधरों को विद्या, मन्त्र, औषधि आदि के समान; देवों को विमान के समान इत्यादि के समान कालद्रव्य गति में कारण है।

यह कहाँ कहा गया है? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं – '***पोग्गल...*** जीव पुद्गल-करण से और स्कन्ध काल-करण से क्रियावान हैं' – ऐसा प्रस्तुत ग्रन्थ की गाथा ९८, उत्तरार्ध में कहा गया है।

प्रश्न – पुद्गल परमाणु जितने काल में एक प्रदेश का अतिक्रमण करता है, उतने प्रमाण का समयरूप से व्याख्यान किया गया, तो क्या उस एक समय में पुद्गल द्वारा चौदह राजूप्रमाण गमन के काल में जितने प्रदेश हैं, उतने समय होते हैं?

उत्तर – ऐसा नहीं है। एक प्रदेश के अतिक्रमण द्वारा जो समय की उत्पत्ति कही गई है, वह मन्दगति से गमन द्वारा कही है; तथा जो एक समय में चौदह राजू गमन कहा है, वह अक्रम से शीघ्र गति की अपेक्षा कहा गया है – इस प्रकार इसमें दोष नहीं है। यहाँ दृष्टान्त कहते हैं – जैसे कोई देवदत्त सौ दिन में सौ योजन जाता है, वही विद्या के प्रभाव से उतना ही एक दिन में चला जाता है तो क्या वहाँ सौ दिन हैं? नहीं, एक ही है; उसी प्रकार शीघ्रगति से गमन होने पर चौदह राजू गमन में भी एक समय ही है – इस प्रकार दोष नहीं है॥ २५॥

अथ पूर्वगाथायां यद्व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं कथितं तत्केन रूपेण संभवतीति पृष्टे युक्तिं दर्शयति —

णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहियं तु सा वि खलु मत्ता।
पुग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो॥ २६॥

णत्थि **नास्ति न विद्यते। किं ?** ***चिरं वा खिप्पं*** **चिरं बहुतरकालस्वरूपं क्षिप्रं शीघ्रं च। कथंभूतं ?** ***मत्तारहियं तु*** **मात्रारहितं परिमाणरहितं मानविशेषरहितं च तन्मात्राशब्दवाच्यं परिमाणं चिरकालस्य घटिकाप्रहरादिरिति क्षिप्रस्य सूक्ष्मकालस्य च मात्राशब्दवाच्यं परिमाणं च। किं ? समयावलिकादीति।** ***सावि खलु मत्ता पोग्गलदव्वेण विणा*** **सूक्ष्मकालस्य या समयादिमात्रा सा मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणु-नयनपुटविघटनादिपुद्गलद्रव्येण विना न ज्ञायते चिरकालघटिकादिरूपा मात्रा च घटिकानिमित्तभूतजल-भाजनादिद्रव्येण बिना न ज्ञायते** ***तम्हा कालो पडुच्चभवो*** **तस्मात्कारणात्समयघटिकादिसूक्ष्मस्थूलरूपो व्यवहारकालो यद्यपि निश्चयेन द्रव्यकालस्य पर्यायस्तथापि व्यवहारेण परमाणुजलादिपुद्गलद्रव्यं**

अब, पहली गाथा में व्यवहारकाल की जो कथञ्चित् पराधीनता कही है, वह किस रूप से सम्भव है, ऐसा पूछने पर युक्ति दिखाते हैं —

चिर शीघ्र ना मात्रा बिना, वह मात्रा पुद्गल बिना।
होती नहीं अतएव काल, प्रतीत्यभव भी है कहा॥ २६॥

गाथार्थ - चिर अथवा क्षिप्र / शीघ्र मात्रा (परिमाण) के बिना नहीं होता है और वह मात्रा वास्तव में पुद्गलद्रव्य के बिना नहीं है; इसलिए काल प्रतीत्यभव है (पर का आश्रय लेकर व्यक्त होता है)।

टीकार्थ - ***णत्थि*** नहीं है। क्या नहीं है ? ***चिर वा खिप्पं*** चिर / बहुत कालस्वरूप / दीर्घकाल और शीघ्र नहीं हैं। ये कैसे नहीं हैं ? ***मत्तारहियं तु*** मात्रारहित / परिमाणरहित / मान / माप विशेषरहित नहीं हैं; उस मात्रा शब्द से वाच्य चिरकाल का परिमाण घड़ी-प्रहर आदि है और क्षिप्र / सूक्ष्मकाल का मात्रा शब्द से वाच्य परिमाण है। वह क्या है ? वह समय, आवली आदि है। ***सावि खलु मत्ता पोग्गलदव्वेण विणा*** सूक्ष्म काल की जो समय आदि मात्रा है, वह मन्दगति से परिणत पुद्गल परमाणु के बिना, नेत्र पलकों के खुलने आदि पुद्गलद्रव्य के बिना ज्ञात नहीं होती; तथा चिरकाल, घड़ी आदि रूप मात्रा घड़ी के निमित्तभूत जलभाजन आदि द्रव्य के बिना ज्ञात नहीं होती है। ***तम्हा कालो पडुच्चभवो*** उस कारण समय, घटिका आदि सूक्ष्म-स्थूलरूप व्यवहारकाल यद्यपि निश्चय से द्रव्यकाल की पर्याय है; तथापि व्यवहार से परमाणु,

प्रतीत्याश्रित्य निमित्तीकृत्य भव उत्पन्नो जात इत्यभिधीयते। केन दृष्टांतेन ? यथा निश्चयेन पुद्गलपिंडोपादानकारणेन समुत्पन्नोऽपि घटः व्यवहारेण कुम्भकारनिमित्तेनोत्पन्नत्वात्कुम्भकारेण कृत इति भण्यते तथा समयादिव्यवहारकालो यद्यपि निश्चयेन परमार्थकालोपादानकारणेन समुत्पन्नः तथापि समयनिमित्तभूतपरमाणुना घटिकानिमित्तभूतजलादिपुद्गलद्रव्येण च व्यज्यमानत्वात् प्रकटीक्रियमाणत्वात्पुद्गलोत्पन्न इति भण्यते।

पुनरपि कश्चिदाह — समयरूप एव परमार्थकालो न चान्यः कालाणुद्रव्यरूप इति ? परिहारमाह — समयस्तावत्सूक्ष्मकालरूपः प्रसिद्धः स एव पर्यायः न च द्रव्यम्। कथं पर्यायत्वमिति चेत् ? उत्पन्नप्रध्वंसित्वात्पर्यायस्य *''समओ उप्पण्णपद्धंसीति''* वचनात्। पर्यायस्तु द्रव्यं बिना न भवति द्रव्यं च निश्चयेनाविनश्वरं तच्च कालपर्यायस्योपादानकारणभूतं कालाणुरूपं कालद्रव्यमेव न च पुद्गलादि। तदपि कस्मात् ? उपादानकारणसदृशत्वात्कार्यस्य मृत्पिंडोपादानकारणसमुत्पन्नघटकार्यवदिति। किंच कालशब्द एव परमार्थकालवाचकभूतः स्वकीयवाच्यं परमार्थकालस्वरूपं व्यवस्थापयति साधयति। किंवत् ? सिंहशब्दः सिंहपदार्थवत्, सर्वज्ञशब्दः सर्वज्ञपदार्थवत्, इंद्रशब्दः इंद्रपदार्थवदित्यादि।

जल आदि पुद्‌गलद्रव्य को प्रतीत्य / उसका आश्रयकर / उसे निमित्तकर उत्पन्न होता है — ऐसा कहा जाता है। ऐसा किस उदाहरण से ज्ञात होता है ? जैसे निश्चय से पुद्‌गलपिण्डरूप उपादानकारण से उत्पन्न होने पर भी व्यवहार से कुम्भकार के निमित्त से उत्पन्न होने के कारण, घड़ा कुम्भकार ने बनाया — ऐसा कहा जाता है; उसी प्रकार समय आदि व्यवहारकाल यद्यपि निश्चय से परमार्थ कालरूप उपादानकारण से समुत्पन्न है; तथापि निमित्तभूत परमाणु द्वारा समय और निमित्तभूत जलादि पुद्‌गलद्रव्य द्वारा घड़ी के व्यक्त होने से, प्रगट किए जाने से, वह पुद्‌गल से उत्पन्न है — ऐसा कहा जाता है।

इस पर से कोई कहता है — समयरूप ही परमार्थ काल है, इससे भिन्न कोई द्रव्यरूप कालाणु नहीं है ? **उसका परिहार कहते / करते हैं** — जो सूक्ष्मकालरूप प्रसिद्ध समय है, वह पर्याय ही है; द्रव्य नहीं। उसके पर्यायत्व कैसे है ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — पर्याय के उत्पन्न-प्रध्वंसी होने से; 'समय उत्पन्न-प्रध्वंसी है' — ऐसा वचन होने से (प्रवचनसार, गाथा १३९) समय, पर्याय है। पर्याय, द्रव्य के बिना नहीं होती तथा द्रव्य निश्चय से अविनश्वर है और वह कालपर्याय का उपादानकारणभूत कालाणुरूप कालद्रव्य ही है; पुद्‌गल आदि नहीं है। वह भी कैसे है ? मिट्टी-पिण्डरूप उपादानकारण से समुत्पन्न घट-कार्य के समान, कार्य उपादानकारण के समान होने से समयरूप पर्याय कालद्रव्य की है।

दूसरी बात यह है कि परमार्थ काल-वाचकभूत 'काल' शब्द ही अपने वाच्य परमार्थ

पुनरप्युपसंहाररूपेण निश्चयव्यवहारकालस्वरूपं कथ्यते। तद्यथा – समयादिरूपसूक्ष्मव्यवहार-काल घटिकादिरूपस्थूलव्यवहारकालस्य च यद्युपादानकारणभूतकालस्तथापि समयघटिकारूपेण या विवक्षिता व्यवहारकालस्य भेदकल्पना तया रहितस्त्रिकालस्थायित्वेनानाद्यनिधनो लोकाकाशप्रदेश-प्रमाणकालाणुद्रव्यरूपः परमार्थकालः। यस्तु निश्चयकालोपादानकारणजन्योऽपि पुद्गलपरमाणुजल-भाजनादिव्यज्यमानत्वात्समयघटिकादिवसादिरूपेण विवक्षितव्यवहारकल्पनारूपः स व्यवहारकाल इति।

अत्र व्याख्यानेऽतीतानंतकाले दुर्लभो योऽसौ शुद्धजीवास्तिकायस्तस्मिन्नेव चिदानंदैककाल-स्वभावे सम्यक्श्रद्धानं रागादिभ्यो भिन्नरूपेण भेदज्ञानं रागादिविभावरूपसमस्तसंकल्पविकल्प-जालत्यागेन तत्रैव स्थिरचित्तं च कर्तव्यमिति तात्पर्यार्थः॥ २६॥

इति व्यवहारकालव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्।

अत्र पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्ररूपणप्रवणेऽष्टांतराधिकारसहितप्रथममहाधिकारमध्ये निश्चय-

---

काल के स्वरूप को व्यवस्थापित करता है, साधता है। वह किसके समान साधता है? 'सिंह' शब्द, सिंह पदार्थ के समान; 'सर्वज्ञ' शब्द, सर्वज्ञ पदार्थ के समान; 'इन्द्र' शब्द, इन्द्र पदार्थ के समान इत्यादि के समान 'काल' शब्द, काल पदार्थ को साधता है।

अब और भी उपसंहाररूप से निश्चय-व्यवहार काल-स्वरूप को कहते हैं। वह इस प्रकार – समय आदि रूप सूक्ष्म व्यवहारकाल का और घड़ी आदि रूप स्थूल व्यवहारकाल का यद्यपि उपादानकारणभूत काल है; तथापि जो समय, घड़ीरूप से विवक्षित व्यवहारकाल की भेद कल्पना है, उससे रहित त्रिकाल स्थायी होने से अनादिनिधन, लोकाकाश प्रदेश प्रमाण कालाणुरूप द्रव्य ही परमार्थ काल है; और जो निश्चयकालरूप उपादानकारण से उत्पन्न होने पर भी, पुद्गल परमाणु, जलभाजन आदि से व्यक्त होने के कारण समय, घड़ी, दिवस आदि रूप से विवक्षित व्यवहार कल्पनारूप है, वह व्यवहारकाल है।

इस व्याख्यान में अतीत अनन्त काल में दुर्लभ जो वह शुद्ध जीवास्तिकाय है, उस चिदानन्द एक काल स्वभाव में ही सम्यक्श्रद्धान, रागादि से भिन्नरूप में भेदज्ञान और रागादि विभावरूप समस्त सङ्कल्प-विकल्प जाल के त्याग से उसमें ही चित्त स्थिर करना चाहिए – यह तात्पर्यार्थ है॥ २६॥

इस प्रकार काल के व्याख्यान की मुख्यता से दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

यहाँ पञ्चास्तिकाय, षट्द्रव्य के प्ररूपण में प्रवण आठ अन्तराधिकारसहित प्रथम महाधिकार

व्यवहारकालप्ररूपणाभिधानः पञ्चगाथाभिः स्थलत्रयेण तृतीयोऽन्तराधिकारो गतः।

एवं समयशब्दार्थपीठिका द्रव्यपीठिका निश्चयव्यवहारकालव्याख्यानमुख्यतया चान्तराधिकार-त्रयेण षड्विंशतिगाथाभिः *पंचास्तिकायपीठिका* समाप्ता।

अथ पूर्वोक्तषड्द्रव्याणां चूलिकारूपेण विस्तरव्याख्यानं क्रियते। तद्यथा –

परिणाम जीव मुत्तं सपदेसं एय खेत किरिया च।
णिच्चं कारण कत्ता सव्वगदिदरं हि यप्पवेसो॥

परिणाम* परिणामिनौ जीवपुद्गलौ स्वभावविभावपरिणामाभ्यां शेषचत्वारि द्रव्याणि विभाव-व्यञ्जनपर्यायाभावाद् मुख्यवृत्त्या पुनरपरिणामीनि। *जीव* शुद्धनिश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं शुद्धचैतन्यं प्राणशब्देनोच्यते तेन जीवतीति जीवः व्यवहारनयेन पुनः कर्मोदयजनितद्रव्यभावरूपैश्चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीवः पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणि पुनरजीवरूपाणि। *मुत्तं

में तीन स्थलरूप पाँच गाथाओं द्वारा निश्चय-व्यवहार कालप्ररूपण नामक तीसरा अन्तराधिकार पूर्ण हुआ।

इस प्रकार समय शब्दार्थ पीठिका, द्रव्य पीठिका और निश्चय-व्यवहार काल के व्याख्यान की मुख्यतावाले तीन अन्तराधिकारयुक्त छब्बीस गाथाओं द्वारा ***पञ्चास्तिकाय पीठिका*** समाप्त हुई।

अब, पूर्वोक्त छह द्रव्यों का चूलिकारूप से विस्तृत व्याख्यान करते हैं। वह इस प्रकार –

परिणाम जीव प्रदेश कर्ता, नित्य सक्रिय सर्वगत।
प्रविष्ट कारण क्षेत्र रूपी, एक ये विपरीत युत॥

[यह गाथा मूलाचार में ५४७ वीं तथा वसुनन्दीश्रावकाचार में २३ वीं है।]

गाथार्थ - परिणाम, जीव, मूर्त, सप्रदेश, एक, क्षेत्र, क्रियावान, नित्य, कारण, कर्ता और सर्वगत तथा इससे विपरीत अप्रवेश आदि रूप छहों द्रव्यों को जानना चाहिए।

टीकार्थ - ***परिणाम*** स्वभाव-विभावरूप से परिणमन करने के कारण जीव-पुद्गल परिणाम-स्वभावी / परिणामी हैं। शेष चार द्रव्यों में विभाव व्यञ्जनपर्याय का अभाव होने से, इसकी मुख्यता की अपेक्षा अपरिणामी हैं। ***जीव*** शुद्ध निश्चयनय से विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावी शुद्ध चैतन्य को प्राण शब्द से कहा जाता है, उससे जो जीता है, वह जीव है; तथा व्यवहारनय की अपेक्षा कर्म के उदय से उत्पन्न द्रव्य-भावरूप चार प्राणों से जो जीता है, जिएगा अथवा पहले

अमूर्तशुद्धात्मनो विलक्षणा स्पर्शरसगंधवर्णवती मूर्तिरुच्यते तत्सद्भावात् मूर्तः पुद्गलः, जीवद्रव्यं पुनरनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण मूर्तमपि शुद्धनिश्चयनयेनामूर्तं धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि चामूर्तानि। *सपदेसं* लोकमात्रप्रमितासंख्येयप्रदेशलक्षणं जीवद्रव्यमादिं कृत्वा पञ्चद्रव्याणि पञ्चास्तिकायसंज्ञानि सप्रदेशानि, कालद्रव्यं पुनर्बहुप्रदेशलक्षणं कायत्वाभावादप्रदेशम्। *एय* द्रव्यार्थिकनयेन धर्माधर्माकाश-द्रव्याण्येकानि भवन्ति, जीवपुद्गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि। *खेत्त* सर्वद्रव्याणामवकाशदानसामर्थ्या-त्क्षेत्रमाकाशमेकं शेषपंचद्रव्याण्यक्षेत्राणि। *किरिया य* क्षेत्रात् क्षेत्रांतरगमनरूपा परिस्पंदवती चलनवती क्रिया सा विद्यते ययोस्तौ क्रियावंतौ जीवपुद्गलौ धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि पुनर्निष्क्रियाणि। *णिच्चं* धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि यद्यप्यर्थपर्यायत्वेनानित्यानि तथापि मुख्यवृत्त्या विभावव्यंजनपर्याया-भावान्नित्यानि; द्रव्यार्थिकनयेन च जीवपुद्गलद्रव्ये पुनर्यद्यपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्ये तथाप्यगुरुलघु-परिणतिरूपस्वभावपर्यायापेक्षया विभावव्यञ्जनपर्यायापेक्षया चानित्ये। *कारण* पुद्गलधर्माधर्माकाश-कालद्रव्याणि व्यवहारनयेन जीवस्य शरीरवाङ्मनःप्राणापानादिगतिस्थित्यवगाहवर्तनाकार्याणि कुर्वंतीति

जीता था, वह जीव है। पुद्गल आदि पाँच द्रव्य अजीवरूप हैं। ***मुत्तं*** अमूर्त शुद्धात्मा से विलक्षण स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली मूर्ति कहलाती है, उसके सद्भाव से पुद्गल मूर्त है; जीवद्रव्य भी अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मूर्त है, शुद्ध निश्चयनय से अमूर्त है; तथा धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्त हैं। ***सपदेसं*** लोकमात्र प्रमित असंख्येय प्रदेश लक्षण जीवद्रव्य से प्रारम्भकर पञ्चास्तिकाय नामक पाँच द्रव्य सप्रदेश हैं तथा बहु प्रदेश लक्षण कायत्व का अभाव होने से कालद्रव्य अप्रदेश है।

एय द्रव्यार्थिकनय से धर्म, अधर्म, आकाशद्रव्य एक-एक हैं तथा जीव, पुद्गल, कालद्रव्य अनेक हैं। ***खेत्त*** सभी द्रव्यों को अवकाश / स्थान देने की सामर्थ्य होने से एक आकाश क्षेत्र है, शेष पाँच द्रव्य अक्षेत्र हैं। ***किरिया य*** क्षेत्र से क्षेत्रान्तर गमनरूप, परिस्पन्दात्मक, हलन-चलन युक्त क्रिया है, वह जिनके है, वे जीव और पुद्गल दो क्रियावान् हैं; धर्म, अधर्म, आकाश, कालद्रव्य निष्क्रिय हैं। ***णिच्चं*** धर्म, अधर्म, आकाश, कालद्रव्य यद्यपि अर्थ-पर्यायरूप से अनित्य हैं; तथापि मुख्यरूप से विभाव-व्यञ्जन-पर्याय का अभाव होने से द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य हैं। जीव, पुद्गलद्रव्य भी यद्यपि द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य हैं; तथापि अगुरुलघु परिणतिरूप स्वभावपर्याय की अपेक्षा और विभाव व्यञ्जनपर्याय की अपेक्षा अनित्य हैं।

कारण पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालद्रव्य व्यवहारनय से जीव को शरीर, वचन, मन, प्राणापान / श्वासोच्छ्वास आदि तथा गति, स्थिति, अवगाह, वर्तनारूप कार्य करने में निमित्तकारण होते हैं; अतः कारण हैं। जीवद्रव्य भी यद्यपि गुरु-शिष्यादिरूप से परस्पर में निमित्त

कारणानि भवन्ति, जीवद्रव्यं पुनर्यद्यपि गुरुशिष्यादिरूपेण परस्परोग्रहं करोति तथापि पुद्गलादिपञ्च-द्रव्याणां किमपि न करोति इत्यकारणम्। *कत्ता* शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि बंधमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपापघटपटादीनामकर्ता जीवस्तथाप्यशुद्धनिश्चयेन शुभाशुभो-पयोगाभ्यां परिणतः सन् पुण्यपापबंधयोः कर्ता तत्फलभोक्ता च भवति विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिज-शुद्धात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण शुद्धोपयोगेन तु परिणतः सन् मोक्षस्यापि कर्ता तत्फलभोक्ता च शुभाशुभशुद्धपरिणामानां परिणमनमेव कर्तृत्वं सर्वत्र ज्ञातव्यमिति पुद्गलादीनां पञ्चद्रव्याणां च स्वकीयस्वकीयपरिणामेन परिणमनमेव कर्तृत्वं वस्तुवृत्त्या पुनः पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव। *सव्वगदं* लोकालोकव्याप्तपेक्षया सर्वगतमाकाशं भण्यते लोकव्याप्त्यपेक्षया धर्माधर्मौ च, जीवद्रव्यं पुनरेकैक-जीवापेक्षया लोकपूरणावस्थां विहायासर्वगतं, नानाजीवापेक्षया सर्वगतमेव भवति, पुद्गलद्रव्यं पुनर्लोक-रूपमहास्कंदापेक्षया सर्वगतं, शेषपुद्गलापेक्षया सर्वगतं न भवतीति, कालद्रव्यं पुनरेककालाणुद्रव्यापेक्षया सर्वगतं न भवति, लोकप्रदेशप्रमाणनानाकालाणुविवक्षया लोके सर्वगतम्। *इदरंहि यप्पवेसो* यद्यपि सर्वद्रव्याणि व्यवहारेणैकक्षेत्रावगाहेनान्योन्यानुप्रवेशेन तिष्ठन्ति तथापि निश्चयेन चेतनाचेतनादि-

होता है; तथापि पुद्‌गलादि पाँच द्रव्यों को किसी भी प्रकार निमित्त नहीं होता; अतः अकारण है।

कत्ता शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से यद्यपि बन्ध, मोक्ष, द्रव्य-भावरूप पुण्य-पाप, घट-पट आदि का जीव अकर्ता है; तथापि अशुद्ध निश्चय से शुभ-अशुभ उपयोगरूप परिणमित होता हुआ, पुण्य-पाप के बन्ध का कर्ता है और उसके फल का भोक्ता है। विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावी निज शुद्धात्मद्रव्य के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप शुद्धोपयोग से परिणत होता हुआ मोक्ष का भी कर्ता है और उसके फल का भोक्ता है। शुभ, अशुभ, शुद्ध परिणामों का परिणमन ही कर्तृत्व है – ऐसा सर्वत्र जानना चाहिए। पुद्‌गलादि पाँच द्रव्यों का अपने-अपने परिणामरूप से परिणमन ही कर्तृत्व है; वस्तु की अपेक्षा पुण्य-पाप आदि रूप से अकर्तृत्व ही है।

सव्वगदं लोक-अलोक में व्याप्त होने की अपेक्षा आकाश सर्वगत कहलाता है, लोक में व्याप्त होने की अपेक्षा धर्म और अधर्मद्रव्य सर्वगत हैं; जीवद्रव्य भी एक जीव की अपेक्षा लोकपूरण अवस्था को छोड़कर असर्वगत है, अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वगत ही है; पुद्‌गलद्रव्य भी लोकरूप महा-स्कन्ध की अपेक्षा सर्वगत है, शेष पुद्‌गलों की अपेक्षा सर्वगत नहीं है; कालद्रव्य भी एक कालाणुद्रव्य की अपेक्षा सर्वगत नहीं है, लोकाकाश के प्रदेशप्रमाण अनेक कालाणुओं की विवक्षा से लोक में सर्वगत है। ***इदरंहि यप्पवेसो*** यद्यपि सभी द्रव्य व्यवहार से एक क्षेत्रावगाही की अपेक्षा अन्योन्य अनुप्रविष्ट हैं; तथापि निश्चय से चेतन-अचेतन आदि

स्वकीयस्वकीयस्वरूपं न त्यजंतीति।

अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये वीतरागचिदानंदैकादिगुणस्वभावं शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररहितं निजशुद्धात्मद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः।

इत ऊर्ध्वं *जीवा पोग्गलकाया* इत्यादिगाथायां पूर्वं पञ्चास्तिकाया ये सूचितास्तेषामेव विशेष-व्याख्यानं क्रियते। तत्र पाठक्रमेण त्रिपंचाशद्गाथाभिर्नवांतराधिकारैर्जीवास्तिकायव्याख्यानं प्रारभ्यते। तासु त्रिपञ्चाशद्गाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् चार्वाकमतानुसारिशिष्यं प्रति जीवसिद्धिपूर्वकत्वेन नवाधिकारक्रमसूचनार्थं *जीवोत्ति हवदि चेदा...* इत्याद्येकाधिकारसूत्रगाथा भवति।

तत्रादौ प्रभुता तावज्जीवत्वं देहमात्रता। अमूर्तत्वं च चैतन्यमुपयोगात्तथा क्रमात्॥
कर्तृता भोक्तृता कर्मायुक्तत्वं च त्रयं तथा। कथ्यते यौगपद्येन यत्र तत्रानुपूर्व्यतः॥

इत श्लोकद्वयेन भट्टमतानुसारिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्धिपूर्वकत्वेनाधिकारव्याख्यानं क्रमशः सूचितम्। तत्रादौ प्रभुत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्धयर्थं *कम्ममल...* इत्यादिगाथाद्वयं भवति। तदनंतरं चार्वाकमतानुसारिशिष्यं प्रति जीवसिद्धयर्थं जीवत्वव्याख्यानरूपेण *पाणेहिं चदुहिं...* इत्यादि गाथात्रयम्। अथ नैयायिकमीमांसकसांख्यमताश्रितशिष्यं प्रति जीवस्य

अपने-अपने स्वरूप को नहीं छोड़ते।

यहाँ छह द्रव्यों में से वीतराग, चिदानन्द, एक आदि गुणस्वभावी; शुभ-अशुभ सम्बन्धी मन-वचन-काय के व्यापार से रहित, निज शुद्धात्मद्रव्य ही उपादेय है – यह भावार्थ है।

इससे आगे ***जीवा पोग्गलकाया*** इत्यादि गाथा में पहले जो पञ्चास्तिकाय सूचित किए थे, उनका ही विशेष व्याख्यान करते हैं। वहाँ पाठक्रम से त्रेपन गाथाओंवाले नौ अन्तराधिकारों द्वारा जीवास्तिकाय का व्याख्यान प्रारम्भ करते हैं। उन त्रेपन गाथाओं में से सर्व प्रथम चार्वाकमतानुसारी शिष्य के प्रति जीव-सिद्धिपूर्वक नौ अधिकारों के क्रम की सूचना के लिए ***जीवोत्ति हवदि चेदा*** इत्यादि एक अधिकार सूत्रगाथा है।

'वहाँ सर्व प्रथम प्रभुता, फिर जीवत्व, देहमात्रता और अमूर्तत्व, उसी क्रम से चैतन्य, उपयोग तथा कर्तृता, भोक्तृता और कर्मों से पृथक्ता – ये तीन युगपत् यत्र-तत्रानुपूर्वी से कहते हैं।'

इन दो श्लोकों द्वारा भट्टमतानुसारी शिष्य के प्रति सर्वज्ञ-सिद्धिपूर्वक क्रमशः अधिकार का व्याख्यान सूचित किया है। वहाँ सर्व प्रथम प्रभुत्व-व्याख्यान की मुख्यता से भट्ट चार्वाकमतानुसारी शिष्य के प्रति सर्वज्ञ-सिद्धि हेतु ***कम्ममल...*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। तत्पश्चात् चार्वाकमतानुसारी शिष्य के प्रति जीव-सिद्धि के लिए जीवत्व-व्याख्यानरूप से ***पाणेहिं चदुहिं...***

स्वदेहमात्रस्थापनार्थं *जह पउम* इत्यादिसूत्रद्वयम्। तदनंतरं भट्टचार्वाकमतानुकूलशिष्यं प्रति जीवस्यामूर्तत्वज्ञापनार्थं *जेसिं जीवसहावो* इत्यादिसूत्रत्रयम्। अथानादिचैतन्यसमर्थनव्याख्यानेन पुनरपि चार्वाकमतनिराकरणार्थं *कम्माणं फल...* इत्यादि सूत्रद्वयम्। एवमधिकारगाथामादिं कृत्वांतराधिकारपञ्चकसमुदायेन त्रयोदशगाथा गताः।

अथ नैयायिकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं *उवओगो खलु दुविहो...* इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यन्त-मुपयोगाधिकारः कथ्यते — तत्रैकोनविंशतिगाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयसूचनार्थं *उवओगे खलु...* इत्यादिसूत्रमेकम्। तदनंतरमष्टविधज्ञानोपयोगसंज्ञाकथनार्थं *आभिणि...* इत्यादि सूत्रमेकम्। अथ मत्यादिसंज्ञानपञ्चकविवरणार्थं *मदिणाण...* इत्यादिपाठक्रमेण सूत्रपञ्चकम्।

इत्यादि तीन गाथाएँ हैं। तदनन्तर नैयायिक, मीमांसक, सांख्यमताश्रित शिष्य के प्रति जीव को स्वदेहमात्र स्थापनहेतु ***जह पउम...*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। तदुपरान्त भट्ट-चार्वाकमतानुकूल शिष्य के प्रति जीव के अमूर्तत्व का ज्ञान कराने के लिए ***जेसिं जीवसहावो...*** इत्यादि तीन गाथाएँ हैं। उसके बाद अनादि चैतन्य समर्थन परक व्याख्यान द्वारा पुनः चार्वाकमत के निराकरण-हेतु ***कम्माणं फल...*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। — इस प्रकार अधिकार गाथा से प्रारम्भ कर पाँच अन्तराधिकारों के समूह द्वारा तेरह गाथाएँ पूर्ण हुईं।

प्रथम अवान्तराधिकारगत पाँच अधिकारों के समुदायपरक १३ गाथाओं की सारणी

स्थलक्रम	विषय	कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	अधिकार सूत्रगाथा	२८ वीं	१
२	सर्वज्ञ सिद्धि परक	२९-३० वीं	२
३	जीव सिद्धि परक	३१-३३ वीं	३
४	जीव की स्वदेह मात्र स्थिति	३४-३५ वीं	२
५	जीव का अमूर्तत्व ज्ञापनार्थ	३६-३८ वीं	३
६	चार्वाक मत निराकरणार्थ	३९-४० वीं	२

अब, नैयायिकमतानुसारी शिष्य के सम्बोधन-हेतु ***उवओगो खलु दुविहो...*** इत्यादि उन्नीस गाथापर्यन्त उपयोगाधिकार कहते हैं। वहाँ उन्नीस गाथाओं में से सर्व प्रथम ज्ञान-दर्शन दो उपयोगों की सूचना के लिए ***उवओगो खलु...*** इत्यादि एक गाथा है। उसके बाद आठ प्रकार के ज्ञानोपयोग का नाम कहने के लिए ***आभिणि...*** इत्यादि एक गाथा है। तत्पश्चात् मति आदि पाँच सम्यग्ज्ञानों के विवरण-हेतु ***मदिणाण...*** इत्यादि पाँच गाथाएँ हैं। तदनन्तर तीन अज्ञान के कथनरूप से **मिच्छत्ता अण्णाणं...** इत्यादि — इस प्रकार ज्ञानोपयोग सम्बन्धी आठ गाथाएँ हैं।

तदनंतरमज्ञानत्रय-कथनरूपेण *मिच्छत्ता अण्णाणं...* इत्यादि सूत्रमेकं इति ज्ञानोपयोगसूत्राष्टकम्। अथ चक्षुरादिदर्शनचतुष्टयप्रतिपादनमुख्यत्वेन *दंसणमवि...* इत्यादि सूत्रमेकम्। एवं ज्ञानदर्शनोपयोगाधिकार-गाथामादिं कृत्वान्तरस्थलपञ्चकसमुदायेन गाथानवकं गतम्।

अथ गाथादशकपर्यन्तं व्यवहारेण जीवज्ञानयोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि निश्चयनयेन प्रदेशास्तित्वाभ्यां नैयायिकं प्रत्यभेदस्थापनं क्रियते अग्न्युष्णत्वयोरभेदवत्। जीवज्ञानयोः संज्ञालक्षण-प्रयोजनानां स्वरूपं कथ्यते तथापि जीवद्रव्यस्य जीव इति संज्ञा ज्ञानगुणस्य ज्ञानमिति संज्ञा; चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीव इति जीवद्रव्यलक्षणं, ज्ञायंते पदार्था अनेनेति ज्ञानगुणलक्षणं; जीवद्रव्यस्य बंधमोक्षादिपर्यायैरविनष्टरूपेण परिणमनं प्रयोजनं, ज्ञानगुणस्य पुनः पदार्थपरिच्छित्ति-मात्रमेव प्रयोजनमिति संक्षेपेण संज्ञालक्षणप्रयोजनानि ज्ञातव्यानि।

तत्र दशगाथासु मध्ये जीवज्ञानयोः संक्षेपेणाभेदस्थापनार्थं *ण विअप्पदि...* इत्यादि सूत्रत्रयम्। अथ व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानां भेदे कथंचिदभेदेऽपि घटंत इत्यादि समर्थनरूपेण *ववदेसा...* इत्यादि-गाथात्रयं; तदनंतरमेकक्षेत्रावगाहित्वेनायुतसिद्धानामभेदसिद्धानामाधाराधेयभूतानां पदार्थानां प्रदेश-भेदेऽपि सति इहात्मनि ज्ञानमिह तंतुषु पट इत्यादिरूपेण इहेदमिति प्रत्ययः सम्बन्धः समवाय इत्यभिधीयते

तदुपरान्त चक्षु आदि चार दर्शन के प्रतिपादन की मुख्यता से ***दंसणमवि...*** इत्यादि एक गाथा है। इस प्रकार ज्ञान-दर्शन उपयोग अधिकार सम्बन्धी गाथा से प्रारम्भकर पाँच अन्तरस्थलों के समूह द्वारा नौ गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, दश गाथाओं पर्यन्त व्यवहार से जीव और ज्ञान में संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि का भेद होने पर भी निश्चय से प्रदेशों के अस्तित्व द्वारा नैयायिक के प्रति अग्नि-उष्णता के अभेद समान अभेदस्थापन करते हैं। जीव और ज्ञान में संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन का स्वरूप कहते हैं — जीवद्रव्य की ***'जीव'*** यह संज्ञा (नाम) है, ज्ञान गुण की ***'ज्ञान'*** यह संज्ञा है। चार प्राणों से जो जीता है, जिएगा अथवा पहले जीता था, वह जीव है — यह जीव द्रव्य का लक्षण है; जिसके द्वारा पदार्थ ज्ञात होते हैं (वह ज्ञान है) — यह ज्ञान गुण का लक्षण है। बन्ध-मोक्षादि पर्यायों से परिणमित होने पर भी अविनष्टरूप से रहना / नष्ट नहीं होना, जीवद्रव्य का प्रयोजन है तथा ज्ञानगुण का परिच्छित्तिमात्र ही प्रयोजन है। — इस प्रकार संक्षेप से संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन जानना चाहिए।

वहाँ दश गाथाओं में से जीव और ज्ञान में संक्षेप से अभेद-स्थापनहेतु ***ण वियप्पदि...*** इत्यादि तीन गाथाएँ हैं। तत्पश्चात् द्रव्य-गुणों में व्यपदेश आदि भेद होने पर भी कथञ्चित् अभेद भी घटित होता है, इत्यादि समर्थनरूप से ***ववदेसा*** इत्यादि तीन गाथाएँ हैं। तदनन्तर प्रदेशभेद होने पर भी एकक्षेत्रावगाही होने से, नैयायिकमत में अयुतसिद्ध, अभेदसिद्ध, आधार-आधेयभूत पदार्थों के 'इस आत्मा में ज्ञान,' 'इन तन्तुओं में वस्त्र' इत्यादिरूप से 'इहेदं प्रत्यय' (यहाँ यह-

नैयायिकमते, तस्य निषेधार्थं *ण हि सो समवायाहिं...* इत्यादि सूत्रद्वयं, पुनश्च गुणगुणिनोः कथंचिद-भेदविषये दृष्टांतदार्ष्टांतव्याख्यानार्थं *वण्णरस...* इत्यादि सूत्रद्वयमिति।

दृष्टान्तलक्षणमाह — दृष्टावंतो धर्मौ स्वभावाग्निधूमयोरिव साध्यसाधकयोर्वादिप्रतिवादिभ्यां कर्तृभूताभ्यामविवादेन यत्र वस्तुनि स दृष्टांत इति अथवा संक्षेपेण यथेति दृष्टांतलक्षणं तथेति दार्ष्टांत-लक्षणमिति।

एवं पूर्वोक्तगाथानवके स्थलपञ्चकमत्र तु गाथादशके स्थलचतुष्टयं चेति समुदायेन नवभिरंत-रस्थलैरेकोनविंशतिसूत्रैरुपयोगाधिकारपातनिका।

ऐसा ज्ञान करानेवाला) सम्बन्ध समवाय कहा गया है, उसके निषेध के लिए ***ण हि सो समवायाहिं...*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। तदुपरान्त गुण-गुणी के कथञ्चित् अभेद विषय में दृष्टान्त-दार्ष्टान्त के व्याख्यान-हेतु ***वण्णरस...*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं।

दृष्टान्त का लक्षण कहते हैं — कर्तारूप वादी-प्रतिवादिओं द्वारा धूम-अग्नि के समान जिस वस्तु में साध्य-साधक के अन्त / धर्म / स्वभाव देखे जाते हैं, वह दृष्टान्त है; अथवा संक्षेप में यथा / जैसे / जिस प्रकार — यह दृष्टान्त का लक्षण है और तथा / वैसे ही / उसी प्रकार — यह दार्ष्टान्त का लक्षण है।

इस प्रकार पूर्वोक्त नौ गाथाओं में पाँच स्थल और यहाँ दश गाथाओं में चार स्थल — इस प्रकार नौ अन्तरस्थलोंवाली उन्नीस गाथाओं द्वारा समुदायरूप से उपयोगाधिकार की पातनिका है।

द्वितीय अवान्तराधिकारगत उपयोगाधिकारपरक १९ गाथाओं की सारणी

गाथा नवक के स्थल पञ्चक

स्थलक्रम	विषय	कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	दो उपयोग सूचक	४१ वीं	१
२	आठ ज्ञानोपयोगसंज्ञक	४२ वीं	१
३	मत्यादि संज्ञान पञ्चक विवरण	४३-४७ वीं	५
४	अज्ञानत्रय कथन परक	४८ वीं	१
५	चक्षु आदि चार दर्शन प्रतिपादक	४९ वीं	१
गाथा दशक के स्थल चतुष्क			
१	जीव-ज्ञान में अभेद स्थापनार्थ	५०-५२ वीं	३
२	द्रव्य-गुण में कथञ्चित् अभेद के समर्थनार्थ	५३-५५ वीं	३
३	समवाय सम्बन्ध निराकरणार्थ	५६-५७ वीं	२
४	गुण-गुणी अभेद विषय में दृष्टान्त-दार्ष्टान्त व्याख्यान	५८-५९ वीं	२

अथानंतरं वीतरागपरमानंदसुधारसपरमसमरसीभावपरिणतिस्वरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्स-काशाद्भिन्नं यत्कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वत्रयस्वरूपं सदसत्प्रतिपादनार्थं यत्र तत्रानुपूर्व्यष्टादश-गाथापर्यंतं व्याख्यानं करोति। तत्राष्टादशगाथासु मध्ये प्रथमस्थले *जीवा अणाइणिहणा...* इत्यादि गाथात्रयेण समुदायकथनं; तदनंतरं द्वितीयस्थले *उदयेण...* इत्याद्येकगाथायामौदयिकादिपञ्चभाव-व्याख्यानं; अथ तृतीयस्थले *कम्मं वेदयमाणो...* इत्यादिगाथाषट्केन कर्तृत्वमुख्यतया व्याख्यानं; अथ चतुर्थस्थले *कम्मं कम्मं कुव्वदि...* इत्याद्येका पूर्वपक्षगाथा; तदनंतरं पञ्चमस्थले परिहारगाथाः सप्त।

तत्र सप्तगाथासु मध्ये प्रथमं *ओगाढगाढ...* इत्यादि गाथात्रयेण निश्चयनयेन द्रव्यकर्मणां जीवः कर्ता न भवतीति कथ्यते; तदनंतरं निश्चयनयेन जीवस्य द्रव्यकर्तृत्वेऽपि *जीवा पोग्गलकाया...* इत्याद्येकगाथया कर्मफले भोक्तृत्वं; अथ *तम्हा कम्मं कत्ता....* इत्याद्येकसूत्रेण कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरुपसंहारः; तदनंतरं *एवं कत्ता...* इत्यादिगाथाद्वयेन *क्रमेण* कर्मसंयुक्तकर्मरहितत्वं च कथयतीति परिहारमुख्यत्वेन सप्तगाथा गताः।

एवं पाठक्रमेणाष्टादशगाथाभिः स्थलपञ्चकेनैकांतमतनिराकरणाय तथैवानेकांतमतस्थापनाय

इसके बाद वीतराग परमानन्द सुधारसरूप परम समरसी भावमय परिणतिस्वरूप शुद्ध जीवास्तिकाय से भिन्न, उन कर्मों के कर्तृत्व, भोक्तृत्व, कर्मसंयुक्तत्व – तीनों के स्वरूप के सत् -असत् प्रतिपादन-हेतु यत्रतत्रानुपूर्वी से व्याख्यान करते हैं। वहाँ अठारह गाथाओं में से प्रथम स्थल में ***जीवा अणाइणिहणा...*** इत्यादि तीन गाथाओं द्वारा समुदाय कथन है। तदनन्तर द्वितीय स्थल में ***उदयेण...*** इत्यादि एक गाथा में औदयिक आदि पाँच भावों का व्याख्यान है। उसके बाद तृतीय स्थल में ***कम्मं वेदयमाणो...*** इत्यादि छह गाथाओं द्वारा कर्तृत्व की मुख्यता से व्याख्यान है। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में ***कम्मं कम्मं कुव्वदि...*** इत्यादि एक गाथा पूर्वपक्ष रूप में है और तदनन्तर पञ्चम स्थल में सात परिहार गाथाएँ हैं।

उन सात गाथाओं में से प्रथम ***ओगाढगाढ...*** इत्यादि तीन गाथाओं द्वारा निश्चयनय से जीव द्रव्यकर्मों का कर्ता नहीं है – ऐसा कहते हैं। तदुपरान्त निश्चयनय से जीव के द्रव्यकर्मों का अकर्तृत्व होने पर भी ***जीवा पोग्गलकाया...*** इत्यादि एक गाथा द्वारा कर्मफल का भोक्तृत्व बताया है। उसके बाद ***तम्हा कम्मं कत्ता...*** इत्यादि क्रम से दो गाथा द्वारा कर्तृत्व-भोक्तृत्व का उपसंहार किया है। तदनन्तर ***एवं कत्ता...*** इत्यादि क्रम से दो गाथाओं द्वारा कर्मसंयुक्तता और कर्मरहितता कहते हैं। – इस प्रकार परिहार की मुख्यता से सात गाथाएँ पूर्ण हुईं।

इस प्रकार पाठक्रम से अठारह गाथाओं द्वारा पाँच स्थलों से एकान्तमत के निराकरणार्थ और उसी प्रकार अनेकान्तमत के स्थापनार्थ सांख्यमतानुसारी शिष्य के सम्बोधन-हेतु कर्तृत्व,

च सांख्यमतानुसारिशिष्यसम्बोधनार्थं कर्तृत्वं, बौद्धमतानुयायिशिष्यं प्रतिबोधनार्थं भोक्तृत्वं, सदाशिव-मताश्रितशिष्यसंदेहविनाशार्थं कर्मसंयुक्तत्वमिति कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वाधिकारत्रयं ज्ञातव्यम्। इत ऊर्ध्वं जीवास्तिकायसम्बन्धिनवाधिकारव्याख्यानानंतरं *एक्को जेम महप्पा* इत्यादिगाथात्रयेण जीवास्तिकायचूलिका।

बौद्धमतानुयायी शिष्य को समझाने के लिए भोक्तृत्व, सदाशिवमत का आश्रय लेनेवाले शिष्य के सन्देह को नष्ट करने-हेतु कर्मसंयुक्तत्व – इस प्रकार कर्तृत्व, भोक्तृत्व, कर्मसंयुक्तत्व – ये तीन अधिकार जानना चाहिए।

कर्म कर्तृत्व-भोक्तृत्व-संयुक्तत्वपरक तृतीय अवान्तराधिकारगत १८ गाथाओं की सारणी

स्थलक्रम	विषय	गाथा कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	समुदाय कथन	६०-६२ वीं	३
२	औदयिकादि पञ्चभाव व्याख्यान	६३ वीं	१
३	कर्तृत्व मुख्यतया	६४-६९ वीं	६
४	पूर्वपक्ष गाथा	७० वीं	१
५	परिहार गाथा	७१-७७ वीं	७
परिहार गाथा परक गाथाओं का विवरण			
अ	द्रव्यकर्म का जीव अकर्ता	७१-७३ वीं	३
ब	कर्मफल-भोक्ता	७४ वीं	१
स	कर्तृत्व-भोक्तृत्व उपसंहार	७५ वीं	१
द	कर्म संयुक्त-रहितत्व	७६-७७ वीं	२

इससे आगे जीवास्तिकाय सम्बन्धी नौ अधिकारों के व्याख्यान के बाद ***एक्को जेम महप्पा*** इत्यादि तीन गाथाओं द्वारा जीवास्तिकाय की चूलिका है।

[*जिनागम में किसी भी विषय के प्रतिपादन की तीन शैलियाँ प्रसिद्ध हैं – पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यत्रतत्रानुपूर्वी। इन्हें हम इस प्रकार समझ सकते हैं – स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण के कथन क्रम में स्पर्श से विषय का विस्तार करनेवाली शैली को पूर्वानुपूर्वी शैली कहते हैं। वर्ण से प्रारम्भकर विषय का विस्तार करनेवाली शैली को पश्चादानुपूर्वी शैली कहते हैं तथा क्रम की मुख्यता न कर कहीं से भी विषय का विस्तार करनेवाली शैली को यत्रतत्रानुपूर्वी शैली कहते हैं।*]

एवं पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारसम्बन्धिषष्ठांतराधिकारेषु मध्ये त्रिपञ्चाशद्गाथाप्रमितचतुर्थांतराधिकारे समुदायपातनिका।

तद्यथा – अथ संसारावस्थस्याप्यात्मनः शुद्धनिश्चयेन निरुपाधिविशुद्धभावान् तथैवाशुद्धनिश्चयेन सोपाधिभावकर्मरूपरागादिभावान् तथा चासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मोपाधिजनिताशुद्धभावांश्च यथासंभवं प्रतिपादयति –

जीवोत्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता सदेहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुतो॥ २७॥

***जीवोत्ति हवदि* आत्मा हि शुद्धनिश्चयेन सत्ता चैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्जीवति तथा चाशुद्ध-**

इस प्रकार पञ्चास्तिकाय, षट्द्रव्य प्रतिपादक प्रथम महाधिकार सम्बन्धी छह अन्तराधिकारों में से त्रेपन गाथाओंवाले चतुर्थ अन्तराधिकार में समुदाय पातनिका हुई।

५३ गाथावाले चतुर्थ अन्तराधिकार का विभाजन

स्थलक्रम	विषय	गाथा कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	पाँच अधिकारों का समुदाय	२८-४० वीं	१३
२	उपयोग अधिकार	४१-५९ वीं	१९
३	कर्म कर्तृत्व-भोक्तृत्व-संयुक्तत्व	६०-७७ वीं	१८
४	जीवास्तिकाय चूलिका	७८-८० वीं	३

(अब, चार भागों में विभक्त चतुर्थ अन्तराधिकार की त्रेपन गाथाओं में से प्रथम भाग की तेरह गाथाओं का विस्तार करते हैं। उसमें सर्व प्रथम एक अधिकार गाथा है। वह इस प्रकार -)

अब, संसार अवस्थावाले आत्मा के भी शुद्ध निश्चय से निरुपाधि विशुद्धभावों का, उसी प्रकार अशुद्ध निश्चय से सोपाधिभावमय कर्मरूप रागादि भावों का तथा असद्भूत व्यवहार से द्रव्यकर्म उपाधिजनित अशुद्धभावों का यथासम्भव प्रतिपादन करते हैं -

है जीव जीव चिदात्मक, उपयोगलक्षित प्रभू है।
कर्ता व भोक्ता तन प्रमाण, अमूर्त कर्मसंयुक्त है॥ २७॥

गाथार्थ - (संसारस्थित आत्मा) जीव, चेतयिता, उपयोगलक्षित, प्रभु, कर्ता, भोक्ता, देह प्रमाण, अमूर्त और कर्मसंयुक्त है।

निश्चयेन क्षायोपशमिकौदयिकभावप्राणैर्जीवति तथैव चानुपचरितासद्भुतव्यवहारेण द्रव्यप्राणैश्च यथासंभवं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवो भवति। *चेदा* शुद्धनिश्चयेन शुद्धज्ञानचेतनया तथैवाशुद्धनिश्चयेन कर्मकर्मफलरूपया चाशुद्धचेतनया युक्तत्वाच्चेतयिता भवति। *उवओगविसेसिदो* निश्चयेन केवलज्ञानदर्शनरूपशुद्धोपयोगेन तथैव चाशुद्धनिश्चयेन मतिज्ञानादिक्षायोपशमिकाशुद्धोपयोगेन युक्तत्वादुपयोगविशेषितो भवति। *पहू* निश्चयेन मोक्षमोक्षकारणरूपशुद्धपरिणामपरिणमनसमर्थत्वात्तथैव चाशुद्धनयेन संसारसंसारकारणरूपाशुद्धपरिणामपरिणमनसमर्थत्वात् प्रभुर्भवति। *कत्ता* शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धभावानां परिणामानां तथैवाशुद्धनिश्चयेन भावकर्मरूपरागादिभावानां तथा चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मनोकर्मादीनां कर्तृत्वात्कर्ता भवति। *भोत्ता* शुद्धनिश्चयेन शुद्धात्मोत्थवीतरागपरमानंदरूपसुखस्य तथैवाशुद्धनिश्चयेनेन्द्रियजनितसुखदुःखानां तथा चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण सुखदुःखसाधकेष्टानिष्टाशनपानादिबहिरङ्गविषयाणां च भोक्तृत्वात् भोक्ता भवति। *सदेहमेत्तो* निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशप्रमितोऽपि व्यवहारेण शरीरनामकर्मोदयजनिताणुमहच्छरीरप्रमाणत्वात्स्वदेहमात्रो भवति। *ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो* मूर्तिरहितः असद्भूतव्यवहारेणानादि-

टीकार्थ - ***जीवोत्ति हवदि*** आत्मा शुद्ध निश्चय से सत्ता, चैतन्य, बोधादि शुद्ध प्राणों से जीता है तथा अशुद्ध निश्चय से क्षायोपशमिक, औदयिकभाव प्राणों से जीता है; उसी प्रकार अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से यथासम्भव द्रव्य प्राणों से जीता है, जिएगा और पहले जीता था, वह जीव है। ***चेदा*** शुद्ध निश्चय से शुद्ध ज्ञानचेतना से, उसी प्रकार अशुद्धनिश्चय से कर्म, कर्म फलरूप अशुद्धचेतना से युक्त होने के कारण उपयोग विशेषित है। ***पहू*** निश्चय से मोक्ष, मोक्ष के कारणरूप शुद्धपरिणाम से परिणमन की सामर्थ्य होने से और उसी प्रकार अशुद्धनय से संसार, संसार के कारणरूप अशुद्धपरिणाम से परिणमन की सामर्थ्य होने से प्रभु है। ***कत्ता*** शुद्ध निश्चयनय से शुद्धभावरूप परिणामों का और उसी प्रकार अशुद्ध निश्चय से भावकर्मरूप रागादि भावों का तथा अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से द्रव्यकर्म, नोकर्म आदि का कर्तृत्व होने से कर्ता है। ***भोक्ता*** शुद्ध निश्चय से शुद्धात्मा के आश्रय से उत्पन्न वीतराग परमानन्दरूप सुख का, उसी प्रकार अशुद्ध निश्चय से इन्द्रियजनित सुख-दुःखों का, वैसे ही अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से सुख-दुःख के साधक इष्ट-अनिष्ट भोजन-पान आदि बहिरङ्ग विषयों का भोक्तृत्व होने से भोक्ता है। ***सदेहमेत्तो*** निश्चय से लोकाकाशप्रमाण असंख्येय प्रदेश प्रमित होने पर भी व्यवहार की अपेक्षा शरीर नामकर्मोदय से उत्पन्न छोटे-बड़े शरीर प्रमाण होने से स्वदेहमात्र है। ***ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो*** मूर्तिरहित है और असद्भूत व्यवहार से अनादि कर्मबन्धसहित होने के कारण कर्मसंयुक्त है।

कर्मबंधसहितत्वात्कर्मसंयुक्तश्च भवति। इति शब्दार्थनयार्थौ कथितौ। इदानीं मतार्थः कथ्यते; जीवत्वव्याख्याने —

''वच्छक्खरं भवसारित्थसग्गणिरयपियराय।
चुल्लियहंडयिपुणमयउ णव दिट्ठंता जाय॥''

इति दोहकसूत्रकथितनवदृष्टांतैश्चार्वाकमतानुसारिशिष्यापेक्षया जीवसिद्ध्यर्थं अनादिचेतना-गुणव्याख्यानं च तदर्थमेव अथवा सामान्यचेतनाव्याख्यानं सर्वमतसाधारणं ज्ञातव्यं, अभिन्नज्ञानदर्शनो-पयोगव्याख्यानं तु नैयायिकमतानुसारिशिष्यप्रतिबोधनार्थं मोक्षोपदेशकमोक्षसाधकप्रभुत्वव्याख्यानं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं वचनं प्रमाणं भवतीति —

''रयणदीवदिणयरुदहिउ दुद्धुघीवपासाणु।
सुण्णुरुप्पफलिहउ अगणि णव दिट्ठंता जाणु॥''

इति दोहकसूत्रकथितनवदृष्टांतैर्भट्टचार्वाकमताश्रितशिष्यापेक्षया सर्वज्ञसिद्ध्यर्थं, शुद्धाशुद्ध-परिणामकर्तृत्वव्याख्यानं तु नित्याकर्तृत्वैकांतसांख्यमतानुयायिशिष्यसंबोधनार्थं भोक्तृत्वव्याख्यानं कर्ता

इस प्रकार शब्दार्थ, नयार्थ कहे। अब, मतार्थ कहते हैं। जीवत्व के व्याख्यान में —

'वत्स (पुत्र), अक्षर, भव (जन्म), (संज्ञाओं आदि का) सादृश्य, स्वर्ग, नरक, पितर, चूल्हे पर चढ़ाई गई हाँडी और मृतक — इन नौ दृष्टान्तों से (जीव को) जानो।'

इस प्रकार दोहक सूत्र में कहे गए नौ दृष्टान्तों द्वारा चार्वाकमतानुसारी शिष्य की अपेक्षा जीव की सिद्धि के लिए (जीव का) और उसके लिए ही अनादि चेतनागुण का व्याख्यान किया है; अथवा सामान्य चेतना का व्याख्यान सभी मतों के प्रति साधारण जानना चाहिए और अभिन्न ज्ञान-दर्शन उपयोग का व्याख्यान नैयायिकमतानुसारी शिष्य को समझाने के लिए किया है।

मोक्ष के उपदेशक और मोक्ष के साधक प्रभुत्व का व्याख्यान वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत वचन प्रमाण है; इस प्रकार – 'रत्न, दीप, सूर्य, चन्द्रमा, घी, सुवर्ण, चाँदी, स्फटिकमणि, अग्नि — नौ दृष्टान्तों से जानो।'॥ योगसार, दोहा ५७॥

इस दोहक सूत्र में कहे नौ दृष्टान्तों द्वारा (प्रभुत्व का कथन) भट्ट-चार्वाकमताश्रित शिष्य की अपेक्षा सर्वज्ञ-सिद्धि के लिए किया है।

शुद्धाशुद्ध परिणामों के कर्तृत्व का व्याख्यान एकान्त से नित्य अकर्तृत्व माननेवाले सांख्यमतानुयायी शिष्य के सम्बोधन-हेतु है। भोक्तृत्व-व्याख्यान, 'कर्ता कर्मफल को नहीं भोगता

कर्मफलं न भुंक्त इति बौद्धमतानुसारिशिष्यप्रतिबोधनार्थं स्वदेहप्रमाणं व्याख्यानं नैयायिकमीमांसक-कपिलमतानुसारिशिष्यसंदेहविनाशार्थं अमूर्तत्वव्याख्यानं भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं द्रव्यभावकर्मसंयुक्तत्वव्याख्यानं च सदामुक्तनिराकरणार्थमिति मतार्थो ज्ञातव्यः।

आगमार्थव्याख्यानं पुनर्जीवत्वचेतनादिधर्माणां सम्बन्धित्वेन परमागमे प्रसिद्धमेव। कर्मोपाधि-जनितमिथ्यात्वरागादिरूपसमस्तविभावपरिणामांस्त्यक्त्वा निरुपाधिकेवलज्ञानादिगुणयुक्तशुद्ध-जीवास्तिकाय एव निश्चयनयोपादेयत्वेन भावयितव्य इति भावार्थः। एवं शब्दनयमतागमभावार्था व्याख्यानकाले यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्याः।

जीवास्तिकायसमुदायपातनिकायां पूर्वं चार्वाकादिमतव्याख्यानं कृतं पुनरपि किमर्थमिति शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति परिहारमाहुः – तत्र वीतरागसर्वज्ञसिद्धे सति व्याख्यानं प्रमाणं प्राप्नोतीति व्याख्यानक्रमज्ञापनार्थं प्रभुताधिकारमुख्यत्वेनाधिकारनवकं सूचितम्। तथा चोक्तं – वक्तृप्रामाण्याद्व-चनप्रामाण्यमिति। अत्र तु सति धर्मिणि धर्माश्चिन्त्यन्त इति वचनाच्चेतनागुणादिविशेषणरूपाणां

है' – ऐसी मान्यतावाले बौद्धमतानुसारी शिष्य के प्रति सम्बोधन-हेतु है। स्वदेह प्रमाण का व्याख्यान नैयायिक, मीमांसक, कपिल मतानुसारी शिष्य के सन्देह को नष्ट करने-हेतु है। अमूर्तत्व का व्याख्यान भट्ट-चार्वाकमतानुसारी शिष्य के सम्बोधनार्थ है; तथा द्रव्य-भाव कर्म-संयुक्तत्व का व्याख्यान सदामुक्त के निराकरणार्थ है। – इस प्रकार मतार्थ जानना चाहिए।

चेतना आदि धर्मों का जीवत्व से सम्बन्ध होने के कारण आगमार्थ का व्याख्यान तो परमागम में प्रसिद्ध ही है।

कर्मोपाधिजनित मिथ्यात्व-रागादिरूप समस्त विभावपरिणामों को छोड़कर निरुपाधि केवलज्ञानादि गुणयुक्त शुद्ध जीवास्तिकाय ही निश्चयनय की अपेक्षा उपादेयरूप से भावनीय है – ऐसा भावार्थ है।

इस प्रकार व्याख्यान के समय यथासम्भव सर्वत्र शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, भावार्थ जानना चाहिए।

पहले २६ वीं गाथा द्वारा जीवास्तिकाय की समुदाय पातनिका में चार्वाक आदि मतों का व्याख्यान किया था; यहाँ पुनः किसलिए किया है ? शिष्य द्वारा ऐसा पूर्वपक्ष (प्रश्न) किए जाने पर परिहार कहते / करते हैं – वहाँ तो वीतराग-सर्वज्ञरूप से सिद्ध होने पर (वीतराग-सर्वज्ञ हो जाने पर ही) व्याख्यान प्रमाणता को प्राप्त होता है – इस प्रकार व्याख्यान का क्रम बताने के लिए, प्रभुता अधिकार की मुख्यता से नौ अधिकार सूचित किए थे। वैसा ही कहा भी है – 'वक्ता की प्रमाणता से वचन की प्रमाणता होती है।' और यहाँ 'धर्मी होने पर ही धर्मों का विचार

धर्माणामाधारभूते विशेष्यलक्षणे जीवे धर्मिणि सिद्धे सति तेषां चेतनागुणादिविशेषणरूपाणां धर्माणां व्याख्यानं घटत इति ज्ञापनार्थं जीवसिद्धिपूर्वकत्वेन मतांतरनिराकरणसहितमधिकारनवकमुपदिष्टमिति नास्ति दोषः॥ २७॥

एवमधिकारगाथा गता।

अथ मोक्षसाधकत्वप्रभुत्वगुणद्वारेण सर्वज्ञसिद्ध्यर्थं मुक्तावस्थस्यात्मनः केवलज्ञानादिरूपं निरुपाधिस्वरूपं दर्शयति –

कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता।
सो सव्वणाणदरिसी लहइ सुहमणिंदियमणंतं॥ २८॥

कम्ममलविप्पमुक्को **द्रव्यकर्मभावकर्मविप्रमुक्तः सन्** ***उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता*** **ऊर्ध्वगतिस्वभावत्वाल्लोकस्यांतमधिगम्य प्राप्य परतो धर्मास्तिकायाभावात्तत्रैव लोकाग्रे स्थितः सन्** ***सो सव्वणाणदरिसी*** **सर्वविषये ज्ञानदर्शने सर्वज्ञानदर्शने ते विद्येते यस्य स भवति सर्वज्ञानदर्शी। एवंभूतः**

किया जाता है।' – ऐसा वचन होने से चेतनगुणादि विशेषणरूप धर्मों के आधारभूत विशेष्य लक्षणमय जीवरूप धर्मी के सिद्ध होने पर, उनके चेतनगुण आदि विशेषणरूप धर्मों का व्याख्यान घटित होता है – ऐसा बताने के लिए जीव-सिद्धि के माध्यम से मतान्तरों के निराकरणसहित नौ अधिकारों का उपदेश दिया गया है – इस प्रकार दोष नहीं है॥ २७॥

इस प्रकार अधिकार गाथा पूर्ण हुई।

अब, मोक्ष-साधकत्व सम्बन्धी प्रभुतागुण के माध्यम से सर्वज्ञ की सिद्धि के लिए, मुक्त अवस्था को प्राप्त आत्मा के केवलज्ञानादिरूप निरुपाधिस्वरूप को दिखाते हैं –

वे कर्ममल से मुक्त, ऊरध लोक के पा अन्त को।
सर्वज्ञदर्शी भोगते सुख, अतीन्द्रिय अनवधि जो॥ २८॥

गाथार्थ - कर्ममल से विप्रमुक्त, ऊर्ध्वलोक के अन्त को प्राप्त वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी आत्मा अनन्त अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करते हैं।

टीकार्थ - ***कम्ममलविप्पमुक्को*** द्रव्यकर्म, भावकर्म से विप्रमुक्त होते हुए। ***उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता*** ऊर्ध्वगति स्वभाव होने से लोक के अन्त को प्राप्तकर, आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से वहाँ लोकाग्र में ही स्थित रहते हुए ***सो सव्वणाणदरसी*** सभी विषय सम्बन्धी ज्ञान-दर्शन, वह सब ज्ञान-दर्शन; वे दोनों जिनके विद्यमान हैं, वे सर्वज्ञानदर्शी हैं। ऐसे होते हुए वे क्या करते हैं? ***लहदि सुहमणिंदियमणंतं*** प्राप्त करते हैं / अनुभव करते हैं।

सन् किं करोति? *लहइ सुहमणिंदियमणंतं* लभते। किं? सुखम्। कथंभूतं? अतीन्द्रियम्। पुनरपि कथंभूतं? अनंतमिति।

किंच पूर्वसूत्रोदितजीवतत्त्वादिनवाधिकारेषु मध्ये कर्मसंयुक्तत्वं विहाय शुद्धजीवत्वशुद्ध-चेतनाशुद्धोपयोगादयोऽष्टाधिकारा यथासंभवमागमाविरोधेनात्र मुक्तावस्थायामपि योजनीया इति सूत्राभिप्रायः॥ २८॥

अथ यदेव पूर्वोक्तं निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखस्वरूपं तस्यैव *जादो सयं* इतिवचनेन पुनरपि समर्थनं करोति —

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य।
पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सगममुत्तं॥ २९॥

***जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य* आत्मा हि निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसुख-**

किसका अनुभव करते हैं? सुख का अनुभव करते हैं। वह सुख कैसा है? अतीन्द्रिय है। और भी वह कैसा है? अनन्त है।

विशेष यह है कि पहले गाथा (२७ वीं में) कहे गए जीवतत्त्व आदि नौ अधिकारों में से कर्मसंयुक्तता को छोड़कर शुद्ध जीवत्व, शुद्धचेतना, शुद्धोपयोग आदि आठ अधिकारों को, आगम के अविरोधपूर्वक यथासम्भव मुक्तावस्था में भी लगा लेना चाहिए। — यह सूत्र का अभिप्राय है॥ २८॥

[*आचार्य अमृतचन्द्र ने इस गाथा-टीका में उपर्युक्त आठों अधिकारों को भी घटितकर विश्लेषित किया है तथा सर्वज्ञत्व और सर्वदर्शित्व की प्रगटता के हेतुओं का प्रतिपादनकर, भोक्तृत्व का स्पष्टीकरण अस्ति-नास्ति शैली से किया है, जो मूलतया पठनीय है।*]

अब, जो पूर्वोक्त निरुपाधि ज्ञान-दर्शन-सुख स्वरूप है, उसका ही ***जादोसयं*** इस प्रकार के वचन द्वारा पुनः समर्थन करते हैं —

वह आत्मा सर्वज्ञ सबदर्शी, स्वयं होता हुआ।
पाता अतीन्द्रिय मूर्त बिन, व्याबाध बिन सुख स्वयं का॥ २९॥

गाथार्थ - वह चेतयिता, स्वयं सर्वज्ञ और सर्वलोकदर्शी होता हुआ, अपने अतीन्द्रिय, अव्याबाध, अमूर्त सुख को प्राप्त करता है।

टीकार्थ - ***जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोयदरसी य*** वास्तव में तो आत्मा

स्वभावस्तावत् इत्थंभूतोऽपि संसारावस्थायां कर्मावृतः सन् क्रमकरणव्यवधानजनितेन क्षायोपशमिक-ज्ञानेन किमपि किमपि जानाति तथाभूतदर्शनेन किमपि किमपि पश्यति तथा चेन्द्रियजनितं बाधासहितं पराधीनं मूर्तसुखं चानुभवति स एव चेतयितात्मा निश्चयनयेन स्वयमेव कालादिलब्धिवशात्सर्वज्ञो जातः सर्वदर्शी च जातः। एवं जातः सन् किं करोति ? *पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सगममुत्तं* प्राप्नोति लभते। किं ? सुखमित्यध्याहारः। कथंभूतं सुखं ? इन्द्रियरहितम्। पुनरपि कथंभूतं ? बाधारहितम्। पुनरपि किं विशिष्टं ? स्वकमात्मोत्थम्। पुनश्च किंरूपं ? मूर्तेन्द्रियनिरपेक्षत्वादमूर्तं च। अत्र स्वयं जातमिति वचनेन पूर्वोक्तमेव निरुपाधित्वं समर्थितम्। तथा च स्वयमेव सर्वज्ञो जातः सर्वदर्शी च जातो निश्चयनयेनेति पूर्वोक्तमेव सर्वज्ञत्वं सर्वदर्शित्वं च समर्थितमिति।

अथ भट्टचार्वाकमतानुसारी कश्चिदाह – नास्ति सर्वज्ञोऽनुपलब्धेः खरविषाणवत्। तत्र प्रत्युत्तरं दीयते – कुत्र सर्वज्ञो नास्त्यत्र देशे तथा चात्रकाले किं जगत्त्रये कालत्रये वा ? यद्यत्र देशे काले नास्तीति भण्यते, तदा सम्मतमेव। अथ जगत्त्रये कालत्रयेऽपि नास्ति तत्कथं ज्ञातं भवता ? जगत्त्रय

निश्चयनय से केवलज्ञान-दर्शन-सुख स्वभावमय है। ऐसा होने पर भी संसार अवस्था में कर्म से आवृत (घिरा) हुआ, क्रम-करण-व्यवधान से उत्पन्न क्षायोपशमिकज्ञान द्वारा कुछ-कुछ जानता है; उस प्रकार के दर्शन से कुछ-कुछ देखता है / सामान्य अवलोकन करता है तथा इन्द्रियजनित, बाधासहित, पराधीन, मूर्त सुख का अनुभव करता है। वही चेतयिता आत्मा निश्चयनय से स्वयं ही कालादि लब्धि के वश से सर्वज्ञ होता है, सर्वदर्शी होता है। ऐसा होता हुआ वह क्या करता है ? ***पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सगममुत्तं*** प्राप्त करता है। क्या प्राप्त करता है ? सुख प्राप्त करता है। यहाँ सुख शब्द अध्याहार है (पूर्व गाथा से लिया गया है)। वह सुख कैसा है ? इन्द्रियरहित है। वह और किस विशेषतावाला है ? स्वयं / आत्मा से उत्पन्न है। और किसरूप है ? मूर्त इन्द्रियों से निरपेक्ष होने के कारण अमूर्त है। यहाँ 'स्वयं से उत्पन्न है' – इस वचन द्वारा पूर्वोक्त निरुपाधित्व का ही समर्थन किया है। उसी प्रकार निश्चयनय से स्वयं ही सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हुए – इससे भी पूर्वोक्त सर्वज्ञत्व और सर्वदर्शित्व का ही समर्थन किया गया है।

यहाँ कोई भट्ट-चार्वाकमतानुसारी कहता है - गधे के सींग के समान, उपलब्ध न होने के कारण सर्वज्ञ नहीं हैं ?

उसके प्रति उत्तर देते हैं – सर्वज्ञ कहाँ नहीं हैं ? इस देश और इस काल में नहीं हैं कि तीन लोक और तीन काल में नहीं हैं ? यदि इस देश-काल में नहीं हैं – ऐसा कहते हो तो हमें स्वीकृत ही है; और यदि तीन लोक, तीन काल में नहीं हैं – (ऐसा कहते हो तो) आपने वह कैसे जाना ? यदि आपने तीन लोक और तीन काल को सर्वज्ञरहित जान लिया तो आप ही सर्वज्ञ

कालत्रयं सर्वज्ञरहितं ज्ञातं चेद्भवता तर्हि भवानेव सर्वज्ञः। कुत इति चेत्? योऽसौ जगत्त्रयं कालत्रयं च जानाति स एव सर्वज्ञः यदि पुनः सर्वज्ञरहितं जगत्त्रयं कालत्रयं न ज्ञातं भवता तर्हि जगत्त्रये कालत्रयेऽपि सर्वज्ञो नास्तीति कथं निषेधः क्रियते त्वया? अथ मतं किमत्रोदाहरणं – यथा कश्चिद्देवदत्तो घटरहितभूतलं चक्षुषा दृष्ट्वा पश्चाद्ब्रूते अत्र भूतले घटो नास्तीति युक्तमेव, अन्यःकोऽप्यंधः किमेवं ब्रूते अत्र भूतले घटो नास्त्यपितु नैवं; तथा योऽसौ जगत्त्रयं कालत्रयं सर्वज्ञरहितं प्रत्यक्षेण जानाति, स एव सर्वज्ञनिषेधे समर्थो न चान्योऽन्ध इव यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं जानाति स सर्वज्ञनिषेधं कथमपि न करोति। कस्मात्? जगत्त्रयकालत्रयविषयपरिज्ञानसहितत्वेन स्वयमेव सर्वज्ञत्वादिति।

किंचानुपलब्धेरिति हेतुवचनं तदयुक्तम्। कथमिति चेत्? किं भवतां सर्वज्ञानुपलब्धिरुत जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणां वा, यदि भवतामनुपलब्धिरेतावता सर्वज्ञाभावो न भवति। कथमिति चेत्? परमाण्वादिसूक्ष्मपदार्थाः परचितोवृत्तयश्च भवद्भिर्यदि न ज्ञायते तर्हि किं न सन्ति? अथ जगत्त्रय-

हैं। ऐसा जानने से हम सर्वज्ञ कैसे हो गए? यदि आपका ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं – जो तीन लोक, तीन काल को जानता है, वह ही सर्वज्ञ है; (अतः आप ही सर्वज्ञ हो गए) और यदि सर्वज्ञ से रहित तीन लोक, तीन काल आपके द्वारा ज्ञात नहीं हुआ है, तब फिर तीन लोक, तीन काल में भी सर्वज्ञ नहीं हैं – ऐसा निषेध आप कैसे करते हैं?

इसके लिए यहाँ उदाहरण क्या है? (कहते हैं) – जैसे कोई देवदत्त घटरहित भूतल / जमीन को आँखों से देखकर, बाद में कहता है कि भूतल पर घट नहीं है – ऐसा उचित ही है। कोई दूसरा अन्धा यदि इसी प्रकार कुछ बोले कि इस भूतल पर घट नहीं है, तो यह तो उचित नहीं है; उसी प्रकार जो तीन लोक, तीन काल को सर्वज्ञ से रहित प्रत्यक्ष जानता है, वह ही सर्वज्ञ का निषेध करने में समर्थ है; अन्धे के समान कोई दूसरा नहीं है। जो तीन लोक, तीन काल को जानता है, वह सर्वज्ञ का निषेध किसी भी रूप में नहीं करता। वह निषेध क्यों नहीं करता है? तीन लोक, तीन काल के परिज्ञान से सहित हो जाने के कारण स्वयं ही सर्वज्ञ हो जाने से, वह उसका निषेध नहीं करता है।

दूसरी बात यह है कि 'अनुपलब्ध होने से' यह (जो) हेतु का वचन है, वह भी अयुक्त / अनुचित है। वह अनुचित कैसे है? क्या आपको सर्वज्ञ की अनुपलब्धि है अथवा तीन लोक, तीन कालवर्ती पुरुषों को अनुपलब्धि है? यदि आपको अनुपलब्धि है, तो इतने मात्र से सर्वज्ञ का अभाव नहीं हो जाता। इतने मात्र से कैसे नहीं हो जाता? परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थ और दूसरे की मनोगत वृत्तियों को यदि आप नहीं जानते हैं, तो क्या वे नहीं हैं?

यदि तीन लोक, तीन कालवर्ती पुरुषों को सर्वज्ञ की अनुपलब्धि होने से वे नहीं हैं –

कालत्रयवर्तिपुरुषाणां सर्वज्ञानुपलब्धेस्तत्कथं ज्ञातं भवद्भिरिति पूर्वमेवं विचारितं तिष्ठति इति हेतुदूषणम्। यदप्युक्तं खरविषाणवदिति दृष्टांतवचनम्। तदप्ययुक्तम्। कथमिति चेत्? खरे विषाणं नास्ति, न सर्वत्र, गवादौ प्रत्यक्षेण दृश्यते; तथा सर्वज्ञेऽपि विवक्षितदेशकाले नास्ति न च सर्वत्र इति संक्षेपेण हेतुदूषणं दृष्टांतदूषणं च ज्ञातव्यम्।

अथ मतं सर्वज्ञाभावे दूषणं दत्तं भवद्भिस्तर्हि सर्वज्ञसद्भावे किं प्रमाणं? तत्र प्रमाणं कथ्यते- अस्ति सर्वज्ञः पूर्वोक्तप्रकारेण बाधकप्रमाणाभावात् स्वसंवेद्यसुखदुःखादिवदिति अथवा द्वितीयमनुमान-प्रमाणं कथ्यते। तद्यथा – सूक्ष्माव्यवहितदेशांतरितकालांतरितस्वभावांतरितार्था धर्मिणः कस्यापि पुरुष-विशेषस्य प्रत्यक्षा भवंतीति साध्यो धर्मः। कस्माद्धेतोः? अनुमानविषयत्वात्। यद्यदनुमानविषयं तत्तत्कस्यापि प्रत्यक्षं दृष्टं यथाग्न्यादि, अनुमानविषयाश्चैते तस्मात्कस्यापि प्रत्यक्षा भवंतीति संक्षेपेण सर्वज्ञसद्भावे प्रमाणं ज्ञातव्यम्। विस्तरेणासिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिंचित्करहेतुदूषणसमर्थनमन्यत्र सर्वज्ञसिद्धौ भणितमास्ते; अत्र पुनरध्यात्मग्रंथत्वान्नोच्यते।

ऐसा कहते हैं तो वह आपको कैसे ज्ञात हुआ? इस पर विचार पहले ही कर लिया गया है। - इस प्रकार अनुपलब्धिरूप हेतु दूषित है तथा जो आपने 'खरविषाण के समान' - ऐसा दृष्टान्त वचन कहा, वह भी उचित नहीं है। वह उचित कैसे नहीं है?

उत्तर - खर (गधा) के सिर पर विषाण (सींग) नहीं हैं; परन्तु सर्वत्र विषाण नहीं हैं - ऐसा तो नहीं है। गाय आदि के सिर पर प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं; उसी प्रकार सर्वज्ञ भी विवक्षित देश -काल में नहीं हैं; परन्तु सर्वत्र नहीं हैं, ऐसा तो नहीं है - इस प्रकार संक्षेप से हेतुदूषण और दृष्टान्तदूषण जानना चाहिए।

अब, यदि आपका यह कहना हो कि सर्वज्ञ के अभाव में तो आपने दूषण दे दिए, तब फिर सर्वज्ञ के सद्भाव में प्रमाण क्या है? वहाँ प्रमाण कहते हैं - अपने अनुभवगम्य सुख-दु:खादि के समान पूर्वोक्त प्रकार से बाधक प्रमाण का अभाव होने के कारण सर्वज्ञ हैं अथवा दूसरा अनुमान प्रमाण कहते हैं; वह इस प्रकार - सूक्ष्म, अव्यवहित, देशान्तरित, कालान्तरित, स्वभावान्तरित पदार्थ किसी पुरुष विशेषरूप धर्मी के प्रत्यक्ष हैं। यहाँ 'प्रत्यक्ष हैं' - यह साध्य या धर्म है। ये किस कारण प्रत्यक्ष हैं? अनुमान के विषय होने से ये प्रत्यक्ष हैं। जो-जो अनुमान का विषय होता है, वह-वह किसी को प्रत्यक्ष भी दिखाई देता है। जैसे अग्नि आदि अनुमान के विषय हैं, इस कारण ये किसी के प्रत्यक्ष भी होते हैं। - इस प्रकार संक्षेप से सर्वज्ञ के सद्भाव में प्रमाण जानना चाहिए। विस्तार से असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक, अकिञ्चित्कर हेत्वाभासों का निषेध और सही हेतु के समर्थन से अन्यत्र (प्रमेय-कमल-मार्तण्ड आदि ग्रन्थों में) सर्वज्ञ-सिद्धि के प्रकरण में कहा ही है; यहाँ यह अध्यात्म ग्रन्थ होने से उसे नहीं कहा है।

इदमेव वीतरागसर्वज्ञस्वरूपं समस्तरागादिविभावत्यागेन निरंतरमुपादेयत्वेन भावनीयमिति भावार्थः ॥ २९ ॥

एवं प्रभुत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्।

अथ जीवत्वगुणव्याख्यानं क्रियते -

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ॥ ३० ॥

***पाणेहिं* इत्यादि पदखण्डनरूपेण व्याख्यानं क्रियते – *पाणेहिं चदुहिं जीवदि* यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धचैतन्यादिप्राणैर्जीवति तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यरूपैस्तथाशुद्ध-निश्चयनयेन भावरूपैश्चतुर्भिः प्राणैः संसारावस्थायां वर्तमानकाले जीवति *जीविस्सदि* भाविकाले जीविष्यति *जो हु* यो हि स्फुटं *जीविदो पुव्वं* जीवितः पूर्वकाले *सो जीवो* सः कालत्रयेऽपि प्राणचतुष्टय-सहितो जीवो भवति। *पाणा पुण बलमिंदियमाउउस्सासो* ते पूर्वोक्तद्रव्यभावप्राणाः पुनरभेदेन बलेन्द्रिया-युरुच्छ्वासलक्षणा इति।**

यह ही वीतराग-सर्वज्ञस्वरूप समस्त रागादि विभावों के त्यागपूर्वक निरन्तर उपादेयरूप से भावनीय है - ऐसा भावार्थ है ॥ २९ ॥

इस प्रकार प्रभुत्व व्याख्यान की मुख्यता से दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, जीवत्वगुण का व्याख्यान करते हैं -

जो चार प्राणों से जिया था, जी रहा है जिएगा।
वह जीव है, बल प्राण इन्द्रिय, आयु श्वास कहे तथा ॥ ३० ॥

गाथार्थ - जो चार प्राणों से जीता है, जिएगा और पहले जीता था, वह जीव है तथा प्राण बल, इन्द्रिय, आयु और श्वासोच्छ्वास हैं।

टीकार्थ - ***पाणेहिं*** इत्यादि पद-खण्डनारूप से व्याख्यान करते हैं – ***पाणेहिं चदुहिं जीवदि*** यद्यपि शुद्ध निश्चय से शुद्ध चैतन्य आदि प्राणों से जीता है; तथापि अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से द्रव्यरूप तथा अशुद्ध निश्चयनय से भावरूप चार प्राणों द्वारा संसार अवस्था में वर्तमान काल में जीता है; ***जीविस्सदि*** भविष्यकाल में जिएगा। ***जो हु*** जो स्पष्टरूप से ***जीविदो पुव्वं*** पूर्वकाल में जीता था, ***सो जीवो*** वह तीनों काल में भी चार प्राण से सहित जीव है। ***पाणा पुण बलमिंदियमाउउस्सासो*** वे पूर्वोक्त द्रव्य-भावप्राण भी अभेद से बल, इन्द्रिय, आयु और उच्छ्वास लक्षणरूप हैं।

अत्र सूत्रे मनोवाक्कायनिरोधेन पञ्चेन्द्रियविषयव्यावर्तनबलेन च शुद्धचैतन्यादिशुद्धप्राणसहितः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेयरूपेण ध्यातव्य इति भावार्थः॥ ३०॥

अथागुरुलघुत्वमसंख्यातप्रदेशत्वं व्यापकत्वाव्यापकत्वं मुक्तामुक्तत्वं च प्रतिपादयति —

अगुरुगलहुगाणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे।
देसेहिं असंखादा सियलोगं सव्वमावण्णा॥ ३१॥

केचिच्च अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोगजुदा।
विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा॥ ३२॥ जुम्मम्

अगुरुगलहुगाणंता प्रत्येक षट्स्थानपतितहानिवृद्धिभिरनंताविभागपरिच्छेदैः सहिता अगुरु-लघवो गुणा अनंता भवन्ति। *तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे* तैः पूर्वोक्तगुणैरनंतैः परिणताः सर्वे। सर्वे के ? जीवा इति सम्बन्धः। *देसेहिं असंखादा* लोकाकाशप्रमिताखण्डप्रदेशैः सहितत्वादसंख्येयप्रदेशाः

इस सूत्र में मन, वचन, काय के निरोधपूर्वक पञ्चेन्द्रिय-विषयों से व्यावर्तन के बल द्वारा शुद्ध चैतन्यादि शुद्धप्राणसहित शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेयरूप से ध्यान करने-योग्य है — यह भावार्थ है॥ ३०॥

अब, अगुरुलघुत्व, असंख्यात-प्रदेशत्व, व्यापकत्व, अव्यापकत्व, मुक्तत्व और अमुक्तत्व का प्रतिपादन करते हैं —

अनंत हैं अगुरुलघु, उनसे सभी हैं परिणमित।
असंख्य हैं प्रदेश से, कुछ लोक व्यापी कथंचित्॥ ३१॥

अव्यापि हैं कुछ, सहित मिथ्यादर्श योग कषाय से।
संसारि हैं वे, सिद्ध आतम रहित जो इन सभी से॥ ३२॥

गाथार्थ - अगुरुलघुक अनन्त हैं, उन अनन्तों द्वारा सभी परिणमित हैं, वे प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यात हैं। उनमें से कुछ तो कथञ्चित् सम्पूर्ण लोक को प्राप्त हैं और कुछ अप्राप्त हैं। अनेक जीव मिथ्यादर्शन, कषाय से सहित संसारी हैं तथा अनेक उनसे रहित सिद्ध हैं।

टीकार्थ - ***अगुरुगलहुगाणंता*** प्रत्येक षट्स्थानपतित हानि-वृद्धिरूप अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदों से सहित अगुरुलघु गुण अनन्त हैं। ***तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे*** उन पूर्वोक्त अनन्त गुणों द्वारा सभी परिणमित हैं। सभी कौन हैं ? सभी से — वे सभी जीव इस प्रकार सम्बन्ध है। ***देसेहिं असंखादा*** लोकाकाशप्रमाण अखण्ड प्रदेशों से सहित होने के कारण वे असंख्येय

_सिय लोगं सव्वमावण्णा_ स्यात्कथंचिल्लोकपूरणावस्थाप्रकारेण लोकव्यापकाः अथवा सूक्ष्मैकेन्द्रियापेक्षया लोकव्यापकाः। तथाचोक्तं —

_''आधारे थूलाओ सुहुमेहिं णिरंतरो लोगो।''_

पुनरपि कथंभूतास्ते जीवाः ? _केचिच्च अणावण्णा_ केचिच्च केचन पुनर्लोकपूरणावस्थारहिता अथवा बादरैकेन्द्रिया विकलेन्द्रियादयश्चाव्यापकाः। पुनरपि किंविशिष्टाः ? _मिच्छादंसणकसायजोगजुदा_ रागादिरहितपरमानंदैकस्वभावशुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणैर्मिथ्यादर्शनकषाययोगैर्यथासंभवं युक्ताः। न केवलं युक्ताः _विजुदा य तेहिं_ तैरेव मिथ्यादर्शनकषाययोगैर्वियुक्ता रहिताश्च। उभयेऽपि कति संख्योपेताः ? _बहुगा_ बहवोऽनंता। पुनरपि कथंभूताः ? _सिद्धा संसारिणो_ ये मिथ्यादर्शनकषाययोगविमुक्ता रहितास्ते सिद्धा ये च युक्तास्ते संसारिण इति।

अत्र जीविताशारूपरागादिविकल्पत्यागेन सिद्धजीवसदृशः परमाह्लादरूपसुखरसास्वादपरिणतनिजशुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेयमिति भावार्थः॥ ३१-३२॥

एवं पूर्वोक्त _वच्छरक्ख_ इत्यादि दृष्टांतनवकेन चार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं जीवसिद्धि-

---

प्रदेशयुक्त हैं। ***सियलोगं सव्वमावण्णा*** स्यात् / कथञ्चित् लोकपूरण अवस्था की अपेक्षा लोक -व्यापक हैं; अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा लोक व्यापक हैं; वैसा ही कहा भी है —

'आधार में स्थूल और सूक्ष्म जीवों से लोक निरन्तर भरा है।'

वे जीव और कैसे हैं? ***केचित्तु अणावण्णा*** कुछ तो लोकपूरण अवस्था से रहित अथवा बादर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय आदि अव्यापक हैं। वे जीव और किस विशेषतावाले हैं? ***मिच्छादंसणकसायजोगजुदा*** रागादि रहित, परमानन्द एक स्वभावी, शुद्ध जीवास्तिकाय से विलक्षण मिथ्यादर्शन, कषाय, योग से यथासम्भव युक्त हैं। मात्र युक्त ही नहीं हैं; अपितु कुछ ***विजुदा य तेहिं*** उन्हीं मिथ्यादर्शन, कषाय, योग से रहित हैं। दोनों ही कितनी संख्यावाले हैं? ***बहुगा*** बहुत, अनन्त संख्यावाले हैं। वे और कैसे हैं? ***सिद्धा संसारिणो*** जो मिथ्यादर्शन, कषाय, योग से विमुक्त / रहित हैं, वे सिद्ध हैं और जो उनसे सहित हैं, वे संसारी हैं।

यहाँ जीवित (जीवन की) आशारूप रागादि विकल्पों के त्याग द्वारा सिद्ध जीवों के समान परम आह्लादरूप सुखरसास्वाद से परिणत / तन्मय निज शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेय है — यह भावार्थ है॥ ३१-३२॥

इस प्रकार पूर्वोक्त ***वच्छरक्खं*** इत्यादि नौ दृष्टान्तों द्वारा चार्वाक मतानुसारी शिष्य के सम्बोधन-हेतु जीव-सिद्धि की मुख्यता से तीन गाथाएँ पूर्ण हुईं।

मुख्यत्वेन गाथात्रयं गतम्।

अत्र देहमात्रविषये दृष्टांतं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति। एवमग्रेऽपि विवक्षितसूत्रार्थं मनसि संप्रधार्याथवा सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवत्येवं निश्चत्य सूत्रमिदं निरूपयतीति पातनिका लक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यं –

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पहासयदि खीरं।
तह देही देहत्थो सदेहमेत्तं पभासयदि॥ ३३॥

जह पउमरायरयणं **यथा पद्मरागरत्नं कर्तृ। कथंभूतं? *खित्त* क्षिप्तम्। क्व? *खीरे* क्षीरे दुग्धे। क्षीरे किं करोति? *पहासयदि खीरं* प्रकाशयति तत्क्षीरं *तह देही देहत्थो* तथा देही संसारी देहस्थः सन् *सदेहमेत्तं पहासयदि* स्वदेहमात्रं प्रकाशयतीति।**

तद्यथा – अत्र पद्मरागशब्देन पद्मरागरत्नप्रभा गृह्यते न च रत्नम्। यथा पद्मरागप्रभासमूहः क्षीरे क्षिप्तस्तत्क्षीरं व्याप्नोति तथा जीवोऽपि स्वदेहस्थो वर्तमानकाले तं देहं व्याप्नोति; अथवा यथा

अब, देहमात्र (परिमाणत्व) के विषय में दृष्टान्त कहता हूँ; इस अभिप्राय को मन में धारणकर यह गाथा प्रतिपादित करते हैं; इसी प्रकार आगे भी विवक्षित सूत्र के अर्थ / प्रयोजन को मन में धारणकर अथवा इस सूत्र के आगे यही सूत्र उचित है – ऐसा निश्चय कर यह गाथा निरूपित करते हैं; इस प्रकार पातनिका का लक्षण यथासम्भव सर्वत्र जानना चाहिए –

ज्यों दूध में स्थित पद्मराग, मणि प्रकाशे दूध को।
त्यों देह में स्थित देही, देह प्रमाणता को प्राप्त हो॥ ३३॥

गाथार्थ – जैसे दूध में पड़ा हुआ पद्मराग रत्न दूध को प्रकाशित करता है; उसी प्रकार देह में स्थित देही / संसारी जीव स्वदेहमात्र प्रकाशित होता है।

टीकार्थ – ***जहपउमरायरयणं*** जैसे कर्तारूप पद्मराग रत्न। वह कैसा है? ***खित्तं*** पड़ा है। कहाँ पड़ा है? ***खीरे*** क्षीर / दूध में पड़ा है। दूध में पड़ा हुआ वह क्या करता है? ***पभासयदि खीरं*** उस दूध को प्रकाशित करता है; ***तह देही देहत्थो*** उसी प्रकार देही संसारी जीव, देहस्थ होता हुआ ***सदेहमेत्तं पभासयदि*** अपने देहमात्र प्रकाशित होता है।

वह इस प्रकार – यहाँ 'पद्मराग' शब्द से पद्मराग रत्न की प्रभा ग्रहण करना; मात्र पद्मराग रत्न ग्रहण नहीं करना है। जैसे दूध में पड़ा हुआ पद्मराग-प्रभा का समूह, उस दूध को अपनी प्रभा से व्याप्त करता है; उसी प्रकार स्वदेह में स्थित जीव भी वर्तमान काल में उस देह

विशिष्टाग्निसंयोगवशात्क्षीरे वर्धमाने सति पद्मरागप्रभासमूहो वर्द्धते हीयमाने च हीयते इति तथा विशिष्टाहारवशाद्देहे वर्धमाने सति विस्तरन्ति जीवप्रदेशा हीयमाने च संकोचं गच्छन्ति; अथवा स एव प्रभासमूहोऽन्यत्र बहुक्षीरे निक्षिप्तो बहुक्षीरं व्याप्नोति स्तोके स्तोकं व्याप्नोति तथा जीवोऽपि जगत्त्रय-कालत्रयमध्यवर्तिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशेन समर्थविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावचैतन्यचमत्कार-मात्राच्छुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणैर्मिथ्यात्वरागादिविकल्पैर्यदुपार्जितं शरीरनामकर्म तदुदयजनित-विस्तारोपसंहाराधीनत्वेन सर्वोत्कृष्टावगाहपरिणतः सन् सहस्त्रयोजनप्रमाणं महामत्स्यशरीरं व्याप्नोति जघन्यावगाहेन परिणतः पुनरुत्सेधघनांगुलासंख्येयभागप्रमितं लब्ध्यपूर्णसूक्ष्मनिगोतशरीरं व्याप्नोति, मध्यमावगाहेन मध्यमशरीराणि च व्याप्नोतीति भावार्थः॥ ३३॥

अत्र मिथ्यात्वशब्देन दर्शनमोहो रागादिशब्देन चारित्रमोह इति सर्वत्र ज्ञातव्यम्।

अथ वर्तमानशरीरवत् पूर्वापरशरीरसंतानेऽपि तस्यैव जीवस्यास्तित्वं देहात्पृथक्त्वं भवांतरगमन-कारणं च कथयति —

को व्याप्त करता है। अथवा जैसे विशिष्ट अग्नि के संयोगवश दूध बढ़ने पर (दूध में उफान आने पर) पद्मराग-प्रभा का समूह भी बढ़ जाता है तथा कम होने पर कम हो जाता है; उसी प्रकार विशिष्ट आहार के माध्यम से शरीर बढ़ने पर जीवप्रदेश भी विस्तृत हो जाते हैं तथा कम होने पर वे भी संकुचित हो जाते हैं; अथवा दूसरे अधिक दूध में पड़ा वही प्रभासमूह अधिक दूध को व्याप्त करता है, कम में पड़ा हुआ कम को व्याप्त करता है; उसी प्रकार जीव भी तीन लोक, तीन काल सम्बन्धी समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में प्रकाशित करने में समर्थ विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावी चैतन्यचमत्कारमात्र शुद्ध जीवास्तिकाय से विलक्षण, मिथ्यात्व-रागादि विकल्पों से उपार्जित जो शरीर नामकर्म, उसके उदय से उत्पन्न विस्तार-उपसंहार / सङ्कोच के अधीन होने से सर्वोत्कृष्ट अवगाहरूप से परिणमित होता हुआ, हजार योजन प्रमाण महामत्स्य के शरीर को व्याप्त करता है; जघन्य अवगाहना से परिणमित होता हुआ उत्सेध घनाङ्गुल के असंख्येयभाग प्रमाण लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्म निगोदशरीर को व्याप्त करता है तथा मध्यम अवगाहना से मध्यम शरीरों को व्याप्त करता है — यह भावार्थ है॥ ३३॥

यहाँ मिथ्यात्व शब्द से दर्शनमोह; रागादि शब्द से चारित्रमोह ग्रहण करना तथा सर्वत्र ऐसा ही जानना चाहिए।

अब, वर्तमान शरीर के समान पूर्वापर शरीर की परम्परा होने पर भी उसी जीव का अस्तित्व, देह से पृथक्त्व और भवान्तर (दूसरे भव में) गमन का कारण कहते हैं —

सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्कगो य एक्कट्ठो।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं॥ ३४॥

_सव्वत्थ अत्थि जीवो_ सर्वत्र पूर्वापरभवशरीरसंताने य एव वर्तमानशरीरे जीवः स एवास्ति न चान्यो नवतर उत्पद्यते चार्वाकमतवत् _ण य एक्को_ निश्चयनयेन देहेन सह न चैकस्तन्मयः _एक्कगो य_ अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेनैकोऽपि भवति। कस्मादिति चेत्? _एक्कट्ठो_ क्षीरनीरवदेकार्थोऽभिन्नो यस्मात् अथवा सर्वत्र देहमध्ये जीवोऽस्ति न चैकदेशे अथवा सूक्ष्मैकेन्द्रियापेक्षया सर्वत्र लोकमध्ये जीवसमूहोऽस्ति। स च यद्यपि केवलज्ञानादिगुणसादृश्येनैकत्वं लभते तथापि नानावर्णवस्त्रवेष्टितषोडश-वर्णिकासुवर्णराशिवत्स्वकीयस्वकीयलोकमात्रासंख्येयप्रदेशैर्भिन्न इति। भवांतरगमनकारणं कथ्यते – _अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं_ अध्यवसानविशिष्टः संश्चेष्टते मलिनो रजमलैः।

है सर्वदा ही जीव हो, एकत्र इक तन में रहे।
पर भिन्न अध्यवसान युत, रजमलमलिन भ्रमता रहे॥ ३४॥

गाथार्थ – जीव सर्वत्र (सभी क्रमवर्ती शरीरों में) है तथा एक शरीर में (क्षीर-नीरवत्) एकरूप में रहता है; तथापि उसके साथ एकमेक नहीं है। अध्यवसान विशिष्ट वर्तता हुआ, रजमल (कर्ममल) द्वारा मलिन होने से वह भ्रमण करता है।

टीकार्थ – ***सव्वत्थ अत्थि जीवो*** सर्वत्र पूर्वापर भवों की शरीर-सन्तति में तथा वर्तमान शरीर में जो जीव है, वह वही है; चार्वाकमत के समान दूसरा कोई नया उत्पन्न नहीं होता है। ***ण य एक्को*** निश्चयनय से शरीर के साथ एकमेक, तन्मय नहीं है; ***एक्कगो य*** तथापि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से एकमेक भी है। इस नय से वह एक कैसे है? ***एक्कट्ठो*** दूध-पानी के समान एक अभिन्न पदार्थरूप दिखाई देने से; अथवा देह में सर्वत्र जीव है, एकदेश में नहीं है; अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय की अपेक्षा लोक में सर्वत्र जीवसमूह है; और वह यद्यपि केवल ज्ञानादि गुणों की समानता होने से एकत्व को प्राप्त है; तथापि विविध वर्णों के वस्त्रों से वेष्टित सोलह वर्णिका सुवर्ण-राशि के समान अपने-अपने लोकमात्र असंख्येय प्रदेशों से भिन्न है।

दूसरे भव में गमन का कारण कहते हैं – ***अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं*** अध्यवसान से विशिष्ट / युक्त होता हुआ, रजमल से मलिन होने के कारण चेष्टा करता है। वह इस प्रकार – यद्यपि जीव शुद्ध निश्चय से केवल ज्ञान-दर्शन स्वभावी है; तथापि अनादि कर्मबन्ध के वश मिथ्यात्व-रागादि अध्यवसानरूप भावकर्मों से और उन्हें उत्पन्न करनेवाले द्रव्यकर्म-मल से घिरा हुआ शरीर ग्रहण करने के लिए चेष्टा करता है।

तथाहि – यद्यपि शुद्धनिश्चयेन केवलज्ञानदर्शनस्वभावस्तथाप्यनादिकर्मबंधवशान्मिथ्यात्व-रागाद्यध्यवसानरूपभावकर्मभिस्तज्जनकद्रव्यकर्ममलैश्च वेष्टितः सन् भवांतरं प्रति शरीरग्रहणार्थं चेष्टते वर्तत इति। अत्र य एव देहाद्भिन्नोऽनंतज्ञानादिगुणः शुद्धात्मा भणितः स एव शुभाशुभसंकल्पविकल्प-परिहारकाले सर्वत्र प्रकारेणोपादेयो भवतीत्यभिप्रायः॥ ३४॥

एवं मीमांसकनैयायिकसांख्यमतानुसारिशिष्यसंशयविनाशार्थं –

वेयणकसायवेगुव्वियो य मारणंतियो समुग्घादो।
तेजो हारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु॥

इति गाथाकथितसप्तसमुद्घातान् विहाय स्वदेहप्रमाणात्मव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्।

अथ सिद्धानां शुद्धजीवत्वं अतीतशरीरप्रमाणाकाशव्यापकत्वादिति व्यवहारेण भूतपूर्वकन्यायेन किंचिन्न्यूनचरमशरीरप्रमाणं च व्यवस्थापयति –

जेसिं जीवसहाओ णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा॥ ३५॥

यहाँ जो शरीर से भिन्न अनन्त ज्ञानादि गुणमय शुद्धात्मा कहा गया है, वह ही शुभाशुभ सङ्कल्प-विकल्प के परिहार काल में सर्व प्रकार से उपादेय है – यह अभिप्राय है॥ ३४॥

इस प्रकार मीमांसक, नैयायिक, सांख्यमतानुसारी शिष्य के संशय को नष्ट करने-हेतु –

'वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, छठवाँ आहारक और सातवाँ केवली समुद्घात है।' *॥ गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा ६६७॥*

इस गाथा में कहे सात समुद्घातों को छोड़कर, अपने देहप्रमाण आत्मा के व्याख्यान की मुख्यता से दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, सिद्धों को अतीत शरीरप्रमाण आकाश में व्यापक होने से शुद्ध जीवत्व तथा व्यवहार की अपेक्षा भूतपूर्व न्याय से (भूतपूर्व प्रज्ञापन नैगमनय से) कुछ कम अन्तिम शरीरप्रमाण स्थापित करते हैं –

है नहीं जीवस्वभाव जिनके, ना अभाव है सर्वथा।
वे देह बिन न वचनगोचर, सिद्ध रहते सर्वथा॥ ३५॥

गाथार्थ – जिनके विभाव प्राण-धारण करनेरूप जीवस्वभाव नहीं है और उसका सर्वथा अभाव भी नहीं है, वे शरीर से भिन्न, वचनगोचर-अतीत / वचनातीत सिद्ध हैं।

जेसिं जीवसहाओ णत्थि येषां कर्मजनितद्रव्यप्राणभावप्राणरूपो जीवस्वभावो नास्ति *ते होंति सिद्धा* ते भवन्ति सिद्धा इति सम्बन्धः। यदि तत्र द्रव्यभावप्राणा न संति तर्हि बौद्धमतवत्सर्वथा जीवाभावो भविष्यतीत्याशंक्योत्तरमाह *अभावो य सव्वहा तत्थ णत्थि* शुद्धसत्ताचैतन्यज्ञानादिरूपशुद्धभावप्राण-सहितत्वात्तत्र सिद्धावस्थायां सर्वथा जीवाभावोऽपि नास्ति च। सिद्धाः कथंभूता ? *भिण्णदेहा* अशरीरात् शुद्धात्मनो विपरीताः शरीरोत्पत्तिकारणभूताः मनोवचनकाययोगाः क्रोधादिकषायाश्च न संतीति भिन्नदेहा अशरीरा ज्ञातव्याः। पुनश्च कथंभूताः ? *वचिगोयरमदीदा* सांसारिकद्रव्यप्राणभावप्राणरहिता अपि विजयंते प्रतपंतीति हेतोर्वचनगोचरातीतास्तेषां महिमास्वभावः अथवा सम्यक्त्वाद्यष्टगुणैस्तदंतर्ग-तानंतगुणैर्वा सहितास्तेन कारणेन वचनगोचरातीता इति।

अथात्र यथा पर्यायरूपेण पदार्थानां क्षणिकत्वं दृष्ट्वातिव्याप्तिं कृतद्रव्यरूपेणापि क्षणिकत्वं मन्यते सौगतः तथेन्द्रियादिदर्शनप्राणसहितस्याशुद्धजीवस्याभावं दृष्ट्वा मोक्षावस्थायां केवलज्ञानाद्यनंत-गुणसहितस्य शुद्धजीवस्याप्यभावं मन्यत इति भावार्थः॥ ३५॥

अथ सिद्धस्य कर्मनोकर्मापेक्षया कार्यकारणाभावं साधयति -

टीकार्थ - ***जेसिं जीवसहाओ णत्थि*** जिनके कर्मजनित द्रव्यप्राण-भावप्राणरूप जीवस्वभाव नहीं है, ***ते होंति सिद्धा*** वे सिद्ध हैं – इस प्रकार सम्बन्ध है। यदि वहाँ द्रव्य-भावप्राण नहीं हैं तो बौद्धमत के समान जीव का सर्वथा अभाव होगा – ऐसी आशङ्का का उत्तर देते हैं – ***अभावो य सव्वहा तत्थ णत्थि*** शुद्ध सत्ता, चैतन्य, ज्ञानादिरूप शुद्ध भावप्राणसहित होने से उस सिद्ध अवस्था में जीव का सर्वथा अभाव भी नहीं है। वे सिद्ध कैसे हैं? ***भिन्नदेहा*** अशरीरी शुद्धात्मा से विपरीत, शरीर की उत्पत्ति के कारणभूत मन-वचन-काययोग और क्रोधादि कषाएँ नहीं हैं – इस प्रकार भिन्न देह / अशरीर जानना चाहिए। वे और कैसे हैं? ***वचिगोयरमदीदा*** सांसारिक द्रव्यप्राण-भावप्राण से रहित होने पर भी विजयवान हैं, प्रतापवान हैं – इस हेतु से उनकी महिमा स्वभाव वचनगोचरता से रहित / वचनातीत है; अथवा वे सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से या उसके अन्तर्गत अनन्त गुणों से सहित हैं, उस कारण वचनगोचरातीत हैं।

अब, यहाँ जैसे सौगत / बौद्ध पर्यायरूप से पदार्थों की क्षणिकता देखकर अतिव्याप्तिकर (सर्वथा उसे ही मानकर) द्रव्यरूप से भी क्षणिकता मान लेते हैं; उसी प्रकार इन्द्रिय आदि दश प्राणसहित अशुद्ध जीव का अभाव देखकर मोक्ष अवस्था में केवलज्ञानादि अनन्तगुणसहित शुद्धजीव का भी अभाव मान लेते हैं – यह भावार्थ है॥ ३५॥

अब, सिद्ध के कर्म-नोकर्म की अपेक्षा कार्यकारणभाव साधते हैं –

ण कदाचिवि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमिह तेण ण स होहि॥ ३६॥

ण कदाचिवि उप्पण्णो संसारिजीववन्नरनारकादिरूपेण क्वापि काले नोत्पन्नः *जम्हा* यस्मात्कारणात् *कज्जं ण तेण सो सिद्धो* तेन कारणेन कर्मनोकर्मापेक्षया स सिद्धः कार्यं न भवति *उप्पादेदि ण किंचिवि* स्वयं कर्मनोकर्मरूपं किमपि नोत्पादयति *कारणमिह तेण ण स होहि* तेन कारणेन स सिद्धः इह जगति कर्मनोकर्मापेक्षया कारणमपि न भवतीति।

अत्र गाथासूत्रे य एव शुद्धनिश्चयेन कर्मनोकर्मपेक्षया कार्यकारणं च न भवति स एवानंत-ज्ञानादिसहितः कर्मोदयजनितनवतरकर्मादानकारणभूतमनोवचनकायव्यापारनिवृत्तिकाले साक्षादुपादेयो भवतीति तात्पर्यम्॥ ३६॥

अथ जीवाभावो मुक्तिरिति सौगतमतं विशेषेण निराकरोति —

सस्सदमधमुच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च।
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे॥ ३७॥

नहिं किसी से उत्पन्न भगवन, अतः कार्य नहीं कहे।
नहिं किसी को उत्पन्न करते, अतः कारण नहीं वे॥ ३६॥

गाथार्थ – वे सिद्ध किसी से भी उत्पन्न नहीं हुए हैं; अतः कार्य नहीं हैं तथा किसी को भी उत्पन्न नहीं करते; अतः वे कारण भी नहीं हैं।

टीकार्थ – ***ण कुदोचि वि उप्पण्णो*** संसारी जीव के समान नर-नारकादिरूप से किसी भी समय उत्पन्न नहीं होते हैं, ***जम्हा*** जिस कारण; ***कज्जं ण तेण सो सिद्धो*** उस कारण से कर्म-नोकर्म की अपेक्षा वे सिद्ध कार्य नहीं हैं। ***उप्पादेदि ण किंचिवि*** स्वयं कर्म-नोकर्मरूप कुछ भी उत्पन्न नहीं करते हैं; ***कारणमिह तेण ण स होहि*** उस कारण वे सिद्ध इस जगत् में कर्म-नोकर्म की अपेक्षा कारण भी नहीं हैं।

इस गाथा-सूत्र में जो शुद्ध निश्चय से कर्म-नोकर्म की अपेक्षा कार्य और कारण नहीं हैं, कर्मोदय से उत्पन्न नवीन कर्मों को ग्रहण करने में कारणभूत मन-वचन-काय व्यापार से निवृत्ति के समय, अनन्त ज्ञानादि सहित वे सिद्ध ही साक्षात् उपादेय हैं — ऐसा तात्पर्य है॥ ३६॥

अब, 'जीव का अभाव मुक्ति है' इस प्रकार के सौगतमत का विशेषरूप से निराकरण करते हैं —

सस्सदमधमुच्छेदं सिद्धावस्थायां तावट्टंकोत्कीर्णज्ञायकैकरूपेणाविनश्वरत्वाद्द्रव्यरूपेण शाश्वतस्वरूपमस्ति अथ अहो पर्यायरूपेणागुरुलघुकगुणषट्स्थानगतहानिवृद्ध्यपेक्षयोच्छेदोऽस्ति *भव्वमभव्वं च* निर्विकारचिदानंदैकस्वभावपरिणामेन भवनं परिणमनं भव्यत्वं, अतीतमिथ्यात्वरागादि-विभावपरिणामेनाभवनमपरिणमनमभव्यत्वम्। *सुण्णमिदरं च* स्वशुद्धात्मद्रव्यविलक्षणेन परद्रव्यक्षेत्र-कालभावचतुष्टयेन नास्तित्वं शून्यत्वं, निजपरमात्मानुगतस्वद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेणेतरश्चाशून्यत्वं *विण्णाणमविण्णाणं* समस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशनसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानगुणेन विज्ञानं, विनष्टमतिज्ञानादिछद्मस्थज्ञानेन परिज्ञानादविज्ञानमिति *णवि जुज्जदि असदि सब्भावे* इदं तु नित्यत्वादि-स्वभावगुणाष्टकमविद्यमानजीवसद्भावे मोक्षे न युज्यते न घटते तदस्तित्वादेव ज्ञायते मुक्तो शुद्धजीव-सद्भावोऽस्ति। अत्र स एवोपादेय इति भावार्थः॥ ३७॥

एवं भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यसंदेहविनाशार्थं जीवस्यामूर्तत्वव्याख्यानरूपेण गाथात्रयं गतम्।

सद्भाव हो न मोक्ष में, तो घटे कैसे नित्यता?
व नाश भव्य अभव्य, शून्याशून्य ज्ञानाज्ञान वा॥ ३७॥

गाथार्थ - (मोक्ष में जीव का) सद्भाव न होने पर शाश्वत, नाशवान, भव्य / होने-योग्य, अभव्य / न होनेयोग्य, शून्य, अशून्य, विज्ञान और अविज्ञान (जीव में) घटित नहीं होते हैं।

टीकार्थ - ***सस्सदमधमुच्छेदं*** सिद्ध अवस्था में टङ्कोत्कीर्ण ज्ञायक एकरूप द्रव्य की अपेक्षा अविनश्वर होने से शाश्वतस्वरूप है तथा ***अध*** अहो! पर्यायरूप से अगुरुलघुकगुण की षट्स्थानगत हानि-वृद्धि की अपेक्षा उच्छेद है। ***भव्वमभव्वं च*** निर्विकार चिदानन्द एक स्वभावमय परिणाम से होना, परिणमना, भव्यत्व है; अतीत / नष्ट हो गए मिथ्यात्व-रागादि विभावपरिणाम से नहीं होना, नहीं परिणमना, अभव्यत्व है। ***सुण्णमिदरं च*** स्वशुद्धात्मद्रव्य से विलक्षण परद्रव्य -क्षेत्र-काल-भाव चतुष्टय से नास्तित्व शून्यता है; निज परमात्मा सम्बन्धी स्व द्रव्य-क्षेत्र-काल -भावरूप से इतर अर्थात् अशून्यता है। ***विण्णाणमविण्णाणं*** समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में प्रकाशित करने में समर्थ सकल-विमल केवलज्ञानगुण से विज्ञान है, नष्ट हुए मतिज्ञानादि छद्मस्थ ज्ञान द्वारा परिज्ञान (रहित) हो जाने के कारण अविज्ञान हैं। ***णवि जुज्जदि असदि सब्भावे*** मोक्ष में जीव का सद्भाव विद्यमान न होने पर नित्यत्व आदि (ये) आठ गुणस्वभाव घटित नहीं हो सकते हैं; उनके अस्तित्व से ही मोक्ष में जीव का सद्भाव जाना जाता है। यहाँ वह ही उपादेय है - यह भावार्थ है॥ ३७॥

इस प्रकार भट्ट और चार्वाकमतानुसारी शिष्य के सन्देह का नाश करने के लिए जीव के अमूर्तत्व व्याख्यानरूप से तीन गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अथ त्रिविधचेतनाव्याख्यानं प्रतिपादयति –

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमथमेक्को।
वेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण॥ ३८॥

कम्माणं फलमेक्को चेदगभावेण वेदयदि जीवरासी **निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जित-प्रकृष्टतरमोहमलीमसेन चेतकभावेन प्रच्छादितसामर्थ्यः सन्नेको जीवराशिः कर्मफलं वेदयति *एक्को कज्जं तु* अथ पुनरेकस्तेनैव चेतकभावेनोपलब्धसामर्थ्येनेहापूर्वकेष्टानिष्टविकल्परूपं कर्म कार्यं तु वेदयत्यनुभवति *णाणमथमेक्को* अथ पुनरेको जीवराशिस्तेनैव चेतकभावेन विशुद्धशुद्धात्मानुभूति-भावनाविनाशितकर्ममलकलंकेन केवलज्ञानमनुभवति। कतिसंख्योपेतेन तेन पूर्वोक्तचेतकभावेन? *तिविहेण* कर्मफलकर्मकार्यज्ञानरूपेण त्रिविधेनेति॥ ३८॥**

अथात्र कः किं चेतयतीति निरूपयति इति, निरूपयति इति कोऽर्थः? इति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति; एवं प्रश्नोत्तररूपपातनिकाप्रस्तावे सर्वत्रेति शब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः –

अब, तीन प्रकार की चेतना के व्याख्यान का प्रतिपादन करते हैं –

त्रिविध चेतक भाव से, कुछ जीवराशि चेतती।
है कर्मफल को कर्म को, कुछ ज्ञान को ही चेतती॥ ३८॥

गाथार्थ - तीन प्रकार के चेतकभाव द्वारा एक जीवराशि कर्मों के फल को, एक जीवराशि कार्य को और एक जीवराशि ज्ञान को चेतती है / वेदती है।

टीकार्थ - ***कम्माणं फलमेक्को चेदगभावेण वेदयदि जीवरासी*** निर्मल शुद्धात्मानुभूति के अभाव से उपार्जित प्रकृष्टतर मोह से मलीमस चेतकभाव द्वारा प्रच्छादित सामर्थ्यवाली होती हुई, स्व-सामर्थ्य को प्रगट नहीं करती हुई, एक जीवराशि कर्मफल का वेदन करती है; ***एक्को कज्जं तु*** एक उसी चेतकभाव से सामर्थ्य प्रगट हो जाने के कारण इच्छापूर्वक इष्ट-अनिष्ट विकल्परूप कर्म / कार्य का वेदन करती है / अनुभव करती है; ***णाणमथमेक्को*** तथा एक जीवराशि उसी चेतकभाव से विशुद्ध शुद्धात्मानुभूति की भावना (तद्रूप परिणमन) द्वारा कर्मकलङ्क को नष्ट कर देने के कारण केवलज्ञान का अनुभव करती है। कितनी संख्या से सहित उस पूर्वोक्त चेतकभाव द्वारा अनुभव करती है? ***तिविहेण*** कर्मफल, कर्म / कार्य और ज्ञानरूप से तीन प्रकार के चेतकभाव द्वारा अनुभव करती है॥ ३८॥

अब, यहाँ कौन क्या चेतता है? इसका निरूपण करते हैं –

प्रश्न – निरूपण करते हैं – इसका क्या अर्थ है?

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा॥ ३९॥

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया विंदन्ति **ते सर्वे जीवाः प्रसिद्धाः पञ्चप्रकाराः स्थावरकाया जीवा अव्यक्तसुखदुःखानुभवरूपं शुभाशुभकर्मफलं विंदंत्यनुभवन्ति** ***तसा हि कज्जजुदं*** **द्वीन्द्रियादयस्त्रसजीवाः पुनस्तदेव कर्मफलं निर्विकारपरमानंदैकस्वभावमात्मसुखमलभमानास्संतो विशेषरागद्वेषरूपा तु या कार्यचेतना तत्सहितमनुभवन्ति** ***पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा*** **ये तु विशिष्टशुद्धात्मानुभूतिभावनासमुत्पन्नपरमानंदैकसुखामृतसमरसीभावबलेन दशविधप्राणत्वमतिक्रांताः सिद्धजीवास्ते केवलज्ञानं विंदन्ति। इत्यत्र गाथाद्वये केवलज्ञानचेतना साक्षादुपादेया ज्ञातव्येति तात्पर्यम्॥ ३९॥**

उत्तर – तत्सम्बन्धी प्रश्न होने पर उसका उत्तर देते हैं – यह उसका अर्थ है। इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप पातनिका के प्रस्ताव में सर्वत्र 'इति' शब्द का ऐसा ही अर्थ जानना चाहिए –

हैं सब स्थावर कर्मफल, त्रस कर्मयुत फल वेदते।
हैं जीव प्राणातीत जो, वे ज्ञान को ही वेदते॥ ३९॥

गाथार्थ – सभी स्थावर जीवसमूह कर्मफल का; त्रस कर्मसहित कर्मफल का वेदन करते हैं, तथा प्राणित्व का अतिक्रमण कर गए वे जीव (सर्वज्ञ भगवान), ज्ञान का वेदन करते हैं।

टीकार्थ – ***सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया विंदन्ति*** वे सभी प्रसिद्ध पाँच प्रकार के स्थावरकाय जीव, अव्यक्त सुख-दुःख अनुभवरूप शुभाशुभ कर्मफल का वेदन करते हैं, अनुभव करते हैं; ***तसा हि कज्जजुदं*** दो इन्द्रिय आदि त्रसजीव निर्विकार परमानन्दरूप एक स्वभावमय आत्मसुख को प्राप्त नहीं करते हुए विशेष राग-द्वेषरूप जो कार्य चेतना है, उससे सहित उसी कर्मफल का अनुभव करते हैं। ***पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा*** तथा जो विशिष्ट शुद्धात्मानुभूति भावना से समुत्पन्न परमानन्द एक सुखामृतरूप समरसीभाव के बल से दश प्रकार के प्राणों से रहित सिद्ध जीव हैं, वे केवल ज्ञान का अनुभव करते हैं।

इस प्रकार इन दोनों गाथाओं में केवल ज्ञानचेतना साक्षात् उपादेयभूत जानना चाहिए – ऐसा तात्पर्य है॥ ३९॥

[इस गाथा-टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने चेतना के एकार्थ / पर्यायवाची नाम स्पष्ट किए हैं। वे इस प्रकार – चेतना, अनुभूति, उपलब्धि, वेदना – ये एकार्थवाची होने से चेतते हैं, अनुभव करते हैं, उपलब्ध करते हैं, वेदते हैं – ये सभी एकार्थवाची शब्द हैं।]

एवं त्रिविध चेतनाव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्।

इत उर्ध्वमेकोनविंशतिगाथापर्यन्तमुपयोगाधिकारः प्रारभ्यते। तद्यथा

अथात्मनो द्वेधोपयोगं दर्शयति –

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि॥ ४०॥

उवओगो **आत्मनश्चैतन्यानुविधायिपरिणामः उपयोगः चैतन्यमनुविदधात्यन्वयरूपेण परिणमति अथवा पदार्थपरिच्छित्तिकाले घटोऽयं पटोऽयमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयति चैतन्यानुविधायि** ***खलु*** **स्फुटं** ***दुविहो*** **द्विविधः। स च कथंभूतः ?** ***णाणेण य दंसणेण संजुत्तो*** **सविकल्पं ज्ञानं निर्विकल्पं दर्शनं ताभ्यां संयुक्तः** ***जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि*** **तं चोपयोगं जीवस्य सम्बन्धित्वेन सर्वकालं संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशैरभिन्नं विजानीहीति॥ ४०॥**

इस प्रकार त्रिविध चेतना के व्याख्यान की मुख्यता से दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

(इस प्रकार पाँच अधिकारों के समूहरूप से तेरह गाथाएँ पूर्ण हुईं।)

इससे आगे उन्नीस गाथाओं पर्यन्त चलनेवाला उपयोग अधिकार प्रारम्भ होता है। वह इस प्रकार –

अब, आत्मा के दो प्रकार का उपयोग दिखाते हैं –

अनन्यभूत हैं जीव के, सब समय ही उपयोग जो।
वे ज्ञान दर्शन से सहित द्वि, विध उसे सब जान लो॥ ४०॥

गाथार्थ – वास्तव में जीव के सर्वकाल अनन्यरूप से रहनेवाला ज्ञान और दर्शन से संयुक्त दो प्रकार का उपयोग जानो।

टीकार्थ – ***उवओगो*** आत्मा का चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोग है। जो चैतन्य के साथ रहता है, अन्वयरूप से परिणमित होता है; अथवा पदार्थों की जानकारी के समय 'यह घट है, यह पट है' इत्यादि प्रकार से पदार्थों को जाननेरूप व्यापार करता है, वह चैतन्यानुविधायी है। ***खलु*** वास्तव में ***दुविहो*** वह दो प्रकार का है।

प्रश्न – वह दो प्रकार का कैसे है ? ***णाणेण य दंसणेण संजुत्तो*** सविकल्परूप ज्ञान है, निर्विकल्परूप दर्शन है, उन दोनों से संयुक्त है। ***जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि*** संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद होने पर भी वह उपयोग, जीव का सम्बन्धी होने से

एवं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयसूचनरूपेण गाथैका गता।

अथ ज्ञानोपयोगभेदानां संज्ञां प्रतिपादयति –

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि।
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते॥ ४१॥

आभिनिबोधिकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ज्ञानानि पंचभेदानि भवन्ति कुमतिज्ञानं कुश्रुतज्ञानं विभंगज्ञानमिति च मिथ्याज्ञानत्रयं भवति।

अयमत्र भावार्थः – यथैकोऽप्यादित्यो मेघावरणवशेन बहुधा भिद्यते तथा निश्चयनयेनाखण्डैकप्रतिभासस्वरूपोऽप्यात्मा व्यवहारनयेन कर्मपटलवेष्टितः सन्मतिज्ञानादिभेदेन बहुधा भिद्यत इति॥ ४१॥

इत्यष्टविधज्ञानोपयोगसंज्ञाकथनरूपेण गाथा गता।

(जीव के साथ उसका नित्यतादात्म्यसम्बन्ध या गुण-गुणी सम्बन्ध होने से), सर्व काल उसे प्रदेशों की अपेक्षा अभिन्न जानो॥ ४०॥

इस प्रकार ज्ञान-दर्शन – दो उपयोग की सूचनारूप से एक गाथा पूर्ण हुई।

अब, ज्ञानोपयोग के भेदों के नाम प्रतिपादित करते हैं –

मति श्रुत अवधि अरु, मनः पर्यय ज्ञान केवलज्ञान ये।
हैं पाँच कुमति-श्रुत विभङ्ग, संयुक्त हैं ये ज्ञान से॥ ४१॥

गाथार्थ - आभिनिबोधिक (मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान – ये ज्ञान के पाँच भेद हैं; तथा कुमति, कुश्रुत, विभङ्ग – ये तीन (अज्ञान) भी ज्ञान के साथ संयुक्त हैं।

टीकार्थ - आभिनिबोधिक (मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान – ये ज्ञान के पाँच भेद हैं तथा कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, विभङ्गज्ञान – ये तीन मिथ्याज्ञान हैं।

यहाँ यह भावार्थ है कि जैसे एक ही सूर्य मेघ के आवरणवश अपनी प्रभा की अपेक्षा अनेक प्रकार के भेदों को प्राप्त हो जाता है; उसी प्रकार निश्चयनय से अखण्ड एक प्रतिभासस्वरूपी आत्मा भी व्यवहारनय की अपेक्षा कर्मसमूह से वेष्टित होता हुआ, मतिज्ञान आदि भेदों द्वारा अनेक प्रकार के भेदों को प्राप्त हो जाता है॥ ४१॥

इस प्रकार ज्ञानोपयोग सम्बन्धी आठ भेदों के नाम-कथनरूप से गाथा समाप्त हुई।

अथ मत्यादिपञ्चज्ञानानां क्रमेण गाथा पञ्चकेन व्याख्यानं करोति। तथाहि —

मदिणाणं पुण तिविहं उबलद्धी भावणं च उवओगो। 卐
तह एव चदुवियप्पं दंसणपुव्वं हवदि णाणं॥ ४२॥

मदिणाणं अयमात्मा निश्चयनयेन तावदखण्डैकविशुद्धज्ञानमयः व्यवहारनयेन संसारावस्थायां कर्मावृतः सन्मतिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति पञ्चभिरिन्द्रियैर्मनसा च मूर्तामूर्तं वस्तु विकल्परूपेण यज्जानाति तन्मतिज्ञानम्। *पुण तिविहं* तच्च पुनस्त्रिविधं *उबलद्धी भावणं च उवओगो* उपलब्धिर्भावना तथोपयोगश्च, मतिज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितार्थग्रहणशक्तिरुपलब्धिर्ज्ञातेऽर्थे पुनश्चिन्तनं भावना नीलमिदं पीतमिदं इत्यादिरूपेणार्थग्रहणव्यापार उपयोगः *तह एव चदुवियप्पं* तथैवावग्रहेहावायधारणा-भेदेन चतुर्विधं वरकोष्ठबीजपदानुसारिसंभिन्नश्रोतृताबुद्धिभेदेन *वा दंसणपुव्वं हवदि णाणं* तच्च मतिज्ञानं सत्तावलोकदर्शनपूर्वकमिति।

[इस गाथा-टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने सभी ज्ञानों का स्वरूप भी स्पष्ट किया है, जो मूलतः पठनीय है।]

अब, मति आदि पाँच ज्ञानों का क्रम से पाँच गाथाओं द्वारा व्याख्यान करते हैं। वह इस प्रकार —

उपलब्धि है अरु भावना, उपयोग से है वह त्रिविध।
होता है दर्शनपूर्वक, मतिज्ञान वह ही चतुर्विध॥ ४२॥

गाथार्थ - उपलब्धि, भावना और उपयोग के भेद से मतिज्ञान तीन प्रकार का है; उसी प्रकार वह चार प्रकार का है; तथा वह ज्ञान दर्शनपूर्वक होता है।

टीकार्थ - ***मदिणाणं*** वास्तव में निश्चय से अखण्ड, एक, विशुद्ध ज्ञानमय यह आत्मा व्यवहारनय से संसार अवस्था में कर्मों से घिरा हुआ, मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर पाँच इन्द्रिय और मन द्वारा मूर्त-अमूर्त वस्तु को विकल्परूप से जिसके द्वारा जानता है, वह मतिज्ञान है। ***पुण तिविहं*** और वह तीन प्रकार का है; ***उबलद्धी भावणं च उवओगो*** उपलब्धि, भावना और उसरूप उपयोग। मतिज्ञानावरणीय क्षयोपशम से उत्पन्न पदार्थों को जानने की शक्ति, उपलब्धि है; उससे जाने गए पदार्थ के सम्बन्ध में पुनः-पुनः चिन्तन, भावना है; यह नीला, यह पीला इत्यादि रूप से पदार्थ को जानने में व्यापार करना, उपयोग है। ***तह एव चदुवियप्पं*** उसी प्रकार अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के भेद से चार प्रकार का अथवा वर / उत्कृष्ट कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पदानुसारीबुद्धि, सम्भिन्नश्रोतृताबुद्धि के भेद से चार प्रकार का है। ***दंसणपुव्वं हवदि णाणं*** और वह मतिज्ञान सत्तावलोकनरूप दर्शनपूर्वक होता है।

अत्र निर्विकारशुद्धानुभूत्यभिमुखं यन्मतिज्ञानं तदेवोपादेयभूतानंतसुखसाधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंगं पुनर्व्यवहारेणेति तात्पर्यम्॥ ४२॥

सुदणाणं पुण णाणी भणंति लद्धी य भावणा चेव। 卐
उवओगणयवियप्पं णाणेण य वत्थु अत्थस्स॥ ४३॥

सुदणाणं पुण णाणी भणंति स एव पूर्वोक्तात्मा श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमे सति यन्मूर्तामूर्तं वस्तु परोक्षरूपेण जानाति तत्पुनः श्रुतज्ञानं ज्ञानिनो भणन्ति। तच्च कथंभूतं ? *लद्धी य भावणा चेव* *लब्धिरूपं* च भावनारूपं चैव। पुनरपि किंविशिष्टं ? *उवओगणयवियप्पं* उपयोगविकल्पं नयविकल्पं च; उपयोगशब्देनात्र वस्तुग्राहकं प्रमाणं भण्यते, नयशब्देन तु वस्त्वेकदेशग्राहको ज्ञातुरभिप्रायो विकल्पः। तथा चोक्तम् – *नयो ज्ञातुरभिप्रायः*। केन कृत्वा वस्तुग्राहकं प्रमाणं वस्त्वेकदेशग्राहको नय ? इतिचेत्। *णाणेण य* ज्ञातृत्वेन परिच्छेदकत्वेन ग्राहकत्वेन *वत्थु अत्थस्स* सकलवस्तुग्राहकत्वेन प्रमाणं भण्यते,

---

यहाँ निर्विकार शुद्धानुभूति के अभिमुख जो मतिज्ञान है, वह ही उपादेयभूत अनन्त सुख का साधक होने के कारण निश्चय से उपादेय है, उसका साधक बहिरङ्ग तो व्यवहार से उपादेय है – ऐसा तात्पर्य है॥ ४२॥

जो लब्धि भावनारूप ज्ञाता की अपेक्षा वस्तु से।
व अंश से उपयोग नय मय श्रुतज्ञान कहें उसे॥ ४३॥

गाथार्थ - लब्धि और भावनारूप जानने की अपेक्षा सम्पूर्ण वस्तु को जाननेवाले उपयोग / प्रमाणरूप और वस्तु के एकदेश को जाननेवाले नयविकल्परूप ज्ञान को ज्ञानी श्रुतज्ञान कहते हैं।

टीका - ***सुदणाणं पुण णाणी भणंति*** वही पूर्वोक्त आत्मा श्रुतज्ञानावरणीय का क्षयोपशम होने पर जिस ज्ञान से मूर्त-अमूर्त वस्तु को परोक्षरूप में जानता है, ज्ञानी उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। वह कैसा है ? ***लद्धी या भावणा चेव*** वह लब्धिरूप और भावनारूप ही है। वह और किस विशेषतावाला है ? ***उवओगणयवियप्पं*** वह उपयोग विकल्प और नय विकल्परूप है। यहाँ उपयोग शब्द से (सम्पूर्ण) वस्तु को जाननेवाला प्रमाण कहा गया है तथा नय शब्द से वस्तु के एकदेश को जाननेवाला ज्ञाता का अभिप्रायरूप विकल्प कहा गया है। वैसा ही कहा भी है – 'ज्ञाता का अभिप्राय नय है।'

किस अपेक्षा (सम्पूर्ण) वस्तु को जाननेवाला प्रमाण और वस्तु के एकदेश को जाननेवाला नय है ? ***णाणेण य*** जाननेवाले की अपेक्षा, परिच्छेदक की अपेक्षा, ग्राहक की अपेक्षा वह प्रमाण-नय है। ***वत्थु अत्थस्स*** सम्पूर्ण वस्तु को जाननेवाला होने से प्रमाण कहलाता है और अर्थ

अर्थस्य वस्त्वेकदेशस्य। कथंभूतस्य ? गुणपर्यायरूपस्य ग्रहणेन पुनर्नय इति।

अत्र विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणाभेदरत्नत्रयात्मकं यद्भावश्रुतं तदेवोपादेयभूतपरमात्मतत्त्वसाधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं, तत्साधकं बहिरंगं तु व्यवहारेणेति तात्पर्यम्॥ ४३॥

ओहिं तहेव घेप्पदु देसं परमं च ओहिसव्वं च। 卐
तिण्णिवि गुणेण णियमा भवेण देसं तहा णियदं॥ ४४॥

***ओहिं तहेव घेप्पदु* अयमात्मावधिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति मूर्तं वस्तु यत्प्रत्यक्षेण जानाति तदवधिज्ञानं भवति तावत् यथापूर्वमुपलब्धिभावनोपयोगरूपेण त्रिधा श्रुतज्ञानं व्याख्यातं तथा साप्यवधि-र्भावनां विहाय त्रिधा गृह्यतां ज्ञायतां भवद्भिः देसं परमं च ओहि सव्वं च अथवा देशावधिपरमावधि-सर्वावधिभेदेन त्रिधावधिज्ञानं किंतु परमावधिसर्वावधिद्वयं चिदुच्छलननिर्भरानंदरूपपरमसुखामृतरसा-**

/ वस्तु के एकदेश को जाननेवाला होने से नय कहलाता है। कैसे अर्थ को जानने से नय है ? गुण-पर्यायरूप अर्थ को जानने से नय है।

यहाँ विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावी शुद्धात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, अनुचरणरूप अभेद रत्नत्रयात्मक जो भावश्रुत है, वही उपादेयभूत परमात्मतत्त्व का साधक होने के कारण निश्चय से उपादेय है; उसके साधक बहिरङ्ग साधन व्यवहार से उपादेय हैं – यह तात्पर्य है॥ ४३॥

सीमा सहित प्रत्यक्ष जाने, अवधि देश परम सकल।
ये तीन गुणप्रत्यय नियम से, भवनियत स्व देशमय॥ ४४॥

गाथार्थ - अवधिज्ञान उसी प्रकार अर्थात् प्रत्यक्षरूप में मूर्त वस्तु को जानता है। देशावधि, परमावधि और सर्वावधि – ये तीनों नियम से गुणप्रत्यय होते हैं तथा भवप्रत्यय नियत देश (मुख्यतया देव-नरकगति) में होता है।

टीकार्थ - ***ओहिं तहेव घेप्पदु*** यह आत्मा अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर जिस प्रत्यक्ष ज्ञान से मूर्त वस्तु को जानता है, वह अवधिज्ञान है। जैसे पहले उपलब्धि, भावना और उपयोग से श्रुतज्ञान के तीन भेदों का व्याख्यान किया था; उसी प्रकार यह अवधिज्ञान भी भावना को छोड़कर शेष उपलब्धि और उपयोग दो भेदरूप तथा ज्ञेय की अपेक्षा तीन भेदरूप आपको जानना चाहिए। ***देसं परमं च ओहि सव्वं च*** अथवा देशावधि, परमावधि और सर्वावधि के भेद से अवधिज्ञान तीन प्रकार का है; परन्तु परमावधि और सर्वावधि – ये दो अवधिज्ञान चिदुच्छलन निर्भर (उछलते हुए नित्य उद्योतमय चैतन्य से परिपूर्ण) आनन्दरूप परम सुखामृतमय

स्वादसमरसीभावपरिणतानां चरमदेहतपोधनानां भवति। तथाचोक्तम् —

''परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स॥''

तिण्णिवि गुणेण णियमा त्रयोऽप्यवधयो विशिष्टसम्यक्त्वादिगुणेन निश्चयेन भवन्ति *भवेण देसं तहा णियदं* भवप्रत्ययेन योऽवधिर्देवनारकाणां स देशावधिरेव नियमेनेत्यभिप्रायः॥ ४४॥

विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं। 卐
एदे संजमलद्धी उवओगे अप्पमत्तस्स॥ ४५॥

मणणाणं **अयमात्मा पुनः मनःपर्ययज्ञानावरणीयक्षयोपशमे सति परकीयमनोगतं मूर्तं वस्तु यत्प्रत्यक्षेण जानाति तन्मनःपर्ययज्ञानम्। तच्च कतिविधं ?** ***विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह*** **ऋजुमतिविपुलमतिभेदेन द्विविधं मनःपर्ययज्ञानं, तत्र विपुलमतिज्ञानं परकीयमनोवचनकायगतमर्थं वक्रावक्रं जानाति, ऋजुमतिश्च प्राञ्जलमेव निर्विकारात्मोपलब्धिभावनासहितानां चरमदेहमुनीनां**

रसास्वाद से समरसी भावरूप परिणत चरमशरीरी तपोधनों के होते हैं।

वैसा ही कहा है – 'परमावधि, सर्वावधि चरमशरीरी विरत के होते हैं।'

तिण्णिवि गुणेण णियमा ये तीनों ही अवधिज्ञान निश्चय से विशिष्ट सम्यक्त्वादि गुण से होते हैं। ***भवेण देसं तहा णियदं*** देव और नारकियों का जो भवप्रत्ययरूप अवधिज्ञान है, वह नियम से देशावधि है – ऐसा अभिप्राय है॥ ४४॥

है मनःपर्यय द्विविध ऋजुमति, व विपुलमति ज्ञान से।
होता सदा उपयोग, संयमलब्धियुत अप्रमत्त के॥ ४५॥

गाथार्थ – मनःपर्ययज्ञान ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो प्रकार का है तथा संयमलब्धियुक्त अप्रमत्त जीव के विशुद्ध परिणाम में होता है।

टीकार्थ – ***मण्णाणं*** यह आत्मा मनःपर्ययज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर परकीय मनोगत मूर्त वस्तु को जिस प्रत्यक्ष से जानता है, वह मनःपर्ययज्ञान है। वह कितने प्रकार का है ? ***विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं*** ऋजुमति और विपुलमति के भेद से मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का है; वहाँ विपुलमतिज्ञान परकीय मन-वचन-काय सम्बन्धी वक्रावक्र (वक्र और सीधे) पदार्थ को जानता है और ऋजुमति प्राञ्जल (सीधे) को ही जानता है। विपुलमति निर्विकार आत्मोपलब्धि-भावना से सहित चरम शरीरी मुनियों के होता है। ***एदे संजमलद्धी*** दोनों मनःपर्ययज्ञान, संयमलब्धिरूप उपेक्षा संयम के होने पर होते हैं; वे दोनों

विपुलमतिर्भवति *एदे संजमलद्धी* एतौ मनःपर्ययौ संयमलब्धी उपेक्षासंयमे सति लब्धिर्ययोस्तौ संयमलब्धी मनःपर्ययौ भवतः। तौ च कस्मिन् काले समुत्पद्येते? *उवओगे* उपयोगे विशुद्धपरिणामे। कस्य? *अप्पमत्तस्स* वीतरागात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानभावनासहितस्य *'विकहा तहा कसाया'* इत्यादि गाथोक्तपञ्चदशप्रमादरहितस्याप्रमत्तमुनेरिति। अत्रोत्पत्तिकाल एवाप्रमत्तनियमः पश्चात्प्रमत्त-स्यापि संभवतीति भावार्थः॥ ४५॥

णाणं णेयणिमित्तं केवलणाणं ण होदि सुदणाणं। 卐
णेयं केवलणाणं णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो॥ ४६॥

***केवलणाणं णाणं णेयणिमित्तं ण होदि* केवलज्ञानं यज्ज्ञानं तद्घटपटादिज्ञेयार्थमाश्रित्य नोत्पद्यते। तर्हि श्रुतज्ञानस्वरूपं भविष्यति? *ण होदि सुदणाणं* यथा केवलज्ञानं ज्ञेयनिमित्तं न भवति तथा श्रुतज्ञानस्वरूपमपि न भवति *णेयं केवलणाणं* एवं पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञेयं ज्ञातव्यं केवलज्ञानम्। अयमत्रार्थः – यद्यपि दिव्यध्वनिकाले तदाधारेण गणधरदेवादीनां श्रुतज्ञानं परिणमति तथापि तच्छ्रुतज्ञानं**

संयमलब्धी हैं जिनके, वे संयमलब्धिवान हैं, उन्हें मनःपर्ययज्ञान होते हैं। वे दोनों किस समय उत्पन्न होते हैं? ***उवओगे*** उपयोग में, विशुद्धपरिणाम में उत्पन्न होते हैं। वे किसे होते हैं? ***अप्पमत्तस्स*** वीतरागी आत्मतत्त्व की सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप भावना से सहित तथा **'विकथा, कषाय...'** इत्यादि गाथा में कहे गए पन्द्रह प्रमादों से रहित अप्रमत्त मुनि के होते हैं। यहाँ उत्पत्ति के समय ही अप्रमत्त का नियम है, बाद में प्रमत्त के भी रहता है – ऐसा भावार्थ है॥ ४५॥

है ज्ञेय से निरपेक्ष केवलज्ञान, श्रुतमय है नहीं।
वह जानता सकलार्थ, ज्ञानाज्ञान केवलि के नहीं॥ ४६॥

गाथार्थ - केवलज्ञान, ज्ञेयनिमित्तक ज्ञान नहीं है; तथापि वह श्रुतज्ञान भी नहीं है; सम्पूर्ण ज्ञेयों को जाननेवाला केवलज्ञान है। केवली के कथञ्चित् ज्ञानाज्ञान नहीं है (सर्वथा ज्ञान ही है)।

टीकार्थ - ***केवलणाणं णाणं णेयणिमित्तं ण होदि*** केवलज्ञानरूप जो ज्ञान है, वह घट-पट आदि ज्ञेयपदार्थ का आश्रय लेकर उत्पन्न नहीं होता है। तब फिर वह श्रुतज्ञानस्वरूप होगा? ***ण होदि सुदणाणं*** जैसे केवलज्ञान ज्ञेयनिमित्तक नहीं है; उसी प्रकार श्रुतज्ञानस्वरूप भी नहीं है। ***णेयं केवलणाणं*** इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से केवलज्ञान जानना चाहिए।

यहाँ अर्थ यह है – यद्यपि दिव्यध्वनि के समय उसके आधार से गणधरदेवादि के श्रुतज्ञान परिणमित होता है; तथापि वह श्रुतज्ञान, गणधरदेव के ही है; केवली के तो केवलज्ञान ही है।

गणधरदेवादीनामेव न च केवलिनां केवलज्ञानमेव *णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो* न केवलं श्रुतज्ञानं नास्ति, केवलिनां ज्ञानाज्ञानं च नास्ति, क्वापि विषये ज्ञानं क्वापि विषये पुनरज्ञानमेव न, किंतु सर्वत्र ज्ञानमेव, अथवा मतिज्ञानादिभेदेन नानाभेदं ज्ञानं नास्ति, किंतु केवलज्ञानमेकमेवेति।

अत्र मतिज्ञानादिभेदेन यानि पञ्चज्ञानानि व्याख्यातानि तानि व्यवहारेणेति, निश्चयेनाखण्डैक-ज्ञानप्रतिभास एवात्मा निर्मेघादित्यवदिति भावार्थः॥ ४६॥

एवं मत्यादिपञ्चज्ञानव्याख्यानरूपेण गाथापञ्चकं गतम्।

अथाज्ञानत्रयं कथयति —

मिच्छत्ता अण्णाणं अविरदिभावो य भावआवरणा। 卐
णेयं पडुच्च काले तह दुण्णय दुप्पमाणं च॥ ४७॥

***मिच्छत्ता अण्णाणं* द्रव्यमिथ्यात्वोदयात्सकाशाद्भवतीति क्रियाध्याहारः। किं भवति ? *अण्णाणं अविरदिभावो य* ज्ञानमप्यज्ञानं भवति अत्राज्ञानशब्देन कुमत्यादित्रयं ग्राह्यम्। न केवलमज्ञानं भवति ?**

णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो केवली के मात्र श्रुतज्ञान ही नहीं है; इतना ही नहीं; अपितु उनके ज्ञानाज्ञान भी नहीं है; किसी विषय सम्बन्धी ज्ञान और किसी विषय सम्बन्धी अज्ञान हो, ऐसा उनके नहीं है; अपितु सर्वत्र ज्ञान ही है / वे सकलज्ञ हैं; अथवा मतिज्ञानादि के भेद से अनेक भेदवाला ज्ञान उनके नहीं है; मात्र एक केवलज्ञान ही है।

यहाँ मतिज्ञानादि भेद से जो पाँच प्रकार के ज्ञानों का व्याख्यान किया, वे व्यवहार से हैं; निश्चय से मेघावरणरहित सूर्य के समान आत्मा अखण्ड एक ज्ञान प्रतिभासमय है — यह भावार्थ है॥ ४६॥

इस प्रकार मतिज्ञानादि पाँच ज्ञान के व्याख्यानरूप से पाँच गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, तीन अज्ञानों को कहते हैं —

अज्ञान अविरति भाव भी मिथ्यात्व भावावरण से।
मिथ्या सभी सब ज्ञान दुर्नय दुष्प्रमाण कहे गए॥ ४७॥

गाथार्थ - मिथ्यात्व के कारण भाव आवरण से अज्ञान और अविरतिभाव, मिथ्यात्वरूप हो जाते हैं; ज्ञेयों को जानते समय (सभी नय) दुर्नय तथा (सभी प्रमाण) दुष्प्रमाण कहलाते हैं।

टीकार्थ - ***मिच्छत्ता अण्णाणं*** द्रव्य मिथ्यात्व के उदय से होता है — इस प्रकार यहाँ यह क्रिया अध्याहार है (ऊपर से लगा लेना); उससे क्या हो जाता है ? ***अण्णाणं अविरदिभावो***

अविरतिभावश्च अव्रतपरिणामश्च। कथंभूतान्मिथ्यात्वोदयादज्ञानमविरतिभावश्च भवति? *भाव-आवरणा* भावस्तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं भावसम्यक्त्वं तस्यावरणं झंपनं भावावरणं तस्माद्भावावरणा-द्भावमिथ्यात्वादित्यर्थः। पुनरपि किं भवति मिथ्यात्वात्? *तह दुण्णय दुप्पमाणं च* यथैवाज्ञानमविरति-भावश्च भवति तथा सुनयो दुर्नयो भवति प्रमाणं दुःप्रमाणं च भवति। कदा भवति? *काले* तत्त्वविचार-काले? किं कृत्वा? *पडुच्च* प्रतीत्याश्रित्य। किमाश्रित्य? *णेयं* ज्ञेयभूतं जीवादिवस्त्विति।

अत्र मिथ्यात्वाद्विपरीतं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं निश्चयसम्यक्त्वकारणभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं तस्य फलभूतं निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निश्चयसम्यक्त्वं चोपादेयं भवतीति भावार्थः॥ ४७॥

अथ दर्शनोपयोगभेदानां संज्ञां स्वरूपं च प्रतिपादयति —

दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं। (४२)
अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं॥ ४८॥

य ज्ञान भी अज्ञान हो जाता है। यहाँ अज्ञान शब्द से कुमति आदि तीन ग्रहण करना चाहिए। मात्र अज्ञान ही नहीं होता है; अपितु अविरतिभाव अव्रतपरिणाम हो जाता है। कैसे मिथ्यात्व के उदय से अज्ञान और अविरतिभाव होते हैं? ***भावावरणा*** तत्त्वार्थ — श्रद्धान लक्षणरूप भाव अर्थात् भावसम्यक्त्व, उसका आवरण झम्पन भावावरण है; उस भावावरण से, भावमिथ्यात्व से सहित; मिथ्यात्व के उदय से अज्ञान और अविरतिभाव होते हैं — ऐसा अर्थ है। उस मिथ्यात्व से और क्या होता है? ***तह दुण्णय दुप्पमाणं च*** जिस प्रकार अज्ञान और अविरतिभाव होता है; उसी प्रकार सुनय, दुर्नय हो जाते हैं तथा प्रमाण, दुष्प्रमाण हो जाते हैं। ये ऐसे कब हो जाते हैं? ***काले*** तत्त्वविचार के समय हो जाते हैं। क्या कर हो जाते हैं? ***पडुच्च*** आश्रय लेकर हो जाते हैं। किसका आश्रय लेकर हो जाते हैं? ***णेयं*** ज्ञेयभूत जीवादि वस्तुओं का आश्रय लेकर हो जाते हैं।

यहाँ मिथ्यात्व से विपरीत तत्त्वार्थ - श्रद्धानरूप निश्चय-सम्यक्त्व का कारणभूत व्यवहार-सम्यक्त्व और उसका फलभूत निर्विकार शुद्धात्मानुभूति लक्षण निश्चय-सम्यक्त्व ही उपादेय है — यह भावार्थ है॥ ४७॥

अब, दर्शनोपयोग के भेदों का नाम और स्वरूप प्रतिपादित करते हैं —

दर्शन कहा चक्षु अचक्षु, अवधिदर्शन भी कहा।
अनिधन अनंत विषयमयी, कैवल्यदर्शन है कहा॥ ४८॥

गाथार्थ - दर्शन भी चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और अनिधन / अविनाशी अनन्त विषयवाले केवलदर्शन के भेद से चार प्रकार का कहा गया है।

चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति दर्शनोपयोगभेदानां नामानि। अयमात्मा निश्चयनयेनानंताखण्डैकदर्शनस्वभावोऽपि व्यवहारनयेन संसारावस्थायां निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितेन कर्मणा झंपितः सन् चक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमे सति बहिरंगचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलंबनेन यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन पश्यति तच्चक्षुर्दर्शनं, शेषेन्द्रियनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति बहिरंग-द्रव्येन्द्रियद्रव्यमनोऽवलम्बनेन यन्मूर्तामूर्तं च वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन यथासंभवं पश्यति तदचक्षु-र्दर्शनं, स एवात्मावधिदर्शनावरणक्षयोपशमे सति यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन प्रत्यक्षं पश्यति तदवधिदर्शनं, रागादिदोषरहितचिदानन्दैकस्वभावनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिर्विकल्पध्यानेन निरवशेष-केवलदर्शनावरणक्षये सति जगत्त्रयकालत्रयवर्तिवस्तुगतसत्तासामान्यमेकसमयेन पश्यति तदनिधन-मनंतविषयं स्वाभाविकं केवलदर्शनं भवतीति।

अत्र केवलदर्शनाबिनाभूतानंतगुणाधारः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेय इत्यभिप्रायः॥ ४८॥

एवं दर्शनोपयोगव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता।

अथात्मनो ज्ञानादिगुणैः सह संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि निश्चयेन प्रदेशाभिन्नत्वं मत्याद्यनेक-

---

टीकार्थ - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन – ये दर्शनोपयोग के भेदों के नाम हैं। यह आत्मा निश्चयनय से अनन्त अखण्ड एक दर्शनस्वभावी होने पर भी व्यवहारनय से संसार अवस्था में निर्मल शुद्धात्मानुभूति के अभाव में उपार्जित कर्म द्वारा झम्पित होता हुआ चक्षुदर्शनावरण का क्षयोपशम होने पर और बहिरङ्ग चक्षुरूप द्रव्यइन्द्रिय का अवलम्बन होने पर जो मूर्त वस्तु को निर्विकल्प सत्तावलोकनरूप से देखता है, वह चक्षुदर्शन है। शेष इन्द्रियों और नोइन्द्रिय आवरण का क्षयोपशम होने पर तथा बहिरङ्ग द्रव्यइन्द्रिय और द्रव्यमन का अवलम्बन होने पर जो मूर्त और अमूर्त वस्तु को निर्विकल्प सत्तावलोकनरूप से यथासम्भव देखता है, वह अचक्षुदर्शन है। वही आत्मा अवधिदर्शनावरण का क्षयोपशम होने पर जो मूर्त वस्तु को निर्विकल्प सत्तावलोकनरूप से प्रत्यक्ष देखता है, वह अवधिदर्शन है। रागादि दोषरहित चिदानन्द एक स्वभावी निज शुद्धात्मानुभूति लक्षण निर्विकल्प ध्यान द्वारा निरवशेष सम्पूर्ण केवलदर्शनावरण का क्षय होने पर, तीन लोक, तीन कालवर्ती वस्तुओं सम्बन्धी सामान्यसत्ता को एक समय में देखता है, वह अनिधन / अविनाशी, अनन्त विषयवान स्वाभाविक केवलदर्शन है।

यहाँ केवलदर्शन के अबिनाभावी अनन्त गुणों का आधारभूत शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेय है – ऐसा अभिप्राय है॥ ४८॥

इस प्रकार दर्शनोपयोग के व्याख्यान की मुख्यता से गाथा पूर्ण हुई।

अब, आत्मा का ज्ञानादि गुणों के साथ संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद होने

ज्ञानत्वं च व्यवस्थापयति सूत्रत्रयेण —

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि।(४३)
तम्हा दु विस्सरूपं भणियं दवियत्ति णाणीहिं॥ ४९॥

ण वियप्पदि न विकल्पते न भेदेन पृथक् क्रियते। कोऽसौ ? *णाणी* ज्ञानी। कस्मात्सकाशात् ? *णाणादो* ज्ञानगुणात्। तर्हि ज्ञानमप्येकं भविष्यति ? नैवं। *णाणाणि होंति णेगाणि* मत्यादिज्ञानानि भवन्त्यनेकानि यस्मादनेकानि ज्ञानानि भवन्ति *तम्हा दु विस्सरूपं भणियं* तस्मात्कारणादनेकज्ञान-गुणापेक्षया विश्वरूपं भणितम्। किं ? *दवियत्ति* जीवद्रव्यमिति। कैर्भणितं ? *णाणीहिं* हेयोपादेयतत्त्व-विचारज्ञानिभिरिति।

तथाहि – एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात्, एकप्रदेशनिर्वृत्तत्वेनैकक्षेत्रत्वात्, एकसमयनिर्वृत्त-त्वेनैककालत्वात्, मूर्तैकजड़स्वरूपत्वेनैकस्वभावत्वाच्च परमाणोर्वर्णादिगुणैः सह यथा भेदो नास्ति;

पर भी, निश्चय से प्रदेशों की अभिन्नता और मति आदि अनेक ज्ञानता को तीन गाथाओं द्वारा व्यवस्थापित करते हैं —

है ज्ञान से न भिन्न ज्ञानी, ज्ञान सभी अनेक हैं।
इसलिए ज्ञानी द्रव्य को, कहते अनेकों रूप हैं॥ ४९॥

गाथार्थ – ज्ञानी को ज्ञान से पृथक् नहीं किया जा सकता है। ज्ञान, अनेक हैं; इसलिए ज्ञानियों ने द्रव्य को विश्वरूप / अनेकरूप कहा है।

टीकार्थ – ***ण वियप्पदि*** विकल्पित नहीं होता, भेद से पृथक् नहीं किया जा सकता। वह कौन पृथक् नहीं किया जा सकता ? ***णाणी*** ज्ञानी पृथक् नहीं किया जा सकता। किससे पृथक् नहीं किया जा सकता ? ***णाणादो*** ज्ञानगुण से पृथक् नहीं किया जा सकता।

प्रश्न – तब तो फिर ज्ञान भी एक होगा ?

उत्तर – ऐसा नहीं है। ***णाणाणि होंति णेगाणि*** मति आदि ज्ञान अनेक हैं, जिस कारण ज्ञान अनेक होते हैं; ***तम्हा दु विस्सरूपं भणियं*** उस कारण अनेक ज्ञानगुण की अपेक्षा विश्वरूप, अनेकरूप कहा गया है। कौन कहा गया है ? ***दवियत्ति*** जीवद्रव्य कहा गया है। किनके द्वारा कहा गया है ? ***णाणीहिं*** हेयोपादेय-विचारक ज्ञानियों द्वारा कहा गया है।

वह इस प्रकार – एक अस्तित्व से रचित होने के कारण एक द्रव्यत्व होने से, एक प्रदेश से रचित होने के कारण एक क्षेत्रत्व होने से, एक समय से रचित होने के कारण एक कालत्व होने से, मूर्त एक जड़स्वरूप होने के कारण एक स्वभावत्व होने से, जैसे परमाणु का वर्णादि गुणों

तथैवैकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात्, लोकाकाशप्रमितासंख्येयाखण्डैकप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात्, एक-समयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात्, एकचैतन्यनिर्वृत्तत्वेनैकस्वभावत्वाच्च ज्ञानादिगुणैः सह जीवद्रव्यस्यापि भेदो नास्ति; अथवा शुद्धजीवापेक्षया शुद्धैकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात्, लोकाकाशप्रमितासंख्येया-खण्डैकप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात्, निर्विकारचिच्चमत्कारमात्रपरिणतिरूपवर्तमानैकसमयनिर्वृत्तत्वेनैक-कालत्वात्, निर्मलैकचिज्ज्योतिः स्वरूपेणैकस्वभावत्वात् च सकलविमलकेवलज्ञानाद्यनंतगुणैः सह शुद्धजीवस्यापि भेदो नास्तीति भावार्थः ॥ ४९ ॥

अथ द्रव्यस्य गुणेभ्य एकांतेन प्रदेशास्तित्वभेदे सति गुणानां च द्रव्याद्भेदे सति दोषं दर्शयति –

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो हि गुणा य दव्वदो अण्णे। (४४)
दव्वाणंतियमहवा दव्वाभावं पकुव्वंति ॥ ५० ॥

जदि हवदि दव्वमण्णं यदि चेत् द्रव्यमन्यद्भवति। केभ्यः ? *गुणदो हि* गुणेभ्यः *गुणा य*

के साथ भेद नहीं है; उसी प्रकार एक अस्तित्व से रचित होने के कारण एक द्रव्यत्व होने से, लोकाकाश प्रमाण असंख्येय अखण्ड एक प्रदेश होने के कारण एक क्षेत्रत्व होने से, एक समय से रचित होने के कारण एक कालत्व होने से, एक चैतन्य से रचित होने के कारण एक स्वभावत्व होने से, जीवद्रव्य का भी ज्ञानादि गुणों के साथ भेद नहीं है।

अथवा शुद्धजीव की अपेक्षा शुद्ध एक अस्तित्व से रचित होने के कारण एक द्रव्यत्व होने से, लोकाकाशप्रमाण असंख्येय अखण्ड एक शुद्ध प्रदेशत्व होने के कारण एक क्षेत्रत्व होने से, निर्विकार चित् चमत्कारमात्र परिणतिरूप वर्तमान एक समय से रचित होने के कारण एक कालत्व होने से और निर्मल एक चित् ज्योतिस्वरूप होने के कारण एक स्वभावत्व होने से सकल-विमल केवलज्ञानादि अनन्त गुणों के साथ शुद्ध जीव का भी भेद नहीं है – ऐसा भावार्थ है ॥ ४९ ॥

अब, द्रव्य का गुणों से सर्वथा प्रदेशास्तित्वरूप भेद होने पर तथा गुणों का द्रव्य से भेद होने पर दोष दिखाते हैं –

हो द्रव्य गुण से अन्य या, फिर द्रव्य से गुण अन्य हों।
तो द्रव्य की हो अनंतता या, द्रव्य का ही नाश हो ॥ ५० ॥

गाथार्थ - यदि द्रव्य, गुण से (सर्वथा) अन्य हो तथा गुण, द्रव्य से अन्य हों तो (या तो) द्रव्य की अनन्तता होगी या द्रव्य का अभाव हो जाएगा।

टीकार्थ - ***जदि हवदि दव्वमण्णं*** यदि द्रव्य अन्य है। किससे अन्य है ? ***गुणदो हि*** गुणों से अन्य है। ***गुणा य दव्वदो अण्णे*** और यदि गुण, द्रव्य से अन्य, भिन्न हैं, तब क्या दोष

***दव्वदो अण्णे* गुणाश्च द्रव्यतो यद्यन्ये भिन्ना भवन्ति। तदा किं दूषणं ? *दव्वाणंतियं* गुणेभ्यो द्रव्यस्य भेदे सत्येकद्रव्यस्यापि आनंत्यं प्राप्नोति *अहवा दव्वाभावं पकुव्वंति* अथवा द्रव्यात्सकाशाद्यद्यन्ये भिन्ना गुणा भवन्ति तदा द्रव्यस्याभावं प्रकुर्वंतीति।**

तद्यथा – गुणाः साश्रया वा निराश्रया वा ? साश्रयपक्षे दूषणं दीयते। अनंतज्ञानादयो गुणास्तावत् क्वचिच्छुद्धात्मद्रव्ये समाश्रिताः यत्रात्मद्रव्ये समाश्रिताः तदन्यदगुणेभ्यश्चेत् पुनरपि क्वचिज्जीवद्रव्यांतरे समाश्रितास्तदप्यन्यद्गुणेभ्यश्चेत् पुनरपि क्वचिदात्मद्रव्यांतरे समाश्रिता। एवं शुद्धात्मद्रव्यादनंतज्ञानादि-गुणानां भेदे सति भवति शुद्धात्मद्रव्यानंत्यम्। अथोपादेयभूतपरमात्मद्रव्ये गुणगुणिभेदे सति द्रव्यानंत्यं व्याख्यातं तथा हेयभूताशुद्धजीवद्रव्येऽपि पुद्गलादिष्वपि योजनीयम् अथवा गुणगुणिभेदैकांते सति विवक्षिताविवक्षितैकैकगुणस्य विवक्षिताविवक्षितैकैकद्रव्याधारे सति भवति द्रव्यानंत्यम्। द्रव्यात्सका-शान्निराश्रयभिन्नगुणानां भेदे द्रव्याभावः कथ्यते गुणानां समुदायो द्रव्यं भण्यते गुणसमुदायरूपद्रव्या-द्गुणानां भेदैकांते सति गुणसमुदायरूपं द्रव्यं क्वास्ति ? न क्वापीति भावार्थः॥ ५०॥

होगा ? ***दव्वाणंतियं*** गुणों से द्रव्य का भेद होने पर एक द्रव्य के ही अनन्तता प्राप्त होती है; ***अहवा दव्वाभावं पकुव्वंति*** अथवा यदि द्रव्य से गुण भिन्न होते हैं तो द्रव्य का अभाव हो जाता है।

वह इस प्रकार – गुण आश्रयसहित हैं या आश्रयरहित हैं। आश्रयसहित के पक्ष में दोष देते हैं - अनन्त ज्ञानादि गुण किसी शुद्धात्मद्रव्य में समाश्रित हैं। जिस आत्मद्रव्य में वे समाश्रित हैं, वह यदि गुणों से भिन्न हो गया तो वे और किसी दूसरे जीवद्रव्य में समाश्रित होंगे; वह भी यदि गुणों से भिन्न हो गया तो पुनरपि वे किसी अन्य आत्मद्रव्य में समाश्रित होंगे – इस प्रकार शुद्धात्मद्रव्य में अनन्त ज्ञानादि गुणों का भेद होने पर (एक ही) शुद्धात्मद्रव्य के अनन्तता आ जाएगी।

जिस प्रकार उपादेयभूत परमात्मद्रव्य में गुण-गुणी का भेद होने पर द्रव्य की अनन्तता का व्याख्यान किया; उसी प्रकार हेयभूत अशुद्ध जीवद्रव्य में भी तथा पुद्गलादि में भी लगा लेना चाहिए।

अथवा गुण-गुणी भेद का एकान्त होने पर, विवक्षित-अविवक्षित एक-एक गुण का विवक्षित-अविवक्षित एक-एक द्रव्य आधार होने पर द्रव्य के अनन्तता होती है।

अब, द्रव्य के आश्रय से रहित भिन्न गुणों के भेद में द्रव्य का अभाव कहते हैं – गुणों का समुदाय, द्रव्य कहलाता है। गुण समुदायरूप द्रव्य से गुणों का एकान्त (सर्वथा) भेद होने पर, गुण समुदायरूप द्रव्य कहाँ रहा ? कहीं भी नहीं यह भावार्थ है॥ ५०॥

द्रव्यगुणानां यथोचितमभिन्नप्रदेशमनन्यत्वं प्रदर्शयति —

अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमणत्तं। (४५)
णेच्छंति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं॥ ५१॥

अविभत्तमणण्णत्तं अविभक्तमनन्यत्वं मन्यत इति क्रियाध्याहारः। केषां? *दव्वगुणाणं* द्रव्यगुणानामिति। तथाहि — यथा परमाणोर्वर्णादिगुणैः सहानन्यत्वमभिन्नत्वम्। कथंभूतं तत्? अविभक्तमभिन्नप्रदेशत्वं तथा शुद्धजीवद्रव्ये केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपः स्वभावगुणानां तथैवाशुद्धजीवे मतिज्ञानादिव्यक्तिरूपविभावगुणानां शेषद्रव्याणां गुणानां च यथासंभवमभिन्नप्रदेशलक्षणमनन्यत्वं ज्ञातव्यं *विभत्तमणत्तं णेच्छंति* विभक्तमन्यत्वं नेच्छन्ति। तद्यथा — अन्यत्वं भिन्नत्वं न मन्यंते। कथंभूतं तत्? विभक्तं भिन्नप्रदेशं सह्यविंध्ययोरिव। के नेच्छन्ति? *णिच्चयण्हू* निश्चयज्ञा जैनाः न केवलं भिन्नप्रदेशमन्यत्वं नेच्छन्ति *तव्विवरीदं हि वा* तद्विपरीतं वा *तेसिं* तेषां द्रव्यगुणानां तस्मादन्यत्वाद्विपरीतं

अब, द्रव्य-गुणों के यथोचित (कथञ्चित्) अभिन्न प्रदेशरूप अनन्यता प्रदर्शित करते हैं —

वस्तुज्ञ को गुण द्रव्य की, अविभक्तरूप अनन्यता।
है मान्य पर न मान्य है, सविभक्त अन्यानन्यता॥ ५१॥

गाथार्थ - द्रव्य और गुणों के अविभक्तरूप अनन्यता है। निश्चय के ज्ञाता उनके (द्रव्य -गुणों के) विभक्तरूप अन्यता या उससे विपरीत विभक्तरूप अनन्यता स्वीकार नहीं करते हैं।

टीकार्थ - ***अविभत्तमणण्णत्तं*** अविभक्तरूप अनन्यता मानते हैं — इस प्रकार क्रिया अध्याहार है (ऊपर से ले लेना)। किनकी मानते हैं? ***दव्वगुणाणं*** द्रव्य-गुणों की मानते हैं। वह इस प्रकार — जैसे परमाणु का वर्णादि गुणों के साथ अनन्यत्व, अभिन्नत्व है। वह अभिन्नत्व कैसा है? वह अविभक्तरूप अभिन्न प्रदेशत्व है; उसी प्रकार शुद्ध जीवद्रव्य में केवलज्ञानादि की व्यक्ति / प्रगटतारूप स्वभावगुणों का, अशुद्ध जीव में मतिज्ञानादि की व्यक्तिरूप विभावगुणों का और शेष द्रव्यों-गुणों का यभासम्भव अभिन्न प्रदेश लक्षण अनन्यत्व जानना चाहिए।

विभत्तमणत्तं णेच्छन्ति विभक्तरूप अन्यत्व नहीं मानते हैं। वह इस प्रकार-अन्यत्व, भिन्नत्व नहीं मानते हैं। वह कैसा नहीं मानते हैं? सह्य और विन्ध्य के समान विभक्तरूप भिन्न प्रदेश नहीं मानते हैं। कौन नहीं मानते हैं? ***णिच्चयण्हू*** निश्चय को जाननेवाले जैन नहीं मानते हैं। वे मात्र भिन्न प्रदेशरूप अन्यत्व नहीं मानते; इतना ही नहीं; अपितु ***तव्विवरीदं हि वा*** उससे विपरीत भी ***तेसिं*** उन द्रव्य-गुणों का नहीं मानते हैं; उससे अन्य होने के कारण विपरीत, तद्विपरीत; इसका अनन्यत्व ऐसा अर्थ है। वह किस विशेषतावाला होने पर भी नहीं मानते हैं?

तद्विपरीतमनन्यत्वमित्यर्थः। तदपि किं विशिष्टं नेच्छन्ति? एकक्षेत्रावगाहेऽपि भिन्नतोयपयसोरिव। कस्मान्नैच्छंतीति चेत्सह्यविंध्ययोरिव तोयपयसोरिव तेषां द्रव्यगुणानां भिन्नप्रदेशाभावादिति।

अथवा अनन्यत्वमभिन्नत्वं नेच्छन्ति द्रव्यगुणानाम्। कथंभूतं तत्? अविभक्तं एकान्तेन यथा प्रदेशरूपेणाभिन्नं तथा संज्ञादिरूपेणाप्यभिन्नं नेच्छन्ति। न केवलमित्थंभूतं अनन्यत्वं नेच्छन्ति। अन्यत्वं भिन्नत्वमपि नेच्छंति। कथंभूतं? विभक्तं एकांतेन यथा संज्ञादिरूपेण भिन्नं तथा प्रदेशरूपेणापि भिन्नम्। न केवलमेकांतेनानन्यत्वमन्यत्वं च नेच्छंति *तव्विवरीदे हि वा तेसिं* इति पाठांतरं तद्विपरीताभ्यां वा ताभ्यां द्रव्यगुणानामनन्यत्वान्यत्वे नेच्छन्ति किंतु परस्परसापेक्षत्वेनेच्छंतीत्यर्थः।

अत्र गाथासूत्रे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वादन्यत्वरूपा ये विषयकषायास्तै रहितानां तस्मादेव परमचैतन्यरूपात् परमात्मतत्त्वात् यदनन्यत्वस्वरूपं निर्विकल्पपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसा-

---

भिन्न (स्वभावी) दूध-पानी के समान, एक क्षेत्रावगाह होने पर भी भिन्न प्रदेश नहीं मानते हैं। वे ऐसा क्यों नहीं मानते हैं? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — सह्य-विन्ध्य के समान, दूध-पानी के समान, उन द्रव्य-गुणों के भिन्न प्रदेशों का अभाव होने से, वे ऐसा नहीं मानते हैं।

अथवा द्रव्य-गुणों का सर्वथा अनन्यत्व, अभिन्नत्व नहीं मानते हैं। किसरूप में नहीं मानते हैं? जैसे वे प्रदेशों की अपेक्षा अभिन्न हैं; उसी प्रकार संज्ञा आदि की अपेक्षा भी अभिन्न हैं — ऐसा एकान्त / सर्वथा अविभक्त नहीं मानते हैं। मात्र इस प्रकार का अनन्यत्व नहीं मानते, इतना ही नहीं; अपितु अन्यत्व, भिन्नत्व भी नहीं मानते हैं। वह किसरूप में नहीं मानते हैं? जैसे संज्ञादि की अपेक्षा भिन्न हैं; उसी प्रकार प्रदेशों की अपेक्षा भी भिन्न हैं — इस प्रकार एकान्त / सर्वथा विभक्त नहीं मानते हैं। मात्र सर्वथा अनन्यत्व-अन्यत्व नहीं मानते हैं, इतना ही नहीं; अपितु ***तव्विवरीदे हि वा तेसिं*** इस प्रकार पाठान्तर होने से, उन दोनों से विपरीत अथवा परस्पर सापेक्ष अनन्यत्व-अन्यत्व से विपरीत, निरपेक्ष नहीं मानते हैं; उन दोनों से विपरीत तद्विपरीत (तृतीया तत्पुरुष) अथवा उन दोनों विपरीतों से — ऐसा विश्लेषण कर, उन द्रव्य-गुणों का सर्वथा अनन्यत्व-अन्यत्व नहीं मानते हैं; किन्तु परस्पर सापेक्षरूप से स्वीकार करते हैं — ऐसा अर्थ है।

यहाँ इस गाथा-सूत्र में विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावी आत्मतत्त्व से अन्यत्वरूप जो विषय-कषाय हैं, उनसे रहित तथा उसी परम चैतन्यरूप परमात्मतत्त्व से जो अनन्यत्वस्वरूप निर्विकल्प, परमाह्लाद, एकरूप सुखामृतरसमय आस्वाद अनुभवन, उससे सहित पुरुषों को जो लोकाकाशप्रमाण असंख्येय शुद्ध प्रदेशों के साथ केवलज्ञानादि गुणों का अनन्यत्व है, वह ही उपादेय है — ऐसा भावार्थ है॥५१॥

स्वादानुभवनं तत्सहितानां च पुरुषाणां यदेव लोकाकाशप्रमितासंख्येयशुद्धप्रदेशैः सह केवलज्ञानादिगुणानामनन्यत्वं तदेवोपादेयमिति भावार्थः ॥ ५१ ॥

इति गुणगुणिनोः संक्षेपेण भेदाभेदव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतम्।

अथ व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानामेकांतेन भिन्नत्वं न साधयंतीति समर्थयति –

ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा। (४६)
ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जंते॥ ५२॥

ववदेसा संठाणा संखा विसया य व्यपदेशाः संस्थानानि संख्या विषयाश्च *होंति* भवन्ति *ते* ते पूर्वोक्तव्यपदेशादयः। कतिसंख्योपेताः ? *बहुगा* प्रत्येकं बहवः *ते तेसिमणण्णत्ते विज्जंते* ते व्यपदेशादयस्तेषां द्रव्यगुणानां कथंचिदनन्यत्वे विद्यंते। न केवलमनन्यत्वे विद्यंते। *अण्णत्ते चावि* कथंचिदन्यत्वे चापि। नैयायिकाः किल वदन्ति द्रव्यगुणानां यद्येकांतेन भेदो नास्ति तर्हि व्यपदेशादयो न घटंते ? तत्रोत्तरमाहुः – द्रव्यगुणानां कथंचिद्भेदे तथैवाभदेऽपि व्यपदेशादयः संतीति।

इस प्रकार संक्षेप में गुण-गुणी के भेदाभेद व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, द्रव्य-गुणों के व्यपदेश (नाम) आदि भी (उनमें) एकान्त (सर्वथा) भिन्नत्व सिद्ध नहीं करते हैं; इसका समर्थन करते हैं –

व्यपदेश व संस्थान संख्या, विषय बहुधा हैं कहे।
विद्यमान हैं तो भी अनन्यता, अन्यता उन सभी के॥ ५२॥

गाथार्थ - वे व्यपदेश, संस्थान, संख्या और विषय अनेक हैं; तथापि वे उनके (द्रव्य-गुणों के) अनन्यत्व-अन्यत्व में भी विद्यमान रहते हैं।

टीकार्थ - ***ववदेसा संठाणा संखा विसया य*** व्यपदेश (नाम), संस्थान (आकार), संख्या और विषयवाले ***होंति*** हैं, ***ते*** वे पूर्वोक्त व्यपदेश आदि। वे कितनी संख्यासहित हैं ? ***बहुगा*** प्रत्येक अनेक संख्यासहित हैं। ***ते तेसिमणण्णत्ते विज्जन्ते*** उन द्रव्य-गुणों के वे व्यपदेश आदि कथञ्चित् अनन्यत्व हैं, मात्र अनन्यत्व ही नहीं हैं; अपितु ***अण्णत्ते चावि*** कथञ्चित् अन्यत्व भी हैं।

नैयायिक कहते हैं कि यदि द्रव्य-गुणों के एकान्त / सर्वथा भेद नहीं है तो व्यपदेशादि घटित नहीं होते हैं ? उनके प्रति उत्तर देते हैं – द्रव्य-गुणों के कथञ्चित् भेद और उसी प्रकार कथञ्चित् अभेद में भी व्यपदेशादि घटित हो जाते हैं। वह इस प्रकार –

षट्कारक के भेद से **संज्ञा** (नाम) दो प्रकार की है। देवदत्त की गाय – इस प्रकार

तद्यथा – षट्कारकभेदेन संज्ञा द्विविधा भवति देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्वे व्यपदेशः, तथैव वृक्षस्य शाखा जीवस्यानंतज्ञानादिगुणा इत्यनन्यत्वेऽपि व्यपदेशः। कारकसंज्ञा कथ्यते - देवदत्तः कर्ता फलं कर्मतापन्नमंकुशेन करणभूतेन धनदत्ताय निमित्तं वृक्षात्सकाशाद्वाटिकायामधिकरणभूतायाम-वच्छिनोतीत्यन्यत्वे कारकसंज्ञा तथैवात्मा कर्तात्मानं कर्मतापन्नमात्मना करणभूतेनात्मने निमित्तमात्मनः सकाशादात्मन्यधिकरणभूते ध्यायतीत्यनन्यत्वेऽपि कारकसंज्ञा। दीर्घस्य देवदत्तस्य दीर्घो गौरित्यन्यत्वे संस्थानं, दीर्घस्य वृक्षस्य दीर्घशाखाभारः मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यभेदे च संस्थानम्। संख्या कथ्यते – देवदत्तस्य दशगाव इत्यन्यत्वे संख्या, तथैव वृक्षस्य दशशाखा, द्रव्यस्यानंतगुणा इत्यभेदेऽपि। विषयः कथ्यते – गोष्ठे गावः इति भेदे विषयः तथैव द्रव्ये गुणा इत्यभेदेऽपि। एवं व्यपदेशादयो भेदाभेदाभ्यां घटंते तेन कारणेन द्रव्यगुणानामेकांतेन भेदं न साधयंतीति।

अत्र गाथायां नामकर्मोदयजनितनरनारकादिरूपव्यपदेशाभावोऽपि शुद्धजीवास्तिकायशब्देन

अन्यत्व में भी व्यपदेश (नाम) होता है; और उसी प्रकार वृक्ष की शाखा, जीव के अनन्त ज्ञानादि गुण – इस प्रकार अनन्यत्व में भी व्यपदेश होता है। यहाँ (भिन्न) कारक **संज्ञा** कहते हैं – कर्तारूप देवदत्त, कर्मता को प्राप्त फल को, करणभूत अंकुश द्वारा, (सम्प्रदान) निमित्तरूप धनदत्त के लिए, अपादानरूप वृक्ष से, अधिकरणभूत वाटिका में से तोड़ता है – इस प्रकार भिन्नता में कारक संज्ञा है; उसी प्रकार कर्तारूप आत्मा, कर्मता को प्राप्त आत्मा को, करणभूत आत्मा द्वारा, (सम्प्रदान) निमित्तरूप आत्मा के लिए, अपादानरूप आत्मा से, अधिकरणभूत आत्मा में ध्याता है – इस प्रकार अनन्यत्व में भी कारक **संज्ञा** है।

संस्थान - दीर्घ (बड़े आकारवाले) देवदत्त की दीर्घ गाय है – यह अन्यत्व में संस्थान है। दीर्घ वृक्ष का दीर्घ शाखाभार, मूर्तद्रव्य के मूर्तगुण – यह अभेद में संस्थान है।

संख्या - देवदत्त की दश गायें हैं – इस प्रकार अन्यत्व में संख्या है; उसी प्रकार वृक्ष की दश शाखा हैं, द्रव्य के अनन्त गुण हैं – इस प्रकार अभेद में भी संख्या है।

विषय - गोष्ठ (गोशाला) में गायें हैं – इस प्रकार भेद में विषय है; उसी प्रकार द्रव्य में गुण हैं – इस प्रकार अभेद में भी विषय है।

इस प्रकार व्यपदेश आदि भेदाभेद दोनों में घटित होते हैं; उस कारण वे द्रव्य-गुणों के (मध्य) एकान्त / सर्वथा भेद सिद्ध नहीं करते हैं।

यहाँ गाथा में नामकर्मोदयजनित मनुष्य-नारक आदिरूप व्यपदेश का अभाव होने पर भी, शुद्ध जीवास्तिकाय शब्द से व्यपदेश / वाच्य / कहने-योग्य; निश्चयनय से समचतुरस्र आदि

व्यपदेश्यं वाच्यं, निश्चयनयेन समचतुरस्त्रादिषट्संस्थानरहितमपि व्यवहारेण भूतपूर्वकन्यायेन किंचिदून-चरमशरीराकारेण संस्थानं, केवलज्ञानाद्यनंतगुणरूपेणानंतसंख्यानमपि लोकाकाशप्रमितासंख्येयशुद्ध-प्रदेशरूपेणासंख्यातसंख्यानं, पञ्चेन्द्रियविषयसुखरसास्वादरतानामविषयमपि पञ्चेन्द्रियविषयातीत-शुद्धात्मभावनोत्पन्नवीतरागसदानन्दैकसुखरूपसर्वात्मप्रदेशपरमसमरसीभावपरिणतध्यानविषयं च यच्छुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तदेवोपादेयमिति तात्पर्यम्॥ ५२॥

अथ निश्चयेन भेदाभेदोदाहरणं कथ्यते -

णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।(४७)
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू॥ ५३॥

***णाणं धणं च कुव्वदि* ज्ञानं कर्तृ धनं च कर्तृ करोति। किं करोति? *धणिणं णाणिणं च* धनिनं ज्ञानिनं च करोति *दुविहेहिं* द्वाभ्यां नयाभ्यां व्यवहारनिश्चयाभ्यां *जह* यथा *भण्णंति* भणन्ति *तह* तथा। किं भणन्ति? *पुधत्तं एयत्तं चावि* पृथक्त्वमेकत्वं चापि। के भणन्ति? *तच्चण्हू* इति।**

छह संस्थानों से रहित होने पर भी, भूतपूर्व प्रज्ञापन न्यायरूप व्यवहार से कुछ कम अन्तिम शरीराकार से संस्थानवाला; केवल ज्ञानादि अनन्त-गुणरूप से अनन्त संख्यावाला होने पर भी, लोकाकाश-प्रमाण शुद्ध / मात्र असंख्येय प्रदेशरूप से असंख्यात संख्यावाला; पञ्चेन्द्रिय विषयसुखरूप रसास्वाद में लीन जीवों का अविषय होने पर भी पञ्चेन्द्रिय विषयातीत शुद्धात्मभावना से उत्पन्न वीतराग सदानन्द एक सुखरूप सर्वात्मप्रदेश परम समरसीभावमय परिणत ध्यान का विषयभूत जो शुद्ध जीवास्तिकाय का स्वरूप है, वह ही उपादेय है – ऐसा तात्पर्य है॥ ५२॥

अब, निश्चय से भेदाभेद का उदाहरण कहा जाता है –

है ज्ञान से ज्ञानी तथा, धन से धनी द्विविध बनें।
पृथक्त्व व एकत्व यों ही, तत्त्वज्ञानी यों कहें॥ ५३॥

गाथार्थ - जिस प्रकार ज्ञान और धन (जीव को) ज्ञानी और धनी – दो प्रकार से करते हैं; उसी प्रकार तत्त्वज्ञ पृथक्त्व और एकत्व कहते हैं।

टीकार्थ - ***णाणं धणं च कुव्वदि*** ज्ञान और धनरूप कर्ता करते हैं। क्या करते हैं? ***धणिणं णाणिणं च*** धनी और ज्ञानी ***दुविधेहिं*** व्यवहार और निश्चय दो नयों से करते हैं, ***जह*** जैसे। ***भणन्ति*** कहते हैं ***तह*** उसी प्रकार; क्या कहते हैं? ***पुधत्तं एयत्तं चावि*** पृथक्त्व और एकत्व को भी कहते हैं। कौन कहते हैं? ***तच्चण्हू*** तत्त्वज्ञ कहते हैं।

तद्यथा – भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य पुरुषस्य भिन्नव्यपदेशं भिन्नव्यपदेशस्य भिन्नसंस्थानं भिन्नसंस्थानस्य भिन्नसंख्यं भिन्नसंख्यस्य भिन्नविषयलब्धवृत्तिकं भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य धनं कर्तृ पृथक्त्वप्रकारेण धनीति व्यपदेशं करोति यथा तथैव चाभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तं ज्ञानमभिन्नास्तित्व-निर्वृत्तस्य पुरुषस्य अभिन्नव्यपदेशमभिन्नव्यपदेशस्य अभिन्नसंस्थानमभिन्नसंस्थानस्य अभिन्नसंख्यमभिन्न-संख्यस्य अभिन्नविषयलब्धवृत्तिकमभिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य ज्ञानं कर्तृ पुरुषस्यापृथक्त्वप्रकारेण ज्ञानीति व्यपदेशं करोति। दृष्टांतव्याख्यानं गतम्। तथान्यत्र दार्ष्टांतपक्षेऽपि अत्र विवक्षितद्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशादयो भवन्ति तत्र निश्चयेन भेदो ज्ञातव्यः पूर्वगाथाकथितक्रमेण देवदत्तस्य गौरित्यादि। यत्र पुनरपि व्यपदेशादयो भवन्ति तत्र निश्चयेनाभेदो ज्ञातव्यः वृक्षस्य शाखा जीवस्य वानंतज्ञानादयो गुणा इत्यादिवदिति।

अत्र सूत्रे यदेव जीवेन सहाभिन्नव्यपदेशं अभिन्नसंस्थानं अभिन्नसंख्यं अभिन्नविषयलब्धवृत्तिकं च तज्जीवं ज्ञानिनं करोति यस्यैवालाभादनादिकालं नरनारकादिगतिषु भ्रमितोऽयं जीवो यदेव मोक्षवृक्षस्य बीजभूतं यस्यैव भावनाबलादक्रमसमाक्रांतः समस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावजातं तस्यैव फलभूतं सकल-

---

वह इस प्रकार – जैसे भिन्न अस्तित्व से रचित पुरुष को, भिन्न अस्तित्व से रचित; भिन्न व्यपदेशवाले को, भिन्न व्यपदेशवाला; भिन्न संस्थानवाले को, भिन्न संस्थानवाला; भिन्न संख्यावाले को, भिन्न संख्यावाला; भिन्न विषयलब्धवृत्तिक को, भिन्न विषयलब्धवृत्तिक कर्तारूप धन पृथक्त्व प्रकार से 'धनी' – ऐसा नाम करता है; उसी प्रकार अभिन्न अस्तित्व से रचित ज्ञान, अभिन्न अस्तित्व से रचित पुरुष को; अभिन्न नामवाला, अभिन्न नामवाले को; अभिन्न आकारवाला, अभिन्न आकारवाले को; अभिन्न संख्यावाला, अभिन्न संख्यावाले को; अभिन्न विषयलब्धवृत्तिक पुरुष को, अभिन्न विषयलब्धवृत्तिक कर्तारूप ज्ञान, अपृथक्त्व प्रकार से 'ज्ञानी' ऐसा नाम करता है। दृष्टान्त व्याख्यान पूर्ण हुआ।

उसी प्रकार अन्यत्र दार्ष्टान्त पक्ष में भी जहाँ विवक्षित द्रव्य के भेद से व्यपदेश आदि होते हैं, वहाँ देवदत्त की गाय इत्यादि पूर्व गाथा में कहे गए क्रम से निश्चय से (वास्तव में) भेद जानना चाहिए और जहाँ अभेद से व्यपदेश आदि होते हैं, वहाँ वृक्ष की शाखा या जीव के अनन्त ज्ञानादि गुण इत्यादि के समान, निश्चय से अभेद जानना चाहिए।

इस गाथा में जो जीव के साथ अभिन्न व्यपदेश, अभिन्न संस्थान, अभिन्न संख्या और अभिन्न विषयलब्धवृत्तिकवाला ज्ञान है, वही जीव को ज्ञानी करता है। जिसकी प्राप्ति न होने से यह जीव अनादि काल से नर-नारकादि गति में भ्रमण कर रहा है, जो मोक्षरूपी वृक्ष का बीजभूत है, जिसकी ही भावना के बल से उसका ही फलभूत समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के समूह को

विमलकेवलज्ञानं जायते तदेव निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानं भावनीयं ज्ञानिभिरित्यभिप्राय: ॥ ५३ ॥

अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यंतभेदे दोषं दर्शयति –

णाणी णाणं च तहा अत्थंतरिदो दु अण्णमण्णस्स। (४८)
दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥ ५४ ॥

***णाणी* ज्ञानी जीव: *णाणं च तहा* ज्ञानगुणोऽपि तथैव *अत्थंतरिदो दु* अर्थांतरितो भिन्नस्तु यदि भवति। कथं ? *अण्णमण्णस्स* अन्योन्यसम्बन्धित्वेन। तदा किं दूषणं ? *दोण्हं अचेदणत्तं* द्वयोर्ज्ञानज्ञानिनोरचेतनत्वं जडत्वं *पसजदि* प्रसजति प्राप्नोति। तच्च जड़त्वं कथंभूतं ? *सम्मं जिणावमदं* सम्यक्प्रकारेण जिनानामवमतमसम्मतमिति।**

तथाहि – यथाग्नेर्गुणिन: सकाशादत्यंतभिन्न: सन्नुष्णत्वलक्षणो गुणो दहनक्रियां प्रत्यसमर्थ: सन्निश्चयेन शीतलो भवति तथा ज्ञानगुणादत्यंतभिन्न: सन् जीवो गुणी पदार्थविच्छित्तिं प्रत्यसमर्थ: सन्निश्चयेन जड़ो भवति। अथ मतं यथा भिन्नदात्रोपकरणेन देवदत्तो लावको भवति तथा भिन्नज्ञानेन

युगपत् जाननेवाला सकल विमल केवलज्ञान उत्पन्न होता है; वही निर्विकार स्वसम्वेदनज्ञान, ज्ञानियों द्वारा भावना करने-योग्य है – ऐसा अभिप्राय है ॥ ५३ ॥

अब, ज्ञान और ज्ञानी के अत्यन्त भेद में दोष दिखाते हैं –

यदि ज्ञान ज्ञानी के सदा हो, परस्पर में भिन्नता।
तो जिनों को जो मान्य ना हो प्राप्त ऐसी अचितता ॥ ५४ ॥

गाथार्थ - यदि ज्ञानी और ज्ञान सदा परस्पर अर्थान्तरभूत / पूर्ण भिन्न हों तो दोनों को अचेतनता का प्रसङ्ग आएगा; जो सम्यक् प्रकार से जिनों को सम्मत नहीं है।

टीकार्थ - ***णाणी*** ज्ञानी जीव, ***णाणं च तहा*** उसी प्रकार ज्ञानगुण भी ***अत्थंतरिदो दु*** यदि अर्थांतरित, भिन्न हैं। वे कैसे भिन्न हैं ? ***अण्णमण्णस्स*** परस्पर सम्बन्ध से पूर्णतया भिन्न हैं। तब क्या दोष है ? ***दोण्हं अचेदणत्तं*** तो ज्ञान और ज्ञानी दोनों के अचेतनता / जड़ता का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। और वह जड़त्व कैसा है ? ***सम्मं जिणावमदं*** सम्यक् प्रकार से जिनों को सम्मत नहीं है।

वह इस प्रकार – जैसे अग्निरूप गुणी से अत्यन्त भिन्न होता हुआ उष्णता लक्षणरूप गुण दहनक्रिया के प्रति (जलाने में) असमर्थ होता हुआ, निश्चय से शीतल होता है; उसी प्रकार ज्ञानगुण से अत्यन्त भिन्न होता हुआ जीव रूपी गुणी पदार्थों को जानने के प्रति असमर्थ होता हुआ जड़ होता है।

ज्ञानी भवतीति। नैवं वक्तव्यम्। छेदनक्रियां प्रति दात्रं बाह्योपकरणं वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितः पुरुषस्य शक्तिविशेषस्तत्राभ्यंतरोपकरणं शक्त्यभावे दात्रोपकरणे हस्तव्यापारे च सति छेदनक्रिया नास्ति, तथा प्रकाशोपाध्यायादिबहिरंगसहकारीसद्भावे सत्यभ्यंतरज्ञानोपकरणाभावे पुरुषस्य पदार्थपरिच्छित्तिक्रिया न भवतीति।

अत्र यस्य ज्ञानस्याभावाज्जीवो जड़ः सन् वीतरागसहजसुंदरानंदस्यन्दिपारमार्थिकसुखमुपादेयम-जानन् संसारे परिभ्रमति तदेव रागादिविकल्परहितं निजशुद्धात्मानुभूतिज्ञानमुपादेयमिति भावार्थः ॥ ५४॥

एवं व्यपदेशादिव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतम्।

अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यंतभेदे सति समवायसम्बन्धेनाप्येकत्वं कर्तुं नायातीति प्रतिपादयति –

यहाँ कोई कहता है कि जैसे भिन्न दात्र (हसिया) रूप उपकरण से देवदत्त लावक (काटनेवाला) हो जाता है; उसी प्रकार भिन्न ज्ञान से जीव ज्ञानी हो जाता है ? (आचार्य कहते हैं कि) ऐसा नहीं कहना चाहिए। छेदनक्रिया के प्रति दात्र बाह्य उपकरण है, वहाँ वीर्यान्तरायकर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न पुरुष की शक्ति विशेष अभ्यन्तर उपकरण है, उस शक्ति के अभाव में दात्र-उपकरण और हस्त-व्यापार होने पर भी छेदन क्रिया नहीं होती है; उसी प्रकार प्रकाश, उपाध्याय आदि बहिरङ्ग सहकारी कारणों का सद्भाव होने पर भी, अभ्यन्तर ज्ञानरूप उपकरण के अभाव में पुरुष के पदार्थों की जानकारीरूप क्रिया नहीं होती है।

यहाँ जिस ज्ञान का अभाव होने से जीव, जड़ होता हुआ, वीतराग सहज सुन्दर आनन्द के प्रवाहमय पारमार्थिक सुख को उपादेय नहीं जानता हुआ, संसार में परिभ्रमण करता है; वही रागादि विकल्परहित निज शुद्धात्मानुभूति-सम्पन्न ज्ञान उपादेय है – ऐसा भावार्थ है॥ ५४॥

[इस गाथा - टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने युतसिद्धसम्बन्ध का भी निषेध किया है। वह इस प्रकार – 'निर्विशेष (गुणरहित) द्रव्य के और निराश्रित गुणों के शून्यता (अभाव) होने के कारण युतसिद्ध (पृथक् होने पर भी बाद में मिलकर सिद्ध होनेरूप) संयोग से भी चेतना नहीं आ सकती है।']

इस प्रकार व्यपदेशादि व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, ज्ञान और ज्ञानी के अत्यन्त भेद होने पर समवाय सम्बन्ध से भी एकत्व करना शक्य नहीं है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं –

यदि ज्ञान से हो भिन्न तो, समवाय से होता नहीं।
ज्ञानी 'अज्ञानी' यह वचन, एकत्व का साधक यही॥ ५५॥

ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी। (४९)
अण्णाणीत्ति य वयणं एगत्तपसाधगं होदि॥ ५५॥

सो **स जीवः कर्ता** ***ण हि णाणी*** **ज्ञानी न भवति** ***हि*** **स्फुटम्। कस्मात्सकाशात्?** ***समवायादो*** **समवायसम्बन्धात्। कथंभूतः सन्?** ***अत्थंतरिदो*** **दु अर्थांतरितस्त्वेकांतेन भिन्नः। कस्मात्सकाशात्?** ***णाणादो*** **ज्ञानात्** ***अण्णाणीत्ति य वयणं एयत्तपसाहगं होदि*** **अज्ञानी चेति वचनं गुणगुणिनोरेकत्व-प्रसाधकं भवतीति।**

तद्यथा – ज्ञानसमवायात्पूर्वं जीवो ज्ञानी किंवाऽज्ञानीति विकल्पद्वयमवतरति। तत्र यदि ज्ञानी तदा ज्ञानसमवायो व्यर्थो ज्ञानित्वं पूर्वमेव तिष्ठति अथवाऽज्ञानी तत्रापि विकल्पद्वयं किमज्ञानगुण-समवायादज्ञानी किं स्वभावेन वा? न तावदज्ञानगुणसमवायादज्ञानिनो जीवस्याज्ञानगुणसमवायो वृथा येन कारणेनाज्ञानित्वं पूर्वमेव तिष्ठति अथवा स्वभावेनाज्ञानित्वं तथैव ज्ञानित्वमपि स्वभावेनैव गुणत्वादिति।

अत्र यथा मेघपटलावृते दिनकरे पूर्वमेव प्रकाशस्तिष्ठति पश्चात्पटलविघटनानुसारेण प्रकटो

गाथार्थ – ज्ञान से अर्थान्तरभूत वह समवाय से भी ज्ञानी नहीं हो सकता। 'अज्ञानी' ऐसा वचन ही उनके एकत्व को सिद्ध करता है।

टीकार्थ – ***सो*** जीवरूप कर्ता, ***णहि णाणी*** वास्तव में ज्ञानी नहीं होता है। वह किससे ज्ञानी नहीं होता है? ***समवायादो*** समवाय सम्बन्ध से ज्ञानी नहीं होता है। कैसा होता हुआ, उससे ज्ञानी नहीं होता है? ***अत्थंतरिदो दु*** अर्थान्तरित, एकान्त से / सर्वथा भिन्न होता हुआ ज्ञानी नहीं होता है। किससे भिन्न होता हुआ ज्ञानी नहीं होता है? ***णाणादो*** ज्ञान से भिन्न होता हुआ ज्ञानी नहीं होता है। ***अण्णाणित्ति य वयणं एयत्तपसाधगं होदि*** और 'अज्ञानी' ऐसा वचन गुण-गुणी के एकत्व का प्रसाधक होता है।

वह इस प्रकार – ज्ञान के समवाय से पूर्व जीव, ज्ञानी है कि अज्ञानी? इस प्रकार दो विकल्प अवतरित होते हैं। वहाँ यदि ज्ञानी है तो ज्ञान का समवाय व्यर्थ है; क्योंकि उस समवाय से पूर्व ही ज्ञानीत्व है; अथवा यदि अज्ञानी है तो वहाँ भी दो विकल्प हैं – अज्ञानगुण के समवाय से अज्ञानी है कि स्वभाव से अज्ञानी है। अज्ञानगुण के समवाय से तो अज्ञानी हो नहीं सकता; क्योंकि अज्ञानी जीव के पहले से ही अज्ञानीत्व विद्यमान होने से अज्ञानगुण का समवाय व्यर्थ है और यदि स्वभाव से अज्ञानीत्व है तो गुण होने के कारण, उसी प्रकार स्वभाव से ही ज्ञानीत्व भी है।

यहाँ जैसे मेघपटल से आच्छादित सूर्य में प्रकाश पहले से ही विद्यमान है, बाद में पटल

भवति तथा जीवे निश्चयनयेन क्रमकरणव्यवधानरहितं त्रैलोक्योदरविवरवर्तिसमस्तवस्तुगतानंतधर्मप्रकाशकमखंडप्रतिभासमयं केवलज्ञानं पूर्वमेव तिष्ठति किंतु व्यवहारनयेनानादिकर्मावृतः सन्न ज्ञायते पश्चात्कर्मपटलविघटनानुसारेण प्रकटं भवति, न च जीवाद्बहिर्भूतं ज्ञानं किमपीति पश्चात्समवायसम्बन्धबलेन जीवे संबद्धं न भवतीति भावार्थः॥ ५५॥

अथ गुणगुणिनोः कथंचिदेकत्वं विहायान्यः कोऽपि समवायो नास्तीति समर्थयति –

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य। (५०)
तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धित्ति णिद्दिट्ठा॥ ५६॥

***समवत्ती* समवृत्तिः सहवृत्तिर्गुणगुणिनोः कथंचिदेकत्वेनानादितादात्म्यसम्बन्ध इत्यर्थः *समवाओ* स एव जैनमते समवायो नान्यः कोऽपि परिकल्पितः *अपुधब्भूदो य* तदेव गुणगुणिनोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशभेदाभावादपृथग्भूतत्वं भण्यते *अजुदसिद्धा य* तदेव दंडदंडिवद्भिन्न-**

-विघटन के अनुसार प्रगट होता है; उसी प्रकार जीव में निश्चयनय से क्रम-करण व्यवधान से रहित, तीन लोकरूपी उदरविवर (पेट) में स्थित समस्त वस्तुगत अनन्त धर्मों का प्रकाशक अखण्ड प्रतिभासमय केवल ज्ञान पहले से ही स्थित है; परन्तु व्यवहारनय से अनादि कर्मों से आवृत होता हुआ ज्ञात नहीं होता है; बाद में कर्मपटल के विघटनानुसार प्रगट होता है। जीव से बहिर्भूत दूसरा ज्ञान कुछ भी है ही नहीं; अतः बाद में समवाय सम्बन्ध के बल से जीव में सम्बद्ध भी नहीं होता – ऐसा भावार्थ है॥ ५५॥

अब, गुण-गुणी के कथञ्चित् एकत्व को छोड़कर अन्य कोई भी समवाय नहीं है, ऐसा समर्थन करते हैं –

समवर्तिता समवाय अपृथग्भूतताऽयुतसिद्धता।
ये एक इससे अयुतसिद्धि, द्रव्य गुण की है कहा॥ ५६॥

गाथार्थ - समवर्तित्व, समवाय, अपृथग्भूतत्व और अयुतसिद्धत्व – ये एकार्थवाची हैं; इसलिए द्रव्य-गुणों के अयुतसिद्धि है – ऐसा कहा है।

टीकार्थ - ***समवत्ती*** समवृत्ति, सहवृत्ति, गुण-गुणी के कथञ्चित् एकत्व होने से अनादि तादात्म्यसम्बन्ध है – ऐसा अर्थ है। ***समवाओ*** जैनमत में वह ही समवाय है; दूसरा कोई भी परिकल्पित समवाय नहीं है। ***अपुधब्भूदो य*** गुण-गुणी के संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि का भेद होने पर भी प्रदेशभेद का अभाव होने से, वह ही अपृथग्भूतत्व कहलाता है। ***अजुदसिद्धा य*** दण्ड-दण्डी के समान भिन्न प्रदेश लक्षण युतसिद्धत्व का अभाव होने से, वह ही अयुतसिद्धत्व

प्रदेशलक्षणयुतसिद्धत्वाभावादयुतसिद्धत्वं भण्यते *तम्हा* तस्मात्कारणात् *दव्वगुणाणं* द्रव्यगुणानां *अजुदा सिद्धित्ति* अयुता सिद्धिरिति कथंचिदभिन्नत्वसिद्धिरिति *णिद्दिट्ठा* निर्दिष्टा कथितेति।

अत्र व्याख्याने यथा ज्ञानगुणेन सहानादितादात्म्यसम्बन्धः प्रतिपादितो द्रष्टव्यो जीवेन सह तथैव च यदव्याबाधरूपमप्रमाणमविनश्वरं स्वाभाविकं रागादिदोषरहितं परमानन्दैकस्वभावं पारमार्थिकसुखं तत्प्रभृतयो ये अनंतगुणाः केवलज्ञानांतर्भूतास्तैरपि सहानादितादात्म्यसम्बन्धः श्रद्धातव्यो ज्ञातव्यः तथैव च समस्तरागादिविकल्पत्यागेन निरंतरं ध्यातव्य इत्यभिप्रायः ॥ ५६ ॥

एवं समवायनिराकरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्।

अथ दृष्टांतदार्ष्टांतरूपेण द्रव्यगुणानां कथंचिदभेदव्याख्यानोपसंहारः कथ्यते —

वण्णरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसेहिं। (५१)
दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपयासगा होंति ॥ ५७ ॥

दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि। (५२)
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हु णो सभावादो ॥ ५८ ॥ जुम्मं

कहलाता है। ***तम्हा*** उस कारण ***दव्वगुणाणं*** द्रव्य-गुणों के ***अजुदा सिद्धित्ति*** अयुतसिद्धि है, कथञ्चित् अभिन्नत्व सिद्धि है — ऐसा ***णिद्दिट्ठं*** निर्दिष्ट है, कहा गया है।

इस व्याख्यान में जैसे ज्ञानगुण के साथ अनादि तादात्म्यसम्बन्ध प्रतिपादित किया है, उसे उसी प्रकार जीव के साथ देख लेना चाहिए तथा जो अव्याबाधरूप, असीम, अविनश्वर, स्वाभाविक, रागादि दोषों से रहित, परमानन्द एक स्वभावमय पारमार्थिक सुख है, तत्प्रभृति केवलज्ञान में अन्तर्भूत जो अनन्तगुण हैं, उनके साथ अनादि तादात्म्यसम्बन्ध का श्रद्धान करना चाहिए, ज्ञान करना चाहिए और उसी प्रकार समस्त रागादि विकल्पों के त्यागपूर्वक उसका ध्यान करना चाहिए — ऐसा अभिप्राय है ॥ ५६ ॥

इस प्रकार समवाय के निराकरण की मुख्यता से दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, दृष्टान्त और दार्ष्टान्तरूप से द्रव्य-गुणों के कथञ्चित् अभेदपरक व्याख्यान का उपसंहार करते हैं —

परमाणु में वर्णित विशेष, स्पर्श रस गंध वर्ण ज्यों।
रहते अभिन्न हैं द्रव्य से, पर भिन्न बतलाते हैं त्यों ॥ ५७ ॥

हैं अनन्यभूत निबद्ध जीव से, दर्शज्ञानादि सभी।
व्यपदेश से पृथक्त्व करते, पर स्वभावों से नहीं ॥ ५८ ॥

वण्णरसगंधफासा वर्णरसगंधस्पर्शाः _परमाणुपरूविदा_ परमाणुद्रव्यप्ररूपिताः कथिताः। कैः कृत्वा? _विसेसेहिं_ विशेषैः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदैः अथवा _विसेसो हि_ इति पाठांतरं विशेषा विशेषगुणधर्माः स्वभाव _हि_ स्फुटं। ते कथंभूताः? _दव्वादो य_ परमाणुद्रव्याच्च सकाशात् _अणण्णा_ निश्चयनयेनानन्ये _अण्णत्तपयासगा होंति_ पश्चाद्व्यवहारनयेन संज्ञादिभेदेनान्यत्वप्रकाशका भवन्ति यथा। इति दृष्टांतगाथा गता।

दंसणणाणाणि तहा दर्शनज्ञाने द्वे तथा। कथंभूते:? _जीवणिबद्धाणि_ जीवनिबद्धे द्वे। पुनरपि कथंभूते? _अणण्णभूदाणि_ निश्चयनयेन प्रदेशरूपेणानन्यभूते। इत्थंभूते ते किं कुरुतः? _ववदेसदो पुधत्तं_ व्यपदेशतः संज्ञादिभेदतः पृथक्त्वं नानात्वं _कुव्वंति_ कुरुतः _हु_ स्फुटं _णो सहावादो_ नैव स्वभावतो निश्चयनयेन इति।

अस्मिन्नधिकारे यद्यप्यष्टविधज्ञानोपयोगचतुर्विधदर्शनोपयोगव्याख्यानकाले शुद्धाशुद्धविवक्षा न कृता तथापि निश्चयनयेनादिमध्यांतवर्जिते परमानंदमालिनि परमचैतन्यशालिनि भगवत्यात्मनि

गाथार्थ - जैसे परमाणु में प्ररूपित द्रव्य से अनन्य वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श विशेषों द्वारा अन्यत्व के प्रकाशक होते हैं; उसी प्रकार जीव में निबद्ध, अनन्यभूत दर्शन, ज्ञान व्यपदेश से पृथक्त्व करते हैं; स्वभाव से नहीं।

टीकार्थ - ***वण्णरसगंधफासा*** वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श ***परमाणुपरूविदा*** परमाणुद्रव्य के प्ररूपित हैं, कहे गए हैं। किसरूप से कहे गए हैं? ***विसेसेहिं*** विशेषों से; संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद होने से (भिन्न) कहे गए हैं अथवा ***विसेसो हि*** ऐसा पाठान्तर है, (जिसका अर्थ है) विशेष अर्थात् विशेषगुण-धर्म-स्वभावरूप कहे गए हैं ***हि*** वास्तव में। वे कैसे हैं? ***दव्वादो य*** परमाणु द्रव्य से ***अणण्णा*** निश्चयनय की अपेक्षा अभिन्न हैं; ***अण्णत्तपयासगा होंति*** बाद में व्यवहारनय की अपेक्षा जैसे संज्ञादि भेद से अन्यत्व के प्रकाशक हैं। — इस प्रकार दृष्टान्त गाथा पूर्ण हुई।

दंसणणाणाणि तहा उसी प्रकार दर्शन-ज्ञान दोनों। वे कैसे हैं? ***जीवणिबद्धा*** वे दोनों जीव से निबद्ध हैं। वे और कैसे हैं? ***अणण्णभूदाणि*** निश्चयनय की अपेक्षा प्रदेशरूप से अनन्यभूत हैं। इस प्रकार के वे दोनों क्या करते हैं? ***ववदेसदा पुधत्तं*** व्यपदेश से, संज्ञादि भेद से पृथक्त्व, नानात्व ***कुव्वन्ति*** करते हैं, ***हि*** वास्तव में; ***णो सहावादो*** परन्तु स्वभाव की अपेक्षा निश्चयनय से नहीं करते हैं।

इस अधिकार में यद्यपि आठ प्रकार के ज्ञानोपयोग, चार प्रकार के दर्शनोपयोग के व्याख्यान-काल में शुद्धाशुद्ध विवक्षा नहीं की है; तथापि निश्चयनय की अपेक्षा आदि-मध्य

यदनाकुलत्वलक्षणं पारमार्थिकसुखं तस्योपादेयभूतस्योपादानकारणभूतं यत्केवलज्ञानदर्शनद्वयं तदेवोपादेयमिति श्रद्धेयं ज्ञेयं तथैवार्तरौद्रादिसमस्तविकल्पजालत्यागेन ध्येयमिति भावार्थः ॥ ५७-५८ ॥

एवं दृष्टांतदार्ष्टांतरूपेण गाथाद्वयं गतम्।

अत्र प्रथमं *उवओगो दुवियप्पो* इत्यादि पूर्वोक्तपाठक्रमेण दर्शनज्ञानकथनरूपेणांतरस्थल-पञ्चकेन गाथानवकं, तदनंतरं *ण वियप्पदि णाणादो* इत्यादि पाठक्रमेण नैयायिकं प्रति गुणगुणिभेद-निराकरणरूपेणांतरस्थलचतुष्टयेन गाथादशकमिति समुदायेनैकोनविंशतिगाथाभिर्जीवाधिकार-व्याख्यानरूपनवाधिकारेषु मध्ये *षष्ठम उपयोगाधिकारः* समाप्तः।

अथानंतरं वीतरागपरमानंदसुधारससमरसीभावपरिणतिस्वरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशात् भिन्नं यत्कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वसंयुक्तत्वत्रयस्वरूपं तस्य संबन्धित्वेन पूर्वमष्टादशगाथासमुदायपातनिका-रूपेण यत्सूचितं व्याख्यातं तस्येदानीं *जीवा अणाइणिहणा* इत्यादि पाठक्रमेणांतरस्थलपञ्चकेन विवरणं करोति। तद्यथा —

-अन्त से रहित परमानन्द-सम्पन्न, परमचैतन्य से सुशोभित भगवान आत्मा में जो अनाकुलता लक्षण पारमार्थिक सुख है, उस उपादेयभूत पारमार्थिकसुख के उपादान कारणभूत जो दो केवलज्ञान और केवलदर्शन हैं, वे ही उपादेय हैं — ऐसा श्रद्धान करना चाहिए, जानना चाहिए और उसी प्रकार आर्त-रौद्र आदि समस्त विकल्पसमूह के त्यागपूर्वक ध्येय है — ऐसा भावार्थ है ॥ ५७-५८ ॥

इस प्रकार दृष्टान्त-दार्ष्टान्तरूप में दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

यहाँ प्रथम ***उवओगे दुवियप्पो*** इत्यादि पूर्वोक्त पाठक्रम से दर्शन-ज्ञान कथनरूप पाँच अन्तर स्थलों द्वारा नौ गाथाएँ हैं। उसके बाद ***ण वियप्पदि णाणादो*** इत्यादि पाठक्रम से नैयायिक के लिए गुण-गुणी भेद के निराकरणरूप से चार अन्तरस्थलों द्वारा दश गाथाएँ — इस प्रकार समूहरूप से १९ गाथाओं द्वारा जीवाधिकार के व्याख्यानरूप नौ अधिकारों में से ***छठवाँ उपयोगाधिकार*** समाप्त हुआ।

तत्पश्चात् वीतराग परमानन्द सुधारस समरसीभाव परिणत स्वरूपवाले शुद्ध जीवास्तिकाय से भिन्न जो कर्म-कर्तृत्व, भोक्तृत्व, संयुक्तत्व — ये तीन स्वरूप, उनसे सम्बन्धित होने से पहले अठारह गाथाओं की समुदाय-पातनिकारूप से जो सूचित किया था, जिसका व्याख्यान किया था, उसका इस समय ***जीवा अणाइणिहणा*** इत्यादि पाठक्रम से पाँच अन्तरस्थलों द्वारा विवरण करते हैं। वह इस प्रकार — आगे जिन जीवों के कर्म का कर्तृत्व, भोक्तृत्व, संयुक्तत्व — ये तीन कहे जाएंगे; पहले उनके स्वरूप और संख्या का प्रतिपादन करते हैं —

येषां जीवानामग्रे कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वसंयुक्तत्वत्रयं कथ्यते तेषां पूर्वं तावत्स्वरूपं संख्यां च प्रतिपादयति —

जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो। (५३)
सब्भावदो अणंता पंचग्गगुणप्पधाणा य॥ ५९॥

जीवा अणाइणिहणा जीवा हि शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धचैतन्यरूपेणानाद्यनिधनाः पुनश्च कथंभूताः ? *संता* औदयिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावत्रयापेक्षयासादिसनिधनाः। पुनरपि किंविशिष्टाः ? *अणंता य* साद्यनंताः। कस्मात्सकाशात्? *जीवभावादो* जीवभावतः क्षायिको भावस्तस्मात्। नहि क्षायिकभावस्य सादित्वादंतोऽपि किल भविष्यतीत्याशंकनीयम्। स हि कर्मक्षये सति क्षायिकभावः केवलज्ञानादिरूपेण समुत्पद्यमानः सिद्धभाव इव जीवस्य सद्भाव एव स च स्वभावस्य विनाशो नास्ति चेति अनाद्यनिधनसहजशुद्धपारिणामिकैकभावानां सादिसनिधनान्यप्यौदयिकादिभावांतराणि कथं संभवंतीति चेत् *पंचग्गगुणप्पहाणा य* यद्यपि स्वभावेन शुद्धास्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबंधवशात्सकर्दमजलवदौदयिकादि भावपरिणता दृश्यंत इति स्वरूपव्याख्यानं गतम्।

जिव जीवभावों से अनादिनिधन, सांत अनन्त भी।
सद्‌भाव से वे हैं अनन्त, प्रधानता गुण पाँच की॥ ५९॥

गाथार्थ - जीव, जीवभाव की अपेक्षा अनादि, अनन्त, सान्त और अनन्त हैं। सद्‌भाव की अपेक्षा अनन्त और पाँच मुख्य गुणों की प्रधानतायुक्त हैं।

टीकार्थ - ***जीवा अणाइणिहणा*** जीव वास्तव में शुद्ध-पारिणामिक-परमभाव-ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा शुद्ध चैतन्यरूप से अनादि-अनिधन हैं। वे और कैसे हैं? ***संता*** औदयिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक — इन तीन भावों की अपेक्षा सादि-सनिधन हैं। वे और किस विशेषतावाले हैं? ***अणंता य*** सादि-अनन्त हैं। इनरूप वे किस अपेक्षा से हैं। ***जीवभावादो*** जीव के भाव की अपेक्षा वे इसरूप हैं। क्षायिकभाव की अपेक्षा सादिपना होने से उनका अन्त भी होगा? — ऐसी आशङ्का नहीं करना चाहिए; क्योंकि कर्म का क्षय होने पर केवलज्ञानादिरूप से उत्पन्न होनेवाला वह क्षायिकभाव सिद्धभाव के समान, जीव का सद्‌भाव / स्वभावरूप ही है और स्वभाव का कभी विनाश नहीं होता है।

अनादि-अनन्त सहज शुद्ध पारिणामिक एक भावमय जीवों के सादि-सान्तरूप औदयिक आदि अन्य भाव कैसे सम्भव हैं? यदि ऐसा प्रश्न हो तो उत्तर देते हैं — ***पंचग्गगुणप्पहाणा य***

इदानीं संख्यां कथयति – *सब्भावदो अणंता* द्रव्यस्वभावगणनया पुनरनंताः। सांतानंतशब्द-योर्द्वितीयव्याख्यानं क्रियते – सहांतेन संसारविनाशे वर्तन्ते सांता भव्याः, न विद्यतेऽन्तः संसारविनाशो येषां ते पुनरनंता अभव्यास्ते चाभव्या अनंतसंख्यास्तेभ्योऽपि भव्याः अनंतगुणसंख्यास्तेभ्योऽप्यभव्य-समानभव्या अनंतगुणा इति।

अत्र सूत्रे अनादिनिधना अनंतज्ञानादिगुणाधाराः शुद्धजीवा एव सादिसनिधनमिथ्यात्वरागादि-दोषपरिहारपरिणतानां भव्यानामुपादेया इति तात्पर्यार्थः॥ ५९॥

अथ यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन विनाशोत्पादौ भवतः तथापि द्रव्यार्थिकनयेन न भवत इति पूर्वापरविरोधो नास्तीति कथयति –

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स हवदि उप्पादो। (५४)
इदि जिणवरेहिं भणियं अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं॥ ६०॥

***एवं सदो विणासो* एवं पूर्वगाथाकथितप्रकारेणौदयिकभावेनायुरुच्छेदवशान्मनुष्यपर्यायरूपेण**

यद्यपि वे स्वभाव से ही शुद्ध हैं; तथापि व्यवहार से अनादि कर्मबन्ध के वश कीचड़युक्त जल के समान औदयिक आदि भावरूप परिणत देखे जाते हैं – इस प्रकार स्वरूप का व्याख्यान हुआ।

अब, संख्या कहते हैं – ***सब्भावदो अणंता*** द्रव्य-स्वभाव-गणना की अपेक्षा, वे अनन्त हैं।

सान्त और अनन्त शब्द का दूसरा व्याख्यान करते हैं – अन्त के साथ अर्थात् संसार के विनाश से सहित हैं, वे सान्त अर्थात् भव्य हैं; तथा जिनके अन्त अर्थात् संसार का विनाश नहीं है, वे अनन्त अर्थात् अभव्य हैं। वे अभव्य भी अनन्त की संख्या में हैं, उनसे भी अनन्त गुणी संख्यावाले भव्य हैं; उनसे भी अनन्त गुणे अभव्य-समान भव्य हैं।

इस गाथा में अनादि-अनन्त ज्ञानादि गुणों का आधारभूत शुद्ध जीव ही सादि-सनिधन मिथ्यात्व-रागादि दोषों के परिहाररूप से परिणत भव्यों को उपादेय है – ऐसा तात्पर्यार्थ है॥ ५९॥

अब, यद्यपि पर्यायार्थिकनय से विनाश-उत्पाद होते हैं; तथापि द्रव्यार्थिकनय से नहीं होते हैं, ऐसा होने पर भी पूर्वापर विरोध नहीं है; ऐसा कहते हैं –

इस विधि सत का व्यय, असत उत्पाद होता जीव का।
दिखते विरोधी परस्पर, अविरुद्ध जिनवर ने कहा॥ ६०॥

गाथार्थ - इस प्रकार जीव के सत् का विनाश और असत् का उत्पाद होता है, ऐसा परस्पर विरुद्ध होने पर भी जिनवरों ने अविरुद्ध स्वरूप कहा है।

सतो विद्यमानस्य विनाशो भवति *असदो जीवस्स हवदि उप्पादो* असतोऽविद्यमानस्य देवादिजीवस्य पर्यायस्य गतिनामकर्मोदयाद्भवत्युत्पादः *इदि जिणवरेहिं भणियं* इति जिनवरैर्वीतरागसर्वज्ञैर्भणितं इदं तु व्याख्यातम्। कथंभूतं ? *अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं* अन्योन्यविरुद्धमप्यविरुद्धम्। कथमिति चेत् ? द्रव्यपीठिकायां सतो जीवस्य विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीति भणितं। अत्र सतो जीवस्य विनाशो भवत्यसत उत्पादो भवतीति भणितं तेन कारणेन विरोधः तन्न। तत्र द्रव्यपीठिकायां द्रव्यार्थिकनयेनोत्पाद-व्ययौ निषिद्धौ, अत्र तु पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययौ भवत इति नास्ति विरोधः। तदपि कस्मादिति चेत् ? द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययोः परस्परसापेक्षत्वादिति।

अत्र यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन सादिसनिधनं जीवद्रव्यं व्याख्यातं तथापि शुद्धनिश्चयेन यदेवानादिनिधनं टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावं निर्विकारसदानन्दैकस्वरूपं च तदेवोपादेयमित्य-भिप्रायः ॥ ६० ॥

टीकार्थ* - *एवं सदो विणासो इस प्रकार पूर्व गाथा में कही गई पद्धति से औदयिकभाव द्वारा आयु के उच्छेद के वश मनुष्य पर्यायरूप से सत्, विद्यमान का विनाश है; ***असदो जीवस्स हवदि उप्पादो*** असत् अविद्यमान देवादि जीवपर्याय का गति नामकर्म के उदय से उत्पाद होता है। ***इदि जिणवरेहिं भणियं*** ऐसा जिनवर वीतराग-सर्वज्ञ द्वारा कहा गया है। यह व्याख्यात (किया गया कथन) किस प्रकार है ? ***अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं*** परस्पर में विरुद्ध होने पर भी अविरुद्ध है। यह कैसे है ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं –

द्रव्यपीठिका में सत् जीव का विनाश नहीं होता तथा असत् का उत्पाद नहीं होता – ऐसा कहा गया था और यहाँ सत् जीव का विनाश होता है और असत् का उत्पाद होता है – ऐसा कहा गया है – उस कारण विरोध है; परन्तु वास्तव में यह विरोध नहीं है। वहाँ द्रव्यपीठिका में द्रव्यार्थिकनय से उत्पाद-व्यय का निषेध किया गया था और यहाँ पर्यायार्थिकनय से उत्पाद-व्यय होते हैं – इसका प्रतिपादन है – इस प्रकार विरोध नहीं है। वह भी कैसे नहीं है ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं – द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनय में परस्पर सापेक्षता होने से यह विरोध नहीं है।

यहाँ यद्यपि पर्यायार्थिकनय से सनिधन जीवद्रव्य का व्याख्यान किया है; तथापि शुद्धनिश्चय से जो अनादि-निधन टङ्कोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वभावमय और निर्विकार सदानन्द एकस्वरूपी है, वह ही उपादेय है – ऐसा अभिप्राय है ॥ ६० ॥

अब, पूर्व सूत्र में जो जीव का उत्पाद-व्यय स्वरूप कहा है, उसका कारण नर-नारक आदि गति-नामकर्म का उदय है, ऐसा कहते हैं –

अथ पूर्वसूत्रे जीवस्योत्पादव्ययस्वरूपं यद्भणितं तस्य नरनारकादिगतिनामकर्मोदयकारणमिति कथयति -

णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा पयडी। (५५)
कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पत्ती॥ ६१॥

***णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा* नारकतिर्यग्गमनुष्यदेवा इति नामसंयुक्ताः *पयडी* नामकर्मप्रकृतयः कर्तृ *कुव्वंति* कुर्वन्ति। कं ? *सदो णासं* सतो विद्यमानस्य भावस्य पर्यायस्य नाशं *असदो भावस्स उप्पत्ती* असतो भावस्य पर्यायस्योत्पत्तिमिति।**

तथाहि - यथा समुद्रस्य समुद्ररूपेणाविनश्वरस्यापि कल्लोला उत्पादव्ययद्वयं कुर्वन्ति तथा जीवस्य सहजानन्दैकटंकोत्कीर्णज्ञायकस्वभावेन नित्यस्यापि व्यवहारेणानादिकर्मोदयवशान्निर्विकार-शुद्धात्मोपलब्धिच्युतस्य नरकगत्यादिकर्मप्रकृतय उत्पादव्ययं च कुर्वंतीति। तथा चोक्तं -

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणं। उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले॥

नारक तिर्यक् नर अमर नामक, प्रकृतिआँ करतीं सदा।
सत भाव का भी नाश, असत पदार्थ उत्पादन तथा॥ ६१॥

गाथार्थ - नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव – इन नामों से संयुक्त (नामकर्म की) प्रकृतियाँ सत्‌भाव का नाश और असत्‌भाव का उत्पाद करती हैं।

टीकार्थ - ***णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा*** नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव – इन नाम से संयुक्त ***पयडी*** नामकर्म की प्रकृतियाँरूपी कर्ता ***कुव्वंति*** करती हैं। वे क्या करती हैं? ***सदो णासं*** विद्यमानभावरूप पर्याय का नाश ***असदो भावस्स उप्पत्ती*** असत्‌भावरूप पर्याय का उत्पाद करती हैं।

वह इस प्रकार – जैसे समुद्ररूप से अविनश्वर / स्थायी समुद्र में भी लहरें उत्पाद-व्यय दोनों करती हैं; उसी प्रकार सहजानन्द एक टङ्कोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभाव से नित्य होने पर भी व्यवहार से अनादि कर्मोदय के वश निर्विकार शुद्धात्मोपलब्धि से च्युत जीव के नरकगति आदि कर्म प्रकृतियाँ उत्पाद और व्यय करती हैं। वैसा ही कहा भी है –

'जल में जल-कल्लोलों के समान, अनादिनिधन द्रव्य में (उसकी) अपनी पर्यायें प्रतिसमय उत्पन्न होती हैं, नष्ट होती हैं।' ***॥ आलाप पद्धति, पद्य-१ ॥***

यहाँ शुद्ध निश्चयनय से मूलोत्तर प्रकृतिरहित, वीतराग, परमाह्लाद एकरूप चैतन्य

अत्र यदेव शुद्धनिश्चयनयेन मूलोत्तरप्रकृतिरहितं वीतरागपरमाह्लादैकरूपचैतन्यप्रकाशसहितं शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तदेवोपादेयमिति भावार्थः ॥ ६१ ॥

एवं कर्मकर्तृत्वादित्रयपीठिकाव्याख्यानरूपेण गाथात्रयेण प्रथममंतरस्थलं गतम्।

अथ पीठिकायां पूर्वं जीवस्य यदौदयिकादिभावपञ्चकं सूचितं तस्य व्याख्यानं करोति –

उदयेण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सिदेण परिणामे।(५६)
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसुदसत्थेसु वित्थिण्णा॥ ६२॥

***जुत्ता* युक्ताः। के ? *ते जीवगुणा* ते परमागमप्रसिद्धाः जीवगुणाः जीवभावाः परिणामाः। केन केन युक्ताः ? *उदयेण* कर्मोदयेन *उवसमेण य* कर्मोपशमेन च *खयेण* कर्मक्षयेण *दुहिं मिस्सिदेण* द्वाभ्यां क्षयोपशमाभ्यां मिश्रत्वेन *परिणामे* प्राकृतलक्षणबलात्सप्तम्यंतं तृतीयांतं व्याख्यायते परिणामेन कारणभूतेन इतिव्युत्पत्तिरूपेणौदयिकः औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिकः पारिणामिक एवं पञ्च-भावा ज्ञातव्याः। ते च *कथंभूताः ? बहुसुदसत्थेसु वित्थिण्णा* बहुश्रुतशास्त्रेषु तत्त्वार्थादिषु विस्तीर्णाः।**

प्रकाशसहित जो शुद्ध जीवास्तिकाय का स्वरूप है, वह ही उपादेय है – ऐसा भावार्थ है॥ ६१ ॥

इस प्रकार कर्मकर्तृत्व आदि तीन की पीठिका के व्याख्यानरूप से तीन गाथा द्वारा प्रथम अन्तरस्थल पूर्ण हुआ।

अब, पीठिका के पूर्व, जीव के जिन औदयिक आदि पाँच भावों को सूचित किया था, उनका व्याख्यान करते हैं –

उदय उपशम क्षय क्षयोपशम, और है परिणाम भी।
इनसे सहित वे जीवगुण, बहु शास्त्र में वर्णित सभी॥ ६२॥

गाथार्थ – उदय, उपशम, क्षय, इन दोनों के मिश्र / क्षयोपशम और परिणाम से सहित वे जीव के गुण अनेक शास्त्रों में विस्तार से वर्णित हैं।

टीकार्थ – ***जुत्ता*** युक्त हैं। कौन युक्त हैं ? ***ते जीव गुणा*** परमागम में प्रसिद्ध वे जीव के गुण, जीव के भाव, परिणामयुक्त / सहित हैं। किन-किन से सहित हैं ? ***उदयेण*** कर्म के उदय से, ***उवसमेण*** कर्म के उपशम से, **खयेण** कर्म के क्षय से, इन दोनों के मिश्ररूप क्षयोपशम से और परिणाम से; यहाँ 'परिणामे' अर्थात् इसमें प्राकृत लक्षण (व्याकरण) के बल से सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होने पर भी तृतीया में व्याख्यान हुआ है; अतः करणभूत परिणाम से सहित हैं – इस प्रकार व्युत्पत्तिरूप से औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक – इस प्रकार पाँच भाव जानना चाहिए। वे कैसे हैं ? ***बहुसुदसत्थेसु वित्थिण्णा*** बहुश्रुत शास्त्रों में,

औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकास्त्रयो भावाः कर्मजनिताः क्षायिकस्तु केवलज्ञानादिरूपो यद्यपि वस्तुवृत्त्या शुद्धबुद्धैकजीवस्वभावः तथापि कर्मक्षयेणोत्पन्नत्वादुपचारेण कर्मजनित एव, शुद्ध-पारिणामिकः पुनः साक्षात्कर्मनिरपेक्ष एव।

अत्र व्याख्यानेन मिश्रौपशमिकक्षायिकः मोक्षकारणं मोहोदयसहित औदयिको बंधकारणं शुद्धपारिणामिकस्तु बंधमोक्षयोरकारणमिति भावार्थः। तथा चोक्तं -

मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रौपशमिकक्षायिकाभिधाः।
बंधमौदयिका भावा निःक्रियाः पारिणामिकाः॥

एवं द्वितीयांतरस्थले पञ्चभावकथनमुख्यत्वेन गाथासूत्रमेकं गतम्॥ ६२॥

तृतीयस्थलं कथ्यते। अथानंतरं प्रथमगाथायां निश्चयेन रागादिभावानां जीवस्य कर्तृत्वं कथ्यते, द्वितीयगाथायां तदुदयागतद्रव्यकर्मणो व्यवहारेण रागादिभावकर्तृत्वमिति स्वतन्त्रगाथाद्वयं, तदनंतरं प्रथमगाथायां जीवस्य यद्येकांतेनोदयागतद्रव्यकर्मरागादिविभावानां कर्तृ भवति तदा जीवस्य सर्वप्रकारेणाकर्तृत्वं प्राप्नोतीति कथयति द्वितीयगाथायां तु पूर्वोक्तदूषणस्य परिहारं ददातीति पूर्वपक्ष-

---

तत्त्वार्थसूत्र आदि में विस्तृत विवेचनवाले हैं। औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक – ये तीन भाव कर्मजनित हैं तथा केवलज्ञानादिरूप क्षायिकभाव यद्यपि वस्तुवृत्ति से शुद्ध-बुद्ध एक जीवस्वभाव है; तथापि कर्मक्षय से उत्पन्न होने के कारण उपचार से कर्मजनित ही है और शुद्ध पारिणामिक साक्षात् कर्मनिरपेक्ष ही है।

यहाँ व्याख्यान से मिश्र, औपशमिक, क्षायिक मोक्ष के कारण हैं; मोह के उदय से सहित औदयिक बन्ध का कारण है; परन्तु शुद्ध पारिणामिक बन्ध-मोक्ष का अकारण है – ऐसा भावार्थ है। वैसा ही कहा भी है –

'मिश्र, औपशमिक और क्षायिक नामक भाव मोक्ष करते हैं; औदयिकभाव बन्ध करते हैं और पारिणामिकभाव निष्क्रिय हैं'।

इस प्रकार द्वितीय अन्तर स्थल में पाँच भावों के कथन की मुख्यता से एक गाथासूत्र पूर्ण हुआ।

(अब), तृतीय स्थल कहते हैं। वहाँ पहली गाथा में निश्चय से जीव को रागादि भावों का कर्तृत्व कहते हैं। दूसरी गाथा में उन (रागादि) सम्बन्धी उदयागत द्रव्यकर्मों का व्यवहार से कर्ता है, यह कहा है – इस प्रकार रागादि भावों के कर्तृत्व प्रतिपादनरूप दो स्वतन्त्र गाथाएँ हैं। इसके बाद प्रथम गाथा में, यदि एकान्त से उदयागत द्रव्यकर्म जीव के रागादि विभावों के कर्ता

परिहारमुख्यत्वेन गाथाद्वयं, तदनन्तरं प्रथमगाथायां जीवः पुद्गलकर्मणां निश्चयेन कर्ता न भवतीत्यागम-संवादं दर्शयति, द्वितीयायां पुनः कर्मणो जीवस्य चाभेदषट्कारकीं कथयतीति स्वतन्त्रगाथाद्वयं इति तृतीयांतरस्थले कर्तृत्वमुख्यत्वेन समुदायेन गाथाषट्कं कथयतीति। तद्यथा —

औदयिकादिभावान् केन रूपेण जीवः करोतीति पृष्टे सत्युत्तरं ददाति —

कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं। (५७)
सो तस्स तेण कत्ता हवदित्ति य सासणे पढिदं॥ ६३॥

***कम्मं वेदयमाणो* कर्म वेदयमानः नीरागनिर्भरानंदलक्षणप्रचंडाखंडज्ञानकांडपरिणतात्मभावना-रहितेन मनोवचनकायव्यापाररूपकर्मकांडपरिणतेन च पूर्वं यदुपार्जितं ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्म तदुदयागतं व्यवहारेण वेदयमानः। कोऽसौ? *जीवो* जीवः कर्ता *भावं करेदि जारिसयं* भावं परिणामं करोति**

हैं तो जीव को सर्व प्रकार से अकर्तृत्व प्राप्त होता है — ऐसा कहते हैं। दूसरी गाथा में पूर्वोक्त दूषण का परिहार कहते / करते हैं। — इस प्रकार पूर्व पक्ष के परिहार की मुख्यता से दो गाथाएँ पूर्ण हुईं। तत्पश्चात् प्रथम गाथा में जीव, पुद्गल कर्मों का निश्चय से कर्ता नहीं है — ऐसा आगम-सम्वाद दिखाते हैं तथा दूसरी में कर्म और जीव के अभेद षट्कारक कहते हैं — इस प्रकार दो स्वतन्त्र गाथाएँ हैं।

इस प्रकार तृतीय अन्तरस्थल में कर्तृत्व की मुख्यता से समुदाय द्वारा छह गाथाएँ कहते हैं। वह इस प्रकार —

औदयिक आदि भावों को किसरूप से जीव करता है, ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं -

है कर्म वेदयमान आतम, भाव को जैसे करे।
उसका वही कर्ता कहा, शासन में उसही रूप से॥ ६३॥

गाथार्थ - कर्म का वेदन करता हुआ जीव, जैसा भाव करता है, वह उसरूप से उसका कर्ता है — ऐसा शासन में कहा है।

टीकार्थ - ***कम्मं वेदयमाणो*** कर्म का वेदन करता हुआ, नीराग निर्भर आनन्द लक्षण प्रचण्ड अखण्ड ज्ञानकाण्डरूप से परिणत आत्मभावना से रहित और मन-वचन-काय के व्यापाररूप कर्मकाण्ड से परिणत होने के कारण पहले उपार्जित जो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, उनके उदयागत का व्यवहार से वेदन करता हुआ। वह कौन वेदन करता हुआ? ***जीवो*** जीवरूप कर्ता वेदन करता हुआ; ***भावं करेदि जारिसयं*** जैसे परिणाम को करता है। ***सो तस्स तेण कत्ता*** वह

यादृशकं *सो तस्स तेण कत्ता* सः तस्य तेन कर्ता स जीवस्तस्य रागादिपरिणामस्य कर्मतापन्नस्य तेनैव भावेन करणभूतेनाशुद्धनिश्चयेन कर्ता *हवदित्ति य सासणे पढिदं* भवतीति शासने परमागमे पठितमित्य-भिप्रायः इति ॥ ६३ ॥

जीवो निश्चयेन कर्मजनितरागादिविभावानां स्वशुद्धात्मभावनाच्युतः सन् कर्ता भोक्ता भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता।

अथ रागादिपरिणामानामुदयागतं द्रव्यकर्म व्यवहारेण कारणं भवतीति दर्शयति —

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा। (५८)
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं॥ ६४॥

कम्मेण विणा कर्मणा बिना शुद्धज्ञानदर्शनलक्षणाद्भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मविलक्षणात्परमात्म-नोविपरीतं यदुदयागतं द्रव्यकर्म तेन बिना *उदयं जीवस्स ण विज्जदे* रागादिपरिणामरूप औदयिकभावो

उसका, उस रूप में कर्ता है। वह जीव, कर्मता को प्राप्त उस रागादि परिणाम का, अशुद्ध निश्चय की अपेक्षा करणभूत उस ही भाव से कर्ता ***हवदित्ति य सासणे पढिदं*** होता है — ऐसा शासन में, परमागम में पढ़ा गया है, कहा गया है — ऐसा अभिप्राय है॥ ६३॥

स्वशुद्धात्मा की भावना से च्युत होता हुआ जीव, निश्चय से कर्मजनित रागादि विभावों का कर्ता-भोक्ता होता है — ऐसे व्याख्यान की मुख्यता से गाथा पूर्ण हुई।

[इस गाथा-टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने पाँचों भावों को परिभाषित करते हुए, उन्हें उपाधि और स्वरूप की अपेक्षा विभक्त किया है।]

अब, उदयागत द्रव्यकर्म, व्यवहार से रागादि परिणामों का कारण है; ऐसा दिखाते हैं —

हैं कर्म के उपशम उदय वा, क्षय क्षयोपशम के बिना।
होते नहीं हैं जीव भाव, अतः करमकृत हैं कहा॥ ६४॥

गाथार्थ - कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम बिना जीव के (तत्सम्बन्धी भाव) नहीं होते हैं; अतः वे भाव, कर्मकृत हैं।

टीकार्थ - ***कम्मेण विणा*** कर्म के बिना; भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म से विलक्षण शुद्ध ज्ञान-दर्शन लक्षणमयी परमात्मा से विपरीत जो उदयागत द्रव्यकर्म हैं, उनके बिना ***उदयं जीवस्स ण विज्जदे*** रागादि परिणामरूप औदयिकभाव जीव के नहीं होता है। मात्र औदयिकभाव ही नहीं होता है; ऐसा नहीं है; अपितु ***उवसमो वा*** औपशमिकभाव भी उसी द्रव्यकर्म के उपशम

जीवस्य न विद्यते। न केवलमौदयिकभावः *उवसमं वा* औपशमिकभावो वा न विद्यते तेनैव द्रव्यकर्मो-पशमेन बिना *खइयं खओवसमियं* क्षायिकभावः क्षायोपशमिकभावस्तस्यैव द्रव्यकर्मणः क्षयेण क्षयोपशमेन बिना न भवति *तम्हा भावं तु कम्मकदं* तस्माद्भावस्तु कर्मकृतः यस्माच्छुद्धपारिणामिकभावं मुक्त्वा पूर्वोक्तमौदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकभावचतुष्टयं द्रव्यकर्मणा बिना न भवति तस्मादेवं ज्ञायते जीवस्यौदयिकादिभावचतुष्टयमनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मकृतमिति।

अत्र सूत्रे सामान्येन केवलज्ञानादिक्षायिकनवलब्धिरूपो विशेषेण तु केवलज्ञानांतर्भूतं यदनाकुलत्वलक्षणं निश्चयसुखं तत्प्रभृतयो येऽनंतगुणास्तेषामाधारभूतो योऽसौ क्षायिको भावः स एव सर्वप्रकारेणोपादेयभूत इति मनसा श्रद्धेयं ज्ञेयं मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालत्यागेन निरंतरं ध्येयमिति भावार्थः ॥ ६४॥

इति तेषामेव भावानामनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण कर्म कर्ता भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता।

एवं निश्चयेन रागादिभावानां जीवः कर्ता पूर्वगाथायां भणितमत्र तु व्यवहारेण कर्म कर्तृ भवतीति स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतम्।

बिना नहीं होता है। ***खइयं खओवसमियं*** क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, उसी द्रव्यकर्म के क्षय, क्षयोपशम के बिना नहीं होते हैं; ***तम्हा भावं तु कम्मकदं*** इसलिए भाव कर्मकृत हैं; जिस कारण शुद्ध पारिणामिकभाव को छोड़कर पूर्वोक्त औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक – ये चार भाव, द्रव्यकर्म के बिना नहीं होते हैं; उससे ही ज्ञात होता है कि जीव के औदयिक आदि चार भाव अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से द्रव्यकर्म-कृत हैं।

इस सूत्र में सामान्य से केवलज्ञानादि नव क्षायिकलब्धिरूप और विशेष से केवलज्ञान में अन्तर्भूत जो अनाकुलत्व लक्षण निश्चय सुख, तत्प्रभृति जो अनन्त गुण, उनका आधारभूत जो वह क्षायिकभाव है, वह ही सर्व प्रकार से उपादेयभूत है – ऐसा मन से श्रद्धान करना चाहिए, जानना चाहिए और मिथ्यात्व-रागादि विकल्पजाल के त्यागरूप से (उसका ही) निरन्तर ध्यान करना चाहिए – ऐसा भावार्थ है॥ ६४॥

इस प्रकार अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से उन्हीं भावों का कर्म कर्ता है, इस व्याख्यान की मुख्यता से गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार पूर्व गाथा में निश्चय से रागादि भावों का कर्ता जीव को कहा गया था और यहाँ व्यवहार से कर्म को कर्ता कहा गया है - इस प्रकार दो स्वतन्त्र गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अथ जीवस्यैकांतेन कर्माकर्तृत्वे दूषणद्वारेण पूर्वपक्षं करोति –

भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किह कत्ता।(५९)
ण कुणदि अत्ता किंचिवि मुत्ता अण्णं सगं भावं॥ ६५॥

भावो जदि कम्मकदो भावो यदि कर्मकृतः यद्येकांतेन रागादिभावः कर्मकृतो भवति *आदा कम्मस्स होदि किह कत्ता* तदात्मा द्रव्यकर्मणः कथं कर्ता भवति यतः कारणाद्रागादिपरिणामाभावे सति द्रव्यकर्म नोत्पद्यते। तदपि कथमितिचेत्? *ण कुणदि अत्ता किंचिवि* न करोत्यात्मा किमपि। किंकृत्वा? *मुत्ता अण्णं सगं भावं* स्वकीयचैतन्यभावं मुक्त्वान्यत् द्रव्यकर्मादिकं न करोतीत्यात्मनः सर्वथाप्यकर्तृत्वदूषणद्वारेण पूर्वपक्षेऽग्रे द्वितीयगाथायां परिहार इत्येकं व्याख्यानं तावत् द्वितीयव्याख्याने पुनरत्रैव पूर्वपक्षोऽत्रैव परिहारो द्वितीयगाथायां स्थितपक्ष एव। कथमिति चेत्? पूर्वोक्तप्रकारेणात्मा कर्मणां कर्ता न भवतीति दूषणे दत्ते सति सांख्यमतानुसारिशिष्यो वदति –

अब, एकान्त से जीव को कर्म के अकर्तृत्व में दूषण द्वार से पूर्व पक्ष कहते हैं –

यदि कर्मकृत हों भाव तो, आतम करम कर्ता बने।
पर यह अशक्य है जीव क्योंकि, अपने भावों को करे॥ ६५॥

गाथार्थ - यदि (सर्वथा) भाव, कर्मकृत हों तो आत्मा कर्म का कर्ता होना चाहिए; परन्तु वह कैसे हो सकता है? क्योंकि आत्मा अपने भाव को छोड़कर, अन्य कुछ भी नहीं करता है।

टीकार्थ - ***भावो जदि कम्मकदो*** भाव यदि कर्मकृत हैं, यदि एकान्त से (सर्वथा) रागादिभाव कर्मकृत हैं; ***आदा कम्मस्स होदि किह कत्ता*** तो आत्मा द्रव्यकर्मों का कर्ता कैसे होता है (हो सकता है)? जिस कारण रागादि परिणाम का अभाव होने पर द्रव्यकर्म उत्पन्न नहीं होता है। वह भी कैसे? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं – ***ण कुणदि अत्ता किंचिवि*** आत्मा कुछ नहीं करता है? वह क्या करके कुछ भी नहीं करता है? ***मुत्ता अण्णं सगं भावं*** अपने चैतन्यभाव को छोड़कर अन्य द्रव्यकर्मादि का कुछ भी नहीं करता है। – इस प्रकार आत्मा के सर्वथा अकर्तृत्व में दूषण की अपेक्षा पूर्व पक्ष में और आगे द्वितीय गाथा में परिहार (इस प्रकार गाथा पूर्ण हुई)। – ऐसा एक व्याख्यान है।

तथा द्वितीय व्याख्यान में पुनः यहाँ ही पूर्व पक्ष और यहाँ ही परिहार है द्वितीय गाथा में तो स्थितपक्ष (सुनिश्चित हुआ तथ्य) ही दिखाया है। यह कैसे? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं कि पूर्वोक्त प्रकार से आत्मा कर्मों का कर्ता नहीं है – इसमें दोष दिए जाने पर सांख्यमतानुसारी शिष्य कहता है –

''अकर्ता निर्गुणः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽक्रियः। अमूर्तश्चेतनो भोक्ता जीवः कपिलशासने॥''

इति वचनादस्माकं मते आत्मनः कर्माकर्तृत्वं भूषणमेव न दूषणम्। अत्र परिहारः – यथा शुद्धनिश्चयेन रागाद्यकर्तृत्वमात्मनः तथा यद्यशुद्धनिश्चयेनाप्यकर्तृत्वं भवति तदा द्रव्यकर्मबंधाभावस्तदभावे संसाराभावः संसाराभावे सर्वदैव मुक्तप्रसंगः स च प्रत्यक्षविरोध इत्यभिप्रायः॥ ६५॥

एवं प्रथमव्याख्याने पूर्वपक्षद्वारेण द्वितीयव्याख्याने पुनः पूर्वपक्षपरिहारद्वारेणेति गाथा गता।

अथ पूर्वसूत्रे आत्मनः कर्माकर्तृत्वे सति दूषणरूपेण पूर्वपक्षस्तस्य परिहारं ददाति द्वितीयव्याख्यानपक्षे स्थितपक्षं दर्शयति –

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि। (६०)
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं॥ ६६॥

भावो **निर्मलचिज्ज्योतिः स्वभावाच्छुद्धजीवास्तिकायात्प्रतिपक्षभूतो भावो मिथ्यात्वरागादि-**

'कपिल शासन (सांख्यमत) में जीव, अकर्ता, निर्गुण, शुद्ध, नित्य, सर्वगत, अक्रिय, अमूर्त, चेतन, भोक्ता है।'

ऐसा वचन होने से हमारे मत में आत्मा को कर्मों का अकर्तृत्व भूषण ही है; दूषण नहीं है। यहाँ (उसका) परिहार करते हैं – जैसे शुद्ध निश्चय से आत्मा के रागादि का अकर्तृत्व है; उसी प्रकार अशुद्ध निश्चय से भी यदि अकर्तृत्व होता तो द्रव्यकर्म के बन्ध का अभाव हो जाता; उसके अभाव में संसार का अभाव हो जाता; संसार के अभाव में सर्वदा ही मुक्त का प्रसङ्ग आ जाता; परन्तु वह प्रत्यक्ष का विरोध है – ऐसा अभिप्राय है॥ ६५॥

इस प्रकार प्रथम व्याख्यान में पूर्व पक्ष की अपेक्षा और द्वितीय व्याख्यान में पूर्व पक्ष के परिहार की अपेक्षा गाथा पूर्ण हुई।

अब, पूर्व गाथा में आत्मा को कर्म का अकर्तृत्व होने पर दूषणरूप से जो पूर्व पक्ष प्रस्तुत किया था, यहाँ उसका परिहार करते हैं तथा द्वितीय व्याख्यान के पक्ष में स्थितपक्ष (सुनिश्चित हुआ तथ्य) दिखाते हैं –

हैं भाव कर्म निमित्त से, हैं कर्म भाव निमित्त से।
पर नहीं कर्ता परस्पर, कर्ता बिना भी नहीं वे॥ ६६॥

गाथार्थ - (रागादि) भाव, कर्मनिमित्तक हैं; कर्म, (रागादि) भावनिमित्तक हैं; परन्तु वास्तव में उनके (परस्पर) कर्तापना नहीं है तथा वे कर्ता के बिना भी नहीं होते हैं।

परिणामः। स च किंविशिष्टः? *कम्मणिमित्तो* कर्मोदयरहिताच्चैतन्यचमत्कारमात्रात्परमात्मस्वभावात्प्रतिपक्षभूतं यदुदयागतं कर्म तन्निमित्तं यस्य स भवति कर्मनिमित्तः *कम्मं पुण* ज्ञानावरणादिकर्मरहिताच्छुद्धात्मतत्त्वाद्विलक्षणं यद्भावि द्रव्यकर्म पुनः। तत्कथंभूतं? *भावकारणं हवदि* निर्विकारशुद्धात्मोपलब्धिभावात्प्रतिपक्षभूतो योऽसौ रागादिभावः स कारणं यस्य तद्भावकारणं भवति *ण दु* नैव तु पुनः *तेसिं* तयोर्जीवगतरागादिभावद्रव्यकर्मणोः। किं नैव? *कत्ता* परस्परोपादानकर्तृत्वं *खलु* स्फुटं *ण विणा* नैव बिना *भूदा दु* भूते संजाते तु पुनस्ते द्रव्यभावकर्मणी द्वे। कं विना? *कत्तारं* उपादानकर्तारं बिना किंतु जीवगतरागादिभावानां जीव एवोपादानकर्ता द्रव्यकर्मणां कर्मवर्गणायोग्यपुद्गल एवेति।

द्वितीयव्याख्याने तु यद्यपि जीवस्य शुद्धनयेनाकर्तृत्वं तथापि विचार्यमाणशुद्धनयेन कर्तृत्वं स्थितमिति भावार्थः॥ ६६॥

एवं पूर्वगाथायां प्रथमव्याख्यानपक्षे तत्र पूर्वपक्षोऽत्र पुनरुत्तरमिति गाथाद्वयं गतम्।

अथैव तदेव व्याख्यानमागमसंवादेन दृढयति -

टीकार्थ - ***भावो*** निर्मल चैतन्य ज्योतिमय स्वभावरूप शुद्ध जीवास्तिकाय के प्रतिपक्षभूत भाव, मिथ्यात्व-रागादि परिणाम। वह किस विशेषतावाला है? ***कम्मणिमित्तो*** कर्मोदय से रहित चैतन्य चमत्कारमात्र परमात्मस्वभाव से प्रतिपक्षभूत जो उदयागत कर्म, वह है निमित्त जिसका, वह कर्म निमित्त है। ***कम्मं पुण*** ज्ञानावरणादि कर्म से रहित, शुद्धात्मतत्त्व से विलक्षण जो भावि (नवीन बन्ध के योग्य) द्रव्यकर्म है। वह कैसा है? ***भावकरणं हवदि*** निर्विकार शुद्धात्मोपलब्धिरूप भाव से प्रतिपक्षभूत, जो वह रागादिभाव है, वह है कारण जिसका, वह भावकारण, भावनिमित्तक है। ***ण दु*** परन्तु नहीं है, ***तेसिं*** उन जीवगत रागादिभाव और द्रव्यकर्मों के। उनके क्या नहीं है? ***कत्ता*** परस्पर उपादान कर्तापना नहीं है; ***खलु*** वास्तव में। ***ण विणा*** तथापि बिना नहीं ***भूदा*** वे द्रव्यकर्म, भावकर्म दोनों उत्पन्न होते हैं। किनके बिना वे उत्पन्न नहीं होते? ***कत्तारं*** उपादानकर्ता के बिना वे उत्पन्न नहीं होते; अपितु जीवगत रागादि भावों का, जीव ही उपादानकर्ता है तथा द्रव्यकर्मों का, कर्मवर्गणा-योग्य पुद्‌गल ही कर्ता है।

द्वितीय व्याख्यान में यद्यपि जीव का शुद्धनय से अकर्तृत्व है; तथापि विचार्यमाण (जिस पर अभी विचार किया जा रहा है, उस) अशुद्धनय से कर्तृत्व स्थित हुआ – ऐसा भावार्थ है॥ ६६॥

इस प्रकार प्रथम व्याख्यान के पक्ष में वहाँ पूर्व गाथा में पूर्व पक्ष और यहाँ पुनः उत्तर – इस प्रकार दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, उस ही व्याख्यान को आगम-सम्वाद से दृढ़ करते हैं –

कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स। (६१)
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेयव्वं॥ ६७॥

_कुव्वं_ कुर्वाणः। कं? _सगं सहावं_ स्वकं स्वभावं चिद्रूपं। अत्र यद्यपि शुद्धनिश्चयेन केवल-ज्ञानादिशुद्धभावाः स्वभावा भण्यंते तथापि कर्मकर्तृत्वप्रस्तावादशुद्धनिश्चयेन रागादयोऽपि स्वभावा भण्यंते तान् कुर्वन् सन् _अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स_ आत्मा कर्ता स्वकीयभावस्य _ण हि पोग्गलकम्माणं_ नैव पुद्गलकर्मणां हि स्फुटं निश्चयनयेन कर्ता _इदि जिणवयणं मुणेदव्वं_ इति जिनवचनं मंतव्यं ज्ञातव्यमिति।

अत्र यद्यप्यशुद्धभावानां कर्तृत्वं स्थापितं तथापि ते हेयास्तद्विपरीता अनंतसुखादिशुद्धभावा उपादेया इति भावार्थः॥ ६७॥

इत्यागमसंवादरूपेण गाथा गता।

अथ निश्चयेनाभेदषट्कारकीरूपेण कर्मपुद्गलः स्वकीयस्वरूपं करोति जीवोऽपि तथैवेति प्रतिपादयति -

---

निजभाव करता आतमा, कर्ता कहा निजभाव का।
कर्ता न पुद्गल कर्म का, है वचन यह जिनदेव का॥ ६७॥

गाथार्थ - अपने भाव को कर्ता हुआ आत्मा, वास्तव में अपने भाव का कर्ता है; पुद्गल कर्मों का नहीं – ऐसा जिनवचन जानना चाहिए।

टीकार्थ - ***कुव्वं*** करता हुआ। किसे करता हुआ? ***सगं सहावं*** चिद्रूपस्वभाव को करता हुआ। यहाँ यद्यपि शुद्ध निश्चयनय से केवलज्ञानादि शुद्धभाव स्वभाव कहलाते हैं; तथापि कर्म के कर्तृत्व का प्रस्ताव (प्रकरण) होने से अशुद्ध निश्चय की अपेक्षा रागादि भी स्वभाव कहलाते हैं; उनको करता हुआ; ***अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स*** आत्मा अपने भाव का कर्ता है, ***णवि पोग्गल-कम्माणं*** वास्तव में निश्चयनय से पुद्गलकर्मों का कर्ता नहीं है। ***इदि जिणवयणं मुणेदव्वं*** ऐसा जिनवचन जानना चाहिए।

यहाँ यद्यपि अशुद्धभावों का कर्तृत्व स्थापित किया है, तथापि वे हेय हैं; उससे विपरीत अनन्त सुखादि शुद्धभाव उपादेय हैं – ऐसा भावार्थ है॥ ६७॥

इस प्रकार आगम-सम्वादरूप से गाथा पूर्ण हुई।

अब, निश्चयनय की अपेक्षा अभेद षट्-कारकीरूप से कर्म पुद्गल, स्वकीय स्वरूप को करता है; उसी प्रकार जीव भी (अपने स्वरूप को ही करता है), ऐसा प्रतिपादन करते हैं –

कम्मं पि सयं कुव्वदि सगेण भावेण सम्ममप्पाणं। (६२)
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण॥ ६८॥

कम्मंपि सयं **कर्मकर्तृ स्वयमपि स्वयमेव *कुव्वदि* करोति। किं करोति ? *सम्ममप्पाणं* सम्यग्यथा भवत्यात्मानं द्रव्यकर्मस्वभावम्। केन करणभूतेन ? *सगेण भावेण* स्वकीयस्वभावेनाभेदषट्कारकी-रूपेण *जीवोवि य तारिसओ* जीवोऽपि च तादृशः। केन कृत्वा ? *कम्मसहावेण भावेण* कर्मस्वभावेना-शुद्धभावेन रागादिपरिणामेनेति।**

तथाहि – कर्मपुद्गलः कर्ता कर्मपुद्गलं कर्मतापन्नं कर्मपुद्गलेन करणभूतेन कर्मपुद्गलाय निमित्तं कर्मपुद्गलात्सकाशात्कर्मपुद्गलेऽधिकरणभूते करोतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण परिणममानः कारकांतरं नापेक्षते, तथा जीवोऽपि आत्मा कर्तात्मानं कर्मतापन्नमात्मना करणभूतेनात्मने निमित्तमात्मनः सकाशादात्मन्यधिकरणभूते करोतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानः कारकांतरं नापेक्षते।

ज्यों कर्म अपने भाव से, निज भाव को करता सदा।
त्यों कर्मगत स्व भाव से ही, जीव निज करता सदा॥ ६८॥

गाथार्थ – कर्म अपने स्वभाव से सम्यक्रूप में स्वयं को करता है; उसी प्रकार जीव भी कर्मस्वभाव (रागादि) भाव से सम्यक्रूप में स्वयं को करता है।

टीकार्थ – ***कम्मंपि सयं*** कर्मरूप कर्ता स्वयं भी स्वयं ही ***कुव्वदि*** करता है। क्या करता है ? ***सम्ममप्पाणं*** सम्यक् जैसा है, वैसे अपने द्रव्यकर्म स्वभाव को करता है। किस कारण उसे करता है ? ***सगेण भावेण*** अपने स्वभाव के कारण अभेद षट्-कारकीरूप द्वारा उसे करता है। ***जीवो वि य तारिसओ*** तथा जीव भी उसके समान ही करता है। वह किस कारण उसे करता है ? ***कम्मसहावेण भावेण*** कर्म-स्वभावरूप अशुद्धभाव से, रागादि परिणाम के कारण उसे करता है।

वह इस प्रकार – कर्तारूप कर्मपुद्गल, कर्मता को प्राप्त कर्मपुद्गल को, करणभूत कर्मपुद्गल द्वारा, निमित्त (सम्प्रदान) रूप कर्मपुद्गल के लिए, अपादानरूप कर्मपुद्गल से, अधिकरणभूत कर्मपुद्गल में करता है – इस प्रकार अभेद षट्-कारकीरूप से परिणमन करता हुआ, कारकान्तर की अपेक्षा नहीं करता है; उसी प्रकार जीवमय कर्तारूप आत्मा भी, कर्मता को प्राप्त आत्मा को, करणभूत आत्मा द्वारा, निमित्त (सम्प्रदान) रूप आत्मा के लिए, अपादानरूप आत्मा से, अधिकरणभूत आत्मा में करता है – इस प्रकार अभेद षट्-कारकीरूप से अवस्थित रहता हुआ, कारकान्तर की अपेक्षा नहीं करता है।

अयमत्र भावार्थः— यथैवाशुद्धषट्कारकीरूपेण परिणममानः सन्नशुद्धमात्मानं करोति तथैव शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेणाभेदषट्कारकीस्वभावेन परिणममानः शुद्धमात्मानं करोतीति॥ ६८॥

एवमागमसंवादरूपेणाभेदषट्कारकीरूपेण च स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतम्।

इति समुदायेन गाथाषट्केन तृतीयांतरस्थलं समाप्तम्।

अथ पूर्वोक्तप्रकारेणाभेदषट्कारकीव्याख्याने कृते सति निश्चयनयेनेदं व्याख्यानं कृतमिति नयविचारमजानन्नेकांतं गृहीत्वा शिष्यः पूर्वपक्षं करोति —

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।(६३)
किह तस्स फलं भुंजदि अप्पा कम्मं च देदि फलं॥ ६९॥

कम्मं कर्म कर्तृ *कम्मं कुव्वदि जदि* यद्येकांतेन जीवपरिणामनिरपेक्षं सद्द्रव्यकर्म करोति *जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं* यदि च स आत्मात्मानमेव करोति न च द्रव्यकर्म *किह तस्स फलं भुंजदि*

यहाँ यह भावार्थ है — जैसे अशुद्ध षट्-कारकीरूप से परिणमन करता हुआ अशुद्ध आत्मा को करता है; उसी प्रकार शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, अनुष्ठानरूप अभेद षट्-कारकी स्वभाव से परिणमन करता हुआ शुद्ध आत्मा को करता है॥ ६८॥

इस प्रकार आगम-सम्वादरूप से और अभेद षट्-कारकीरूप से दो स्वतन्त्र गाथाएँ पूर्ण हुईं।

इस प्रकार सामूहिक छह गाथाओं द्वारा तृतीय अन्तरस्थल समाप्त हुआ।

अब, पूर्वोक्त प्रकार से अभेद षट्कारकी व्याख्यान किए जाने पर, यह निश्चयनय से व्याख्यान किया गया है; इस प्रकार नय-विचार को न जानता हुआ, एकान्त को ग्रहण कर शिष्य पूर्व पक्ष करता है —

यदि कर्म कर्म करे तथा, बस जीव को आतम करे।
तो जीव भोगे कर्मफल क्यों ?, कर्म फल क्यों उसे दे ?॥ ६९॥

गाथार्थ - यदि कर्म, कर्म को करता है और वह आत्मा, आत्मा को करता है तो आत्मा उसका फल क्यों भोगता है ? और कर्म उसे फल क्यों देता है ?

टीकार्थ - ***कम्मं*** कर्मरूपी कर्ता, ***कम्मं कुव्वदि*** यदि एकान्त से जीव-परिणामों से निरपेक्ष रहता हुआ द्रव्यकर्म करता है, ***जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं*** और यदि वह आत्मा,

कथमेतस्याकृतकर्मणः फलं भुंक्ते। स कः ? *अप्पा* आत्मा कर्ता *कम्मं च देदि फलं* जीवेनाकृतं कर्म च कर्तृ कथमात्मने ददाति फलं ? न कथमपीति॥ ६९॥

चतुर्थस्थले पूर्वपक्षद्वारेण गाथा गता।

अथ परिहारमुख्यत्वेन गाथासप्तकम्। तत्र गाथासु सप्तसु मध्ये पुद्गलस्य स्वयमुपादानकर्तृत्व-मुख्यत्वेन *ओगाढगाढ* इत्यादिपाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं कर्तृत्वभोक्तत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन न *जीवा पोग्गलकाया* इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं बंधप्रभुत्वेन मोक्षप्रभुत्वेन च *एवं कत्ता भोत्ता* इत्यादि गाथाद्वयं; एवं समुदायेन परिहारगाथासूत्राणि सप्त। तद्यथा —

तथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण केवलज्ञानाद्यनंतगुणपरिणतैः सूक्ष्मजीवैर्निरंतरं लोको भृतस्तिष्ठति तथा पुद्गलैरपीति निरूपयति —

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो। (६४)
सुहमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविहेहिं॥ ७०॥

आत्मा को ही करता है; द्रव्यकर्म को नहीं करता है ***किह तस्स फलं भुंजदि*** (तो) इन बिना किए कर्मों का फल कैसे भोगता है ? वह कौन भोगता है ? ***अप्पा*** आत्मारूप कर्ता, ***कम्मं च देदि फलं*** तथा जीव द्वारा नहीं किया गया कर्मरूप कर्ता, आत्मा को फल कैसे देता है ?॥ ६९॥

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में पूर्व पक्ष की अपेक्षा गाथा पूर्ण हुई।

अब, परिहार की मुख्यता से सात गाथाएँ कहते हैं। उन सात गाथाओं में से पुद्‌गल के स्वयं उपादान कर्तृत्व की मुख्यता से ***ओगाढगाढ*** इत्यादि पाठक्रम से तीन गाथाएँ हैं, उसके बाद कर्तृत्व और भोकृत्व व्याख्यान के उपसंहार की मुख्यता से ***जीवा पोग्गलकाया*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं; तत्पश्चात् बन्ध में प्रभुता और मोक्ष में प्रभुतारूप से ***एवं कत्ता भोक्ता*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। — इस प्रकार समूहरूप से सात परिहार गाथा-सूत्र हैं। वह इस प्रकार —

जैसे शुद्ध निश्चय की अपेक्षा शक्तिरूप से केवलज्ञान आदि अनन्त गुणों से परिणत सूक्ष्म जीवों द्वारा लोक निरन्तर भरा हुआ है; उसी प्रकार पुद्‌गलों से भी; ऐसा निरूपण करते हैं —

अवगाढ गाढ भरा हुआ, सर्वत्र पुद्‌गल काय से।
यह लोक बादर सूक्ष्म के, बहुविध अनंतानंत से॥ ७०॥

गाथार्थ - लोक सर्व प्रदेशों में विविध प्रकार के अनन्तानन्त सूक्ष्म-बादर पुद्‌गलकायों द्वारा अवगाहित होकर गाढ़ भरा हुआ है।

ओगाढगाढणिचिदो अवगाढगाढनिचितः यथा पृथ्वीकायिकादिपञ्चविधसूक्ष्मस्थावैरंजन-चूर्णपूर्णसमुद्गकन्यायेनावगाढगाढरूपेण नैरंतर्येण निचितो भृतः। कोऽसौ। *लोगो* लोकः *पोग्गलकायेहिं* तथा पुद्गलकायैश्च। कथम्? *सव्वदो* सर्वप्रदेशेषु। कथंभूतैः पुद्गलकायैः? *सुहुमेहिं बादरेहिं य* सूक्ष्मैर्दृष्ट्यगोचरैर्बादरैर्दृष्टिविषयैश्च। कतिसंख्योपेतैः? *अणंताणंतेहिं* अनंतानंतै। किंविशिष्टैः? *विविहेहिं* विविधैरन्तर्भेदेन बहुभेदैरिति।

अत्र कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला यत्रात्मा तिष्ठति तत्रानानीता एव पूर्वं तिष्ठन्ति बंधकाले पश्चादागमिष्यंत्येव। यद्यपि पूर्वं ते तत्रात्मावगाढगाढक्षेत्रे क्षीरनीरन्यायेन तिष्ठन्ति तथापि ते हेयास्तेभ्यो भिन्नः शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा स एवोपादेय इति भावार्थः॥ ७०॥

अथात्मनो मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला निश्चयेनोपादानरूपेण स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमंतीति प्रतिपादयति —

अत्ता कुणदि सहावं तत्थ गया पोग्गला सहावेहिं। (६५)
गच्छंति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा॥ ७१॥

टीकार्थ - ***ओगाढगाढणिचिदो*** अवगाढ गाढ भरा हुआ है। जैसे अञ्जन (काजल) की डिब्बी, अञ्जन के चूर्ण से पूर्ण भरी हुई है; इसी न्याय से पृथ्वीकायिक आदि पाँच प्रकार के सूक्ष्म स्थावरों से निरन्तर अवगाढ़रूप से भरा हुआ है। वह कौन भरा है? ***लोगो*** लोक भरा है। ***पोग्गलकायेहिं*** और उसी प्रकार पुद्गलकायों से भी भरा हुआ है। वह कैसा भरा हुआ है? ***सव्वदो*** सभी प्रदेशों में भरा हुआ है। किस प्रकार के पुद्गलकायों से भरा हुआ है? ***सुहुमेहिं बादरेहिं य*** दृष्टि के अगोचर सूक्ष्म और दृष्टि के विषय बादर कायों से भरा है। कितनी संख्यासहित काय से भरा है? ***अणंताणंतेहिं*** अनन्तानन्त कायों से भरा है। किन विशेषतावालों से भरा है? ***विविहेहिं*** अनेक प्रकार के अन्तरभेद से बहु भेदवाले कायों से भरा है।

यहाँ, जहाँ आत्मा विद्यमान है, वहाँ कर्मवर्गणा-योग्य पुद्गल बिना लाए, पहले से ही रह रहे हैं; बन्ध के समय बाद में भी आ जाएंगे; यद्यपि वे यहाँ आत्मा में क्षीर-नीर न्याय से अवगाहित होकर गाढ़ (ठसाठस) भरे हुए हैं, तथापि वे हेय हैं; उनसे भिन्न जो शुद्ध-बुद्ध एकस्वभाव परमात्मा है, वह ही उपादेय है — ऐसा भावार्थ है॥ ७०॥

अब, आत्मा के मिथ्यात्व-रागादि परिणाम होने पर कर्मवर्गणायोग्य पुद्गल, निश्चय की अपेक्षा उपादानरूप से स्वयं ही कर्मपने से परिणमित होते हैं, ऐसा प्रतिपादन करते हैं -

आतम करे निजभाव तब, पुद्गल स्वयं स्व भाव से।
अन्योन्य अवगाही वहीं, परिणमित हो कर्मत्व से॥ ७१॥

अत्ता आमा *कुणदि* करोति। कं करोति ? *सहावं* स्वभावं रागद्वेषमोहसहितं परिणामम्। ननु रागद्वेषमोहरहितो निर्मलचिज्ज्योतिः सहितश्च वीतरागानंदरूपः स्वभावपरिणामो भण्यते रागादिविभाव-परिणामः कथं स्वभावशब्देनोच्यत इति परिहारमाह – बंधप्रकरणवशादशुद्धनिश्चयेन रागादिविभाव-परिणामोऽपि स्वभावो भण्यते इति नास्ति दोषः। *तत्थ गया* तत्रात्मशरीरावगाढक्षेत्रे गताः स्थिताः। के ते ? *पोग्गला* कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कंदाः *गच्छंति कम्मभावं* गच्छन्ति परिणमन्ति कर्मभावं द्रव्यकर्म-पर्यायं। कैः करणभूतैः ? *सहावेहिं* निश्चयेन स्वकीयोपादानकारणैः। कथं गच्छन्ति ? *अण्णोण्णागाहं* अन्योन्यावगाहसम्बन्धो यथा भवति। कथंभूताः संतः ? अवगाढा क्षीरनीरन्यायेन संश्लिष्टा इत्यभिप्रायः॥ ७१॥

अथ कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला यथा स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमन्ति तथा दृष्टांतमाह –

गाथार्थ - आत्मा अपने (मोह-राग-द्वेषादि) भाव को करता है, (तब) अन्योन्य अवगाहरूप से प्रविष्ट वहाँ स्थित पुद्गल, अपने भावों से कर्मभाव को प्राप्त होते हैं।

टीकार्थ - ***अत्ता*** आत्मा, ***कुणदि*** करता है। क्या करता है ? ***सहावं*** स्वभाव, राग-द्वेष-मोह सहित परिणाम करता है। यहाँ प्रश्न है कि राग-द्वेष-मोह रहित और निर्मल चैतन्यज्योतिसहित वीतराग आनन्दरूप परिणमनस्वभाव कहलाता है; (आप) रागादि विभावपरिणाम को स्वभाव शब्द से कैसे कहते हैं ? इसका परिहार करते हैं – बन्ध का प्रकरण होने से, अशुद्ध निश्चय की अपेक्षा रागादि विभावपरिणाम भी स्वभाव कहा जाता है – इस प्रकार दोष नहीं है।

तत्थगया उस आत्मशरीर से अवगाहित क्षेत्र में गत, स्थित हैं। वे कौन स्थित हैं ? ***पोग्गला*** कर्मवर्गणा-योग्य पुद्गल स्कन्ध स्थित हैं। ***गच्छन्ति कम्मभावं*** वे कर्मभाव, द्रव्यकर्मरूप पर्याय को प्राप्त होते हैं, कर्मरूप परिणमित होते हैं। करणभूत किससे परिणमित होते हैं ? ***सहावेहिं*** निश्चय की अपेक्षा अपने उपादानकारण से उसरूप परिणमित होते हैं। कैसे परिणमित होते हैं ? जैसा अन्योन्य अवगाहसम्बन्ध है, वैसे ही परिणमित होते हैं। कैसे होते हुए परिणमित होते हैं ? ***अवगाढा*** क्षीर-नीर न्याय से संश्लिष्ट होते हुए परिणमित होते हैं – ऐसा अभिप्राय है॥ ७१॥

अब, कर्मवर्गणायोग्य पुद्गल जिस प्रकार स्वयं ही कर्मरूप से परिणमित होते हैं, वैसा दृष्टान्त देते हैं –

स्कन्ध रचना बहुविविध, परकृत बिना पुद्गलों की।
दिखती है त्यों ही जानना, परकृत बिना सब कर्म की॥ ७२॥

जह पुग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती। (६६)
अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणाहि॥ ७२॥

जह पुग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती अकदा परेहिं दिट्ठा **यथा पुद्गलद्रव्याणां बहुप्रकारैः स्कंदनिष्पत्तिरकृता परैर्दृष्टा** ***तह कम्माणं वियाणाहि*** **तथा कर्मणामपि विजानीहि हे शिष्य त्वमिति।**

तथाहि – यथा चंद्रार्कप्रभोपलंभे सति अभ्रसंध्यारागेंद्रचापपरिवेषादिभिर्बहुभिः प्रकारैः परेणाकृता अपि स्वयमेव पुद्गलाः परिणमन्ति लोके तथा विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुचरणभावनारूपाभेदरत्नत्रयात्मककारणसमयसाररहितानां जीवानां मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला जीवेनोपादानकारणभूतेनाकृता अपि स्वकीयोपादानकारणैः कृत्वा ज्ञानावरणादि-मूलोत्तरप्रकृतिरूपैर्बहुभेदैः परिणमन्ति इति भावार्थः॥ ७२॥

एवं पुद्गलस्य स्वयमुपादानकर्तृत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतम्।

अथाकृतकर्मणः कथं फलं भुंक्ते जीव इति योऽसौ पूर्वपक्षः कृतस्तत्र फलभोक्तृत्वविषये

गाथार्थ – जैसे पुद्गलद्रव्यों सम्बन्धी अनेक प्रकार की स्कन्धरचना पर से अकृत (दूसरे से किए बिना / स्वतः) दिखाई देती है; उसी प्रकार कर्मों का जानना चाहिए।

टीकार्थ - ***जह पोग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती अकदापरेहिं दिट्ठा*** जैसे पुद्गलद्रव्य की अनेक प्रकार से स्कन्धरूप निष्पत्ति, उत्पत्ति पर से बिना किए ही दिखाई देती है; ***तह कम्माणं वियाणाहि*** उसी प्रकार कर्मों की भी जानो, हे शिष्य! तुम।

वह इस प्रकार – जैसे लोक में दूसरों द्वारा नहीं किए जाने पर भी चन्द्र-सूर्य की प्रभा उपलब्ध होने पर बादल, सन्ध्या की लालिमा, इन्द्रधनुष, परिवेष (मण्डल) आदि अनेक प्रकार से पुद्गल स्वयं ही परिणमित होते हैं; उसी प्रकार विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावी आत्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, अनुचरणमय भावनारूप अभेद रत्नत्रयात्मक कारण-समयसार से रहित जीवों के मिथ्यात्व-रागादि परिणाम होने पर, कर्मवर्गणायोग्य पुद्गल, उपादानकारणभूत जीव द्वारा नहीं किए जाने पर भी, अपने उपादानकारण से ही ज्ञानावरणादि मूलोत्तर प्रकृतिरूप अनेक भेदों से परिणमित होते हैं – ऐसा भावार्थ है॥ ७२॥

इस प्रकार पुद्गल के स्वयं उपादान कर्तृत्व के व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, जीव द्वारा नहीं किए गए कर्मों का फल, जीव कैसे भोगता है? ऐसा जो वह पूर्व

नयविभागेन युक्तिं दर्शयति —

जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा। (६७)
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजंति॥ ७३॥

जीवा पुग्गलकाया जीवकायाः पुद्गलकायाश्च। कथंभूताः ? _अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा_ अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः स्वकीयस्वकीयरागादिस्निग्धरूक्षादिपरिणामनिमित्तेन पूर्वमेवान्योन्या-वगाहेन संश्लिष्टरूपेण प्रतिबद्धाः संतः तिष्ठन्ति तावत् _काले विजुज्जमाणा_ उदयकाले स्वकीयफलं दत्त्वा वियुज्यमाना निर्जरां गच्छंतः। किं कुर्वन्ति ? _दिंति_ निर्विकारचिदानन्दैकस्वभावजीवस्य मिथ्यात्व-रागादिभिः सहैकत्वरुचिरूपं मिथ्यात्वं तैरेव सहैकत्वप्रतिपत्तिरूपं मिथ्याज्ञानं तदेवैकत्वपरिणतिरूपं मिथ्याचारित्रमिति मिथ्यात्वादित्रयपरिणतजीवानां पुद्गलाः कर्तारो ददति प्रयच्छंति। किं ददति ? _सुहदुक्खं_ अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखाद्विपरीतं परमाकुलत्वोत्पादकमभ्यंतरे निश्चयेन हर्षविषादरूपं व्यवहारेण पुनर्बहिर्विषये विविधेष्टानिष्टेन्द्रियविषयप्राप्तिरूपं कटुकविषरसास्वादस्वभावं सांसारिक-

---

पक्ष (प्रश्न) किया गया था, वहाँ फल-भोक्तृत्व के विषय में नयविभाग से युक्ति दिखाते हैं –

जो जीव पुद्‌गल परस्पर, प्रतिबद्ध हैं अवगाह से।
वे छूटने के समय पर, सुख दुःख देते भोगते॥ ७३॥

गाथार्थ - जीव और पुद्‌गल (विशिष्ट प्रकार से) अन्योन्य अवगाह के ग्रहण द्वारा (परस्पर) प्रतिबद्ध हैं। अपने समय पर (उदयावस्था के समय), वे (पुद्‌गल) सुख-दुःख देते हैं, (और जीव उन्हें) भोगते हैं।

टीकार्थ - ***जीवापोग्गलकाया*** जीव-काय और पुद्‌गल-काय। वे कैसे हैं ? ***अण्णोण्णा-गाढगहणपडिबद्धा*** अन्योन्य अवगाढ़ ग्रहण प्रतिबद्ध हैं; अपने-अपने रागादि और स्निग्ध -रूक्षादि परिणाम के कारण पहले से ही अन्योन्य अवगाह द्वारा संश्लिष्टरूप से प्रतिबद्ध होते हुए, तब तक रह रहे हैं। ***काले विजुज्जमाणा*** उदय के समय अपना फल देकर पृथक् होते हुए, निर्जरा को प्राप्त होते हुए (वे) क्या करते हैं ? ***दिंति*** निर्विकार चिदानन्द एकस्वभावी जीव का मिथ्यात्व-रागादि के साथ एकत्व रुचिरूप मिथ्यात्व, उनके ही साथ एकत्व प्रतिपत्तिरूप मिथ्याज्ञान, उसमें ही एकत्व परिणतिरूप मिथ्याचारित्र – इस प्रकार मिथ्यात्वादि तीनरूप परिणत जीवों को पुद्‌गलरूप कर्ता देते हैं। क्या देते हैं ? ***सुहदुक्खं*** अनाकुलत्व लक्षण पारमार्थिक सुख से विपरीत, निश्चय से अन्तरङ्ग में परम आकुलता को उत्पन्न करनेवाले हर्ष-विषादरूप तथा व्यवहार से बाह्य विषय में अनेक प्रकार के इष्ट-अनिष्ट इन्द्रिय-विषयों की प्राप्तिरूप कटुक

सुखदुःखं *भुंजंति* वीतरागपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादभोजनरहिता जीवा निश्चयेन भावरूपं व्यवहारेण द्रव्यरूपं भुंजंते सेवंत इत्यभिप्रायः॥ ७३॥

एवं भोक्तृत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता।

अथ कर्तृत्वभोक्तृत्वोपसंहारः कथ्यते —

तम्हा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स। (६८)
भोत्ता दु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं॥ ७४॥

तम्हा यस्मात्पूर्वोक्तनयविभागेन जीवकर्मणोः परस्परोपादानकर्तृत्वं नास्ति तस्मात्कारणात् *कम्मं कत्ता* कर्म कर्तृ भवति। केषां? निश्चयेन स्वकीयभावानां व्यवहारेण रागादिजीवभावानां जीवोऽपि व्यवहारेण द्रव्यकर्मभावानां निश्चयेन स्वकीयचेतकभावानाम्। कथंभूतं सत्कर्म स्वकीयभावानां कर्तृ भवति? *संजुदा* संयुक्तं *अध* अथो। केन संयुक्तं? *भावेण* मिथ्यात्वरागादिभावेन परिणामेन *जीवस्स* जीवस्य जीवोऽपि कर्मभावेन संयुक्त इति *भोत्ता दु* भोक्ता पुनः *हवदि* भवति।

विषरूपी रस के आस्वादमय स्वभाववाले सांसारिक सुख-दुःख को देते हैं। ***भुंजंति*** वीतराग परम आह्लादमय एकरूप सुखामृत रस के आस्वादमय भोजन से रहित जीव, निश्चय से भावरूप और व्यवहार से द्रव्यरूप (उन कर्मों को) भोगते हैं — ऐसा अभिप्राय है॥ ७३॥

इस प्रकार भोक्तृत्व के व्याख्यान की मुख्यता से गाथा पूर्ण हुई।

अब, कर्तृत्व-भोक्तृत्व का उपसंहार कहते / करते हैं —

इसलिए कर्ता कहा, चिद्भाव संयुत कर्म को।
व भाव चेतक से करम, फल भोगता है जीव तो॥ ७४॥

गाथार्थ - इसलिए जीव के भाव से संयुक्त कर्म, कर्ता है तथा जीव चेतकभाव द्वारा कर्मफल का भोगता है।

टीकार्थ - ***तम्हा*** जिस कारण पूर्वोक्त नयविभाग से जीव और कर्मों के परस्पर उपादान कर्तृत्व नहीं है, उस कारण ***कम्मं कत्ता*** कर्म कर्ता है। वह किनका कर्ता है? निश्चय से अपने भावों का, व्यवहार से रागादि जीवभावों का कर्ता है; जीव भी व्यवहार से द्रव्यकर्म-भावों का और निश्चय से अपने चेतकभावों का कर्ता है। कैसा होता हुआ कर्म अपने भावों का कर्ता है? ***संजुदा*** संयुक्त होता हुआ करता है। ***अध*** अब। किससे संयुक्त होता हुआ करता है? ***भावेण*** मिथ्यात्व-रागादि भाव से, परिणाम से ***जीवस्स*** जीव के भाव से संयुक्त होता हुआ, अपने भावों

कोऽसौ ? *जीवो* निर्विकार-चिदानन्दैकानुभूतिरहितो जीवः। केन कृत्वा ? *चेदगभावेण* परमचैतन्य-प्रकाशविपरीतेनाशुद्धचेतकभावेन। किं भोक्ता भवति ? *कम्मफलं* शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मतत्त्व-भावनोत्पन्नं यत्सहजशुद्धपरमसुखानुभवनफलं तस्माद्विपरीतं सांसारिकसुखदुःखानुभवनरूपं शुभाशुभ-कर्मफलमिति भावार्थः ॥ ७४॥

एवं पूर्वगाथा कर्मभोक्तृत्वमुख्यत्वेन, इयं तु गाथा कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वयोरुपसंहारमुख्यत्वेनेति गाथाद्वयं गतम्।

अथ पूर्वं भणितमपि प्रभुत्वं पुनरपि कर्मसंयुक्तत्वमुख्यत्वेन दर्शयति -

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं। (६९)
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंछण्णो॥ ७५॥

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं निश्चयेन कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वरहितोऽपि व्यवहारेणैवं पूर्वोक्तनयविभागेन कर्ता भोक्ता च भूत्वा। स कः ? *अप्पा* आत्मा। कैः करणभूतैः ? *सगेहिं कम्मेहिं* स्वकीयशुभाशुभद्रव्य-

---

का कर्ता है। जीव भी कर्मभाव से संयुक्त होता हुआ कर्ता है। ***भोत्ता दु*** और भोगता भी ***हवदि*** है। वह कौन है? ***जीवो*** निर्विकार चिदानन्द एक अनुभूति से रहित, जीव भोगता है। वह किसके द्वारा भोगता है? ***चेदगभावेण*** परम चैतन्य प्रकाश से विपरीत अशुद्ध चेतकभाव द्वारा वह भोगता है। वह किसे भोगता है? ***कम्मफलं*** शुद्ध-बुद्ध एकस्वभावी परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न जो सहज शुद्ध परमसुख का अनुभवनरूप फल है, उससे विपरीत सांसारिक सुख-दुःख के अनुभवनरूप शुभाशुभ कर्मफल को भोगता है – ऐसा भावार्थ है॥ ७४॥

इस प्रकार पूर्व गाथा कर्मों के भोक्तृत्व की मुख्यता से और यह गाथा कर्मसम्बन्धी कर्तृत्व -भोक्तृत्व के उपसंहार की मुख्यता से – इस प्रकार दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, पहले कहे गए प्रभुत्व को ही पुनः कर्मसंयुक्तत्व की मुख्यता से दिखाते हैं –

यों आतमा स्व कर्म से, कर्ता रु भोक्ता है हुआ।
हो मोह से आच्छन्न सांत, अनंत भव में घूमता॥ ७५॥

गाथार्थ - इस प्रकार अपने कर्मों से कर्ता-भोक्ता होता हुआ, मोह से आच्छादित आत्मा पार (सान्त) और अपार (अनन्त) संसार में घूमता है।

टीकार्थ - ***एवं कत्ता भोत्ता होज्जं*** निश्चय की अपेक्षा कर्मों के कर्तृत्व-भोक्तृत्व से रहित होने पर भी व्यवहार से पूर्वोक्त नयविभाग की अपेक्षा कर्ता और भोक्ता होकर। इसरूप वह

भावकर्मभिः। एवंभूतः सन् किं करोति? *हिंडदि* हिंडते भ्रमति। कं? *संसारं* निश्चयनयेनानंतसंसार-व्याप्तिरहितत्वेनानंतज्ञानादिगुणाधारात्परमात्मनो विपरीतं चतुर्गतिसंसारम्। पुनरपि किं विशिष्टं? *पारमपारं* भव्यापेक्षया सपारं अभव्यापेक्षया त्वपारम्। पुनरपि कथंभूतः स आत्मा? *मोहसंछण्णो* विपरीताभिनिवेशोत्पादकमोहरहितत्वेन निश्चयेनानंतसद्दर्शनादिशुद्धगुणोऽपि व्यवहारेण दर्शनचारित्र-मोहसंछन्नः प्रच्छादित इत्यभिप्रायः॥ ७५॥

एवं कर्मसंयुक्तत्वमुख्यत्वेन गाथा गता।

अथात्रापि पूर्वोक्तमपि प्रभुत्वं पुनरपि कर्मरहितत्वं मुख्यत्वेन प्रतिपादयति –

उवसंतखीणमोहो मग्गं जिणभासिदेण समुवगदो। (७०)
णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि धीरो॥ ७६॥

***उवसंतखीणमोहो* उपशांतक्षीणमोहः अत्रोपशमशब्देनौपशमिकसम्यक्त्वं क्षीणशब्देन क्षायिक-**

कौन होकर? ***अप्पा*** आत्मा ऐसा होकर। वह किस प्रकार इस रूप होता है? ***सगेहिं कम्मेहिं*** अपने शुभाशुभ द्रव्य-भावकर्मों के कारण इस रूप होता है। ऐसा होता हुआ वह क्या करता है? ***हिंडदि*** घूमता है। वह कहाँ घूमता है? ***संसारं*** निश्चयनय की अपेक्षा अनन्त संसार की व्याप्ति से रहित होने के कारण अनन्त ज्ञानादि गुणों के आधारभूत परमात्मा से विपरीत चतुर्गति संसार में घूमता है। वह संसार किस विशेषतावाला है? ***पारमपारं*** वह भव्य की अपेक्षा सपार / सान्त है; परन्तु अभव्य की अपेक्षा अपार / अनन्त है। वह आत्मा और कैसा है? ***मोहसंछण्णो*** विपरीत अभिनिवेश को उत्पन्न करनेवाले मोह से रहित होने के कारण निश्चयनय से अनन्त सद्दर्शन आदि शुद्धगुणमय होने पर भी, वह आत्मा व्यवहार से दर्शनमोह, चारित्रमोह से संछन्न है, प्रच्छादित है – ऐसा अभिप्राय है॥ ७५॥

इस प्रकार कर्मसंयुक्तत्व की मुख्यता से गाथा पूर्ण हुई।

अब, यहाँ भी पूर्वकथित प्रभुत्व का ही कर्मरहितत्व की मुख्यता से प्रतिपादन करते हैं –

जो जिनवचन से मार्ग पा, उपशान्त अरु क्षय मोह हो।
ज्ञानानुमार्गाचरण युत, वह धीर शिवपुर प्राप्त हो॥ ७६॥

गाथार्थ – जिनवचन द्वारा मार्ग को प्राप्तकर, उपशान्त-क्षीणमोह होता हुआ, ज्ञानानुमार्गचारी धीर (पुरुष) निर्वाणपुर को प्राप्त होता है।

टीकार्थ – ***उवसंतखीणमोहो*** उपशान्त-क्षीणमोह, यहाँ उपशम शब्द से औपशमिक-

सम्यक्त्वं द्वाभ्यां तु क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमिति ग्राह्यं *मग्गं* भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं निश्चयव्यवहार-मोक्षमार्गं *समुवगदो* समुपगतः प्राप्तः। केन? *जिणभासिदेण* वीतरागसर्वज्ञभाषितेन *णाणं* निर्विकार-स्वसंवेदनज्ञानं अभेदेन तदाधारं शुद्धात्मानं वा *अणु* अनुलक्षणीकृत्य समाश्रित्य तं ज्ञानगुणमात्मानं वा *मग्गचारी* पूर्वोक्तनिश्चयव्यवहारमोक्षमार्गचारी। एवंगुणविशिष्टो भव्यवरपुण्डरीकः *वजदि* व्रजति गच्छति। किं? *णिव्वाणपुरं* अव्याबाधसुखाद्यनंतगुणास्पदं शुद्धात्मोपलंभलक्षणं निर्वाणनगरम्। पुनरपि किंविशिष्टः स भव्यः। *धीरो* धीरः घोरोपसर्गपरिषहकालेऽपि निश्चयरत्नत्रयलक्षणसमाधेरच्युतः पाण्डवादिवदिति भावार्थः॥ ७६॥

इति कर्मरहितत्वव्याख्यानेन द्वितीयगाथा गता।

एवं *ओगाढगाढ* इत्यादि पूर्वोक्तपाठक्रमेण परिहारगाथासप्तकं गतम्।

इति जीवास्तिकायव्याख्यानरूपेषु प्रभुत्वादिनवाधिकारेषु मध्ये पञ्चभिरंतरस्थलैः समुदायेन *जीवा अणाइणिहणा* इत्याद्यष्टादशगाथाभिः कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वसंयुक्तत्वत्रयस्य यौगपद्यव्याख्यानं समाप्तम्।

सम्यक्त्व, क्षीण शब्द से क्षायिक-सम्यक्त्व और दोनों से क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व ग्रहण करना चाहिए। ***मग्गं*** भेदाभेद-रत्नत्रयात्मक निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग को ***समुवगदो*** समुपगत, प्राप्त करता है। किसके द्वारा उसे प्राप्त करता है? ***जिणभासिदेण*** वीतराग सर्वज्ञ के कथन द्वारा उसे प्राप्त करता है। ***णाणं*** निर्विकार स्वसम्वेदन ज्ञान का अथवा अभेद अपेक्षा से उसके आधारभूत शुद्धात्मा का ***अणु*** अनुलक्षणी कर, समाश्रय कर, उस ज्ञानगुण या आत्मा का आश्रयकर ***मग्गचारी*** पूर्वोक्त निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्गचारी होता है। इन गुणों से विशिष्ट भव्यवर पुण्डरीक (भव्यों में सर्वोत्कृष्ट) ***वजदि*** जाता है। कहाँ जाता है? ***णिव्वाणपुरं*** अव्याबाधसुख आदि अनन्त गुणों के स्थानभूत, शुद्धात्मा की उपलब्धि है लक्षण जिसका, ऐसे निर्वाणनगर को जाता है / प्राप्त होता है। वह भव्य और किस विशेषतावाला है? ***धीरो*** धीर है, घोर उपसर्ग-परिषह के समय भी पाण्डव आदि के समान निश्चय रत्नत्रय लक्षण समाधि से च्युत नहीं होता है – ऐसा भावार्थ है॥ ७६॥

इस प्रकार कर्मरहितत्व के व्याख्यान द्वारा द्वितीय गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार ***ओगाढगाढ*** इत्यादि पूर्वोक्त पाठक्रम से परिहारपरक सात गाथाएँ पूर्ण हुईं।

इस प्रकार जीवास्तिकाय के व्याख्यानरूप प्रभुत्व आदि नौ अधिकारों में से पाँच अन्तरस्थलों द्वारा समुदायरूप से ***जीवा अणाइणिहणा*** इत्यादि अठारह गाथाओं द्वारा कर्म कर्तृत्व, भोक्तृत्व और संयुक्तत्व – इन तीन का यौगपद्य व्याख्यान पूर्ण हुआ।

अथ तस्यैव नवाधिकारकथितजीवास्तिकायस्य पुनरपि दशविकल्पैर्विंशंतिविकल्पैर्वा विशेष-व्याख्यानं करोति –

एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो हवदि।(७१)
चदुसंकमो य भणिदो पंचग्गगुणप्पहाणो य॥ ७७॥

छक्कावक्कमजुत्तो उवउत्तो सत्तभङ्गसब्भावो। (७२)
अट्ठासवो णवत्थो जीवो दहठाणियो भणियो॥ ७८॥ जुम्मं

एक्को चेव महप्पा **सर्वसुवर्णसाधारणेन षोडशवर्णिकगुणेन यथा सुवर्णराशिरेकः तथा सर्वजीवसाधारणकेवलज्ञानाद्यनंतगुणसमूहेन शुद्धजीवजातिरूपेण संग्रहनयेनैकश्चैव महात्मा अथवा** ***उवजुत्तो*** **सर्वजीवसाधारणलक्षणेन केवलज्ञानदर्शनोपयोगेनोपयुक्तत्वात्परिणतत्वादेकः।**

कश्चिदाह – यथैकोऽपि चंद्रमा बहुषु जलघटेषु भिन्नभिन्नरूपो दृश्यते तथैकोऽपि जीवो

अब, उस ही नौ अधिकार द्वारा कहे गए जीवास्तिकाय का और भी दश भेदों द्वारा या बीस भेदों द्वारा विशेष व्याख्यान करते हैं –

है वह महात्मा एक ही, दो भेद, त्रिलक्षणमयी।
चतुचंक्रमणयुत मुख्य पाँच, प्रधान गुण युत है वही॥ ७७॥

उपयोगमय षट्अपक्रमयुत, सप्तभंगमयी सदा।
सद्भाव अष्टाश्रय नवार्थ, स्थान दश में गत कहा॥ ७८॥

गाथार्थ - वह महात्मा एक ही, दो भेदवाला, तीनलक्षणमय, चार संक्रमणयुक्त और पाँच मुख्य गुणों से प्रधान कहा गया है।

वह उपयोगस्वभावी जीव छह अपक्रम युक्त, सात भङ्गों से सद्भाववाला, आठ का आश्रयभूत, नौ पदार्थरूप और दश स्थानगत कहा गया है।

टीकार्थ - ***एक्को चेव महप्पा*** सभी सुवर्ण में साधारण सोलह वर्णी गुण से जैसे सुवर्ण राशि एक है; उसी प्रकार संग्रहनय की अपेक्षा सभी जीवों में साधारण केवलज्ञान आदि अनन्त गुणसमूहमय शुद्धजीव जातिरूप से वह महात्मा एक ही है; अथवा ***उवजुत्तो*** सभी जीवों के साधारण लक्षणरूप केवल ज्ञान-दर्शन उपयोग से उपयुक्त होने के कारण, परिणत होने के कारण एक है।

कोई कहता है कि जैसे एक ही चन्द्रमा अनेक जल-घड़ों में भिन्न-भिन्नरूप दिखाई देता

बहुशरीरेषु भिन्नभिन्नरूपेण दृश्यत इति ? परिहारमाह – बहुषु जलघटेषु चंद्रकिरणोपाधिवशेन जलपुद्गल एव चंद्राकारेण परिणता न चाकाशस्थ चंद्रमाः। अत्र दृष्टांतमाह – यथा देवदत्तमुखोपाधिवशेन नानादर्पणानां पुद्गलाः एव नानामुखाकारेण परिणमन्ति न च देवदत्तमुखं नानारूपेण परिणमति, यदि परिणमति तदा दर्पणस्थं मुखप्रतिबिंबं चैतन्यं प्राप्नोति, न च तथा; तथैकचंद्रमा अपि नानारूपेण न परिणमतीति। किं च – न चैकब्रम्हनामा कोऽपि दृश्यते प्रत्यक्षेण यश्चंद्रवन्नानारूपेण भविष्यति इत्यभिप्रायः।

सो दुवियप्पो **दर्शनज्ञानभेदद्वयेन संसारिमुक्तद्वयेन भव्याभव्यद्वयेन वा स द्विविकल्पः।** ***तिलक्खणो हवदि*** **ज्ञानकर्मकर्मफलचेतनात्रयेणोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयेण, द्रव्यगुण-पर्यायत्रयेण वा त्रिलक्षणो भवति।** ***चदुसंकमो य भणिदो*** **यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन निर्विकारचिदा-नन्दैकलक्षणसिद्धगतिस्वभावस्तथापि व्यवहारेण मिथ्यात्वरागादिपरिणतः सन्नारकादिचतुर्गतिसंक्रमणो भणितः।** ***पंचग्गगुणप्पहाणो य*** **यद्यपि निश्चयेन क्षायिकशुद्धपारिणामिकभावद्वयलक्षणस्तथापि सामान्येनौदयिकादिपञ्चाग्रगुणप्रधानश्च।**

है; उसी प्रकार एक ही जीव, अनेक शरीरों में भिन्न-भिन्नरूप से देखा जाता है। इसका परिहार करते हैं – चन्द्र-किरणों की उपाधि के वश से अनेक जल-घड़ों में स्थित जल-पुद्‌गल ही चन्द्राकाररूप से परिणमित होते हैं, आकाश में स्थित चन्द्रमा वहाँ नहीं है।

यहाँ दृष्टान्त कहते हैं – जैसे देवदत्त के मुख की उपाधि के वश से, अनेक दर्पणों के पुद्‌गल अनेक मुखाकाररूप से परिणमित होते हैं; देवदत्त का मुख अनेकरूप परिणमित नहीं होता है। यदि वह परिणमित होता तो दर्पण में स्थित मुख-प्रतिबिम्ब को चेतनता प्राप्त होती; परन्तु वैसा तो नहीं है; उसी प्रकार एक चन्द्रमा भी अनेकरूप से परिणमित नहीं होता है। दूसरी बात यह है कि प्रत्यक्ष में ब्रह्म नामक कोई एक दिखाई भी नहीं देता, जो चन्द्रमा के समान अनेकरूप से होगा – ऐसा अभिप्राय है।

सो दुवियप्पो दर्शन-ज्ञानरूप दो भेद से, संसारी-मुक्त या भव्य-अभव्यरूप दो भेद से वह दो प्रकार का है। ***तिलक्खणो हवदि*** ज्ञान, कर्म, कर्मफलचेतना की अपेक्षा तीन; उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य की अपेक्षा तीन; ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अपेक्षा तीन; द्रव्य, गुण, पर्याय की अपेक्षा तीन – इस प्रकार तीन लक्षणवाला है। ***चदुसंकमो य भणिदो*** यद्यपि शुद्ध निश्चय से निर्विकार, चिदानन्द, एक लक्षण सिद्धगति स्वभावी है; तथापि व्यवहार से मिथ्यात्व-रागादिरूप परिणमित होता हुआ, नरकादि चतुर्गति में संक्रमण / परिभ्रमण करता है – ऐसा कहा है। ***पंचग्गगुणप्पहाणो य*** यद्यपि निश्चय से क्षायिक और शुद्ध पारिणामिकभाव – इन दो लक्षणोंवाला है; तथापि सामान्य से औदयिक आदि पाँच मुख्य गुणों से प्रधान है।

छक्कावक्कमजुत्तो **षट्केनापक्रमेण युक्तः; अस्य वाक्यस्यार्थः कथ्यते – अपगतो विनष्टः विरुद्धक्रमः प्रांजलत्वं यत्र स भवत्यपक्रमो वक्र इति ऊर्ध्वाधोमहादिक्चतुष्टयगमनरूपेण षड्विधेनापक्रमेण मरणांते युक्त इत्यर्थः, सा चैवानुश्रेणिगतिरिति।** ***सत्तभंगसब्भावो*** **स्यादस्तीत्यादि सप्तभंगीसद्भावः** ***अट्ठासवो*** **यद्यपि निश्चयेन वीतरागलक्षणनिश्चयसम्यक्त्वाद्यष्टगुणाश्रयस्तथापि व्यवहारेण ज्ञानावरणा -द्यष्टकर्मास्रवः।** ***णवट्ठो*** **यद्यपि निर्विकल्पसमाधिस्थानां निश्चयेन सर्वजीवसाधारणत्वेना-खण्डैक -ज्ञानरूपः प्रतिभाति तथापि व्यवहारेण नानावर्णिकागतसुवर्णवन्नवपदार्थरूपः।** ***दह ठाणियो भणियो*** **यद्यपि निश्चयेन शुद्धबुद्धैकलक्षणस्तथापि व्यवहारेण पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारण-वनस्पतिद्विय -द्वित्रिचतुःपञ्चेद्रिंयरूपदशस्थानगतः। स कः?** ***जीवो*** **जीवपदार्थः एवं दशविकल्परूपो भवति।**

अथवा द्वितीयव्याख्यानेन पृथगिमानि दशस्थानानि उपर्युक्तपदस्य पृथग्व्याख्याने कृते सति तान्यपि दशस्थानानि भवंतीत्युभयमेलापकेन विंशभेदः स्यादिति भावार्थः॥ ७७-७८॥

अथ मुक्तस्योर्ध्वगतिः संसारिणां मरणकाले षड्गतय इति प्रतिपादयति –

छक्कावक्कमजुत्तो छह अपक्रम से युक्त है। इस वाक्य का अर्थ कहते हैं – अपगत / नष्ट हो गया है विरुद्धक्रम / प्राञ्जलपना जहाँ, वह अपक्रम है अर्थात् वक्रगति। मरण के अन्त में ऊर्ध्व, अधो और चार महादिशाओं में गमनरूप छह प्रकार के अपक्रम से सहित है – ऐसा अर्थ है; वह ही अनुश्रेणि गति है। ***सत्तभंग-सब्भावो*** स्यात् अस्ति इत्यादि सप्तभङ्गी से सद्भाव है। ***अट्ठासवो*** यद्यपि निश्चय से वीतराग लक्षण निश्चय-सम्यक्त्व आदि आठ गुणों का आश्रय है; तथापि व्यवहार से ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का आस्रव होता है। यद्यपि निश्चय से निर्विकल्प समाधि में स्थित जीवों को, सभी जीवों में साधारण होने से अखण्ड एक ज्ञानरूप ज्ञात होता है; तथापि व्यवहार से नाना वर्णिकाओं में व्याप्त सुवर्ण के समान नव पदार्थरूप है। ***दह ठाणियो भणियो*** यद्यपि निश्चय से शुद्ध-बुद्ध एक लक्षणमय है; तथापि व्यवहार से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक-साधारण वनस्पति; दो-इन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चार -इन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियरूप दश स्थानगत है। इन सबरूप वह कौन है? ***जीवो*** जीव पदार्थ इस प्रकार दशभेद रूप है।

अथवा द्वितीय व्याख्यान द्वारा ये दश स्थान पृथक् हैं, उपर्युक्त पद का पृथक् व्याख्यान किए जाने पर वे भी दश स्थान होते हैं; दोनों को मिलाने से बीस भेद हो जाते हैं – ऐसा भावार्थ है॥ ७७-७८॥

अब, मुक्त के ऊर्ध्वगति और मरणकाल में संसारी जीवों के छह गतियाँ होती हैं, ऐसा प्रतिपादन करते हैं –

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को। (७३)
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति॥ ७९॥

***पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को* प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैर्विभावरूपैः समस्तरागादिविभावरहितेन शुद्धात्मानुभूतिलक्षणध्यानबलेन सर्वतो मुक्तोऽपि *उड्ढं गच्छदि* स्वाभाविकानंतज्ञानादिगुणैर्युक्तः सन्नेकसमयलक्षणाविग्रहगत्योर्ध्वं गच्छति *सेसा* शेषाः संसारिणो जीवाः *विदिसावज्जं गदिं जंति* मरणान्ते विदिग्वर्ज्यां पूर्वोक्तषट्कापक्रमलक्षणमनुश्रेणिसंज्ञां गतिं गच्छन्ति इति। अत्र गाथासूत्रे —**

सदसिव संखो मंडलि बुद्धो णइयाइगो व वइसेसा।
ईसर मस्सरि पूरण विदूसणट्ठं कयं अट्ठं॥

है बंध प्रकृति प्रदेश व, अनुभाग स्थिति से रहित।
की ऊर्ध्वगति है शेष की, होती गति विदिशा रहित॥ ७९॥

गाथार्थ - प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बन्धों से सर्वतः मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करते हैं; शेष जीव (भवान्तर को जाते समय) विदिशाओं को छोड़कर गति करते हैं।

गाथार्थ - प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बन्धों से सर्वतः मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करते हैं; शेष जीव (भवान्तर को जाते समय) विदिशाओं को छोड़कर गति करते हैं।

टीकार्थ - ***पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को*** समस्त रागादि विभाव से रहित शुद्धात्मानुभूति लक्षण ध्यान के बल से प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बन्धमय विभावरूप से सर्वतः मुक्त भी ***उड्ढं गच्छदि*** स्वाभाविक अनन्त ज्ञानादि गुणों से युक्त होते हुए, एक समय लक्षणवाली अविग्रहगति से ऊपर जाते हैं। ***सेसा*** शेष संसारी जीव ***विदिसावज्जं गदिं जंति*** मरण के बाद विदिशाओं को छोड़कर, पूर्वोक्त छह अपक्रम लक्षण अनुश्रेणी नामक गति से जाते हैं। यहाँ गाथासूत्र में —

'सदाशिव, सांख्य, माण्डलिक, बुद्ध, नैयायिक और वैशेषिक, ईश्वर, मस्करि पूरण के मतों का खण्डन करने के लिए ये आठ किए गए हैं।' — इस प्रकार गाथा में कहे गए आठ मतान्तरों के निषेध के लिए —

'आठ प्रकार के कर्मों से रहित, शीतिभूत (सुखमय), निरञ्जन, नित्य, आठ गुणमय, कृतकृत्य, लोकाग्र निवासी और सिद्ध हैं।' — इस प्रकार दूसरी गाथा में कहे गए लक्षणवाले सिद्धों का स्वरूप कहा गया है — ऐसा अभिप्राय है॥ ७९॥

इति गाथोक्ताष्टमतांतरनिषेधार्थं —

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा॥

इति द्वितीयगाथोक्तलक्षणं सिद्धस्वरूपमुक्तमित्यभिप्रायः॥ ७९॥

इति जीवास्तिकायसम्बन्धे नवाधिकाराणां चूलिकाव्याख्यानरूपेण गाथात्रयं ज्ञातव्यम्।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण *जीवोत्ति हवदि चेदा* इत्यादि नवाधिकारसूचनार्थं गाथैका, प्रभुत्वमुख्यत्वेन गाथाद्वयं, जीवत्वकथनेन गाथात्रयं, स्वदेहप्रमितिरूपेण गाथाद्वयं, अमूर्तगुणज्ञापनार्थं, गाथात्रयं, त्रिविध-चैतन्यकथनेन गाथाद्वयं, तदनंतरं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयज्ञापनार्थं गाथा एकोनविंशतिः, कर्तृत्वभोक्तृत्व-कर्मसंयुक्तत्वत्रयव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा अष्टादश, चूलिकारूपेण गाथात्रयमिति सर्वसमुदायेन त्रिपञ्चाशद्गाथाभिः *पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये जीवास्तिकाय* नामा *चतुर्थोऽन्तराधिकारः* समाप्तः।

अथानंतरं चिदानन्दैकस्वभावशुद्धजीवास्तिकायाद्भिन्ने हेयरूपे पुद्गलास्तिकायाधिकारे गाथादशकं भवति। तद्यथा — पुद्गलस्कंदव्याख्यानमुख्यत्वेन *खंदा य खंददेसा* इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, तदनंतरं परमाणुव्याख्यानमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथापञ्चकं, तत्र पञ्चकमध्ये परमाणु-

---

इस प्रकार जीवास्तिकाय के सम्बन्ध में नौ अधिकारों के चूलिका व्याख्यानरूप से तीन गाथाएँ जानना चाहिए।

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से ***जीवोत्ति हवदि चेदा*** इत्यादि नौ अधिकारों की सूचना के लिए एक गाथा, प्रभुत्व की मुख्यता से दो गाथाएँ, जीवत्व के कथन की अपेक्षा तीन गाथाएँ, स्वदेह प्रमितिरूप से दो गाथाएँ, अमूर्तगुण-ज्ञापन के लिए तीन गाथाएँ, तीन प्रकार के चैतन्य-कथन की अपेक्षा दो गाथाएँ; उसके पश्चात् ज्ञान-दर्शन दो उपयोग के ज्ञापनार्थ उन्नीस गाथाएँ, कर्तृत्व-भोक्तृत्व-कर्म संयुक्तत्व — इन तीन के व्याख्यान की मुख्यता से अठारह गाथाएँ, चूलिकारूप से तीन गाथाएँ — इस प्रकार सर्व समुदायरूप से त्रेपन गाथाओं द्वारा ***पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य प्रतिपादक प्रथम महाधिकार*** में ***जीवास्तिकाय*** नामक ***चतुर्थ अन्तराधिकार*** समाप्त हुआ।

अब, इसके बाद चिदानन्द एकस्वभावी शुद्ध जीवास्तिकाय से भिन्न, हेयरूप ***पुद्गलास्तिकाय*** अधिकार में दश गाथाएँ हैं। वह इस प्रकार — पुद्गल स्कन्ध के व्याख्यान की मुख्यता से ***खंदा य खंददेसा...*** इत्यादि पाठक्रम से चार गाथाएँ हैं, तत्पश्चात् परमाणु व्याख्यान

स्वरूपकथनेन *सव्वेसिं खंदाणं* इत्यादिगाथासूत्रमेकं, अथ परमाणूनां पृथिव्यादिजातिभेदनिराकरणार्थं *आदेसमत्त* इत्यादि सूत्रमेकं, तदनंतरं शब्दस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायत्वस्थापनमुख्यत्वेन *सद्दो खंदप्पभवो* इत्यादि सूत्रमेकं, अथ परमाणुद्रव्यप्रदेशाधारेण समयादिव्यवहारकालमुख्यत्वेन एकत्वादिसंख्याकथनेन च *णिच्चो णाणवगासो* इत्यादि सूत्रमेकं, तदनंतरं परमाणुद्रव्ये रसवर्णादिव्याख्यानमुख्यत्वेन *एयरस वण्ण* इत्यादि गाथासूत्रमेकं, एवं परमाणुद्रव्यप्ररूपणद्वितीयस्थले समुदायेन गाथापञ्चकं गतम्। अथ पुद्गलास्तिकायोपसंहाररूपेण *उवभोज्ज* इत्यादि सूत्रमेकम्। एवं गाथादशकपर्यंतं स्थलत्रयेण पुद्गलाधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा —

की मुख्यता से द्वितीय स्थल में पाँच गाथाएँ हैं। वहाँ पाँच गाथाओं में से परमाणु-स्वरूप-कथन की अपेक्षा ***सव्वेसिं खंदाणं...*** इत्यादि एक गाथा-सूत्र, इसके बाद परमाणुओं के पृथ्वी आदि जातिभेद के निराकरण के लिए ***आदेसमत्त...*** इत्यादि एक गाथा, तदुपरान्त शब्द को पुद्गलद्रव्य की पर्यायता – स्थापन की मुख्यता से ***सद्दो खंधप्पभवो...*** इत्यादि एक गाथा, तदनन्तर परमाणु द्रव्यप्रदेश के आधार से समयादि व्यवहारकाल की मुख्यता से एकत्व आदि संख्या -कथन की अपेक्षा ***णिच्चो णाणवगासो...*** इत्यादि एक गाथा, इसके बाद परमाणुद्रव्य में रस -वर्णादि-व्याख्यान की मुख्यता से ***एयरसवण्ण...*** इत्यादि एक गाथासूत्र – इस प्रकार परमाणुद्रव्य की प्ररूपणा करनेवाले द्वितीय स्थल में समुदायरूप से पाँच गाथाएँ पूर्ण हुईं। तत्पश्चात् पुद्गलास्तिकाय के उपसंहाररूप ***उवभोज्ज...*** इत्यादि एक गाथा है। – इस प्रकार दश गाथापर्यन्त तीन स्थल द्वारा ***पुद्गलाधिकार*** में सामूहिक उत्थानिका है। वह इस प्रकार है —

१० गाथाओंवाला पुद्गलास्तिकाय नामक पञ्चम अन्तराधिकार

स्थलक्रम	विषय	कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
प्रथम स्थल	पुद्गलस्कन्ध के व्याख्यान परक	८१-८४ वीं	४
द्वितीय स्थल	परमाणु व्याख्यान की मुख्यता	८५-८९ वीं	५
उक्त गाथाओं का विवरण -			
१	परमाणुस्वरूप	८५ वीं	१
२	परमाणु के पृथ्वी आदि भेद निराकरणार्थ	८६ वीं	१
३	शब्द पुद्गलद्रव्य की पर्याय	८७ वीं	१
४	परमाणु के आधार से व्यवहार समय की मुख्यता	८८ वीं	१
५	परमाणु में रस, वर्णादि की मुख्यता	८९ वीं	१
तृतीय स्थल	पुद्गलास्तिकाय अधिकार का उपसंहार परक	९० वीं	१

पुद्गलद्रव्यविकल्पचतुष्टयं कथ्यते —

खंदा य खंददेसा खंदपदेसा य होंति परमाणू।(७४)
इदि ते चदुव्वियप्पा पुग्गलकाया मुणेदव्वा॥ ८०॥

खंदा य खंददेसा खंदपदेसा य होंति स्कंदाः स्कंददेशाः स्कंदप्रदेशाश्चेति त्रयः स्कंदा भवन्ति *परमाणू* परमाणवश्च भवन्ति *इदि ते चदुव्वियप्पा पोग्गलकाया मुणेदव्वा* इति स्कंदत्रयं परमाणवश्चेति भेदेन चतुर्विकल्पास्ते पुद्गलकाया ज्ञातव्या इति।

अत्रोपादेयभूतानंतसुखरूपाच्छुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणत्वाद्धेयतत्त्वमिदमिति भावार्थः॥ ८०॥

अथ पूर्वोक्तस्कंदादिचतुर्विकल्पानां प्रत्येकलक्षणं कथयति —

खंदं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति।(७५)
अद्धद्धं च पदेसो परमाणू चेव अविभागी॥ ८१॥

पुद्गलद्रव्य के चार भेद कहते हैं —

स्कन्ध अरु स्कन्ध देश, तथा स्कन्ध प्रदेश हैं।
परमाणु ये चतुभेद, पुद्गलकाय के ज्ञातव्य हैं॥ ८०॥

गाथार्थ - स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु — ये चार भेदवाले पुद्गलकाय हैं — ऐसा जानना चाहिए।

टीकार्थ - ***खंदा य खंददेसा खंदपदेसा य होंति*** स्कन्ध, स्कन्धदेश और स्कन्धप्रदेश — ये तीन स्कन्ध हैं; ***परमाणु*** और परमाणु हैं — ***इदि ते चदुव्वियप्पा पोग्गलकाया मुणेदव्वा*** इस प्रकार तीन स्कन्ध और परमाणु के भेद से पुद्गलकाय चार भेदवाले हैं — ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ उपादेयभूत अनन्त सुखरूप शुद्ध जीवास्तिकाय से विलक्षण होने के कारण, यह हेय तत्त्व है — ऐसा भावार्थ है॥ ८०॥

अब, पूर्वोक्त स्कन्ध आदि चार विकल्पों में से प्रत्येक का लक्षण कहते हैं —

पूरण सकल स्कन्ध है, उसका ही आधा देश है।
आधे का अर्ध प्रदेश है, परमाणु ही अविभाज्य है॥ ८१॥

गाथार्थ - सकल समस्त (पुद्गल पिण्ड) स्कन्ध है, उसके आधे को देश कहते हैं, आधे का आधा प्रदेश है और परमाणु ही अविभागी है।

खंदं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति अद्धद्धं च पदेसो सकलसमस्तलक्षणः स्कंदो भवति, तदर्धलक्षणो देशो भवति, अर्धार्धलक्षणः प्रदेशो भवति। तथाहि — समस्तोऽपि विवक्षित घटपटाद्यखण्डरूपः सकल इत्युच्यते तस्यानंतपरमाणुपिंडस्य स्कंदसंज्ञा भवति।

तत्र दृष्टांतमाह — षोडशपरमाणुपिण्डस्य स्कंदकल्पना कृता तावत् एकैकपरमाणोरपनयेन नवपरमाणुपिण्डे स्थिते ये पूर्वविकल्पा गतास्तेऽपि सर्वे स्कंदा भण्यंते, अष्टपरमाणुपिण्डे जाते देशो भवति, तत्राप्येकैकापनयेन पञ्चपरमाणुपिण्डपर्यंतं ये विकल्पा गतास्तेषामपि देशसंज्ञा भवति, परमाणु-चतुष्टयपिण्डे स्थिते प्रदेशसंज्ञा भण्यते पुनरप्येकैकापनयनेन द्व्यणुकस्कंदे स्थिते ये विकल्पा गतास्तेषामपि प्रदेशसंज्ञा भवति। *परमाणू चेव अविभागी* परमाणुश्चैवाविभागीति। पूर्वं भेदेन स्कंदा भणिता; इदानीं संघातेन कथ्यंते — परमाणुद्वयं संघातेन द्व्यणुकस्कंदो भवति त्रयाणां संघातेन त्र्यणुक इत्याद्यनंतपर्यंता ज्ञातव्या। एवं भेदसंघाताभ्यामप्यनंता भवंतीति।

अत्रोपादेयभूतात्परमात्मतत्त्वात्पुद्गलानां यद्भिन्नत्वेन परिज्ञानं तदेव फलमिति तात्पर्यम्॥ ८१॥

टीकार्थ - ***खंदं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति अद्धद्धं च पदेसो*** सकल समस्त पुद्‌गल पिण्ड, स्कन्ध का लक्षण है; उससे आधा, देश का लक्षण है, आधे का आधा, प्रदेश का लक्षण है। वह इस प्रकार — सभी विवक्षित घड़े-कपड़े आदि अखण्डरूप सकल कहलाते हैं। उस अनन्त परमाणु पिण्ड की स्कन्ध संज्ञा है।

वहाँ दृष्टान्त कहते हैं — सोलह परमाणुवाले पिण्ड के स्कन्ध की कल्पना की। उसमें एक-एक परमाणु को कम करने से नव परमाणुपिण्ड स्थित रहनेपर्यन्त जो पूर्व विकल्प गए, वे सभी स्कन्ध कहलाते हैं। आठ परमाणु का पिण्ड रहने पर देश होता है। वहाँ भी एक-एक कम करने से पाँच परमाणुओं के पिण्ड पर्यन्त जो विकल्प गए, उनकी भी देश संज्ञा है। चार परमाणुओं का पिण्ड रहने पर प्रदेश संज्ञा कहलाती है। और भी एक-एक कम करने से द्व्यणुकस्कन्ध रहने पर्यन्त जो विकल्प गए, उनकी भी प्रदेश संज्ञा है। ***परमाणू चेव अविभागी*** परमाणु ही अविभागी है।

अभी पहले (उपर्युक्त) भेद से स्कन्ध कहे हैं, अब संघात से कहते हैं — दो परमाणुओं के संघात (मिलने से) द्व्यणुक स्कन्ध होता है, तीन के संघात से त्र्यणुक इत्यादि अनन्त पर्यन्त जानना चाहिए। इसी प्रकार भेद-संघात से भी अनन्त होते हैं।

यहाँ उपादेयभूत परमात्मतत्त्व से पुद्‌गलों का जो भिन्नतारूप से परिज्ञान है, वह ही फल है — ऐसा तात्पर्य है॥ ८१॥

अथ स्कंदानां व्यवहारेण पुद्गलत्वं व्यवस्थापयति —

बादरसुहुमगदाणं खंदाणं पोग्गलोत्ति ववहारो। (७६)
ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं॥ ८२॥

बादरसुहुमगदाणं खंदाणं पोग्गलोत्ति ववहारो बादरसूक्ष्मगतानां स्कंदानां पुद्गल इति व्यवहारो भवति। तद्यथा — यथा शुद्धनिश्चयेन सत्ताचैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्योऽसौ जीवति स किल सिद्धरूपो जीवः व्यवहारेण पुनरायुः प्रभृत्यशुद्धप्राणैर्योऽसौ जीवति गुणस्थानमार्गणादिभेदेन भिन्नः सोऽपि जीवः तथा

वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत्।
कुर्वन्ति स्कंदवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः॥

इति श्लोककथितलक्षणाः परमाणवः किल निश्चयेन पुद्गला भण्यंते व्यवहारेण पुनर्द्व्यणुकाद्यनंतपरमाणुपिण्डरूपाः बादरसूक्ष्मगतस्कंदा अपि पुद्गला इति व्यवह्रियंते। *ते होंति छप्पयारा* ते भवन्ति षट्प्रकाराः। यैः किं कृतं ? *णिप्पण्णं जेहिं तेलोक्कं* यैर्निष्पन्नं त्रैलोक्यमिति।

अब, स्कन्धों के पुद्गलत्व-व्यवहार व्यवस्थापित करते हैं —

स्कन्ध बादर सूक्ष्मगत के, पौद्गलिक व्यवहार है।
वे कहे षड्विध तीन लोक, कहा उन्हीं से रचित है॥ ८२॥

गाथार्थ - बादर और सूक्ष्मरूप से परिणत स्कन्धों में ***'पुद्गल'*** – ऐसा व्यवहार है। वे छह प्रकार के हैं; जिनसे तीन लोक निष्पन्न है।

टीकार्थ - ***बादरसुहुमगदाणं खंदाणं पोग्गलोत्ति ववहारो*** बादर-सूक्ष्मगत स्कन्धों में 'पुद्गल' – ऐसा व्यवहार है। वह इस प्रकार – जैसे शुद्ध निश्चय से सत्ता, चैतन्य, बोधादि शुद्ध प्राणों द्वारा जो जीते हैं, वे सिद्धरूप जीव हैं; तथापि व्यवहार से आयु आदि अशुद्ध प्राणों से जो जीता है, गुणस्थान-मार्गणास्थान आदि भेद से भिन्न / पृथक्-पृथक् है, वह भी जीव है। उसी प्रकार – 'स्कन्ध के समान जो वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श द्वारा पूरण-गलन करते हैं, इस कारण परमाणु, पुद्गल हैं।'

इस प्रकार श्लोक में कहे गए लक्षणवाले परमाणु, वास्तव में निश्चय से पुद्गल कहलाते हैं तथा व्यवहार से द्व्यणुक आदि अनन्त परमाणु पिण्डरूप बादर-सूक्ष्मगत स्कन्ध भी पुद्गल हैं – ऐसा व्यवहार होता है। ***ते होंति छप्पयारा*** वे छह प्रकार के होते हैं। जिनके द्वारा क्या किया गया है ? ***णिप्पण्णं जेहिं तेलोक्कं*** जिनके द्वारा तीन लोक निष्पन्न है।

इदमत्र तात्पर्यं — लोक्यंते जीवादिपदार्था यत्र स लोक इतिवचनात्पुद्गलादिषड्द्रव्यैर्निष्पन्नोऽयं लोकः न चान्येन केनापि पुरुषविशेषेण क्रियते ह्रीयते ध्रीयते वेति॥ ८२॥

अथ तानेव षड्भेदान् विवृणोति —

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा। 卐
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति॥ ८३॥

पृथिवी जलं च छाया चक्षुर्विषयं विहाय चतुरिन्द्रियविषयाः कर्मप्रायोग्याः कर्मातीताः इति षड्भेदाः पुद्गला भवन्ति। ते च कथंभूताः ? स्थूलस्थूलाः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्माः सूक्ष्मस्थूलाः सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्माः इति।

तद्यथा — ये छिन्नाः संतः स्वयमेव संधातुमसमर्थास्ते स्थूलस्थूलाः भूपर्वतादयः, ये तु छिन्नाः संतः तत्क्षणादेव संधानेन स्वयमेव समर्थास्ते स्थूलाः सर्पिस्तैलजलादयः, ये तु हस्तेनादातुं देशांतरं नेतुं अशक्यास्ते स्थूलसूक्ष्माः छायातपादयः, ये पुनर्लोचनविषया न भवन्ति ते सूक्ष्मस्थूलाश्चतुरिन्द्रियविषया,

---

यहाँ तात्पर्य यह है — 'जीवादि पदार्थ जहाँ देखे जाते हैं, वह लोक है' — ऐसा वचन होने से पुद्गलादि छह द्रव्यों से निष्पन्न यह लोक, किसी अन्य पुरुष-विशेष द्वारा न किया जा रहा है, न नष्ट किया जा रहा है और न धारण किया जा रहा है॥ ८२॥

अब, उन्हीं छह भेदों का वर्णन करते हैं —

भू जल व छाया चार इन्द्रिय, विषय कर्म प्रायोग्य हैं।
वा कहे कर्म अयोग्य यों, छहरूप पुद्गल स्कन्ध हैं॥ ८३॥

गाथार्थ - पृथ्वी, जल, छाया, (चक्षुइन्द्रिय को छोड़कर, शेष) चार इन्द्रिय के विषय, कर्म प्रायोग्य और कर्मातीत — इस प्रकार पुद्गल के छह भेद हैं।

टीकार्थ - पृथ्वी, जल और छाया; चक्षुइन्द्रिय के विषय को छोड़कर, चार इन्द्रिय के विषय; कर्म प्रायोग्य और कर्मातीत — इस प्रकार पुद्गल छह प्रकार के होते हैं। वे किस प्रकार से हैं ? वे स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मसूक्ष्म हैं।

वह इस प्रकार — भूमि, पर्वत आदि जो छिन्न / विभक्त होने पर स्वयं ही मिलने में असमर्थ हैं, वे स्थूल-स्थूल हैं। घी, तेल, पानी आदि जो छिन्न / विभक्त होने पर भी उसी क्षण मिलने में स्वयं ही समर्थ हैं, वे स्थूल हैं। छाया, आतप / धूप आदि जो हाथ से ग्रहणकर दूसरे स्थान पर ले जाने में अशक्य हैं, वे स्थूलसूक्ष्म हैं। चार इन्द्रिय के विषय जो नेत्र के विषय नहीं

ये तु ज्ञानावरणादिकर्मवर्गणायोग्यास्ते सूक्ष्मा इन्द्रियज्ञानविषया:, ये चात्यंतसूक्ष्मत्वेन कर्मवर्गणातीतास्ते सूक्ष्मसूक्ष्मा: कर्मवर्गणातीतेभ्योऽ (योग्येभ्योऽ) प्यत्यंतसूक्ष्मा द्व्यणुकस्कंदपर्यंता इति तात्पर्यम्॥ ८३॥

एवं प्रथमस्थले स्कंदव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं समाप्तम्।

तदनंतरं परमाणुव्याख्यानमुख्यतया द्वितीयस्थले गाथापञ्चकं कथ्यते। तथाहि —

शाश्वतादिगुणोपेतं परमाणुद्रव्यं प्रतिपादयति —

सव्वेसिं खंदाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू। (७७)
सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागि मुत्तिभवो॥ ८४॥

***सव्वेसिं खंदाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू* यथा य एव कर्मस्कंधानामंतो विनाशस्तमेव शुद्धात्मानं विजानीहि तथा य एव षड्विधस्कंदानामंतोऽवसानो भेदस्तं परमाणुं विजानीहि। *सो* स च। कथंभूत: ? *सस्सदो* यथा परमात्मा टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावेन द्रव्यार्थिकनयेनाविनश्वरत्वात् शाश्वत:, तथा पुद्गलत्वेनाविनश्वरत्वात्परमाणुरपि नित्य:। *असद्दो* यथा शुद्धजीवास्तिकायो निश्चयेन**

हैं, वे सूक्ष्मस्थूल हैं। इन्द्रिय ज्ञान के विषय नहीं बननेवाले, जो ज्ञानावरणादि कर्मवर्गणा के योग्य हैं, वे सूक्ष्म हैं और कर्मवर्गणा के अयोग्य अत्यन्त सूक्ष्म द्व्यणुकस्कन्ध पर्यन्त जो अत्यन्त सूक्ष्म होने से कर्मवर्गणा से अतीत हैं, वे सूक्ष्मसूक्ष्म हैं — ऐसा तात्पर्य है॥ ८३॥

इस प्रकार प्रथम स्थल में स्कन्ध व्याख्यान की मुख्यता से चार गाथाएँ पूर्ण हुईं।

तत्पश्चात् परमाणु व्याख्यान की मुख्यता से द्वितीय स्थल में पाँच गाथाएँ कहते हैं। वे इस प्रकार —

शाश्वत आदि गुणों से सहित परमाणुद्रव्य का प्रतिपादन करते हैं —

जो अंश अंतिम स्कन्ध का, परमाणु जानो उसी को।
वह एक शाश्वत शब्द बिन, अविभागि मूर्तोत्पन्न हो॥ ८४॥

गाथार्थ - सभी स्कन्धों का जो अन्तिम भाग है, उसे परमाणु जानो। वह शाश्वत, अशब्द, एक, अविभागी और मूर्तिभव (मूर्तरूप से उत्पन्न होनेवाला) जानना चाहिए।

टीकार्थ - ***सव्वेसिं खंदाणं जो अंतो तं वियाण परमाणु*** जैसे जो कर्मस्कन्धों का अन्त / विनाश है, उसी शुद्धात्मा को जानो; उसी प्रकार जो छह प्रकार के स्कन्धों का अन्त, अवसान, भेद है, उसे परमाणु जानो। ***सो*** और वह। वह कैसा है? ***सस्सदो*** जैसे परमात्मा द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा टङ्कोत्कीर्ण ज्ञायक एकस्वभाव से अविनश्वर होने के कारण, शाश्वत हैं; उसी प्रकार पुद्गलपने से अविनश्वर होने के कारण परमाणु भी नित्य है। ***असद्दो*** जैसे शुद्ध

स्वसंवेदनज्ञान-विषयोऽपि शब्दविषयः शब्दरूपो वा न भवतीत्यशब्दः, तथाहि परमाणुरपि शक्तिरूपेण शब्दकारणभूतोऽपि व्यक्तिरूपेण शब्दपर्यायरूपो न भवतीत्यशब्दः। *एक्को* यथा शुद्धात्मद्रव्यं निश्चयेन परोपाधिरहितत्वेन केवलमसहायमेकं भण्यते, तथा परमाणुद्रव्यमपि द्व्यणुकादिपरोपाधिरहितत्वात्केवल-मसहायमेकं भवत्येकप्रदेशत्वाद्वा *अविभागि* यथा परमात्मद्रव्यं निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येय-प्रदेशमपि विवक्षिताखण्डैकद्रव्यत्वेन भागाभावादविभागी, तथा परमाणुद्रव्यमपि निरंशत्वेन भागाभावादविभागी, तथा परमाणुद्रव्यमपि निरंशत्वेन भागाभावादविभागी। पुनश्च कथंभूतः स परमाणु? *मुत्तिभवो* अमूर्तात्परमात्मद्रव्याद्विलक्षणा या तु स्पर्शरसगंधवर्णवती मूर्तिस्तया समुत्पन्नत्वात् मूर्तिभव इति सूत्राभिप्रायः॥ ८४॥

इति परमाणुस्वरूपकथनेन द्वितीयस्थले प्रथमगाथा गता।

अथ पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवो न संतीति निश्चिनोति —

आदेसमत्तमुत्तो धाउचउक्कस्स कारणं जो दु।(७८)
सो णेओ परमाणू परिणामगुणो सयमसद्दो॥ ८५॥

जीवास्तिकाय निश्चय से स्वसंवेदन ज्ञान का विषय होने पर भी, शब्द का विषय या शब्दरूप नहीं है, अतः अशब्द है; उसी प्रकार परमाणु भी शक्तिरूप से शब्द का कारणभूत होने पर भी, व्यक्तिरूप से शब्द पर्यायरूप नहीं है; अतः अशब्द है। ***एक्को*** जैसे शुद्धात्मद्रव्य निश्चय से पर की उपाधि से रहित होने के कारण केवल, असहाय (सहायता की आवश्यकता से रहित), एक कहलाता है; उसी प्रकार परमाणुद्रव्य भी द्व्यणुक आदि पर की उपाधि से रहित होने के कारण अथवा एक प्रदेशी होने के कारण केवल, असहाय, एक है।

अविभागि जैसे परमात्मद्रव्य निश्चय से लोकाकाशप्रमाण असंख्येय प्रदेशी होने पर भी विवक्षित अखण्ड एक द्रव्य होने के कारण भाग / भेद का अभाव होने से अविभागी है; उसी प्रकार परमाणुद्रव्य भी निरंश होने के कारण भाग / भेद का अभाव होने से अविभागी है। और वह परमाणु कैसा है? ***मुत्तिभवो*** अमूर्त परमात्मद्रव्य से विलक्षण जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण युक्त मूर्ति है, उससे उत्पन्न होने के कारण मूर्तिभव है — ऐसा सूत्र का अभिप्राय है॥ ८४॥

इस प्रकार परमाणु के स्वरूपकथन की अपेक्षा द्वितीय स्थल में प्रथम गाथा पूर्ण हुई।

अब, पृथ्वी आदि जाति से भिन्न परमाणु नहीं है, ऐसा निश्चय करते हैं —

आदेश मात्र से मूर्त कारण चार धातु का तथा।
परिणाम गुणयुत स्वयं शब्द विहीन परमाणु सदा॥ ८५॥

आदेसमत्तमुत्तो आदेशमात्रमूर्तः आदेशमात्रेण संज्ञादिभेदेनैव परमाणोर्मूर्तत्वनिबंधनभूता वर्णादिगुणा भिद्यंते पृथक् क्रियंते, न च सत्ताप्रदेशभेदेन। वस्तुतस्तु य एव परमाणोरादिमध्यांतभूतप्रदेशः स एव रूपादिगुणानामपि, अथवा मूर्त इत्यादिश्यते कथ्यते न च दृष्ट्या दृश्यते तेनादेशमात्रमूर्तः, _धाउचउक्कस्स कारणं जो दु_ निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावैरपि पृथिव्यादिजीवैर्व्यवहारेणानादिकर्मोदय-वशेन यानि पृथिव्यप्तेजोवायुधातुचतुष्कसंज्ञानि शरीराणि गृहीतानि तिष्ठन्ति तेषामन्येषां च जीवेना-गृहीतानां हेतुत्वेन निमित्तत्वाद्धातुचतुष्कस्य कारणं यस्तु _सो णेओ परमाणू_ यः पूर्वं कथित एकोऽपि परमाणुः पृथिव्यादिधातुचतुष्करूपेण कालांतरेण परिणमति, स परमाणुरिति ज्ञेयः। _परिणामगुणो_ औदयिकादिभावचतुष्टयरहितत्वेन पारिणामिकगुणः। पुनः किंविशिष्टः ? _सयमसद्दो_ एकप्रदेशत्वेन कृत्वानंत परमाणुपिण्डलक्षणेन शब्दपर्यायेण सह विलक्षणत्वात्स्वयं व्यक्तिरूपेणाशब्द इति सूत्रार्थः॥ ८५॥

एवं परमाणूनां पृथिव्यादिजातिभेदनिराकरणकथनेन द्वितीयगाथा गता।

गाथार्थ - जो आदेशमात्र से मूर्त है, चार धातुओं का कारण है, परिणाम गुणवाला और स्वयं अशब्द है, उसे परमाणु जानो।

टीकार्थ - ***आदेसमत्तमुत्तो*** आदेशमात्र मूर्त है; आदेशमात्र से संज्ञादि भेद से ही परमाणु के मूर्तत्व को निबन्धनभूत / कारणभूत वर्णादि गुण भेदित होते हैं, पृथक् किए जाते हैं; सत्ता और प्रदेश-भेद की अपेक्षा पृथक् नहीं किए जाते हैं। वास्तव में तो जो परमाणु का आदि-मध्य -अन्तभूत प्रदेश है, वही रूपादि गुणों का भी है। अथवा ***'मूर्त'*** ऐसा कहा जाता है परन्तु दृष्टि से दिखाई नहीं देता, उस कारण आदेशमात्र से मूर्त है। ***धाउचउक्कस्स कारणं जो दु*** निश्चय से शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी होने पर भी पृथ्वी आदि जीवों द्वारा व्यवहार से अनादि कर्मोदयवश जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुरूप धातु चतुष्क नामक शरीर ग्रहण किए जाते हैं, वे उनमें रहते हैं, उनके और अन्य के तथा जीव के द्वारा नहीं ग्रहण किए गए शरीरों के भी हेतु होने से, निमित्त होने के कारण धातु चतुष्क का कारण है जो, ***सो णेओ परमाणू*** जो पूर्वकथित एक ही परमाणु कालान्तर में पृथ्वी आदि धातु चतुष्करूप से परिणमित होता है, वह परमाणु है – ऐसा जानो। ***परिणामगुणो*** औदयिक आदि चार भाव से रहित होने के कारण पारिणामिक गुणवाला है। और किस विशेषतावाला है ? ***सयमसद्दो*** एक प्रदेशी होने के कारण, अनन्त परमाणुओं के पिण्ड द्वारा व्यक्त होनेवाले लक्षणरूप शब्द पर्याय के साथ विलक्षण होने से स्वयं व्यक्तिरूप से अशब्द है – ऐसा सूत्रार्थ है॥ ८५॥

इस प्रकार परमाणु के पृथ्वी आदि जातिभेद के निराकरण-कथन की अपेक्षा दूसरी गाथा पूर्ण हुई।

अथ शब्दस्य पुद्गलस्कंदपर्यायत्वं दर्शयति —

सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणुसंगसंघादो। (७९)
पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादगो णियदो॥ ८६॥

सद्दो श्रवणेन्द्रियावलम्बनो भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिविशेषः शब्दः। स च किंविशिष्टः? *खंधप्पभवो* स्कंदेभ्यः सकाशादुत्पन्नः प्रभवः इति स्कंदप्रभवः। स्कंदलक्षणं कथ्यते — *खंधो परमाणुसंगसंघादो* स्कंदो भवति। कथंभूतः? परमाणुसंगसंघातः अनंतपरमाणुसंगानां समूहानामपि संघातः समुदायः। इदानीं स्कंदेभ्यः सकाशाच्छब्दस्य प्रभवत्वमुत्पत्तिं कथयति। *पुट्ठेसु तेसु* स्पृष्टेषु तेषु पूर्वोक्तेषु स्कंदेषु स्पृष्टेषु लग्नेषु परस्परं संघट्टितेषु सत्सु *जायदि* जायते प्रभवति। स कः कर्ता? *सद्दो* पूर्वोक्तशब्दः।

अयमत्राभिप्राय :— द्विविधाः स्कंदा भवन्ति भाषावर्गणायोग्या ये तेऽभ्यंतरे कारणभूताः सूक्ष्मास्ते च निरंतरं लोके तिष्ठन्ति, ये तु बहिरंगकारणभूतास्ताल्वोष्ठपुटव्यापारघंटाभिघातमेघादयस्ते

अब, शब्द पुद्गल-स्कन्ध की पर्याय है; ऐसा दिखाते हैं —

स्कन्ध से उत्पन्न शब्द स्कन्ध अणुसंघात हैं।
अभिघात से उत्पन्न शब्द, अतः नियम उत्पाद्य है॥ ८६॥

गाथार्थ - शब्द, स्कन्धजन्य हैं। स्कन्ध, परमाणुओं के समूह के संघात / मिलाप से बनता है। उन स्कन्धों के परस्पर स्पर्शित / टकराने पर शब्द उत्पन्न होते हैं; इस प्रकार वे नियम से उत्पन्न होने-योग्य हैं।

टीकार्थ - ***सद्दो*** श्रवणेन्द्रिय के अवलम्बन से, भावेन्द्रिय द्वारा जानने-योग्य ध्वनिविशेष शब्द है। वह किस विशेषतावाला है? ***खंधप्पभवो*** स्कन्ध से प्रभव, उत्पन्न होता है; इसलिए स्कन्धप्रभव है। स्कन्ध का लक्षण कहते हैं — ***खंधो परमाणुसंगसंघादो*** स्कन्ध है। वह कैसा है? परमाणुसंगसंघातमय है, अनन्त परमाणुसङ्गों के, समूहों के भी संघातमय है।

अब, स्कन्धों से शब्द के प्रभवत्व, उत्पत्ति को कहते हैं — ***पुट्ठेसु तेसु*** उनके स्पष्ट होने पर, पूर्वोक्त स्कन्धों के स्पृष्ट होने पर, लग्न / संलग्न / मिलने पर, संघट्टित होने / टकराने पर, ***जायदि*** उत्पन्न होता है। कर्तारूप वह कौन उत्पन्न होता है? ***सद्दो*** पूर्वोक्त शब्द उत्पन्न होता है।

यहाँ अभिप्राय यह है — स्कन्ध दो प्रकार के हैं। भाषावर्गणा के योग्य जो वे अन्तरङ्ग में कारणभूत सूक्ष्म हैं, वे निरन्तर लोक में रहते हैं; और जो वे बहिरङ्ग कारणभूत तालू, ओष्ठपुट -व्यापार (ओंठ की हलन-चलनरूप क्रिया), घण्टा का अभिघात, मेघादि स्थूल हैं वे कहीं,

स्थूलाः क्वापि क्वापि तिष्ठन्ति, न सर्वत्र; यत्रेयमुभयसामग्री समुदिता तत्र भाषावर्गणाः शब्दरूपेण परिणमन्ति न सर्वत्र।

स च शब्दः किं विशिष्टः ? *उप्पादिगो णियदो* भाषावर्गणास्कंदेभ्य उत्पद्यते इत्युत्पादकः नियतो निश्चितः न चाकाशद्रव्यरूपस्तद्गुणो वा यद्याकाशगुणो भवति तर्हि श्रवणेन्द्रियविषयो न भवति। कस्मात् ? आकाशगुणस्यामूर्तत्वादिति। अथवा *उप्पादिगो* प्रायोगिकः पुरुषादिप्रयोगप्रभवः *णियदो* नियतो वैश्रसिको मेघादिप्रभवः। अथवा भाषात्मको भाषारहितश्चेति, भाषात्मको द्विविधोऽक्षरात्मकोऽनक्षरात्मकश्चेति। अक्षरात्मकः संस्कृतप्राकृतादिरूपेणार्यम्लेच्छभाषाहेतुः अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादिशब्दरूपो दिव्यध्वनिरूपश्च। इदानीमभाषात्मकः कथ्यते — सोऽपि द्विविधो प्रायोगिको वैश्रसिकश्चेति। प्रायोगिकस्तु ततविततं घनसुषिरादिः। तथा चोक्तं —

ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकं।
घनं तु कंसतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः॥

वैश्रसिकस्तु मेघादिप्रभवः पूर्वोक्तः एव।

कहीं रहते हैं, सर्वत्र नहीं रहते हैं। जहाँ ये दोनों सामग्री एकत्रित हो जाती हैं, वहाँ भाषावर्गणा शब्दरूप से परिणमित होती है; सर्वत्र नहीं होती है। वह शब्द और किस विशेषतावाला है ?

उप्पादिगो णियदो भाषावर्गणारूप स्कन्ध से उत्पन्न होता है; अतः उत्पन्न होनेवाला नियत, निश्चित है; आकाश द्रव्यरूप नहीं है अथवा उसका गुण नहीं है। यदि आकाश का गुण होता तो श्रवणेन्द्रिय का विषय नहीं होता। आकाश का गुण होने पर श्रवणेन्द्रिय का विषय क्यों नहीं होता ? आकाश गुण के अमूर्त होने से वह श्रवणेन्द्रिय का विषय नहीं हो सकता है।

अथवा ***उप्पादिगो*** प्रायोगिक है, पुरुष आदि के प्रयोग से उत्पन्न होता है। ***णियदो*** नियत है, वैश्रसिक / स्वाभाविक है, मेघादि से उत्पन्न है; अथवा भाषात्मक और भाषारहित है। भाषात्मक दो प्रकार का है — अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक। संस्कृत-प्राकृत आदि रूप से आर्य-म्लेच्छ भाषा के हेतुभूत अक्षरात्मक हैं। दो इन्द्रिय आदि के शब्दरूप और दिव्यध्वनिरूप अनक्षरात्मक हैं।

अब, अभाषात्मक कहते हैं; वह भी दो प्रकार का है — प्रायोगिक और वैश्रसिक। तत, वितत, घन, सुषिर आदि प्रायोगिक हैं। वैसा ही कहा भी है — 'वीणादि को तत जानना चाहिए, पटहादि को वितत, काँसे-ताल आदि को घन और वंशादि को सुषिररूप जानो।'

पूर्वोक्त मेघादि से उत्पन्न ही वैश्रसिक हैं।

इदं सर्वं हेयतत्त्वमेतस्माद्भिन्नं शुद्धात्मतत्त्वमुपादेयमिति भावार्थः ॥ ८६ ॥

एवं शब्दस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायत्वस्थापनामुख्यत्वेन तृतीयगाथा गता।

अथ परमाणोरेकप्रदेशत्वं व्यवस्थापयति —

णिच्चो णाणवगासो ण सावगासो पदेसदो भेत्ता।(८०)
खंदाणं वि य कत्ता पविभत्ता कालसंखाणं॥ ८७॥

णिच्चो नित्यः। कस्मात्? *पदेसदो* प्रदेशतः परमाणो खलु एकेन प्रदेशेन सर्वदैवाविनश्वरत्वान्नित्यो भवति *णाणवगासो* नानवकाशः किन्त्वेकेन प्रदेशेन स्वकीयवर्णादिगुणानामवकाशदानात्सावकाशः *ण सावगासो* न सावकाशः किंत्वेकेन प्रदेशेन द्वितीयादिप्रदेशाभावान्निरवकाशः *भेत्ता खंदाणं* भेत्ता स्कंदानां *कत्ता अवि य* कर्ता अपि च स्कंदानां जीववत्।

तद्यथा — यथायं जीवः स्वप्रदेशगतरागादिविकल्परूपनिःस्नेहभावेन परिणतः सन् कर्मस्कंदानां

ये सभी हेय तत्त्व हैं, इनसे भिन्न शुद्धात्मतत्त्व उपादेय है — ऐसा भावार्थ है ॥ ८६ ॥

इस प्रकार शब्द, पुद्गलद्रव्य की पर्याय है, इसकी स्थापना की मुख्यता से तीसरी गाथा पूर्ण हुई।

अब, परमाणु के एक प्रदेशत्व व्यवस्थापित करते हैं —

ना अनवकाश न सावकाश, प्रदेशतः है नित्य अणु।
स्कन्ध भेत्ता तथा कर्ता प्रविभागि संख्या काल अणु॥ ८७॥

गाथार्थ - प्रदेश की अपेक्षा परमाणु नित्य है, न वह अनवकाश है और न सावकाश है; स्कन्धों का भेत्ता / भेदन करनेवाला है, कर्ता है, काल और संख्या का प्रविभाग करनेवाला है।

टीकार्थ - ***णिच्चो*** नित्य है। किस अपेक्षा नित्य है? ***पदेसदो*** प्रदेश की अपेक्षा नित्य है। वास्तव में परमाणु का एक प्रदेश होने से सर्वदा ही अविनश्वर होने के कारण नित्य है। ***णाणवगासो*** अनवकाश नहीं है; किन्तु एक प्रदेश होने से अपने वर्णादि गुणों को अवकाश देने के कारण सावकाश है। ***ण सावगासो*** सावकाश नहीं है, किन्तु एक प्रदेश होने से द्वितीय आदि प्रदेश का अभाव होने के कारण निरवकाश है। ***भेत्ता खंदाणं*** स्कन्धों का भेत्ता / भेदन करनेवाला है। ***कत्ता अवि य*** और जीव के समान स्कन्धों का कर्ता भी है।

वह इस प्रकार — जैसे यह जीव प्रदेशगत रागादि विकल्पोंरूप स्नेह से रहित हो

भेत्ता विनाशको भवति तथा परमाणुरप्येकप्रदेशगतनिःस्नेहभावेन परिणतः सन् स्कंदानां विघटनकाले भेत्ता भेदको भवति। यथा स एव जीवो निःस्नेहात्परमात्मतत्त्वाद्विपरीतेन स्वप्रदेशगतमिथ्यात्वरागादि-स्निग्धभावेन परिणतः सन्नवतरज्ञानावरणादिकर्मस्कंदानां कर्ता भवति तथा स एव परमाणुरेकप्रदेशगत-स्निग्धभावेन परिणतः सन् द्व्यणुकादिस्कंदानां कर्ता भवति। अत्र योऽसौ स्कंदानां भेदको भणितः स कार्यपरमाणुरुच्यते यस्तु कारकस्तेषां स कारणपरमाणुरिति कार्यकारणभेदेन द्विधा परमाणुर्भवति। तथा चोक्तं – ''*स्कंदभेदाद्भवेदाद्यः स्कंदानां जनकोपरः।*''

अथवा भेदविषये द्वितीयव्याख्यानं क्रियते। परमाणुरयम्। कस्मात्। एकप्रदेशत्वेन बहुप्रदेश-स्कंदाद्भिन्नत्वात्। स्कंदोऽयम्। कस्मात्? बहुप्रदेशत्वेनैकप्रदेशत्वेनैकप्रदेशपरमाणोर्भिन्नत्वादिति। *पविभत्ता कालसंखाणं* प्रविभक्ता कालसंख्ययोर्जीववदेव। यथा एकप्रदेशस्थकेवलज्ञानांशेनैकसमयेन भगवान् केवली समयरूपव्यवहारकालस्य संख्यायाश्च प्रविभक्ता परिच्छेदको ज्ञायको भवति तथा

परिणमित होता हुआ कर्मस्कन्धों का भेत्ता, विनाशक है; उसी प्रकार परमाणु भी एक प्रदेशगत स्नेहभाव से रहित हो परिणमित होता हुआ स्कन्धों के विघटन काल में भेत्ता, भेदक होता है। जैसे वह ही जीव स्नेह से रहित परमात्मतत्त्व से विपरीत होने के कारण स्वप्रदेशगत मिथ्यात्व -रागादि स्निग्धभाव से परिणमित होता हुआ नवीन ज्ञानावरणादि कर्मस्कन्धों का कर्ता होता है; उसी प्रकार वह ही परमाणु एक प्रदेशगत स्निग्धभाव से परिणत होता हुआ द्व्यणुक आदि स्कन्धों का कर्ता होता है।

यहाँ जो वह स्कन्धों का भेदक कहा है, वह कार्य परमाणु कहलाता है और जो उन्हें करनेवाला है, वह कारण परमाणु है; इस प्रकार कार्य-कारण के भेद से परमाणु दो प्रकार का है। वैसा ही कहा भी है – 'स्कन्ध के भेद से पहला अर्थात् कार्य परमाणु और स्कन्धों का जनक दूसरा अर्थात् कारण परमाणु है।'

अथवा भेद विषय में दूसरा व्याख्यान किया जाता है – यह परमाणु है, यह परमाणु क्यों है? एक प्रदेशी होने के कारण, बहु प्रदेशी स्कन्धों से भिन्न होने की अपेक्षा यह परमाणु है। यह स्कन्ध है। यह स्कन्ध क्यों है? बहुप्रदेशी होने के कारण, एक प्रदेशी परमाणु से भिन्न होने की अपेक्षा स्कन्ध है।

पविभत्ता कालसंखाणं जीव के समान ही काल और संख्या का प्रविभागी है। जैसे एक प्रदेश में स्थित एक समयवर्ती केवलज्ञान अंश द्वारा भगवान केवली समयरूप व्यवहारकाल के और संख्या के प्रविभक्त, परिच्छेदक, ज्ञायक हैं; उसी प्रकार परमाणु भी मन्दगति से अणु से

परमाणुरप्येकप्रदेशेन मंदगत्याऽणोरणवंतरव्यतिक्रमणलक्षणेन कृत्वा समयरूपव्यवहारकालस्य संख्यायाश्च प्रविभक्ता भेदको भवतीति।

संख्या कथ्यते — द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण संख्या चतुर्विधा भवति, सा च जघन्योत्कृष्टभावेन प्रत्येकं द्विविधा। एकपरमाणुरूपा जघन्या द्रव्यसंख्येति, अनंतपरमाणुपुंजरूपोत्कृष्टद्रव्यसंख्येति; एक-प्रदेशरूपा जघन्या क्षेत्रसंख्या, अनंतप्रदेशरूपोत्कृष्टा क्षेत्रसंख्या; एकसमयरूपा जघन्या व्यवहारकाल-संख्या, अनंतसमयरूपोत्कृष्टव्यवहारकालसंख्या; परमाणुद्रव्ये वर्णादीनां सर्वजघन्या तु या शक्तिः सा जघन्या भावसंख्या, तस्मिन्नेव परमाणुद्रव्ये सर्वोत्कृष्टा तु या वर्णादिशक्तिः सा तूत्कृष्टा भावसंख्येति। एवं जघन्योत्कृष्टा प्रत्येकं द्रव्यक्षेत्रकालभावसंख्या ज्ञातव्याः ॥ ८७॥

एवं परमाणुद्रव्यप्रदेशाधारं कृत्वा समयादिव्यवहारकालकथनमुख्यत्वेन एकत्वादिसंख्याकथनेन च द्वितीयस्थले चतुर्थगाथा गता।

अथ परमाणुद्रव्ये गुणपर्यायस्वरूपं कथयति —

दूसरे अणु का व्यतिक्रमण / उल्लङ्घन लक्षण एक प्रदेश द्वारा समयरूप व्यवहारकाल का और संख्या का प्रविभक्त, भेदक होता है।

संख्या कहते हैं — द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप से संख्या चार प्रकार की है; और वह भी प्रत्येक जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से दो-दो प्रकार की है। एक परमाणुरूप जघन्य द्रव्य संख्या है, अनन्त परमाणुओं के समूहरूप उत्कृष्ट द्रव्य संख्या है। एक प्रदेशरूप जघन्य क्षेत्र संख्या है, अनन्त प्रदेशरूप उत्कृष्ट क्षेत्र संख्या है। एक समयरूप जघन्य व्यवहारकाल संख्या है, अनन्त समयरूप उत्कृष्ट व्यवहारकाल संख्या है। परमाणु द्रव्य में वर्णादि की जो सर्व जघन्य शक्ति है, वह जघन्यभाव संख्या है; उसी परमाणु द्रव्य में जो सर्वोत्कृष्ट वर्णादि शक्ति है, वह उत्कृष्टभाव संख्या है।

इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में से प्रत्येक की संख्या जघन्य और उत्कृष्ट जानना चाहिए॥ ८७॥

इस प्रकार परमाणु द्रव्य के प्रदेश को आधार कर समय आदि व्यवहारकाल के कथन की मुख्यता से और एकत्व आदि संख्या-कथन की अपेक्षा द्वितीय स्थल में चौथी गाथा पूर्ण हुई।

अब, परमाणु द्रव्य में गुण-पर्याय के स्वरूप को कहते हैं —

जो एक रस अरु गंध, वर्ण, स्पर्श दो युत, शब्द का।
कारण, अशब्द, स्कन्ध अंदर वह परमाणु जानना॥ ८८॥

एयरसवण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं। (८१)
खंदंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि॥ ८८॥

एयरसवण्णगंधं दो फासं **एकरसवर्णगंधद्विस्पर्शः। तथाहि — तत्र परमाणौ तिक्तादिपञ्चरस-पर्यायाणामेकतमेनैकेनैकदा रसो वर्तते शुक्लादिपञ्चवर्णपर्यायाणामेकतमेनैकेनैकदा वर्णो वर्तते सुरभिदुरभिरूपगंधपर्याययोर्द्वयोरेकतरेणैकेनैकदा गंधो वर्तते शीतस्निग्धशीतरूक्षउष्णस्निग्धउष्णरूक्ष-रूपाणां चतुर्णां स्पर्शपर्यायद्वंद्वानामेकतमेनैकेनैकदा स्पर्शो वर्तते** ***सद्दकारणमसद्दं*** **शब्दकारणोऽप्यशब्द आत्मवत्। यथात्मा व्यवहारेण ताल्वोष्ठपुटव्यापारेण शब्दकारणभूतोऽपि निश्चयेनातीन्द्रियज्ञान-विषयत्वाच्छब्दज्ञानविषयो न भवति शब्दादिपुद्गलपर्यायरूपो वा न भवति तेन कारणेनाशब्दः तथा परमाणुरपि शक्तिरूपेण शब्दकारणभूतोऽप्येकप्रदेशत्वेन शब्दव्यक्त्यभावादशब्दः** ***खंदंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि*** **यमेवमुक्तवर्णादिगुणशब्दादिपर्यायवृत्तिविशिष्टस्कंदांतरितं द्रव्यरूपस्कंदपरमाणुं विजानीहि परमात्मवदेव।**

तद्यथा — यथा परमात्मा व्यवहारेण द्रव्यभावरूपकर्मस्कन्दांतर्गतोऽपि निश्चयनयेन शुद्ध

गाथार्थ - जो एक रस, एक वर्ण, एक गन्ध, दो स्पर्शवाला है, शब्द का कारण और अशब्द है, स्कन्धों के अन्दर है, उसे परमाणु द्रव्य जानो।

टीकार्थ - ***एयरसवण्णगंधं दोफासं*** एक रस-वर्ण-गन्ध, दो स्पर्श हैं। वह इस प्रकार — वहाँ परमाणु में तिक्त आदि पाँच रस पर्यायों में से एक समय में कोई एक रस रहता है; शुक्ल आदि पाँच वर्ण पर्यायों में से एक समय में कोई एक वर्ण रहता है; सुरभि-दुरभिरूप दो गन्ध पर्यायों में से एक समय में कोई एक गन्ध रहती है; शीत-स्निग्ध, शीत-रूक्ष, उष्ण-स्निग्ध, उष्ण-रूक्ष — स्पर्श पर्याय के इन चार युगलों में से एक समय में कोई एक युगल स्पर्श रहता है। ***सद्दकारणमसद्दं*** शब्द का कारण होने पर भी आत्मा के समान अशब्द है। जैसे आत्मा, व्यवहार से तालु, औष्ठपुट-व्यापार से (दोनों ओठों के हलन-चलनरूप व्यापार से) शब्द का कारणभूत होने पर भी निश्चय से अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय होने के कारण शब्द-ज्ञान का विषय नहीं है; अथवा शब्द आदि पुद्गल पर्यायरूप नहीं होता है, उस कारण अशब्द है; उसी प्रकार परमाणु भी शक्तिरूप से शब्द का कारणभूत होने पर भी एक प्रदेशी होने के कारण शब्द की व्यक्ति / प्रगटता का अभाव होने से अशब्द है। ***खंदंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि*** परमात्मा के समान कहे गए वर्णादि गुण, शब्दादि पर्याय की वृत्ति से विशिष्ट जो स्कन्ध के अन्दर (परमाणु) है, उसे ही द्रव्यरूप स्कन्ध परमाणु जानो।

वह इस प्रकार — जैसे परमात्मा व्यवहार से द्रव्य-भावरूप कर्मस्कन्धों के अन्तर्गत होने

-बुद्धैकस्वभाव एव तथा परमाणुरपि व्यवहारेण स्कंदांतर्गतोऽपि निश्चयनयेन स्कंदबहिर्भूतशुद्धद्रव्यरूप एव अथवा स्कंदांतरित इति कोऽर्थः स्कंदात्पूर्वमेव भिन्न इत्यभिप्रायः ॥ ८८ ॥

एवं परमाणुद्रव्यवर्णादिगुणस्वरूपशब्दादिपर्यायस्वरूपकथनेन पञ्चगाथा गता।

इति परमाणुद्रव्यरूपेण द्वितीयस्थले समुदायेन गाथापञ्चकं गतम्।

अथ सकलपुद्गलभेदानामुपसंहारमावेदयति —

उवभोज्जमिंदिएहिं य इंदियकाया मणो य कम्माणि। (८२)
जं हवदि मुत्तिमण्णं तं सव्वं पोग्गलं जाणे॥ ८९॥

उवभोज्जमिंदियेहिं य वीतरागातीन्द्रियसुखास्वादरहितानां जीवानां यदुपभोग्यं पञ्चेन्द्रियविषय-स्वरूपं *इंदियकाया* अतीन्द्रियात्मस्वरूपाद्विपरीतानीन्द्रियाणि अशरीरात्मपदार्थात्प्रतिपक्षभूता औदारिक-वैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरसंज्ञाः पञ्चकायाः *मणो य* मनोगतविकल्पजालरहितात्

पर भी निश्चयनय से शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी हैं; उसी प्रकार परमाणु भी व्यवहार से स्कन्ध के अन्तर्गत होने पर भी निश्चयनय की अपेक्षा स्कन्ध से बहिर्भूत / भिन्न शुद्ध द्रव्यरूप ही है।

अथवा ***स्कंदांतरित*** इसका क्या अर्थ है — स्कन्ध से पहले ही वह उससे भिन्न है — ऐसा अभिप्राय है॥ ८८॥

इस प्रकार परमाणु द्रव्य के वर्णादि गुणों का स्वरूप और शब्द आदि पर्याय के स्वरूप -कथन की अपेक्षा पाँचवीं गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार परमाणु द्रव्यरूप से दूसरे स्थल में समुदाय की अपेक्षा पाँच गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, सकल पुद्गल-भेदों के उपसंहार का आवेदन करते हैं / मर्यादापूर्वक ज्ञान कराते हैं —

उपभोग्य इन्द्रिय से व इन्द्रिय काय मन व कर्म भी।
जो कुछ भी मूर्तिक है सभी, जानो कहा पुद्गल वही॥ ८९॥

गाथार्थ - इन्द्रियों द्वारा उपभोग्य-विषय, इन्द्रियाँ, शरीर, मन, कर्म और अन्य जो कुछ मूर्त है, वह सब पुद्गल जानो।

टीकार्थ - ***उवभोज्जमिंदिएहिं*** वीतराग अतीन्द्रियसुख के आस्वाद से रहित जीवों के जो उपभोग्य पञ्चेन्द्रिय विषयस्वरूप, ***इन्दियकाया*** अतीन्द्रिय आत्मस्वरूप से विपरीत इन्द्रिय; अशरीर आत्मपदार्थ से प्रतिपक्षभूत औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मणशरीर नामक पाँच शरीर ***मणो य*** और मनोगत विकल्पजाल से रहित शुद्ध जीवास्तिकाय से विपरीत मन;

शुद्ध-जीवास्तिकायाद्विपरीतं मनश्च *कम्माणि* कर्मरहितात्मद्रव्यात् प्रतिकूलानि ज्ञानावरणाद्यष्टकर्माणि *जं हवदि मुत्तिमण्णं* अमूर्तात्मस्वभावात्प्रतिपक्षभूतमन्यदपि यन्मूर्तं प्रत्येकानंतसंख्येयासंख्येयानंताणु-स्कंदरूपमनंताविभागिपरमाणुराशिरूपं च *तं सव्वं पोग्गलं जाणे* तत्सर्वमन्यच्च नोकर्मादिकं पुद्गलं जानीहि। इति पुद्गलद्रव्योपसंहारः॥ ८९॥

एवं पुद्गलास्तिकायोपसंहाररूपेण तृतीयस्थले गाथैका गता।

इति *पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारे* गाथादशकपर्यंतं स्थलत्रयेण *पुद्गलास्ति-काय* नामा *पञ्चमोऽन्तराधिकारः* समाप्तः।

अथानंतरमनंतकेवलज्ञानादिरूपादुपादेयभूतात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्ने हेयरूपे धर्माधर्मास्तिकायाधिकारे गाथासप्तकं भवति। तत्र गाथासप्तकमध्ये धर्मास्तिकायस्वरूपकथनमुख्यत्वेन *धम्मत्थिकायमरसं* इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरमधर्मास्तिकायस्वरूपनिरूपणमुख्यत्वेन *जह हवदि* इत्यादि गाथासूत्रमेकं, अथ धर्माधर्मोभयसमर्थनमुख्यत्वेन तयोरस्तित्वाभावे दूषणमुख्यत्वेन च *जादो अलोग* इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयमिति। एवं सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेण धर्माधर्मास्तिकाय-व्याख्याने समुदायपातनिका। तद्यथा —

कम्माणि कर्मरहित आत्मद्रव्य से प्रतिकूल ज्ञानावरणादि आठ कर्म; ***जं हवदि मुत्तिमण्णं*** अमूर्त आत्मस्वभाव से प्रतिपक्षभूत अन्य भी जो मूर्त प्रत्येक अनन्त की संख्यावाले संख्येय, असंख्येय, अनन्त अुण-स्कन्धरूप, अनन्त अविभागी परमाणु राशिरूप ***तं सव्वं पोग्गलं जाणे*** वे सभी और अन्य नोकर्मादि भी पुद्गल जानो — इस प्रकार पुद्गलद्रव्य के कथन का उपसंहार हुआ॥ ८९॥

इस प्रकार पुद्गलास्तिकाय के उपसंहाररूप से तृतीय स्थल में एक गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार ***पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य प्रतिपादक प्रथम महाधिकार*** में दश गाथा पर्यन्त तीन स्थल द्वारा ***पुद्गलास्तिकाय नामक पाँचवाँ अन्तराधिकार*** पूर्ण हुआ।

अब, इसके बाद अनन्त केवलज्ञानादिरूप से उपादेयभूत शुद्ध जीवास्तिकाय से भिन्न हेयरूप ***धर्माधर्मास्तिकाय अधिकार*** में सात गाथाएँ हैं। उन सात गाथाओं में से धर्मास्तिकाय के स्वरूप-कथन की मुख्यता से ***धम्मत्थिकायमरसं*** इत्यादि पाठक्रम से तीन गाथाएँ हैं। तत्पश्चात् अधर्मास्तिकाय-स्वरूप के निरूपण की मुख्यता से ***जह हवदि*** इत्यादि एक गाथा-सूत्र है। तदनन्तर धर्म-अधर्म दोनों के समर्थन की मुख्यता से और दोनों के अस्तित्व के अभाव में दूषण की मुख्यता से ***जादो अलोग*** इत्यादि पाठक्रम से तीन गाथाएँ हैं।

धर्मास्तिकायस्वरूपं कथयति —

धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं।(८३)
लोगागाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं॥ ९०॥

धम्मत्थिकायं धर्मास्तिकायो भवति *अरसमवण्णमगंधमसद्दमप्फासं* रसवर्णगंधशब्दस्पर्शरहितः *लोगागाढं* लोकव्यापकः *पुट्ठं* निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपरिणतजीवप्रदेशेषु परमानन्दैकलक्षणसुखरसा-स्वादसमरसीभाववत् सिद्धक्षेत्रे सिद्धराशिवत् पूर्णघटे जलवत् तिलेषु तैलवद्वा स्पृष्टः परस्परप्रदेशव्यव-धानरहितत्वेन निरंतरः न च निर्जनप्रदेशे भावितात्ममुनिसमूहवन्नगरे जनचयवद्वा सांतरः, बहुलं अभव्य-जीवप्रदेशेषु मिथ्यात्वरागादिवल्लोके नभोवद्वा पृथुलोऽनाद्यनंतरूपेण स्वभावविस्तीर्णः न च केवलि-समुद्घाते जीवप्रदेशवल्लोके वस्त्रादिप्रदेशविस्तारवद्वा पुनरिदानीं विस्तीर्णः। पुनरपि किंविशिष्टः ?

इस प्रकार सात गाथाओं द्वारा तीन स्थलों के माध्यम से धर्माधर्मास्तिकाय व्याख्यान में सामूहिक उत्थानिका पूर्ण हुई। वह इस प्रकार —

धर्मास्तिकाय का स्वरूप कहते हैं —

धर्मास्तिकाय अरस अवर्ण अगन्ध शब्द-स्पर्श बिन।
विस्तृत अखण्ड रु लोक-व्यापि, कहें असंख्य प्रदेश जिन॥ ९०॥

गाथार्थ - धर्मास्तिकाय अरस, अवर्ण, अगन्ध, अशब्द, अस्पर्श स्वभावी है; लोकव्यापक है, अखण्ड, विशाल और असंख्यात प्रदेशी है।

टीकार्थ - ***धम्मत्थिकायं*** धर्मास्तिकाय है। ***अरसमवण्णमगंधमसद्दमप्फासं*** रस, वर्ण, गन्ध, शब्द, स्पर्श से रहित है। ***लोगागाढं*** लोकव्यापक है। ***पुट्ठं*** निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञान परिणत जीवप्रदेशों में परम आनन्द एक लक्षण सुखरस के आस्वादमय समरसी भाव के समान, सिद्धक्षेत्र में सिद्धसमूह के समान, पूर्ण घट में भरे जल के समान या तिल में तेल के समान स्पृष्ट है; परस्पर प्रदेशों में व्यवधान / अन्तर से रहित होने के कारण निरन्तर है; निर्जनप्रदेश में आत्मा को भाते हुए (आत्मा में लीन) मुनिसमूह के समान या नगर में स्थित जनसमूह के समान सान्तर / अन्तरसहित नहीं है; ***बहुलं*** अभव्य जीव के प्रदेशों में स्थित मिथ्यात्व-रागादि के समान या लोक में स्थित नभ / आकाश के समान विशाल है; स्वभावतः ही अनादि-अनन्तरूप से विस्तृत है; केवली समुद्घात में जीव-प्रदेशों के समान अथवा लोक में वस्त्रादि-प्रदेशों के विस्तार के समान यह विस्तृत नहीं है। वह और किस विशेषतावाला है ? ***असंखादियपदेसं*** निश्चय से

असंखादियपदेसं निश्चयेनाखण्डैकप्रदेशोऽपि सद्भूतव्यवहारेण लोकाकाशप्रमितासंख्यातप्रदेश इति सूत्रार्थः ॥ ९० ॥

अथ धर्मस्यैवावशिष्टस्वरूपं प्रतिपादयति –

अगुरुगलहुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं। (८४)
गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥ ९१ ॥

अगुरुगलहुगेहिं सदा तेहिं अणंतेहिं परिणदं अगुरुलघुकैः सदा तैरनंतैर्परिणतः प्रतिसमयसंभवत्-षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिरनंतैरविभागपरिच्छेदैः परिणताः येऽगुरुलघुकगुणाः स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबंधन-भूतास्तैः कृत्वा पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययपरिणतोऽपि द्रव्यार्थिकनयेन *णिच्चं* नित्यं *गदिकिरिया-जुत्ताणं कारणभूदं* गतिक्रियायुक्तानां कारणभूतः यथा सिद्धो भगवानुदासीनोऽपि सिद्धगुणानुराग-परिणतानां भव्यानां सिद्धगतेः सहकारिकारणं भवति तथा धर्मोऽपि स्वभावेनैव गतिपरिणतजीवपुद्गला-नामुदासीनोऽपि गतिसहकारिकारणं भवति *सयमकज्जं* स्वयमकार्यः यथा सिद्धः स्वकीयशुद्धास्तित्वेन

अखण्ड एक प्रदेशी होने पर भी सद्भूत व्यवहार से लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है – ऐसा सूत्रार्थ है ॥ ९० ॥

अब, धर्म के ही शेष रहे स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं –

उन नंत रूप अगुरुलघु से, सदा परिणमता तथा।
है हेतु गति परिणाम युत को, नहीं कार्य स्वयं तथा ॥ ९१ ॥

गाथार्थ - वह उन अनन्त अगुरुलघुकों द्वारा नित्य परिणमित है, गतिक्रिया-युक्तों को कारणभूत और स्वयं अकार्य है।

टीकार्थ - ***अगुरुगलघुगेहिं सदा तेहिं अणंतेहिं परिणदं*** सदा उन अनन्त अगुरुलघुकों द्वारा परिणमित है; प्रतिसमय होनेवाली षट्स्थान पतित हानि-वृद्धिरूप अनन्त अविभाग परिच्छेद से परिणमित जो अगुरुलघुकगुण हैं, उनसे स्वरूप-प्रतिष्ठान का निबन्धन / कारणभूत है। पर्यायार्थिकनय से उत्पाद-व्ययरूप परिणमित होने पर भी द्रव्यार्थिकनय से ***णिच्चं*** नित्य है। ***गतिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं*** गतिक्रिया-युक्तों को कारणभूत है। जैसे सिद्ध भगवान उदासीन होने पर भी सिद्ध गुणों के प्रति अनुरागरूप से परिणमित भव्यों के लिए वे सिद्धगति में सहकारी कारण हैं; उसी प्रकार धर्म भी उदासीन होने पर भी स्वभाव से ही गतिरूप परिणत जीव-पुद्गलों को गति में सहकारी कारण होता है। ***सयमकज्जं*** स्वयं अकार्य है। जैसे सिद्ध अपने शुद्ध अस्तित्व से निष्पन्न होने के कारण अन्य किसी के द्वारा कृत नहीं हैं, अतः अकार्य हैं; उसी प्रकार

निष्पन्नत्वादन्येन केनापि न कृत इत्यकार्यः तथा धर्मोऽपि स्वकीयास्तित्वेन निष्पन्नत्वादकार्य इत्यभिप्रायः ॥ ९१ ॥

अथ धर्मस्य गतिहेतुत्वे लोकप्रसिद्धदृष्टांतमाह —

उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए। (८५)
तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणीहि ॥ ९२ ॥

उदकं यथा मत्स्यानां गमनानुग्रहकरं भवति लोके तथैव जीवपुद्गलानां धर्मद्रव्यं विजानीहि हे शिष्य। तथाहि — यथा हि जलं स्वयमगच्छन्मत्स्यानप्रेरयत्सत्तेषां स्वयं गच्छतां गतेः सहकारिकारणं भवति तथा धर्मोऽपि स्वयमगच्छत्परानप्रेरयंश्च स्वयमेव गतिपरिणतानां जीवपुद्गलानां गतेः सहकारिकारणं भवति। अथवा भव्यानां सिद्धगतेः पुण्यवत्।

तद्यथा — यथा रागादिदोषरहितः शुद्धात्मानुभूतिसहितो निश्चयधर्मो यद्यपि सिद्धगतेरुपादान-कारणं भव्यानां भवति तथा निदानरहितपरिणामोपार्जिततीर्थंकरप्रकृत्युत्तमसंहननादिविशिष्टपुण्यरूप-धर्मोऽपि सहकारिकारणं भवति, तथा यद्यपि जीवपुद्गलानां गतिपरिणतेः स्वकीयोपादानकारणमस्ति तथापि धर्मास्तिकायोऽपि सहकारिकारणं भवति। अथवा भव्यानामभव्यानां वा यथा चतुर्गतिगमनकाले यद्यप्यभ्यंतरशुभाशुभपरिणाम उपादानकारणं भवति तथापि द्रव्यलिङ्गादि दानपूजादिकं वा बहिरंगशुभा-नुष्ठानं च बहिरंगसहकारिकारणं भवति तथा जीवपुद्गलानां यद्यपि स्वयमेव निश्चयेनाभ्यंतरेऽन्तरंग-सामर्थ्यमस्ति तथापि व्यवहारेण धर्मास्तिकायोऽपि गतिकारणं भवतीति भावार्थः ॥ ९२ ॥

धर्म भी अपने अस्तित्व से निष्पन्न होने के कारण अकार्य है — ऐसा अभिप्राय है ॥ ९१ ॥

अथवा जैसे भव्यों या अभव्यों को चतुर्गति गमन के समय यद्यपि अन्तरङ्ग शुभाशुभ परिणाम उपादान कारण हैं, तथापि द्रव्यलिङ्गादि या दान-पूजादि और बहिरङ्ग शुभ अनुष्ठान बहिरङ्ग सहकारी कारण हैं; उसी प्रकार यद्यपि जीव-पुद्गलों की स्वयं ही निश्चय से अभ्यन्तर में अन्तरङ्ग सामर्थ्य है, तथापि व्यवहार से धर्मास्तिकाय भी गति में कारण है — ऐसा भावार्थ है ॥ ९२ ॥

इस प्रकार प्रथम स्थल में धर्मास्तिकाय के व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, (द्वितीय स्थल में) अधर्मास्तिकाय का स्वरूप कहते हैं —

ज्यों धर्मद्रव्य उसी प्रकार अधर्मद्रव्य भी जानना।
है भू समान निमित्त स्थिति क्रियायुत को जानना ॥ ९३ ॥

गाथार्थ - जैसे धर्मद्रव्य है, उसी प्रकार अधर्म नामक द्रव्य भी जानो; परन्तु वह स्थिति-क्रिया-युक्त को पृथ्वी के समान कारणभूत है।

एवं प्रथमस्थले धर्मास्तिकायव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतम्।

अथाधर्मास्तिकायस्वरूपं कथ्यते —

जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं। (८६)
ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव॥ ९३॥

यथा भवति धर्मद्रव्यं तथार्थं कर्तुं जानीहि हे शिष्य द्रव्यमधर्माख्यं। तच्च कथंभूतं ? स्थितिक्रिया -युक्तानां कारणभूतं पृथिवीवत्। तथाहि — यथा पूर्वमरसादिविशेषणविशिष्टं धर्मद्रव्यं व्याख्यातं अधर्मद्रव्यमपि तद्रूपं ज्ञातव्यं, अयं तु विशेषः तन्मत्स्यानां जलवज्जीवपुद्गलानां गतेर्बहिरंगसहकारिकारणं, इदं तु यथा पृथिवी स्वयं पूर्वं तिष्ठंती परं स्थापयंती तुरंगादीनां स्थितेर्बहिरंगसहकारिकारणं भवति तथा जीवपुद्गलानां स्थापयत्स्वयं च पूर्वं तिष्ठत्सत् स्थितेस्तेषां कारणमिति पथिकानां छायावद्वा।

अथवा शुद्धात्मस्वरूपे या स्थितिस्तस्या निश्चयेन वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनं कारणं व्यवहारेण पुनरर्हत्सिद्धादिपरमेष्ठिगुणस्मरणं च यथा तथा जीवपुद्गलानां निश्चयेन स्वकीयस्वरूपमेव स्थितेरुपादानकारणं व्यवहारेण पुनरधर्मद्रव्यं चेति सूत्रार्थः॥ ९३॥

अथ धर्माधर्मसद्भावे साध्ये हेतुं दर्शयति —

टीकार्थ - जैसा धर्मद्रव्य है; उसी प्रकार के प्रयोजन को करने के लिए हे शिष्य! अधर्म नामक द्रव्य को जानो। वह और कैसा है ? पृथ्वी के समान स्थिति-क्रिया-युक्तों को कारणभूत है। वह इस प्रकार — जैसे पहले अरस आदि विशेषण विशिष्ट धर्मद्रव्य का व्याख्यान किया था; उसी रूप अधर्मद्रव्य भी जानो परन्तु यह विशेष है कि वह मछलियों को जल के समान जीव -पुद्‌गलों की गति का बहिरङ्ग सहकारी कारण है और यह जैसे पहले से ही स्थित पृथ्वी दूसरे ठहरते हुए तुरङ्ग / घोड़े आदि को स्थिति में / ठहरने में बहिरङ्ग सहकारी कारण होती है उसी प्रकार; अथवा पथिकों को छाया के समान; स्वयं पहले से स्थित रहता हुआ, जीव पुद्‌गलों को स्थित होने में / ठहरने में उनका कारण है।

अथवा जो शुद्धात्मस्वरूप में स्थिति है, उसका निश्चय से वीतराग निर्विकल्प स्वसम्वेदन कारण है तथा जैसे व्यवहार से अरहन्त, सिद्ध आदि परमेष्ठियों के गुणों का स्मरण करता है; उसी प्रकार निश्चय से जीव-पुद्‌गलों को अपना स्वरूप ही स्थिति का उपादान कारण है तथा व्यवहार से अधर्मद्रव्य है — ऐसा सूत्रार्थ है॥ ९३॥

इस प्रकार अधर्मद्रव्य के व्याख्यानरूप से दूसरे स्थल में एक गाथा-सूत्र पूर्ण हुआ।

अब, (तृतीय स्थल में) धर्म-अधर्म के सद्‌भावरूप साध्य में हेतु दिखाते हैं —

जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी। (८७)
दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य॥ ९४॥

जादो **जातम्। किं कर्तृ ?** ***अलोगलोगो*** **लोकालोकद्वयम्। कस्माज्जातं ?** ***जेसिं सब्भावदो य*** **ययोर्धर्माधर्मयोः स्वभावतश्च। न केवलं लोकालोकद्वयं जातम्।** ***गमणठिदी*** **गतिस्थितिश्चैतौ द्वौ। कथंभूतौ ?** ***दोवि य मया*** **द्वौ धर्माधर्मौ मतौ संमतौ स्तः अथवा पाठांतरं** ***अमया*** **अमयौ न केनापि कृतौ** ***विभत्ता*** **विभक्तौ भिन्नौ** ***अविभत्ता*** **अविभक्तौ** ***लोयमेत्ता य*** **लोकमात्रौ चेति।**

तद्यथा — धर्माधर्मौ विद्येते लोकालोकसद्भावात् षड्द्रव्यसमूहात्मको लोकः, तस्माद्बहिर्भूतं शुद्ध -माकाशमलोकः, तत्र लोके गतिं तत्पूर्वकस्थितिमास्कंदतोः स्वीकुर्वतोर्जीवपुद्गलयोर्यदि बहिरंगहेतुभूत -धर्माधर्मौ न स्यातां, तदा लोकाद्बहिर्भूतबाह्यभागेऽपि गतिः केन नाम निषिध्यते न केनापि, ततो लोकालोकविभागादेव ज्ञायते धर्माधर्मौ विद्येते। तौ च किंविशिष्टौ ? भिन्नास्तित्व-

---

सद्भाव से जिनके हैं लोक अलोक व गमनस्थिति।
अविभक्त और विभक्त लोकप्रमाण उनकी सम्मति॥ ९४॥

गाथार्थ - जिनके सद्भाव से लोक-अलोक का विभाग है, (जीव-पुद्गलों की) गति -स्थिति है, वे दोनों विभक्त और अविभक्त स्वरूप तथा लोकप्रमाण माने गए हैं।

टीकार्थ - ***जादो*** उत्पन्न हैं। कर्तारूप कौन उत्पन्न हैं ? ***अलोगलोगो*** लोकालोक दोनों उत्पन्न हैं। वे किससे उत्पन्न हैं ? ***जेसिं सब्भावदो य*** जिन धर्म-अधर्म से और स्वभाव से उत्पन्न हैं। मात्र लोकालोक दोनों ही उत्पन्न नहीं हैं; अपितु ***गमणठिदी*** गति और स्थिति ये दोनों भी हैं। ये दोनों कैसे हैं ? ***दोवि य मया*** उन दोनों धर्म और अधर्म की सम्मति से, स्वीकृति से हैं। अथवा ***'अमया'*** पाठान्तर भी है, जिसका अर्थ है ये दोनों किसी ने भी बनाए नहीं हैं; अकृत हैं। ***विभत्ता*** विभक्त / भिन्न हैं; ***अविभत्ता*** अविभक्त / अभिन्न हैं, ***लोयमेत्ता य*** और लोकमात्र हैं।

वह इस प्रकार — लोक-अलोक का सद्भाव होने से धर्म-अधर्म हैं; षट्द्रव्यों के समूहात्मक लोक है, उससे बहिर्भूत शुद्ध / मात्र आकाश अलोक है। वहाँ लोक में गति और उस पूर्वक स्थिति को प्राप्त हुए, स्वीकार किए जीव-पुद्गलों के यदि बहिरङ्ग हेतुभूत धर्म-अधर्म न हों तो लोक से बहिर्भूत बाह्य भाग में भी गति किसके द्वारा रोकी जा सकती है ? किसी के द्वारा भी रोकी नहीं जा सकती है; इस लोक-अलोक के विभाग से ही धर्म-अधर्म की विद्यमानता ज्ञात होती है। वे दोनों किस विशेषतावाले हैं ? भिन्न अस्तित्व से निष्पन्न होने के कारण निश्चयनय से पृथग्भूत हैं, एकक्षेत्रावगाही होने से असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा सिद्धसमूह के समान

निष्पन्नत्वात् निश्चयनयेन पृथग्भूतौ एकक्षेत्रावगाहत्वादसद्भूतव्यवहारनयेन सिद्धराशिवदभिन्नौ सर्वदैव निःक्रियत्वेन लोकव्यापक -त्वाल्लोकमात्राविति सूत्रार्थः ॥ ९४॥

अथ धर्माधर्मौ गतिस्थितिहेतुत्वविषयेऽत्यंतोदासीनाविति निश्चिनोति —

ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स।(८८)
हवदि गती स प्पसरो जीवाणं पुग्गलाणं च॥ ९५॥

ण य गच्छदि **नैव गच्छति। स कः ?** ***धम्मत्थी*** **धर्मास्तिकायः** ***गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स*** **गमनं न करोत्यन्यद्रव्यस्य** ***हवदि*** **तथापि भवति। स कः ?** ***पसरो*** **प्रसरः प्रवृत्तिः। कस्याश्च ?** ***गदिस्स य*** **गतेश्च। केषां गतेः ?** ***जीवाणं पोग्गलाणं च*** **जीवानां पुद्गलानां चेति।**

तथाहि — यथा तुरंगः स्वयं गच्छन् स्वकीयारोहकस्य गमनहेतुर्भवति न तथा धर्मास्तिकायः। कस्मात् ? निष्क्रियत्वात् किंतु यथा जलं स्वयं तिष्ठति सति वा तिष्ठतस्त्वयं गच्छतां मत्स्यानामौदासीन्येन

अभिन्न हैं; सर्वदा ही निःक्रिय होने से, लोक व्यापक होने से लोकमात्र हैं — ऐसा सूत्रार्थ है॥ ९४॥

अब, गति-स्थितिहेतुत्व के विषय में धर्म-अधर्म अत्यन्त उदासीन हैं, ऐसा निश्चित करते हैं —

धर्मास्ति करता गमन न, परद्रव्य को न कराता।
निरपेक्ष हेतु मात्र ही है, जीव पुद्गल गति का॥ ९५॥

गाथार्थ - धर्मास्तिकाय गमन नहीं करता है, अन्य द्रव्य को गमन नहीं कराता है; जीव और पुद्गलों की गति का प्रसर / उदासीन निमित्तमात्र होता है।

टीकार्थ - ***ण य गच्छदि*** नहीं जाता है। वह कौन नहीं जाता है ? ***धम्मत्थी*** धर्मास्तिकाय नहीं जाता है। ***गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स*** अन्य द्रव्य का गमन नहीं करता है; ***हवदि*** तथापि होती है। वह क्या होती है ? ***पसरो*** प्रसर, प्रवृत्ति होती है। किसकी प्रवृत्ति होती है ? ***गदिस्स य*** गति की प्रवृत्ति होती है। किनकी गति की प्रवृत्ति होती है ? ***जीवाणं पोग्गलाणं च*** जीवों और पुद्गलों की गति की प्रवृत्ति होती है।

वह इस प्रकार — जैसे स्वयं चलता हुआ घोड़ा अपने आरोहक / अश्वारोही के गमन का कारण होता है; उस प्रकार धर्मास्तिकाय नहीं है। धर्मास्तिकाय ऐसा क्यों नहीं है ? निष्क्रिय होने से वह ऐसा नहीं है; अपितु जैसे स्वयं स्थायी रहता हुआ जल उदासीनरूप से चलती हुई मछलियों की गति का निमित्त होता है; उसी प्रकार स्वयं स्थिर रहता हुआ धर्मास्तिकाय भी अपने

गतेर्निमित्तं भवति तथा धर्मोऽपि स्वयं तिष्ठन्सन् स्वकीयोपादानकारणेन गच्छतां जीवपुद्गलानामप्रेरकत्वेन बहिरंगनिमित्तं भवति। यद्यपि धर्मास्तिकायो उदासीनो जीवपुद्गलगतिविषये तथापि जीवपुद्गलानां स्वकीयोपादानबलेन जले मत्स्यानामिव गतिहेतुर्भवति, अधर्मस्तु पुनः स्वयं तिष्ठतामश्वादीनां पृथिवी-वत्पथिकानां छायावद्वा स्थितेर्बहिरंगहेतुर्भवतीति भगवतां श्रीकुंदकुंदाचार्यदेवानामभिप्रायः॥ ९५॥

अथ धर्माधर्मयोर्गतिस्थितिहेतुत्वोदासीनविषये युक्तिमुद्योतयति —

विज्जदि जेसिं गमणं ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि। (८९)
ते सगपरिणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति॥ ९६॥

विद्यते येषां गमनं स्थानं पुनस्तेषामेव संभवति ते जीवपुद्गलाः स्वकपरिणामैरेव स्थानं गमनं च कुर्वंतीति। तथाहि — धर्मस्तावत्क्वापि काले गतिहेतुत्वं न त्यजति न चाधर्मः स्थितिहेतुत्वं तौ यदि

उपादान कारण से चलते हुए जीव-पुद्गलों की गति का अप्रेरक / उदासीनरूप से बहिरङ्ग निमित्त होता है। यद्यपि जीव-पुद्गल की गति के विषय में धर्मास्तिकाय उदासीन है, तथापि मछलियों को जल के समान, अपने उपादान बल से होती हुई जीव-पुद्गलों की गति का वह कारण है। अधर्म भी स्वयं स्थिर रहता हुआ, ठहरते हुए घोड़ों को पृथ्वी के समान, पथिकों को छाया के समान, अपने उपादान कारण से ठहरते हुए जीव-पुद्गलों की स्थिति का बहिरङ्ग कारण है — ऐसा ***'भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव'*** का अभिप्राय है॥ ९५॥

अब, धर्म-अधर्म की गति-स्थिति हेतुत्व सम्बन्धी उदासीनता के विषय में युक्ति प्रकाशित करते हैं —

है गति जिनकी उन्हीं की स्थिति सम्भव है तथा।
वे स्वयं स्व परिणाम से, गति-स्थिति करते सदा॥ ९६॥

गाथार्थ - जिनके गमन होता है, उनके ही स्थिति सम्भव है; वे (गति-स्थितिमान पदार्थ) अपने परिणामों से ही गति और स्थिति करते हैं।

टीकार्थ - जिनके गमन / गति विद्यमान है, उनके ही स्थान / स्थिति होती है। वे जीव -पुद्गल अपने परिणामों से ही गति और स्थिति करते हैं।

वह इस प्रकार — धर्मद्रव्य किसी भी समय गतिहेतुत्व नहीं छोड़ता है और अधर्मद्रव्य स्थितिहेतुत्व भी नहीं छोड़ता है। यदि गति और स्थिति के वे दोनों ही मुख्य कारण हों तो गति और स्थिति के समय परस्पर मत्सर होता। मत्सर कैसे होता? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं -

गतिस्थित्योर्मुख्यहेतू स्यातां तदा गतिस्थितिकाले परस्परं मत्सरो भवति। कथमिति चेत् ? येषां गतिस्तेषां सर्वदैव गतिरेव न च स्थितिः येषां पुनः स्थितिस्तेषां सर्वदैव स्थितिरेव न च गतिः। न तथा दृश्यते। किंतु ये गतिं कुर्वन्ति त एव पुनरपि स्थितिं कुर्वन्ति ये स्थितिं कुर्वन्ति त एव पुनर्गति कुर्वन्ति। ततो ज्ञायते न तौ धर्माधर्मौ गतिस्थित्योर्मुख्यहेतु। यदि मुख्यहेतू न भवेतां तर्हि गतिस्थितिमतां जीवपुद्गलानां कथं गति स्थिति इति चेत् ? ते निश्चयेन स्वकीयपरिणामैरेव गतिं स्थितिं च कुर्वंतीति।

अत्र सूत्रे निर्विकारचिदानंदैकस्वभावादुपादेयभूतात् शुद्धात्मतत्त्वाद्भिन्नत्वाद्धेयतत्त्वमित्यभिप्रायः॥ ९६॥

एवं धर्माधर्मौभयव्यवस्थापनमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम्।

इति गाथासप्तकपर्यंतं स्थलत्रयेण पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये धर्माधर्म -व्याख्यानरूपेण षष्ठमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

अथानंतरं शुद्धबुद्धैकस्वभावान्निश्चयमोक्षकारणभूतात्सर्वप्रकारोपादेयरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्न आकाशास्तिकायः सप्तगाथापर्यंतं कथ्यते। तत्र गाथासप्तकमध्ये प्रथमतस्तावल्लो-

---

जिनकी गति होती है, उनकी हमेशा गति रहती; स्थिति नहीं हो पाती और जिनकी स्थिति होती, उनकी सर्वदा ही स्थिति रहती; गति नहीं हो पाती; परन्तु ऐसा तो दिखाई नहीं देता है; अपितु जो गति करते हैं, वे ही बाद में स्थिति करते हैं; और जो स्थिति करते हैं, वे ही बाद में गति करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि वे धर्म-अधर्म, गति-स्थिति के मुख्य कारण नहीं हैं। यदि वे मुख्य कारण नहीं हैं तो गति-स्थितिमान जीव-पुद्गलों के गति-स्थिति कैसे होती है ? वे निश्चय से अपने परिणामों द्वारा ही गति और स्थिति करते हैं।

यहाँ सूत्र में उपादेयभूत निर्विकार चिदानन्द एक स्वभावी शुद्धात्मतत्त्व से भिन्न होने के कारण ये हेय तत्त्व हैं – ऐसा अभिप्राय है॥ ९६॥

इस प्रकार धर्म-अधर्म दोनों को व्यवस्थापित करने की मुख्यता से तीसरे स्थल में तीन गाथाएँ पूर्ण हुईं।

इस प्रकार सात गाथा पर्यन्त तीन स्थल द्वारा ***'पञ्चास्तिकाय-षट्द्रव्य प्रतिपादक प्रथम महाधिकार'*** में ***'धर्म-अधर्म व्याख्यान'*** रूप से ***'छठवाँ अन्तराधिकार'*** समाप्त हुआ।

अब, इसके बाद शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी निश्चय मोक्ष के कारणभूत सर्व प्रकार से उपादेयरूप शुद्ध जीवास्तिकाय से भिन्न आकाशास्तिकाय का सात गाथा पर्यन्त कथन करते हैं। उन सात गाथाओं में से सर्व प्रथम लोकाकाश-अलोकाकाश – दोनों के स्वरूप-कथन की

कालोकाकाशद्वयस्वरूपकथनमुख्यत्वेन *सव्वेसिं जीवाणं...* इत्यादि गाथाद्वयं, अथ आकाशमेव गतिस्थितिद्वयं करिष्यति धर्माधर्माभ्यां किं प्रयोजनमिति पूर्वपक्षनिराकरणमुख्यत्वेन *आगासं अवगासं....* इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, तदनंतरं धर्माधर्मलोकाकाशानामेकक्षेत्रावगाहत्वात्समानपरिमाण-त्वाच्चासद्भूतव्यवहारेणैकत्वं भिन्नलक्षणत्वान्निश्चयेन पृथक्त्वमिति प्रतिपादनमुख्यत्वेन *धम्माधम्मागासा* इत्यादि सूत्रमेकम्। एवं सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेणाकाशास्तिकायव्याख्याने समुदायपातनिका। तद्यथा —

आकाशस्वरूपं कथयति —

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च। (९०)
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं॥ ९७॥

सव्वेसिं जीवाणं सर्वेषां जीवानां *सेसाणं तह य* शेषाणां तथैव च धर्माधर्मकालानां *पोग्गलाणं*

मुख्यता से ***सव्वेसिं जीवाणं....*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। तत्पश्चात् गति-स्थिति दोनों को आकाश ही कर लेगा, धर्म-अधर्म से क्या प्रयोजन है? ऐसे पूर्वपक्ष (प्रश्न) के निराकरण की मुख्यता से ***आगासं अवगासं....*** इत्यादि पाठक्रम द्वारा चार गाथाएँ हैं। तदनन्तर धर्म-अधर्म-लोकाकाश के एक क्षेत्रावगाही होने से और समान परिमाणत्व होने से असद्भूत व्यवहार की अपेक्षा एकत्व है तथा भिन्न लक्षणत्व होने से निश्चय की अपेक्षा पृथक्त्व है — ऐसे प्रतिपादन की मुख्यता से ***धम्माधम्मागासा....*** इत्यादि एक गाथा; इस प्रकार सात गाथाओं द्वारा तीन स्थल से आकाशास्तिकाय व्याख्यान में सामूहिक उत्थानिका है। वह इस प्रकार —

९८ से १०४ गाथा पर्यन्त सातवें अन्तराधिकार की सारणी

स्थलक्रम	स्थल प्रतिपादित विषय	कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	लोकाकाश-अलोकाकाश स्वरूप कथन	९८-९९ वीं	२
२	धर्माधर्म सम्बन्धी पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष कथन	१००-१०३ वीं	४
३	धर्माधर्म लोकाकाश के कथञ्चित् भिन्नाभिन्नत्व	१०४ वीं	१

आकाश का स्वरूप कहते हैं —

नित जीव पुद्गल को तथा सब शेष द्रव्यों को सदा।
दे लोक में अवकाश सब आकाश द्रव्य उसे कहा॥ ९७॥

गाथार्थ - लोक में जीवों, पुद्गलों और उसी प्रकार शेष सभी द्रव्यों को जो सम्पूर्ण अवकाश देता है, वह आकाश है।

च पुद्गलानां च *जं देदि* यत्कर्तृ ददाति। किं ? *विवरं* विवरं छिद्रं अवकाशमवगाहं अखिलं समस्तं तं तत्पूर्वोक्तं *लोगे* लोकविषये *हवदि आगासं* आकाशं भवति।

अत्राह शिवकुमारमहाराजनामा — हे भगवान् लोकस्तावदसंख्यातप्रदेशः अत्र लोके निश्चयनयेन नित्यनिरंजनज्ञानमयपरमानंदैकलक्षणाः अनंतानंतजीवास्तेभ्योऽप्यनंतगुणाः पुद्गला लोकाकाशप्रमितप्रदेशप्रमाणाः कालाणवो धर्माधर्मौ चेति सर्वे कथमवकाशं लभंत इति? भगवानाह — एकापवरके अनेकप्रदीपप्रकाशवदेकगूढनागरसगद्याणके बहुसुवर्णवदेकस्मिन्नुष्ट्रीक्षीरघटे मधुघटवदेकस्मिन् भूमिगृहे जयघंटादिशब्दवद्विशिष्टावगाहगुणेनासंख्येयप्रदेशेऽपि लोके अनंतसंख्या अपि जीवादयोऽवकाशं लभंत इत्यभिप्रायः॥ ९७॥

अथ षड्द्रव्यसमवायो लोकस्तस्माद्बहिरनंतमाकाशमलोक इति प्रकटयति —

टीकार्थ - ***सव्वेसिं जीवाणं*** सभी जीवों को। ***सेसाणं तह य*** और उसी प्रकार शेष धर्म, अधर्म, काल को; ***पोग्गलाणं च*** और पुद्गलों को, ***जं देदि*** कर्तारूप जो देता है। क्या देता है? ***विवरं*** विवर, छिद्र, अवकाश, अवगाह देता है; ***अखिलं*** समस्त, ***तं*** उस पूर्वोक्त, ***लोगे*** लोक विषय में, ***हवदि आगासं*** आकाश है।

यहाँ शिवकुमार नामक महाराज कहते हैं — हे भगवन्! लोक तो मात्र असंख्यात प्रदेशी है, उस लोक में निश्चयनय से नित्य, निरञ्जन, ज्ञानमय, परमानन्द एक लक्षणवाले अनन्तानन्त जीव; उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल, लोकाकाश के बराबर प्रदेश प्रमाण कालाणु, धर्म और अधर्म — ये सभी अवकाश / स्थान कैसे प्राप्त करते हैं?

भगवान कहते हैं — एक अपवरक / कमरे में अनेक प्रदीपों के प्रकाश-समान, एक गूढ़ नाग रस गद्याणक में बहुत सुवर्ण के समान, उष्ट्री (ऊँटनी) के दूध से भरे एक घट में मधुघट के समान; एक भूमिगृह में जय, घण्टा आदि शब्दों के समान विशिष्ट अवगाहगुण के कारण असंख्य प्रदेश होने पर भी लोक में अनन्त संख्यावाले जीवादि भी अवकाश / स्थान प्राप्त करते हैं — ऐसा अभिप्राय है॥ ९७॥

अब, षट्द्रव्यों का समूह लोक है, उससे बाहर अनन्त आकाश अलोक है; ऐसा प्रगट करते हैं —

सब जीव पुद्गल काय, धर्म अधर्म अन्य न लोक से।
है अन्त बिन नभ भिन्न और अभिन्न कहते उसी से॥ ९८॥

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोणण्णा। (९१)
तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं॥ ९८॥

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य **जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मद्वयं चकारात्कालश्च। एते सर्वे कथंभूताः ? *लोगदो अणण्णा* लोकात्सकाशादनन्ये *तत्तो* तस्माल्लोकाकाशात् *अणण्णमण्णं आगासं* अनन्यदन्यच्चाकाशं यदन्यदलोकाकाशं। तत्किं प्रमाणं। *अंतवदिरित्तं* अन्त्यव्यतिरिक्तमनंतमिति।**

अत्र सूत्रे यद्यपि सामान्येन पदार्थानां लोकादनन्यत्वं भणितं तथापि निश्चयेन मूर्तिरहितत्वकेवल -ज्ञानत्वसहजपरमानंदत्वनित्यत्वनिरंजनत्वादिलक्षणेन शेषद्रव्येभ्यो जीवानामन्यत्वं स्वकीयस्वकीय -लक्षणेन शेषद्रव्याणां च जीवेभ्यो भिन्नत्वम्। तेन कारणेन ज्ञायते संकरव्यतिकरदोषो नास्तीति भावः॥ ९८॥

एवं लोकालोकाकाशद्वयस्वरूपसमर्थनरूपेण प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतम्।

अथाकाशं जीवादीनां यथावकाशं ददाति तथा यदि गतिस्थिती अपि ददाति तदा दोषं दर्शयति —

गाथार्थ - जीव, पुद्गलकाय, धर्म और अधर्म लोक अनन्य है, उस (लोक) से अनन्य और अन्य, अन्तरहित आकाश है।

टीकार्थ - ***जीवो पोग्गलकाया धम्मा धम्मा य*** जीव, पुद्गलकाय, धर्म-अधर्म दोनों और चकार से काल। ये सब कैसे हैं ? ***लोगदो अणण्णा*** ये सभी लोक से अनन्य हैं। ***तत्तो*** उस लोकाकाश से, ***अणण्णमण्णं आकासं*** आकाश (लोकाकाश से) अनन्य भी है और अन्य भी है परन्तु अलोकाकाश अन्य ही है। वह कितना है ? ***अंतवदिरित्तं*** अन्त से रहित, अनन्त है।

यहाँ सूत्र में यद्यपि सामान्य की अपेक्षा पदार्थों का लोक से अनन्यत्व कहा, तथापि निश्चय की अपेक्षा मूर्तिरहितत्व / अमूर्तत्व, केवलज्ञानत्व, सहज-परमानन्दत्व, नित्यत्व, निरञ्जनत्व आदि लक्षण द्वारा शेष द्रव्यों से जीव का अन्यत्व / भिन्नत्व है; और अपने-अपने लक्षण द्वारा शेष द्रव्यों का जीवों से भिन्नत्व है। उस कारण ज्ञात होता है कि संकर-व्यतिकर दोष नहीं हैं — ऐसा भाव है॥ ९८॥

इस प्रकार लोकाकाश-अलोकाकाश दोनों के स्वरूप-समर्थनरूप से प्रथम स्थल में दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, जैसे आकाश जीवादि को अवकाश / स्थान देता है; उसी प्रकार यदि गति-स्थिति दे, तो (उसमें आनेवाले) दोष दिखाते हैं —

आयासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि। (९२)
उड्ढं गदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ॥ ९९॥

आयासं आकाशं कर्तृ *देदि जदि* ददाति यदि चेत्। किं? *अवगासं* अवकाशमवगाहं। कथं सह काभ्यां? *गमणट्ठिदिकारणेहिं* गमनस्थितिकारणाभ्यां। तदा किं दूषणं? *उड्ढं गदिप्पधाणा* निर्विकार-विशिष्टचैतन्यप्रकाशमात्रेण कारणसमयसारभावनाबलेन नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिविनाशं कृत्वा पश्चात्स्वाभाविकोर्ध्वगतिस्वभावाः संतः। के ते? *सिद्धा* स्वभावोपलब्धिसिद्धिरूपाः सिद्धा भगवंतः *चेट्ठंति किह* तिष्ठन्ति कथं? कुत्र? *तत्थ* तत्र लोकाग्र इति।

अत्र सूत्रे लोकाद्बहिर्भागेऽप्याकाशं तिष्ठति तत्र किं न गच्छंतीति भावार्थः॥ ९९॥

अथ स्थितपक्षं प्रतिपादयति —

हो गति स्थिति हेतुमय, अवकाशदायक नभ यदि।
तो ऊर्ध्वगति में मुख्य शिव, कैसे ठहरते वहाँ ही?॥ ९९॥

गाथार्थ - यदि गति-स्थिति के कारणसहित आकाश अवकाश / स्थान देता है तो ऊर्ध्वगति में प्रधान सिद्ध वहाँ (लोकाकाश में) ही कैसे (क्यों) ठहरते हैं? (उनका गमन उससे आगे क्यों नहीं होता है?)।

टीकार्थ - ***आयासं*** आकाशरूप कर्ता, ***देदि जदि*** यदि देता है तो। क्या देता है? ***अवगासं*** अवकाश / अवगाह / स्थान देता है। स्थान कैसे या किनके साथ देता है? ***गमणठिदि-कारणेहिं*** गमन-स्थिति में कारण होने के साथ देता है। यदि वह ऐसा करता है तो क्या दोष आएगा? ***उड्ढं गदिप्पधाणा*** निर्विकार विशिष्ट चैतन्यप्रकाशमात्र कारण-समयसार की भावना के बल से नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव गति का विनाश कर, पश्चात् स्वाभाविक ऊर्ध्वगति स्वभाववान होते हुए। इस रूप वे कौन हैं? ***सिद्धा*** स्वभाव की उपलब्धि, सिद्धिरूप सिद्ध भगवान हैं। ***चिट्ठन्ति किह*** इस रूप वे कैसे ठहरते हैं? कहाँ ठहरते हैं? ***तत्थ*** वहाँ लोकाग्र में ही वे कैसे ठहरते?

इस सूत्र में (यह बताया जा रहा है कि) लोक से बहिर्भाग में भी आकाश है, वे वहाँ क्यों नहीं जाते हैं? — यह भावार्थ है (इससे सिद्ध हुआ कि गति-स्थिति के कारण धर्म-अधर्म द्रव्य हैं; आकाशद्रव्य नहीं है)॥ ९९॥

अब, स्थित पक्ष (निश्चित हुए पक्ष) का प्रतिपादन करते हैं -

जम्हा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।(९३)
तम्हा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थित्ति॥ १००॥

यस्मादुपरि स्थानं सिद्धानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं तस्माद्गमनस्थानमाकाशे नास्ति जानीहीति। तथाहि -यस्मात्पूर्वगाथायां भणितं लोकाग्रेऽवस्थानं। केषां ? अंजनसिद्धपादुकासिद्धगुटिकासिद्धदिग्विजय -सिद्धखड्गसिद्धादिलौकिकसिद्धविलक्षणानां सम्यक्त्वाद्यष्टगुणांतर्भूतनिर्नामनिर्गोत्रामूर्तत्वाद्यनंतगुण -लक्षणानां सिद्धानां तस्मादेव ज्ञायते नभसि गतिस्थितिकारणं नास्ति, किंतु धर्माधर्मादेव गतिस्थित्योः कारणमित्यभिप्रायः॥ १००॥

अथाकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वाभावे साध्ये पुनरपि कारणं कथयति —

जदि हवदि गमणहेदू आयासं ठाणकारणं तेसिं।(९४)
पसयदि अलोगहाणी लोगस्स य अंतपरिवड्ढी॥ १०१॥

सर्वज्ञ ने लोकाग्र स्थिति, सिद्ध जीवों की कही।
यों गति-स्थिति हेतुता, आकाश में किंचित् नहीं॥ १००॥

गाथार्थ - जिस कारण सिद्धों की लोक के ऊपर स्थिति, जिनवरों ने कही है, उस कारण आकाश में गति-स्थिति (हेतुता) नहीं है — ऐसा जानो।

टीकार्थ - जिस कारण जिनवरों ने सिद्धों का ऊपर स्थान कहा है, उस कारण आकाश में गमन-स्थिति (हेतुता) नहीं है — ऐसा जानो।

वह इस प्रकार — जिस कारण पूर्व गाथा में लोकाग्र में अवस्थान कहा गया है। वहाँ अवस्थान किनका कहा गया है? अञ्जनसिद्ध, पादुकासिद्ध, गुटिकासिद्ध, दिग्विजयसिद्ध, खड्ग (तलवार) सिद्ध इत्यादि लौकिक सिद्धिओं से विलक्षण, सम्यक्त्व आदि आठ गुणों में अन्तर्भूत निर्नाम, निर्गोत्र, अमूर्तत्व आदि अनन्त गुण लक्षण सिद्धों का वहाँ अवस्थान कहा गया है; इससे ही ज्ञात होता है कि आकाश में गति-स्थिति की कारणता नहीं है, अपितु धर्म-अधर्म ही गति-स्थिति के कारण हैं — ऐसा अभिप्राय है॥ १००॥

अब, आकाश के गति-स्थिति हेतुत्व के अभावरूप साध्य में और भी कारण कहते हैं —

उनकी गति में हेतु स्थितिहेतु यदि आकाश ही।
तो हो अलोकाकाश हानि वृद्धि हो लोकान्त की॥ १०१॥

गाथार्थ - यदि आकाश उनके (जीव-पुद्गलों के) गमन का हेतु और स्थिति का हेतु

जदि हवदि यदि चेद्भवति। स कः ? *गमणहेदू* गमनहेतुः। किं ? *आयासं* आकाशं, न केवलं गमनहेतुः *ठाणकारणं* स्थितिकारणं। केषां ? *तेसिं* तेषां जीवपुद्गलानां। तदा किं दूषणं भवति ? *पसयदि* प्रसजति प्राप्नोति। सा का ? *अलोगहाणी* अलोकहानिः न केवलमलोकहानिः *लोगस्स य अंतपरिवड्ढी* लोकस्य चांतपरिवृद्धिरिति।

तद्यथा — यद्याकाशं गतिस्थित्योः कारणं च भवति तदा तस्याकाशस्य लोकबहिर्भागेऽपि सद्भावात्तत्रापि जीवपुद्गलानां गमनं भवति ततश्चालोकस्य हानिर्भवति लोकांतस्य तु वृद्धिर्भवति न च तथा, तस्मात्कारणात् ज्ञायते नाकाशं स्थितिगत्योः कारणमित्यभिप्रायः॥ १०१॥

अथाकाशस्य गतिस्थितिकारणनिराकरणव्याख्यानोपसंहारः कथ्यते —

तम्हा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं। (९५)
इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं॥ १०२॥

हो तो अलोक की हानि और लोक के अन्त की परिवृद्धि (सब ओर से वृद्धि) का प्रसङ्ग आएगा।

टीकार्थ - ***जदि हवदि*** यदि होता तो। वह क्या होता ? गमन में हेतु होता तो। कौन होता तो ? ***आयासं*** आकाश होता तो। मात्र गमन में ही हेतु नहीं, अपितु ***ठाणकारणं*** स्थिति में भी कारण होता तो। किनकी गति-स्थिति में कारण होता तो ? ***तेसिं*** उन जीव-पुद्गलों की गति -स्थिति में कारण होता तो। तब क्या दोष होता ? ***पसजदि*** प्रसङ्ग प्राप्त होता। वह कौन सा / कैसा प्रसङ्ग प्राप्त होता ? ***अलोगहाणि*** अलोक की हानि का प्रसङ्ग प्राप्त होता, मात्र अलोक की हानि का ही प्रसङ्ग प्राप्त नहीं होता, अपितु ***लोगस्स य अंतपरिवड्ढी*** लोक के अन्त की वृद्धि का प्रसङ्ग प्राप्त होगा।

वह इस प्रकार — यदि आकाश गति और स्थिति का कारण है तो उस आकाश का लोक से बहिर्भाग में भी सद्भाव होने से, वहाँ भी जीव-पुद्गलों का गमन होता और इससे अलोक की हानि हो जाती तथा लोकान्त की वृद्धि हो जाती; परन्तु ऐसा तो होता नहीं है; उस कारण ज्ञात होता है कि आकाश स्थिति-गति में कारण नहीं है — ऐसा अभिप्राय है॥ १०१॥

अब, आकाश की गति-स्थिति कारणता के निराकरणपरक व्याख्यान का उपसंहार कहते / करते हैं —

इसलिए गति स्थिति कारण धर्म और अधर्म हैं।
नभ नहीं, लोकस्वभाव श्रोताओं से जिन ने कहा है॥ १०२॥

तस्माद्धर्माधर्मौ गमनस्थितिकारणे न चाकाशं इति जिनवरैर्भणितं। केषां संबन्धित्वेन ? भव्यानां। किं कुर्वतां ? समवसरणे लोकस्वभावं शृण्वतामिति भावार्थः ॥ १०२ ॥

एवं धर्माधर्माकाशानामेकक्षेत्रावगाहत्वाद्व्यवहारेणैकत्वं निश्चयेन भिन्नत्वं दर्शयति –

धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा। (९६)
पुधगुवलद्धविसेसा करेंति एगत्तमण्णत्तं ॥ १०३ ॥

धम्माधम्मागासा* धर्माधर्मलोकाकाशद्रव्याणि भवन्ति। किंविशिष्टानि ? *अपुधब्भूदा समाण -परिमाणा* व्यवहारनयेनापृथग्भूतानि तथा समानपरिमाणानि च। पुनश्च किंरूपाणि ? *पुधगुवलद्ध

गाथार्थ – इसलिए गति-स्थिति के कारण धर्म-अधर्म हैं, आकाश नहीं है; ऐसा लोकस्वभाव श्रोताओं से जिनवरों ने कहा है।

टीकार्थ – इसलिए गमन-स्थिति के कारण धर्म-अधर्म हैं; आकाश नहीं है – ऐसा जिनवरों ने कहा है। किनके सम्बन्धीत्व से / किनसे कहा है ? भव्यों से कहा है। क्या करते हुए भव्यों से कहा है ? समवसरण में लोक-स्वभाव को सुनते हुए भव्यों से कहा है – ऐसा भावार्थ है ॥ १०२ ॥

इस प्रकार गति-स्थिति में कारण धर्म-अधर्म हैं, आकाश नहीं; इस कथनरूप से दूसरे स्थल में चार गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, धर्म, अधर्म और आकाश के एक क्षेत्रावगाहता होने के कारण व्यवहार से एकत्व और निश्चय से भिन्नत्व दिखाते हैं –

धर्माधरम आकाश अपृथग्भूत सम परिमाणमय।
हैं पृथक् उपलब्धि विशेष करें एकत्व अन्यत्वमय ॥ १०३ ॥

गाथार्थ – धर्म, अधर्म, आकाश (लोकाकाश) अपृथग्भूत, समान परिमाणवाले और पृथक् उपलब्धि विशेषवान् हैं; इसलिए एकत्व और अन्यत्व को करते हैं।

टीकार्थ – ***धम्माधम्मागासा*** धर्म, अधर्म, लोकाकाश द्रव्य हैं। वे किस विशेषतावाले हैं ? ***अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा*** व्यवहारनय से अपृथग्भूत और समान परिमाणवाले हैं। और किस रूप वाले हैं ? ***पुधगुवलद्धविसेसा*** निश्चय की अपेक्षा पृथक्रूप से उपलब्ध विशेषवान् हैं। ऐसे होते हुए क्या करते हैं ? ***करेंति*** करते हैं, ***एयत्तमण्णत्तं*** व्यवहार से एकत्व और निश्चय से अन्यत्व करते हैं।

-*विसेसा* निश्चयेन पृथग्रूपेणोपलब्धविशेषाणि। इत्थंभूतानि संति किं कुर्वन्ति? *करेंति* कुर्वन्ति *एयत्तमण्णत्तं* व्यवहारेणैकत्वं निश्चयेनान्यत्वं चेति।

तथाहि — यथायं जीवः पुद्गलादिपञ्चद्रव्यैः सह शेषजीवांतरैश्चैकक्षेत्रावगाहित्वाद्व्यवहारे-णैकत्वं करोति, निश्चयेन तु समस्तवस्तुगतानंतधर्मयुगपत्प्रकाशेन परमचैतन्यविलासलक्षणज्ञानगुणेन भिन्नत्वं च, तथा धर्माधर्मलोकाकाशद्रव्याण्येकक्षेत्रावगाहेनाभिन्नत्वात्समानपरिमाणत्वाच्चोपचरिता-सद्भूतव्यवहारेण परस्परमेकत्वं कुर्वन्ति, निश्चयनयेन गतिस्थित्यवगाहरूपस्वकीयलक्षणैर्नानात्वं चेति सूत्रार्थः॥ १०३॥

एवं धर्माधर्मलोकाकाशानामेकत्वान्यत्वकथनरूपेण तृतीयस्थले गाथासूत्रं गतम्।

इति पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये गाथासप्तकपर्यंतं स्थलत्रयेणा-काशस्तिकायव्याख्यानरूपः सप्तमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

वह इस प्रकार — जैसे यह जीव, पुद्गलादि पाँच द्रव्यों और शेष जीवान्तरों के साथ एक क्षेत्रावगाही होने के कारण व्यवहार से एकत्व करता है; परन्तु निश्चय से समस्त वस्तुगत अनन्त धर्मों को एक साथ प्रकाशित करनेवाले परम चैतन्य विलास लक्षण ज्ञानगुण द्वारा भिन्नत्व करता है; उसी प्रकार धर्म, अधर्म, लोकाकाशद्रव्य एक क्षेत्रावगाह के कारण अभिन्न होने से और समान परिमाणी होने से उपचरित असद्भूत व्यवहार की अपेक्षा परस्पर एकत्व करते हैं; तथा निश्चयनय की अपेक्षा गति, स्थिति, अवगाहरूप अपने-अपने लक्षणों द्वारा नानात्व / भिन्नत्व करते हैं — ऐसा सूत्रार्थ है॥ १०३॥

इस प्रकार धर्म, अधर्म, लोकाकाश के एकत्व-अन्यत्व कथनरूप से तीसरे स्थल में गाथासूत्र पूर्ण हुआ।

[*इस गाथा-टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने दोनों नयों की अपेक्षा अन्यत्व स्पष्ट किया है; वह इस प्रकार — 'व्यवहार से गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व और अवगाहनहेतुत्वरूप पृथक् उपलब्ध विशेष द्वारा तथा निश्चय से विभक्तप्रदेशरूप पृथक् उपलब्ध विशेष द्वारा वे अन्यत्ववाले ही हैं।'*]

इस प्रकार ***'पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य प्रतिपादक प्रथम महाधिकार'*** में सात गाथा पर्यन्त तीन स्थल द्वारा ***'आकाशास्तिकाय व्याख्यान'***रूप ***'सातवाँ अन्तराधिकार'***पूर्ण हुआ।

तत्पश्चात् ***(आठवें अन्तराधिकार में)*** आठ गाथा पर्यन्त ***पञ्चास्तिकाय, षड्द्रव्य का चूलिका-व्याख्यान*** करते हैं —

तदनंतरमष्टगाथापर्यंतं पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यचूलिकाव्याख्यानं करोति। तत्र गाथाष्टकमध्ये चेतनाचेतनमूर्तामूर्तत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन *आगास....* इत्यादि गाथासूत्रमेकं, अथ सक्रियनिःक्रियत्व -मुख्यत्वेन *जीवा पोग्गलकाया....* इत्यादि सूत्रमेकं, पुनश्च प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तत्वकथनमुख्यत्वेन *जे खलु इंदियगेज्झा....* इत्यादि सूत्रमेकं, अथ नवजीर्णपर्यायादिस्थितिरूपो व्यवहारकालः जीवपुद्गलादीनां पर्यायपरिणतेः सहकारिकारणभूतः कालाणुरूपो निश्चयकाल इति कालद्वयव्याख्यानमुख्यत्वेन *कालो परिणामभवो....* इत्यादि गाथाद्वयं, तस्यैव कालस्य द्रव्यलक्षणसंभवात् द्रव्यत्वं द्वितीयादिप्रदेशाभावाद -कायत्वमिति प्रतिपादनमुख्यत्वेन *एदे कालागासा....* इत्यादि सूत्रमेकं, अथ पञ्चास्तिकायांतर्गतस्य केवलज्ञानदर्शनरूपशुद्धजीवास्तिकायस्य वीतरागनिर्विकल्पसमाधिपरिणतिकाले निश्चयमोक्षमार्ग

वहाँ आठ गाथाओं में से चेतनत्व-अचेतनत्व, मूर्तत्व-अमूर्तत्व के प्रतिपादन की मुख्यता से ***आगास....*** इत्यादि एक गाथासूत्र है। इसके बाद सक्रिय-निष्क्रियत्व की मुख्यता से ***जीवा -पोग्गलकाया....*** इत्यादि एक सूत्र है; तदुपरान्त प्रकारान्तर से मूर्त-अमूर्तत्व कथन की मुख्यता से ***जे खलु इन्दियगेज्झा....*** इत्यादि एक सूत्र है। तदनन्तर नवीन-पुरानी पर्यायादि स्थितिरूप व्यवहारकाल, जीव-पुद्‌गलादि की पर्यायों के परिणमन में सहकारी कारणभूत कालाणुरूप निश्चयकाल – इस प्रकार दो कालों के व्याख्यान की मुख्यता से ***कालो परिणामभवो....*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। उसी काल के द्रव्य का लक्षण सम्भव / सम्यक्‌प्रकार से घटित होने के कारण द्रव्यत्व, द्वितीयादि प्रदेश का अभाव होने से अकायत्व – इस प्रतिपादन की मुख्यता से ***एदे कालागासा....*** इत्यादि एक सूत्र है। इसके बाद पञ्चास्तिकाय के अन्तर्गत केवलज्ञान-दर्शनरूप शुद्ध जीवास्तिकाय के निश्चय मोक्षमार्गभूत वीतराग निर्विकल्प-समाधिरूप परिणमने के समय भावना / तद्रूप परिणमन के फल प्रतिपादनरूप से ***एवं पवयणसारं....*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं।

इस प्रकार आठ गाथाओं वाले छह स्थलों द्वारा चूलिका में सामूहिक उत्थानिका हुई।

गाथा १०४ से १११ पर्यन्त अष्टम अन्तराधिकार की सारणी

स्थलक्रम	स्थल प्रतिपादित विषय	कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	चेतनाचेतनत्वादि प्रतिपादन	१०४ वीं	१
२	सक्रिय-निष्क्रियत्व प्रतिपादन	१०५ वीं	१
३	प्रकारान्तर से मूर्तत्वामूर्तत्व प्रतिपादन	१०६ वीं	१
४	व्यवहार-निश्चयकाल प्रतिपादन	१०७-१०८ वीं	२
५	काल का द्रव्यत्व-अकायत्व प्रतिपादन	१०९ वीं	१
६	स्वरूपलीनता का फल प्रतिपादन	११०-१११ वीं	२

-भूतस्य भावनाफलप्रतिपादनरूपेण *एवं पवयणसारं....* इत्यादि गाथाद्वयम्। इत्यष्टगाथाभिः षट्स्थलैश्चूलिकायां समुदायपातनिका।

तद्यथा — द्रव्याणां मूर्तामूर्तत्वं चेतनाचेतनत्वं प्रतिपादयति —

आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा। (९७)
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु॥ १०४॥

स्पर्शरसगंधवर्णवत्या मूर्त्या रहितत्वादमूर्ता भवन्ति। ते के ? आकाशकालजीवधर्माधर्माः किंतु जीवो यद्यपि निश्चयेनामूर्ताखंडैकप्रतिभासमयत्वादमूर्तस्तथापि रागादिरहितसहजानंदैकस्वभावात्म -तत्त्वभावनारहितेन जीवेन यदुपार्जितं मूर्तं कर्म तत्संसर्गाद्व्यवहारेण मूर्तोऽपि भवति स्पर्शरसगंधवर्ण -वत्त्वान्मूर्तं पुद्गलद्रव्यम्। संशयादिरहितत्वस्वपरपरिच्छित्तिसमर्थानंतचैतन्यपरिणतत्वाज्जीवः खलु चेतकस्तेषु स्वपरप्रकाशचैतन्याभावात् शेषाण्यचेतनानीति भावार्थः॥ १०४॥

एवं चेतनाचेतनमूर्तामूर्तप्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथासूत्रं गतम्।

वह इस प्रकार —

द्रव्यों के मूर्तत्व-अमूर्तत्व और चेतनत्व-अचेतनत्व का प्रतिपादन करते हैं —

आकाश काल रु जीव धर्म अधर्म मूर्तविहीन हैं।
है मूर्त पुद्गलद्रव्य, उनमें चेतनायुत जीव है॥ १०४॥

गाथार्थ - आकाश, काल, जीव, धर्म और अधर्म मूर्तरहित अमूर्त हैं; पुद्गलद्रव्य मूर्त है; उनमें वास्तव में जीव, चेतन है।

टीकार्थ - स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली मूर्ति से रहित होने के कारण अमूर्त हैं। अमूर्त वे कौन हैं ? आकाश, काल, जीव, धर्म और अधर्म अमूर्त हैं; किन्तु जीव यद्यपि निश्चय से अमूर्त, अखण्ड, एक प्रतिभासमय होने के कारण अमूर्त है; तथापि रागादि रहित सहजानन्द एक स्वभावी आत्मतत्त्व की भावना से रहित जीव द्वारा जो उपार्जित मूर्त कर्म हैं, उनके संसर्ग की अपेक्षा व्यवहार से मूर्त भी है; स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाला होने से पुद्गलद्रव्य मूर्त है। उनमें से संशय आदि से रहित स्व-पर परिच्छित्ति / जानकारी में समर्थ अनन्त चैतन्यरूप से परिणत होने के कारण जीव वास्तव में चेतक है; स्व-पर प्रकाशक चैतन्य का अभाव होने से शेष अचेतन हैं — ऐसा भावार्थ है॥ १०४॥

इस प्रकार चेतन-अचेतन मूर्त-अमूर्त के प्रतिपादन की मुख्यता से गाथासूत्र पूर्ण हुआ।

अथ द्रव्याणां सक्रियनिःक्रियत्वं कथयति —

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा।(९८)
पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणेहिं दु॥ १०५॥

जीवाः पुद्गलकाया *सह सक्किरिया हवंति* सक्रिया भवंति। कथं ? सह। सह कोऽर्थः ? बहिरंग-सहकारिकारणैः सहिताः *ण य सेसा* न च जीवपुद्गलाभ्यां शेषद्रव्याणि सक्रियाणि। जीवानां सक्रियत्वे बहिरंगनिमित्तं कथ्यते *पोग्गलकरणा जीवा* मनोवचनकायव्यापाररूपक्रियापरिणतैर्निःक्रियनिर्विकार-शुद्धात्मानुभूतिभावनाच्युतैर्जीवैर्ये समुपार्जिताः कर्मनोकर्मपुद्गलास्त एव करणं कारणं निमित्तं येषां ते जीवाः पुद्गलकरणा भण्यंते। *खंदा* स्कंदाःस्कंदशब्देनात्रस्कंदाणुभेदभिन्नाद् द्विधा पुद्गला गृह्यंते। ते च कथंभूताः ? सक्रियाः। कैःकृत्वा ? *कालकरणेहिं* परिणामनिर्वर्तककालाणुद्रव्यैः *खलु* स्फटुम्।

अब, द्रव्यों का सक्रिय-निष्क्रियत्व कहते हैं —

सक्रिय सकारण जीव पुद्गल शेष सब निष्क्रिय कहे।
हैं जीव पुद्गल करणयुत स्कन्ध कालकरण कहे॥ १०५॥

गाथार्थ - बाह्य कारणसहित जीव और पुद्गल सक्रिय हैं; शेष द्रव्य सक्रिय नहीं, निष्क्रिय हैं। जीव पुद्गल-करणवाले हैं और वास्तव में स्कन्ध काल-करणवाले हैं।

टीकार्थ - ***जीवा पुग्गलकाया सक्किरिया हवंति*** जीव, पुद्गलकाय सक्रिय हैं। वे सक्रिय कैसे हैं ? ***सह*** साथ में सक्रिय हैं। ***'साथ'*** का क्या अर्थ है ? 'बहिरङ्ग सहकारी कारणों से सहित — साथ' का अर्थ है; अर्थात् बहिरङ्ग सहकारी कारणों से सहित वे सक्रिय हैं। ***ण य सेसा*** जीव-पुद्गलों से भिन्न शेष द्रव्य सक्रिय नहीं हैं। जीवों के सक्रियत्व में बहिरङ्ग निमित्त कहते हैं — ***पोग्गलकरणा जीवा*** निष्क्रिय, निर्विकार शुद्धात्मानुभूति-भावना से च्युत तथा मन, वचन, काय के व्यापाररूप क्रिया-परिणत जीव द्वारा जो समुपार्जित कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल हैं, वे ही करण, कारण, निमित्त हैं जिनके; वे जीव पुद्गल-करण कहलाते हैं। ***खंदा*** स्कन्ध हैं। यहाँ स्कन्ध शब्द से स्कन्ध और अणु के भेद से भिन्न होने के कारण दो प्रकार के पुद्गल ग्रहण करना चाहिए। वे पुद्गल कैसे हैं ? वे सक्रिय हैं। वे किनसे सक्रिय हैं ? ***कालकरणेहिं*** परिणामनिर्वर्तक / पर्याय की उत्पत्ति में निमित्त होनेवाले कालाणुद्रव्य से सक्रिय हैं। ***खलु*** वास्तव में।

यहाँ जैसे शुद्धात्मानुभूति के बल से कर्म का क्षय हो जाने पर कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलों का अभाव होने से सिद्धों के निष्क्रियत्व होता है, वैसा पुद्गलों के नहीं होता है।

अत्र यथा शुद्धात्मानुभूतिबलेन कर्मक्षये जाते कर्मनोकर्मपुद्गलानामभावात्सिद्धानां निःक्रियत्वं भवति न तथा पुद्गलानाम्। कस्मात्? कालस्य सर्वदैव वर्णवत्या मूर्त्या रहितत्वादमूर्तस्य विद्यमानत्वादिति भावार्थः॥ १०५॥

एवं सक्रियनिःक्रियत्वमुख्यत्वेन गाथा गता।

अथ पुनरपि प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तस्वरूपं कथयति –

जे खलु इंदियगेज्झा विसया जीवेहिं हुंति ते मुत्ता। (९९)
सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि॥ १०६॥

***जे खलु इंदियगेज्झा विसया* ये खलु इन्द्रियैः करणभूतैर्ग्राह्या विषयाः कर्मतापन्नाः। कैः कर्तृभूतैः? *जीवेहिं* विषयसुखानंदरतैर्नीरागनिर्विकल्पनिजानंदैकलक्षणसुखामृतरसास्वादच्युतैर्बहिर्मुख -जीवैः *होंति ते मुत्ता* भवन्ति ते मूर्ताः विषयातीतस्वाभाविकसुखस्वभावात्मतत्त्वविपरीतविषयास्ते च**

प्रश्न – उनके क्यों नहीं होता है?

उत्तर – वर्णवाली मूर्ति से रहित होने के कारण अमूर्त काल के सदा ही विद्यमान होने से उनके निष्क्रियत्व नहीं है – ऐसा भावार्थ है॥ १०५॥

इस प्रकार सक्रिय-निष्क्रियत्व की मुख्यता से गाथा पूर्ण हुई।

अब, और भी प्रकारान्तर से मूर्त-अमूर्त का स्वरूप कहते हैं –

जो जीव द्वारा इन्द्रियों से ग्राह्य वे सब मूर्त हैं।
हैं शेष मूर्तविहीन दोनों चित्त द्वारा ज्ञात हैं॥ १०६॥

गाथार्थ – जीवों द्वारा जो इन्द्रियों से ग्रहण करने-योग्य विषय हैं, वे वास्तव में मूर्त हैं, शेष अमूर्त हैं; चित्त इन दोनों को ग्रहण करता है / जानता है।

टीकार्थ – ***जे खलु इन्दियगेज्झा विसया*** कर्मता को प्राप्त (कर्मकारक में प्रयुक्त) जो विषय वास्तव में करणभूत इन्द्रियों से ग्राह्य हैं। कर्ताभूत किसके द्वारा ग्राह्य हैं? ***जीवेहिं*** नीराग, निर्विकल्प, निजानन्द एक लक्षण सुखामृत रस के आस्वाद से च्युत, विषयसुख के आनन्द में रत बहिर्मुख जीवों द्वारा ग्राह्य हैं। ***होंति ते मुत्ता*** विषयातीत स्वाभाविक सुखस्वभावी आत्मतत्त्व से विपरीत वे विषय मूर्त हैं। यद्यपि उनमें से कुछ सूक्ष्म होने से वर्तमान काल में इन्द्रियों के विषय नहीं हैं; तथापि कालान्तर में होंगे – इस प्रकार इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होने की योग्यता का सद्भाव होने से वे भी इन्द्रियग्रहण-योग्य कहलाते हैं। ***सेसं हवदि अमुत्तं*** पुद्गल से भिन्न, अमूर्त,

सूक्ष्मत्वेन केचन यद्यपीन्द्रियविषयाः वर्तमानकाले न भवन्ति तथापि कालांतरे भविष्यंतीतीन्द्रियग्रहण-योग्यतासद्भावादिन्द्रियग्रहणयोग्या भण्यंते। *सेसं हवदि अमुत्तं* अमूर्तातीन्द्रियज्ञानसुखादिगुणाधारं यदात्मद्रव्यं तत्प्रभृति पञ्चद्रव्यरूपं पुद्गलादन्यत् यच्छेषं तद्भवत्यमूर्तं *चित्तं उभयं समादियदि* चित्तमुभयं समाददाति। चित्तं हि मतिश्रुतज्ञानयोरुपादानकारणभूतमनियतविषयं च, तच्च श्रुतज्ञानस्वसंवेदनज्ञान-रूपेण यदात्मग्राहकं भावश्रुतं तत्प्रत्यक्षं यत्पुनर्द्वादशांगचतुर्दशपूर्वरूपपरमागमसंज्ञं तच्च मूर्तामूर्तोभय-परिच्छित्तिविषये व्याप्तिज्ञानरूपेण परोक्षमपि केवलज्ञानसदृशमित्यभिप्रायः। तथा चोक्तं —

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो।
सुदणाणं च परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं॥

एवं प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तस्वरूपकथनगाथा गता॥ १०६॥

अथ व्यवहारकालस्य निश्चयकालस्य च स्वरूपं व्यवस्थापयति —

कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो। (१००)
दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो॥ १०७॥

अतीन्द्रिय ज्ञान-सुखादि गुणों का आधार जो आत्मद्रव्य, तत्प्रभृति पाँच द्रव्यरूप जो शेष हैं, वे अमूर्त हैं। ***चित्तं उभयं समादियदि*** चित्त दोनों को ग्रहण करता है / जानता है। चित्त वास्तव में मति-श्रुतज्ञान का उपादान कारणभूत और अनियत विषयवाला है; और वह श्रुतज्ञान, स्वसम्वेदन ज्ञानरूप से जब आत्मा को ग्रहण करने/जाननेवाले भाव श्रुतरूप होता है, वह प्रत्यक्ष है; और जो द्वादशाङ्ग, चौदह पूर्वरूप परमागम नामक श्रुतज्ञान है, वह मूर्त-अमूर्त दोनों की जानकारी के विषय में व्याप्तिज्ञान रूप से परोक्ष होने पर भी केवलज्ञान के समान हैं — ऐसा अभिप्राय है। वैसा ही कहा भी है —

'श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों ही ज्ञान की अपेक्षा समान हैं; इनमें से श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवलज्ञान प्रत्यक्ष है।'॥ १०६॥

इस प्रकार प्रकारान्तर से मूर्त-अमूर्त का स्वरूप कथन करनेवाली गाथा पूर्ण हुई।

अब, व्यवहारकाल और निश्चयकाल का स्वरूप व्यवस्थापित करते हैं —

परिणामभव है काल, काल पदार्थभव परिणाम भी।
है उभय का स्व भाव यह, वह काल नश्वर नित्य भी॥ १०७॥

गाथार्थ - काल, परिणाम से उत्पन्न होता है; परिणाम, द्रव्य-काल से उत्पन्न होता है, यह दोनों का स्वभाव है; काल क्षणभङ्गुर तथा नित्य है।

कालो समयनिमिषघटिकादिवसादिरूपो व्यवहारकालः। स च कथंभूतः? *परिणामभवो* मंदगतिरूपेणाणोरण्वंतरव्यतिक्रमणं नयनपुटविघटनं जलभाजनहस्तविज्ञानरूपपुरुषचेष्टितं दिनकर-बिंबागमनमित्येवं स्वभावः पुद्गलद्रव्यक्रियापर्यायरूपः परिणामस्तेन व्यज्मानत्वात्प्रकटीक्रियमाणत्वाद्धे-तोर्व्यवहारेण पुद्गलपरिणामभव इत्युपनीयते, परमार्थेन तु कालाणुद्रव्यरूपनिश्चयकालस्य पर्यायः *परिणामो दव्वकालसंभूदो* अणोरण्वंतरव्यतिक्रमणप्रभृतिपूर्वोक्तपुद्गलपरिणामस्तु शीतकाले पाठक-स्याग्निवत् कुम्भकारचक्रभ्रमणविषयेऽधस्तनशिलावद्बहिरङ्गसहकारिकारणभूतेन कालाणुरूपद्रव्य-कालेनोत्पन्नत्वाद्द्रव्यकालसंभूतः *दोण्हं एससहाओ* द्वयोर्निश्चयव्यवहारकालयोरेषः पूर्वोक्तः स्वभावः। स किं रूपः व्यवहारकालः? पुद्गलपरिणामेन व्यज्यमानत्वात्परिणामजन्यः। निश्चयकालस्तु परिणाम-जनकः। *कालो खणभंगुरो* समयरूपो व्यवहारकालः क्षणभंगुरः *णियदो* स्वकीयगुणपर्यायाधारत्वेन सर्वदैवाविनश्वरत्वाद्द्रव्यकालो नित्य इति।

अत्र यद्यपि काललब्धिवशेन भेदाभेदरत्नत्रयलक्षणं मोक्षमार्गं प्राप्य जीवो रागादिरहितनित्यानंदै

टीकार्थ - ***कालो*** समय, निमिष, घटिका, दिवस आदि रूप व्यवहारकाल है। और वह कैसा है? ***परिणामभवो*** मन्दगतिरूप से अणु के द्वारा दूसरे अणु का व्यतिक्रमण / उल्लङ्घन करनेरूप, नयनपुटविघटन / नेत्र पलकों के खुलनेरूप, जलभाजन-हस्तविज्ञानरूप पुरुष की चेष्टामय, सूर्यबिम्ब के आनेरूप – इस प्रकार के स्वभाववाले पुद्‌गलद्रव्य के क्रिया पर्यायरूप परिणाम हैं, उनसे व्यक्त होने के कारण, प्रगट किये जाने के कारण हेतु होने से व्यवहार की अपेक्षा पुद्‌गल परिणामभव है – ऐसा कहा जाता है। परमार्थ से कालाणु-द्रव्यरूप निश्चयकाल की पर्याय ***परिणामो दव्वकालसंभूदो*** अणु के द्वारा दूसरे अुण का उल्लङ्घन करना इत्यादि पूर्वोक्त पुद्‌गल परिणाम, पाठक / पढ़नेवाले को शीतकाल में अग्नि के समान, कुम्भकार द्वारा चक्र घुमाने के विषय में नीचे स्थित शिला के समान बहिरङ्ग सहकारी कारणभूत कालाणुरूप द्रव्यकाल से उत्पन्न होने के कारण द्रव्यकाल-सम्भूत है। ***दोण्हं एस सहाओ*** निश्चय-व्यवहार दोनों ही कालों का यह पूर्वोक्त स्वभाव है। वह व्यवहारकाल किसरूप है? पुद्‌गल परिणाम से व्यक्त होने के कारण परिणाम से जन्य / उत्पन्न होने-योग्य है। निश्चयकाल तो परिणाम का जनक / परिणाम को उत्पन्न करनेवाला है। ***कालो खणभंगुरो*** समयरूप व्यवहारकाल क्षणभङ्गुर है; ***णियदो*** अपने गुण-पर्यायों का आधार होने से सर्वदा ही अविनश्वर होने के कारण द्रव्य-काल नित्य है।

यहाँ यद्यपि काललब्धि के वश से भेदाभेदरत्नत्रयलक्षण मोक्षमार्ग को प्राप्तकर जीव, रागादि रहित नित्यानन्द एक स्वभावमय उपादेयभूत पारमार्थिक सुख को साधते हैं; तथापि

-कस्वभावमुपादेयभूतं पारमार्थिकसुखं साधयति तथापि जीवस्तस्योपादानकारणं, न च काल इत्यभिप्रायः। तथा चोक्तं — *आत्मोपादानसिद्धमित्यादिरिति*॥ १०७॥

अथ नित्यक्षणिकत्वेन पुनरपि कालभेदं दर्शयति —

कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो।(१०१)
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई॥ १०८॥

कालोत्ति य ववदेसो काल इति व्यपदेशः संज्ञा। स च किं करोति? ***सब्भावपरूवगो हवदि*** काल इत्यक्षरद्वयेन वाचकभूतेन स्वकीयवाच्यं परमार्थकालसद्भावं निरूपयति। क इव किं निरूपयति? सिंहशब्द इव सिंहस्वरूपं, सर्वज्ञशब्द इव सर्वज्ञस्वरूपमिति। एवं स्वकीयस्वरूपं निरूपयन् कथंभूतो भवति? ***णिच्चो*** यद्यपि काल इत्यक्षरद्वयरूपेण नित्यो न भवति तथापि कालशब्देन वाच्यं यद्द्रव्यकाल -स्वरूपं तेन नित्यो भवतीति निश्चयकालो ज्ञातव्यः, ***अवरो*** अपरो व्यवहारकालः। स च किंरूपः?

उनका उपादान कारण जीव है; काल नहीं — ऐसा अभिप्राय है। वैसा ही कहा भी है — 'आत्मारूप उपादान से सिद्ध दशा प्रगट होती है।'॥ १०७॥

अब, नित्य और क्षणिक होने के कारण फिर से काल के भेद दिखाते हैं —

है 'काल' ऐसा नाम सत्ताप्ररूपक है नित्य जो।
उत्पन्नध्वंसी अन्य दीर्घस्थायि कहते उसी को॥ १०८॥

गाथार्थ - ***'काल'*** ऐसा नाम सद्‌भाव का प्ररूपक है; अतः नित्य है। दूसरा काल उत्पन्न -ध्वंसी है; तथापि (परम्परा-अपेक्षा) दीर्घान्तरस्थायी / दीर्घकाल तक रहनेवाला भी कहा जाता है।

टीकार्थ - ***कालोत्ति य ववदेसो*** 'काल' ऐसा व्यपदेश, संज्ञा, नाम। वह नाम क्या करता है? ***सब्भावपरूवगो हवदि*** 'काल' ऐसे वाचकभूत दो अक्षरों द्वारा अपने वाच्यभूत परमार्थकाल के सद्‌भाव का निरूपण करता है। किसके समान क्या निरूपित है? 'सिंह' शब्द से 'सिंह-स्वरूप' के निरूपण-समान; 'सर्वज्ञ' शब्द से 'सर्वज्ञ-स्वरूप' के निरूपण-समान; 'काल' शब्द से काल की सत्ता निरूपित है। इस प्रकार अपने स्वरूप का निरूपण करता हुआ वह कैसा है? ***णिच्चो*** यद्यपि 'काल' — ये दो अक्षर, अक्षररूप से नित्य नहीं है; तथापि काल शब्द से वाच्य जो द्रव्यकाल का स्वरूप है, उससे वह नित्य है — ऐसा निश्चयकाल जानना चाहिए। ***अवरो*** अपर / दूसरा व्यवहारकाल है। वह किस रूपवाला है? ***उप्पण्णप्पद्धंसी***

उप्पण्णप्पद्धंसी यद्यपि वर्तमानसमयापेक्षयोत्पन्नप्रध्वंसी भवति, तथापि पूर्वापरसमयसंतानापेक्षया व्यवहारनयेन *दीहंतरट्ठाई* आवलिकापल्योपमसागरोपमादिरूपेण दीर्घांतरस्थायी च घटते, नास्ति दोषः। एवं नित्यक्षणिकरूपेण निश्चयव्यवहारकालो ज्ञातव्यः।

अथवा प्रकारांतरेण निश्चयव्यवहारकालस्वरूपं कथ्यते। तथाहि — अनाद्यनिधनः समयादि-कल्पनाभेदरहितः कालाणुद्रव्यरूपेण व्यवस्थितो वर्णादिमूर्तिरहितो निश्चयकालः, तस्यैव पर्यायभूतः सादिसनिधनः समयनिमिषघटिकादिविवक्षितकल्पनाभेदरूपो व्यवहारकालो भवतीति॥ १०८॥

एवं निर्विकारनिजानंदसुस्थितचिच्चमत्कारमात्रभावनारतानां भव्यानां बहिरंगकाललब्धिभूतस्य निश्चयव्यवहारकालस्य निरूपणमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम्।

अथ कालस्य द्रव्यसंज्ञाविधानं कायत्वनिषेधं च प्रतिपादयति —

एदे कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा। (१०२)
लब्भंति दव्वसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं॥ १०९॥

यद्यपि वर्तमान समय की अपेक्षा उत्पन्न-प्रध्वंसी है; तथापि पूर्वापर समयों की सन्तान / परम्परा अपेक्षा व्यवहारनय से ***दीहंतरट्ठाई*** आवलिका, पल्योपम, सागरोपम आदिरूप से दीर्घान्तर स्थायीत्व घटित होता है — इसमें दोष नहीं है। इस प्रकार नित्य-क्षणिकरूप से निश्चय-व्यवहारकाल जानना चाहिए।

अथवा प्रकारान्तर से निश्चय-व्यवहारकाल का स्वरूप कहते हैं। वह इस प्रकार — अनाद्यनिधन, समय आदि कल्पना भेद से रहित, कालाणुद्रव्यरूप से व्यवस्थित, वर्णादि मूर्तिरहित निश्चयकाल है; उसकी ही पर्यायभूत, सादिसनिधन, समय-निमिष-घड़ी आदि विवक्षित कल्पना भेदरूप व्यवहारकाल है॥ १०८॥

इस प्रकार निर्विकार निजानन्द सुस्थित चित् चमत्कारमात्र की भावना में रत भव्यों की बहिरङ्गकाललब्धिभूत निश्चय-व्यवहारकाल के निरूपण की मुख्यता से चतुर्थ स्थल में दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, काल के द्रव्य-संज्ञा विधान का और कायत्व के निषेध का प्रतिपादन करते हैं —

ये जीव पुद्गल काल धर्म अधर्म व आकाश भी।
सब 'द्रव्य' संज्ञा प्राप्त पर न काल के कायत्व ही॥ १०९॥

गाथार्थ - ये काल, आकाश, धर्म और अधर्म, पुद्गल, जीव 'द्रव्य' संज्ञा को प्राप्त करते हैं; परन्तु काल के कायत्व नहीं है।

एदे एते प्रत्यक्षीभूताः *कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा* कालाकाशधर्माधर्मपुद्गलजीवाः कर्तारः *लब्भंति* लभंते। कां? *दव्वसण्णं* द्रव्यसंज्ञां। कस्मादिति चेत्? सत्तालक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्य-लक्षणं गुणपर्यायलक्षणं चेति द्रव्यपीठिकाकथितक्रमेण द्रव्यलक्षणत्रययोगात् *कालस्स य णत्थि कायत्तं* कालस्य च नास्ति कायत्वम्। तदपि कस्मात्? विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावशुद्धजीवास्तिकायप्रभृति-पञ्चास्तिकायानां बहुप्रदेशप्रचयत्वलक्षणं कायत्वं यथा विद्यते न तथा कालाणूनां —

लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि॥

इति गाथाकथितक्रमेण लोकाकाशप्रमितासंख्येयद्रव्याणामपीति।

अत्र केवलज्ञानादिशुद्धगुणसिद्धत्वागुरुलघुत्वादिशुद्धपर्यायसहितशुद्धजीवद्रव्यादन्यद्रव्याणि हेयानीति भावः॥ १०९॥

अथ कालस्य द्रव्यास्तिकायसंज्ञाविधिनिषेधव्याख्यानेन पञ्चमस्थले गाथासूत्रं गतम्।

टीकार्थ - ***एदे*** ये प्रत्यक्षीभूत ***कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा*** काल, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल, जीवरूप कर्ता, ***लब्भंति*** प्राप्त करते हैं। वे किसे प्राप्त करते हैं? ***दव्वसण्णं*** वे द्रव्यसंज्ञा को प्राप्त करते हैं। वे इसे कैसे प्राप्त करते हैं? सत्तालक्षण, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षण और गुण-पर्याय लक्षण — इस प्रकार द्रव्यपीठिका में कहे गए क्रम से द्रव्य के तीनों लक्षणों का योग होने से, वे 'द्रव्य' संज्ञा को प्राप्त करते हैं। ***कालस्स य णत्थि कायत्तं*** तथा काल के कायत्व नहीं है। उसके कायत्व कैसे नहीं है? विशुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभावी शुद्ध जीवास्तिकाय आदि पाँच अस्तिकायों के बहुप्रदेश-प्रचयत्वलक्षण कायत्व जैसे विद्यमान है, उस प्रकार कालाणुओं के नहीं है —

'रत्नों की राशि के समान असंख्य द्रव्य कालाणु लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक स्थित हैं।'

इस गाथा में कहे गए क्रम से लोकाकाश प्रमाण असंख्येय द्रव्य होने पर भी उनके कायत्व नहीं है।

यहाँ केवल ज्ञानादि शुद्ध गुण, सिद्धत्व-अगुरुलघुत्व आदि शुद्ध पर्यायसहित शुद्ध जीवद्रव्य से अन्य हेय हैं — ऐसा भाव है॥ १०९॥

इस प्रकार काल के द्रव्यास्तिकाय संज्ञा की विधि-निषेध के व्याख्यान से पाँचवें स्थल में गाथासूत्र पूर्ण हुआ।

अथ पञ्चास्तिकायाध्ययनस्य मुख्यवृत्त्या तदंतर्गतशुद्धजीवास्तिकायपरिज्ञानस्य वा फलं दर्शयति —

एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता। (१०३)
जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं॥ ११०॥

एवं **पूर्वोक्तप्रकारेण** ***वियाणित्ता*** **विज्ञाय पूर्वम्। कं?** ***पंचत्थियसंगहं*** **पञ्चास्तिकायसंग्रहनाम -संज्ञं ग्रंथम्। किंविशिष्टं?** ***पवयणसारं*** **प्रवचनसारं पञ्चास्तिकायषड्द्रव्याणां संक्षेपप्रतिपादकत्वात् मुख्यवृत्त्या परमसमाधिरतानां मोक्षमार्गत्वेन सारभूतस्य शुद्धजीवास्तिकायस्य प्रतिपादकत्वाद्वा द्वादशांगरूपेण विस्तीर्णस्यापि प्रवचनस्य सारभूतं एवं विज्ञाय। किं करोति?** ***जो मुयदि*** **यः कर्ता मुंचति। कौ कर्मतापन्नौ?** ***रायदोसे*** **अनंतज्ञानादिगुणसहितवीतरागपरमात्मनो विलक्षणौ हर्षविषादलक्षणौ भाविरागादिदोषोत्पादककर्मास्त्रवजनकौ च रागद्वेषौ द्वौ** ***सो*** **सः पूर्वोक्तः ध्याता** ***गाहदि*** **गाहते प्राप्नोति। कं?** ***दुक्खपरिमोक्खं*** **निर्विकारात्मोपलब्धिभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतविपरीतस्य**

अब, पञ्चास्तिकाय के अध्ययन का अथवा मुख्यवृत्ति से उसके अन्तर्गत शुद्ध जीवास्तिकाय के परिज्ञान का फल दिखाते हैं —

इस रीति प्रवचनसारमय पंचास्तिसंग्रह जान जो।
तजता है राग-द्वेष को, वह सकलदुख-परिमुक्त हो॥ ११०॥

गाथार्थ - इस प्रकार प्रवचन के सारभूत ***'पञ्चास्तिकाय संग्रह'*** को विशेषरूप से जानकर जो राग-द्वेष को छोड़ता है, वह दुःखों से परिमुक्त होता है।

टीकार्थ - ***एवं*** पूर्वोक्त प्रकार से, ***वियाणित्ता*** पहले विशेषरूप से जानकर। किसे जानकर? ***पंचत्थियसंगहं*** पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक ग्रन्थ को जानकर। किस विशेषतावाले ग्रन्थ को जानकर? ***पवयणसारं*** प्रवचन के सारभूत, पञ्चास्तिकाय-षड्द्रव्य का संक्षेप से प्रतिपादक होने के कारण अथवा मुख्यरूप से परमसमाधिरतों को मोक्षमार्गरूप से सारभूत शुद्ध जीवास्तिकाय का प्रतिपादक होने से, द्वादशाङ्गरूप से विस्तृत होने पर भी प्रवचन के सारभूत इस ग्रन्थ को जानकर। इसे जानकर क्या करता है? ***जो मुयदि*** कर्तारूप जो छोड़ता है। कर्मता को प्राप्त किन्हें छोड़ता है? ***रायदोसे*** अनन्त ज्ञानादि गुणसहित वीतराग परमात्मा से विलक्षण, हर्ष -विषाद लक्षणवाले और आगामी रागादि दोषों को उत्पन्न करनेवाले कर्मास्त्रव के जनक राग -द्वेषों को छोड़ता है; ***सो*** वह पूर्वोक्त ध्याता ***गाहदि*** प्राप्त होता है। वह किसे प्राप्त होता है? ***दुक्खपरिमोक्खं*** निर्विकार आत्मोपलब्धिरूप भावना से उत्पन्न परम आह्लाद एक लक्षण

नानाप्रकारशारीरमानसरूपस्य चतुर्गतिदु:खस्य परिमोक्षं मोचनं विनाशमित्यभिप्राय: ॥ ११० ॥

अथ दु:खमोक्षकारणस्य क्रमं कथयति —

मुणिदूण एदमत्थं तमणुग्गमणुज्जुदो णिहदमोहो। (१०४)
पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरावरो जीवो॥ १११ ॥

मुणिदूण मत्वा विशिष्टस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा तावत्। कं ? *एदं* इमं प्रत्यक्षीभूतं नित्यानंदैक-शुद्धजीवास्तिकायलक्षणं *अत्थं* अर्थं विशिष्टपदार्थं *तमणु* तं शुद्धजीवास्तिकायलक्षणमर्थं अनुलक्षणीकृत्य समाश्रित्य *गमणुज्जुदो* गमनोद्यत: तन्मयत्वेन परिणमनोद्यत: *णिहदमोहो* शुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वप्रतिबंधकदर्शनमोहाभावात्तदनंतरं निहतमोहो नष्टदर्शनमोह: *पसमियरागद्दोसो* निश्चलात्मपरिणतिरूपनिश्चयचारित्रप्रतिकूलचारित्रमोहोदयाभावात्तदनंतरं प्रशमित-रागद्वेष: एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वपरयोर्भेदज्ञाने सति शुद्धात्मरुचिरूपे सम्यक्त्वे तथैव शुद्धात्मस्थितिरूपे

सुखामृत से विपरीत, नाना प्रकार के शारीरिक-मानसिकरूप चतुर्गति-दु:ख के परिमोक्ष को, विनाश को प्राप्त होता है — ऐसा अभिप्राय है॥ ११० ॥

अब, दु:ख से मोक्ष के कारण का क्रम कहते हैं —

यह अर्थ समझ के अनुगमन उद्यमी नाशे मोह को।
प्रशमित करे राग द्वेष आतम परापर से रहित हो॥ १११ ॥

गाथार्थ - इसके अर्थ को जानकर, उसके अनुगमन को उद्यत / अनुसरण करने के लिए प्रयत्नशील, मोह से रहित हो, राग-द्वेष को प्रशमित कर जीव पूर्वापर बन्ध से रहित होता है।

टीकार्थ - ***मुणिदूण*** मानकर, सर्व प्रथम विशिष्ट स्वसम्वेदन ज्ञान द्वारा जानकर। किसे जानकर ? ***एदं*** इस प्रत्यक्षीभूत नित्य आनन्दमय एक शुद्ध जीवास्तिकाय लक्षणवाले ***अत्थं*** अर्थ को, विशिष्ट पदार्थ को जानकर; ***तमणु*** उस शुद्धजीवास्तिकाय लक्षण अर्थ का अनुलक्षणी कर, समाश्रय कर; ***गमणुज्जुदो*** गमन के लिए उद्यत है, तन्मयता होने से परिणमन के लिए उद्यत है; ***णिहदमोहो*** शुद्धात्मा ही उपादेय है — ऐसी रुचिरूप निश्चय सम्यक्त्व के प्रतिबन्धक दर्शन मोह का अभाव हो जाने से, तदनन्तर निहतमोह, नष्ट-दर्शनमोहवाला है; ***पसमियरागद्दोसो*** निश्चल आत्मपरिणतिरूप निश्चयचारित्र से प्रतिकूल चारित्रमोह के उदय का अभाव होने से, तत्पश्चात् प्रशमित-राग-द्वेष है; इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से स्व-पर का भेदज्ञान होने पर शुद्धात्मरुचिरूप सम्यक्त्व और उसी प्रकार शुद्धात्मा में स्थितिरूप चारित्र होने पर, पश्चात्

चारित्रे च सति पश्चात् *हवदि* भवति। कथंभूतः ? *हदपरावरो* हतपरापरः। अत्र परमानंदज्ञानादिगुणा-धारत्वात्परशब्देन मोक्षो भण्यते परशब्दवाच्यान्मोक्षादपरो भिन्नः परापरः संसार इति हेतोः विनाशितः परापरो येन स भवति हतपरापरो नष्टसंसारः। स कः ? *जीवो* भव्यजीवः॥ १११॥

इति पञ्चास्तिकायपरिज्ञानफलप्रतिपादनरूपेण षष्ठमस्थले गाथाद्वयं गतम्।

एवं प्रथममहाधिकारमध्ये गाथाष्टकेन षट्भिः स्थलैश्चूलिकासंज्ञोऽष्टमोऽन्तराधिकारो ज्ञातव्यः।

अत्र पञ्चास्तिकायप्राभृतग्रंथे पूर्वोक्तक्रमेण सप्तगाथाभिः समयशब्दपीठिका, चतुर्दशगाथाभि-र्द्रव्यपीठिका, पञ्चगाथाभिर्निश्चयव्यवहारकालमुख्यता, त्रिपञ्चाशद्गाथाभिर्जीवास्तिकायव्याख्यानं, दशगाथाभिः पुद्गलास्तिकायव्याख्यानं, सप्तगाथाभिर्धर्माधर्मास्तिकायद्वयविवरणं, सप्तगाथाभिराकाशास्तिकायव्याख्यानं, अष्टगाथाभिश्चूलिकामुख्यत्वमित्येकादशोत्तरशतगाथाभिरष्टांतराधिकारा गताः।

इति *श्रीमद्जयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादनं* नाम *प्रथमो महाधिकारः* समाप्तः॥ १॥

हवदि होता है। कैसा होता है ? ***हदपरावरो*** हतपरापर होता है। यहाँ परमानन्द ज्ञानादि गुणों का आधार होने से ***'परं'***शब्द द्वारा मोक्ष कहा जाता है, पर शब्द के वाच्यभूत मोक्ष से अपर भिन्न / परापर / संसार; इस प्रकार जिसके द्वारा संसार नष्ट किया गया है, वह हतपरापर, नष्ट-संसारी होता है। वह कौन है ? ***जीवो*** वह भव्यजीव है॥ १११॥

इस प्रकार पञ्चास्तिकाय-परिज्ञान के फल-प्रतिपादनरूप से छठवें स्थल में दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

इस प्रकार ***प्रथम महाधिकार*** में आठ गाथा द्वारा छह स्थलों से ***चूलिका*** नामक ***आठवाँ अन्तराधिकार*** जानना चाहिए।

यहाँ 'पञ्चास्तिकाय प्राभृत' ग्रन्थ में पूर्वोक्त क्रम से सात गाथाओं द्वारा ***समय-शब्द-पीठिका,*** चौदह गाथाओं द्वारा ***द्रव्यपीठिका,*** पाँच गाथाओं द्वारा ***निश्चय-व्यवहारकाल की मुख्यता,*** त्रेपन गाथाओं द्वारा ***जीवास्तिकाय का व्याख्यान,*** दश गाथाओं द्वारा ***पुद्गलास्तिकाय का व्याख्यान,*** सात गाथाओं द्वारा ***धर्माधर्मास्तिकाय – दोनों का विवरण,*** सात गाथाओं द्वारा ***आकाशास्तिकाय का व्याख्यान,*** आठ गाथाओं द्वारा ***चूलिका की मुख्यता*** – इस प्रकार एक सौ ग्यारह गाथाओं द्वारा आठ अन्तराधिकार पूर्ण हुए।

इस प्रकार ***'श्रीमद्जयसेनाचार्य'*** कृत ***'तात्पर्यवृत्ति'*** में ***'पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य प्रतिपादन'*** नामक ***'प्रथम महाधिकार'*** पूर्ण हुआ॥ १॥

जीवादि नवपदार्थ प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार

इत ऊर्ध्वं *अभिवंदिऊण सिरसा....* इति इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण पञ्चाशद्गाथापर्यंतं टीकाभिप्रायेणाष्टाधिकचत्वारिंशद्गाथापर्यंतं वा *जीवादिनवपदार्थप्रतिपादको द्वितीयो महाधिकारः* प्रारभ्यते। तत्र तु दशांतराधिकारा भवन्ति। तेषु दशाधिकारेषु मध्ये प्रथमतस्तावन्नमस्कारगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयपर्यंतं व्यवहारमोक्षमार्गमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोतीति प्रथमांतराधिकारे समुदपायपातनिका। तथाहि —

अन्तिमतीर्थंकरपरमदेवं नत्वा पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसंबन्धिनं नवपदार्थभेदं मोक्षमार्गं च वक्ष्यामीति प्रतिज्ञापुरःसरं नमस्कारं करोति —

इससे आगे ***अभिवंदिऊण सिरसा....*** इत्यादि गाथा से प्रारम्भकर पचास गाथा पर्यन्त अथवा टीका (समय-व्याख्या) के अभिप्राय से अड़तालीस गाथा पर्यन्त ***जीवादि नव पदार्थ प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार*** प्रारम्भ होता है। वहाँ दश अन्तराधिकार हैं।

उन दश अधिकारों में से सर्व प्रथम नमस्कार गाथा से प्रारम्भकर पाठक्रम से चार गाथा पर्यन्त व्यवहार मोक्षमार्ग की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं। इस प्रकार प्रथम अन्तराधिकार में समुदाय पातनिका है। वह इस प्रकार —

जीवादि नव पदार्थ प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार - ११२ से १६१ गाथा पर्यन्त

अन्तराधिकारक्रम	प्रतिपादित विषय	कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	व्यवहार मोक्षमार्ग	११२ से ११५	४
२	जीवाधिकार	११६ से १३१	१६
३	अजीवाधिकार	१३२ से १३५	४
४	जीव-अजीव संयोग से नौ पदार्थ	१३६ से १३८	३
५	पुण्यपापाधिकार	१३९ से १४२	४
६	शुभाशुभास्रवाधिकार	१४३ से १४८	६
७	संवराधिकार	१४९ से १५१	३
८	निर्जराधिकार	१५२ से १५४	३
९	बन्धाधिकार	१५५ से १५७	३
१०	मोक्षाधिकार	१५८ से १६१	४

अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं।(१०५)
तेसिं पयत्थभंगं मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि॥ ११२॥

अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं अभिवंद्य प्रणम्य। केन? शिरसा। कं? अपुनर्भवकारणं महावीरम्। ततः किं करोमि? *वोच्छामि* वक्ष्यामि। कं? *तेसिं पयत्थभंगं* तेषां पञ्चास्तिकायषड्द्रव्याणां नवपदार्थभेदम्। न केवलं नवपदार्थभेदम्। *मग्गं मोक्खस्स* मार्गं मोक्षस्येति।

तद्यथा — मोक्षसुखसुधारसपानपिपासितानां भव्यानां पारम्पर्येणानंतज्ञानादिगुणफलस्य मोक्ष -कारणं महावीराभिधानमन्तिमजिनेश्वरं रत्नत्रयात्मकस्य प्रवर्तमानमहाधर्मतीर्थस्य प्रतिपादकत्वात्प्रथमत एव प्रमाणमिति गाथापूर्वार्धेन मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारं करोति ग्रंथकारः, तदनंतरमुत्तरार्धेन च शुद्धात्मरुचिप्रतीतिनिश्चलानुभूतिरूपस्याभेदरत्नत्रयात्मकस्य निश्चयमोक्षमार्गस्य परंपरया कारणभूतं

अन्तिम तीर्थङ्कर परमदेव को नमस्कार कर पञ्चास्तिकाय-षड्द्रव्य सम्बन्धी नव पदार्थ के भेद और मोक्षमार्ग कहता हूँ; इस प्रकार प्रतिज्ञापूर्वक नमस्कार करते हैं —

अपुनर्जनम के हेतु शिरसा नमन श्रीमहावीर को।
कर कहूँगा उनके पदारथ भङ्ग, मुक्तिमार्ग को॥ ११२॥

गाथार्थ - अपुनर्भव (मोक्ष) के कारणभूत महावीर भगवान को शिर झुकाकर नमस्कार करके, उनके (छह द्रव्यों के) पदार्थ भङ्ग को और मोक्ष के मार्ग को कहूँगा।

टीकार्थ - ***अभिवंदिऊण*** अभिवंद्य, प्रणाम कर / नमस्कार कर। कैसे नमस्कार कर? ***सिरसा*** शिर से / शिर झुकाकर नमस्कार कर। किन्हें नमस्कार कर? ***अपुणब्भवकारणं महावीरं*** अपुनर्भव / मोक्ष के कारणभूत महावीर को नमस्कार कर। उन्हें नमस्कार करने के बाद क्या करता हूँ? ***वोच्छामि*** उन्हें नमस्कार करने के बाद कहूँगा। किसे कहेंगे? ***तेसिं पयत्थभंगं*** उन पञ्चास्तिकाय, षट्-द्रव्यों के नव पदार्थ भेद को कहूँगा। न केवल नव पदार्थ को कहूँगा, अपितु **मग्गं मोक्खस्स** मोक्ष के मार्ग को भी कहूँगा।

वह इस प्रकार – मोक्ष-सुखरूपी सुधारस-पान के पिपासित भव्यों को परम्परा से अनन्त ज्ञानादि गुण फलरूप रत्नत्रयात्मक प्रवर्तमान महा धर्मतीर्थ के प्रतिपादक होने से मोक्ष के कारणभूत 'महावीर' नामक अन्तिम जिनेश्वर को सर्व प्रथम नमस्कार करता हूँ। - इस प्रकार गाथा-पूर्वार्ध द्वारा ग्रन्थकार मङ्गल के लिए इष्ट देवता को नमस्कार करते हैं। तत्पश्चात् उत्तरार्ध द्वारा शुद्धात्मरुचि, प्रतीति, निश्चल अनुभूतिरूप अभेदरत्नत्रयात्मक निश्चयमोक्षमार्ग के परम्परा

व्यवहारमोक्षमार्गं तस्यैव व्यवहारमोक्षमार्गस्यावयवभूतयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतान्नवपदार्थान् प्रतिपादया -मीति प्रतिज्ञां च करोति।

अत्र यद्यप्यग्रे चूलिकायां मोक्षमार्गस्य विशेषव्याख्यानमस्ति तथापि नवपदार्थानां संक्षेपसूचनार्थ -मत्रापि भणितम्। कथं संक्षेपसूचनमितिचेत् ? नवपदार्थव्याख्यानं तावदत्र प्रस्तुतम्। ते च कथंभूताः ? व्यवहारमोक्षमार्गे विषयभूता इत्यभिप्रायः॥ ११२॥

अथ प्रथमतस्तावन्मोक्षमार्गस्य संक्षेपसूचनां करोति —

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं।(१०६)
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं॥ ११३॥

सम्मत्तणाणजुत्तं **सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव न च सम्यक्त्वज्ञानरहितं** ***चारित्तं*** **चारित्रमेव न चाचारित्रं** ***रागदोसपरिहीणं*** **रागद्वेषपरिहीनमेव न च रागद्वेषसहितं** ***मोक्खस्स हवदि*** **स्वात्मोपलब्धिरूपस्य मोक्षस्यैव**

कारणभूत व्यवहारमोक्षमार्ग को और उस ही व्यवहारमोक्षमार्ग के अवयवभूत दर्शन और ज्ञान के विषयभूत होने से नव पदार्थ को प्रतिपादित करता हूँ — इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हैं।

यद्यपि आगे चूलिका में मोक्षमार्ग का विशेष व्याख्यान है; तथापि नौ पदार्थों की संक्षिप्त सूचना-हेतु यहाँ भी उन्हें कहा गया है। उनकी संक्षेप में सूचना कैसे है ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — यहाँ सर्व प्रथम नव पदार्थों का व्याख्यान प्रस्तुत है (इससे स्पष्ट है कि उनकी यहाँ संक्षेप में सूचना है)। वे पदार्थ कैसे हैं ? वे व्यवहारमोक्षमार्ग में विषयभूत हैं — ऐसा अभिप्राय है॥ ११२॥

अब, सर्व प्रथम मोक्षमार्ग की संक्षेप में सूचना करते हैं —

चारित्र राग रु द्वेष से परिहीन समकित ज्ञानयुत।
है लब्धबुद्धी भव्य का निर्वाण पथ जिनवर कथित॥ ११३॥

गाथार्थ - सम्यग्दर्शन-ज्ञान से सहित, राग-द्वेष से परिहीन चारित्र लब्धबुद्धि भव्यों के मोक्ष का मार्ग है।

टीकार्थ - ***सम्मत्तणाणजुत्तं*** सम्यक्त्व / सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान से युक्त ही; सम्यक्त्व -ज्ञान से रहित नहीं। ***चारित्तं*** चारित्र ही; अचारित्र नहीं। ***रागद्वेषपरिहीणं*** राग-द्वेष से परिहीन ही; राग-द्वेष से सहित नहीं। ***मोक्खस्स हवदि*** स्वात्मोपलब्धिरूप मोक्ष का ही है; शुद्धात्मानुभूति के प्रच्छादक बन्ध का नहीं है। ***मग्गो*** अनन्त ज्ञानादि गुणरूप अनमोल रत्नों से परिपूर्ण मोक्षनगर

भवति न च शुद्धात्मानुभूतिप्रच्छादकबंधस्य *मग्गो* अनंतज्ञानादिगुणामौल्यरत्नपूर्णस्य मोक्षनगरस्य मार्ग एव नैवामार्गः *भव्वाणं* शुद्धात्मस्वभावरूपव्यक्तियोग्यतासहितानां भव्यानामेव न च शुद्धात्मरूप-व्यक्तियोग्यतारहितानामभव्यानां *लद्धबुद्धीणं* लब्धनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपबुद्धीनामेव न च मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपविषयानंदस्वसंवेदनकुबुद्धिसहितानां, क्षीणकषायशुद्धात्मोपलंभे सत्येव भवति न च सकषायाशुद्धात्मोपलंभे भवतीत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामष्टविधनियमोऽत्र द्रष्टव्यः। अन्वय-व्यतिरेकस्वरूपं कथ्यते –

तथाहि – सति संभवोऽन्वयलक्षणं असत्यसंभवो व्यतिरेकलक्षणं; तत्रोदाहरणं निश्चय-व्यवहारमोक्षकारणे सति मोक्षकार्यं संभवतीति विधिरूपोऽन्वय उच्यते, तत्कारणाभावे मोक्षकार्यं न संभवतीति निषेधरूपो व्यतिरेक इति। तदेव द्रढयति – यस्मिन्नग्न्यादिकारणे सति यद्धूमादिकार्यं भवति तदभावे न भवतीति तद्धूमादिकं तस्य कार्यमितरदग्न्यादिकं कारणमिति कार्यकारणनियम इत्यभिप्रायः॥ ११३॥

का मार्ग ही है; अमार्ग नहीं है। ***भव्वाणं*** शुद्धात्मस्वभावरूप व्यक्ति (प्रगटता) की योग्यतासहित भव्यों का ही है; शुद्धात्मरूप व्यक्ति योग्यता से रहित अभव्यों का नहीं। ***लद्धबुद्धीणं*** निर्विकार स्वसम्वेदन ज्ञानरूप बुद्धि को प्राप्त भव्यों का ही; मिथ्यात्व-रागादि परिणतिरूप विषयानन्दमय स्वसम्वेदनरूप कुबुद्धियों से सहित का नहीं है; क्षीणकषाय दशा में शुद्धात्मा की उपलब्धि होने पर ही होता है, कषायसहित दशा में अशुद्धात्मा की उपलब्धि रहने पर नहीं होता है – इस प्रकार यहाँ अन्वय-व्यतिरेक द्वारा आठ प्रकार का नियम दिखाया गया है।

अन्वय-व्यतिरेक का स्वरूप कहते हैं। वह इस प्रकार – होने पर होना, अन्वय का लक्षण है; नहीं होने पर नहीं होना, व्यतिरेक का लक्षण है। वहाँ उदाहरण देते हैं – निश्चय-व्यवहाररूप मोक्ष का कारण होने पर मोक्षरूप कार्य होता है – ऐसा विधिरूप अन्वय कहलाता है; उस कारण का अभाव होने पर मोक्षरूप कार्य सम्भव नहीं है – ऐसा निषेधरूप व्यतिरेक है।

उसे ही दृढ़ करते हैं – जिस अग्नि आदि कारण के होने पर जो धूम आदि कार्य होता है तथा उसके अभाव में नहीं होता है – इस प्रकार धूम आदि उसका कार्य है, उससे भिन्न अग्नि आदि कारण है। – इस प्रकार कार्य-कारण नियम है – ऐसा अभिप्राय है॥ ११३॥

अब, व्यवहार सम्यग्दर्शन को कहते हैं –

यों रुचिपूर्वक जिन प्रणीत पदार्थ के श्रद्धान युत।
उस पुरुष के ही ज्ञान में है, शब्द दर्शन भी उचित॥ ११४॥

अथ व्यवहारसम्यग्दर्शनं कथ्यते —

एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावदो भावे ॥ 卐 ॥
पुरिसस्साभिणिबोधे दंसणसद्दो हवदि जुत्ते ॥ ११४॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण *जिणपण्णत्ते* जिनप्रज्ञप्तान् वीतरागसर्वज्ञप्रणीतान् *सद्दहमाणस्स* श्रद्दधतः *भावदो* रुचिरूपपरिणामतः। कान् कर्मतापन्नान्? *भावे* त्रिलोकत्रिकालविषयसमस्तपदार्थगतसामान्य -विशेषस्वरूपपरिच्छित्तिसमर्थकेवलदर्शनज्ञानलक्षणात्मद्रव्यप्रभृतीन् समस्तभावान् पदार्थान्। कस्य? *पुरिसस्स* पुरुषस्य भव्यजीवस्य। कस्मिन् सति? *आभिणिबोधे* आभिनिबोधे मतिज्ञाने सति मतिपूर्वक -श्रुतज्ञाने वा *दंसणसद्दे* दार्शनिकोऽयं पुरुष इति शब्दः *हवदि* भवति। कथंभूतो भवति? *जुत्तो* युक्त उचित इति।

अत्र सूत्रे यद्यपि क्वापि निर्विकल्पसमाधिकाले निर्विकारशुद्धात्मरुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं स्पृशति तथापि प्रचुरेण बहिरंगपदार्थरुचिरूपं यद्व्यवहारसम्यक्त्वं तस्यैव तत्र मुख्यता। कस्मात्?

गाथार्थ - इस प्रकार जिनेन्द्र प्रणीत पदार्थों का भाव से / रुचिरूप परिणाम से श्रद्धान करनेवाले पुरुष / आत्मा के ज्ञान में दर्शन शब्द उचित है।

टीकार्थ - ***एवं*** पूर्वोक्त प्रकार से, ***जिणपण्णत्ते*** जिनप्रज्ञप्त, वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत का, ***सद्दहमाणस्स*** श्रद्धान करनेवाले के, ***भावदो*** रुचिरूप परिणाम से। कर्मता को प्राप्त किनका श्रद्धान करनेवाले के? ***भावे*** तीन लोक, तीन कालवर्ती विषयभूत समस्त पदार्थगत सामान्य -विशेष स्वरूप को जानने में समर्थ केवल दर्शन-ज्ञान लक्षणवाले आत्मद्रव्य आदि समस्त पदार्थों का, भावों का श्रद्धान करनेवाले के। श्रद्धान करनेवाले किसके? ***पुरिसस्स*** भव्य जीवरूप पुरुष के। क्या होने पर किसमें? ***आभिणिबोधे*** मतिज्ञान होने पर अथवा मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान होने पर, ***दंसणसद्दे*** यह पुरुष दार्शनिक/दर्शनयुक्त है — ऐसा शब्द ***हवदि*** होता है। वह कैसा है? ***जुत्तो*** युक्त / उचित है।

यहाँ सूत्र में यद्यपि कभी निर्विकल्प समाधि के समय निर्विकार शुद्धात्म-रुचिरूप निश्चय सम्यक्त्व को स्पर्श कर रहा है / प्राप्त हुआ है; तथापि प्रचुरता से बहिरङ्ग पदार्थ रुचिरूप जो व्यवहार सम्यक्त्व है; उसकी ही वहाँ मुख्यता है। वहाँ उसकी ही मुख्यता कैसे है? 'विवक्षित (जो कहा जा रहा है, वह) मुख्य होता है' — ऐसा वचन होने से वहाँ उसकी ही मुख्यता है। विवक्षित ही मुख्य कैसे है? व्यवहार-मोक्षमार्ग के व्याख्यान का प्रस्ताव / प्रकरण / प्रसङ्ग होने से वह ही मुख्य है — ऐसा भावार्थ है॥ ११४॥

विवक्षितो मुख्य इति वचनात्। तदपि कस्मात्? व्यवहारमोक्षमार्गव्याख्यानप्रस्तावादिति भावार्थः॥ ११४॥

अथ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयस्य विशेषविवरणं करोति —

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं।(१०७)
चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं॥ ११५॥

सम्मत्तं सम्यक्त्वं भवति। किं कर्तृ? *सद्दहणं* मिथ्यात्वोदयजनितविपरीताभिनिवेशरहितं श्रद्धानम्। केषां संबन्धि। *भावाणं* पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यविकल्परूपं जीवाजीवद्वयं जीवपुद्गलसंयोग-परिणामोत्पन्नास्त्रवादिपदार्थसप्तकं चेत्युक्तलक्षणानां भावानां जीवादिनवपदार्थानाम्। इदं तु नवपदार्थ-विषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वम्। किंविशिष्टं? शुद्धजीवास्तिकायरुचिरूपस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य छद्मस्थावस्थायां आत्मविषयस्वसंवेदनज्ञानस्य परंपरया बीजं, तदपि स्वसंवेदनज्ञानं केवलज्ञानबीजं भवति। *चारित्तं* चारित्रं भवति। स कः? *समभावो* समभावः। केषु? *विसयेसु* विषयेषु इन्द्रियमनोगत

अब, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र — तीनों का विशेष विवरण करते हैं —

सम्यक्त्व है श्रद्धान भावों का अधिगम ज्ञान है।
विरूढ़मार्गी का विषय में भाव सम चारित्र है॥ ११५॥

गाथार्थ - भावों का श्रद्धान, सम्यग्दर्शन है; उसका अधिगम, ज्ञान है; विरूढ़-मार्गियों का विषयों में समभाव, चारित्र है।

टीकार्थ - ***सम्मत्तं*** सम्यक्त्व है। कर्तारूप क्या सम्यक्त्व है? ***सद्दहणं*** मिथ्यात्व के उदय से उत्पन्न विपरीत अभिनिवेश से रहित श्रद्धान सम्यक्त्व है। किनका श्रद्धान सम्यक्त्व है? ***भावाणं*** पञ्चास्तिकाय, षड्द्रव्य के विकल्परूप जीव-अजीव दो तथा जीव-पुद्गल के संयोगरूप परिणाम से उत्पन्न आस्रव आदि सात पदार्थ — इस प्रकार कहे गए लक्षणवाले भावों का, जीवादि नव पदार्थों का श्रद्धान सम्यक्त्व है। नव पदार्थों का विषयभूत यह व्यवहार-सम्यक्त्व है। यह किस विशेषतावाला है? छद्मस्थ अवस्था में शुद्ध जीवास्तिकाय की रुचिरूप निश्चय-सम्यक्त्व का, आत्मविषयक स्वसंवेदन ज्ञान का परम्परा से बीज है। वह स्वसंवेदन ज्ञान भी केवलज्ञान का बीज है। ***चारित्तं*** चारित्र है। वह चारित्र क्या है? ***समभावो*** समभाव चारित्र है। किनमें समभाव चारित्र है? ***विसयेसु*** विषयों में, इन्द्रिय-मनोगत सुख-दुःख की उत्पत्तिरूप शुभाशुभ विषयों में समभाव चारित्र है। वह किनके होता है? ***विरूढ़मग्गाणं*** पूर्वोक्त सम्यक्त्व-ज्ञान के बल से समस्त अन्य मार्गों से छूटकर विशेषरूप से रूढ़मार्गियों (मोक्षमार्ग में रूढ़ जीवों) को, परिज्ञात-मोक्षमार्गियों को होता है।

-सुखदुःखोत्पत्तिरूपशुभाशुभविषयेषु। केषां भवति? *विरूढमग्गाणं* पूर्वोक्तसम्यक्त्वज्ञानबलेन समस्तान्यमार्गेभ्यः प्रच्युत्य विशेषेण रूढमार्गाणां परिज्ञातमोक्षमार्गाणाम्। इदं तु व्यवहारचारित्रं बहिरंग-साधकत्वेन वीतरागचारित्रभावनोत्पन्नपरमात्मतृप्तिरूपस्य निश्चयसुखस्य बीजं तदपि निश्चयसुखं पुनरक्षयानंतसुखस्य बीजमिति।

अत्र यद्यपि साध्यसाधकभावज्ञापनार्थं निश्चयव्यवहारद्वयं व्याख्यातं, तथापि नवपदार्थविषय-रूपस्य व्यवहारमोक्षमार्गस्यैव मुख्यत्वमिति भावार्थः॥ ११५॥

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारे व्यवहारमोक्षमार्गकथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन प्रथमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

अथानंतरं जीवादिनवपदार्थानां मुख्यवृत्त्या नाम गौणवृत्त्या स्वरूपं च कथयति —

जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं। (१०८)
संवरणिज्जरबंधो मोक्खो य हवंति ते अट्ठा॥ ११६॥

यह व्यवहार-चारित्र बहिरङ्ग साधक होने से वीतराग-चारित्ररूप भावना से उत्पन्न परमात्मतृप्तिरूप निश्चय सुख का बीज है और वह निश्चय सुख भी अक्षय-अनन्त सुख का बीज है।

यहाँ यद्यपि साध्य-साधक ज्ञापनार्थ / बताने के लिए निश्चय-व्यवहार दोनों का व्याख्यान किया है; तथापि नव पदार्थ विषयरूप व्यवहार-मोक्षमार्ग की ही मुख्यता है — ऐसा भावार्थ है॥ ११५॥

इस प्रकार ***नव पदार्थ प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार*** में ***व्यवहार-मोक्षमार्ग*** के कथन की मुख्यतावाली ***चार गाथाओं*** द्वारा प्रथम ***अन्तराधिकार*** पूर्ण हुआ।

अब, इसके बाद (द्वितीय अन्तराधिकार में सर्व प्रथम) जीवादि नव पदार्थों का मुख्यवृत्ति से नाम और गौणवृत्ति से स्वरूप कहते हैं —

हैं भाव जीव अजीव उनके, पुण्य-पाप रु आस्रव।
संवर व निर्जर बंध मोक्ष, कहें पदार्थ ये जिनवर॥ ११६॥

गाथार्थ - जीव-अजीव (मूल) भाव हैं; उनके पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष — ये अर्थ / पदार्थ होते हैं।

टीकार्थ - जीव और अजीव — ये दो भाव हैं। पुण्य-पाप, ये दो पदार्थ हैं। उन पुण्य

जीवाजीवौ द्वौ भावौ पुण्यपापद्वयमिति पदार्थद्वयं आस्रवपदार्थस्तयोः पुण्यपापयोः संवरनिर्जरा -बंधमोक्षपदार्थचतुष्टयमपि तयोरेव। एवं ते प्रसिद्धा नव पदार्था भवंतीति नामनिर्देशः। इदानीं स्वरूपाभिधानम्। तथाहि —

ज्ञानदर्शनस्वभावो जीवपदार्थः, तद्विलक्षणः पुद्गलादिपञ्चभेदः पुनरप्यजीवः, दानपूजाषडा -वश्यकादिरूपो जीवस्य शुभपरिणामो भावपुण्यं, भावपुण्यनिमित्तेनोत्पन्नः सद्वेद्यादिशुभप्रकृतिरूपः पुद्गलपरमाणुपिंडो द्रव्यपुण्यं; मिथ्यात्वरागादिरूपो जीवस्याशुभपरिणामो भावपापं, तन्निमित्तेनासद्वेद्याद्य -शुभप्रकृतिरूपः पुद्गलपिंडो द्रव्यपापं; निरास्रवशुद्धात्मपदार्थविपरीतो रागद्वेषमोहरूपो जीवपरिणामो भावास्रवः, भवनिमित्तेन कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां योगद्वारेणागमनं द्रव्यास्रवः; कर्मनिरोधे समर्थो निर्विकल्पकात्मोपलब्धिपरिणामो भावसंवरः, तेन भावनिमित्तेन नवतरद्रव्यकर्मागमनिरोधो द्रव्यसंवरः; कर्मशक्तिशातनसमर्थो द्वादशतपोभिर्वृद्धिं गतः शुद्धोपयोगः संवरपूर्विका भावनिर्जरा, तेन शुद्धोपयोगेन नीरसभूतस्य चिरंतनकर्मण एकदेशगलनं द्रव्यनिर्जरा; प्रकृत्यादिबंधशून्यपरमात्मपदार्थप्रतिकूलो मिथ्यात्वरागादिस्निग्धपरिणामो भावबंधः, भावबंधनिमित्तेन तैलम्रक्षितशरीरे धूलिबंधवज्जीवकर्मप्रदेशा

-पाप दोनों में आस्रव पदार्थ है। उन दोनों के ही संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष — ये चार पदार्थ हैं। — इस प्रकार वे प्रसिद्ध नौ पदार्थ हैं; ऐसा नाम निर्देश है।

अब, स्वरूप का कथन करते हैं। वह इस प्रकार — ज्ञान, दर्शन स्वभाववाला जीव, पदार्थ है। उससे विलक्षण पुद्गलादि पाँच भेदवाला अजीव पदार्थ है; दान, पूजा, षड्आवश्यक आदि रूप जीव का शुभपरिणाम भावपुण्य है तथा भावपुण्य के निमित्त से उत्पन्न सातावेदनीय आदि शुभप्रकृतिरूप पुद्गल परमाणु पिण्ड, द्रव्यपुण्य है। मिथ्यात्व-रागादिरूप जीव का अशुभपरिणाम, भावपाप है; उसके निमित्त से (बँधनेवाला) असातावेदनीय आदि अशुभप्रकृतिरूप पुद्गल पिण्ड, द्रव्यरूप है। निरास्रवी शुद्धात्मपदार्थ से विपरीत राग-द्वेष-मोहरूप जीव का परिणाम, भावास्रव है; भाव के निमित्त से कर्मवर्गणा योग्य पुद्गलों का योगद्वार से आगमन, द्रव्यास्रव है। कर्मनिरोध में समर्थ निर्विकल्प आत्मोपलब्धिरूप परिणाम, भावसंवर है; उस भाव के निमित्त से नवीन द्रव्यकर्म के आगम (आने) का निरोध, द्रव्यसंवर है। कर्म की शक्ति को शातन (क्षीण) करने में समर्थ बारह प्रकार के तपों से वृद्धिङ्गत शुद्धोपयोग संवरपूर्वक, भावनिर्जरा है; उस शुद्धोपयोग से नीरसभूत (अनुभाग / फलदान क्षमतारहित) चिरन्तन (पूर्वबद्ध) कर्म का एकदेश गलन, द्रव्यनिर्जरा है। प्रकृति आदि बन्ध से रहित परमात्म-पदार्थ से प्रतिकूल मिथ्यात्व-रागादि स्निग्ध परिणाम, भावबन्ध है; भावबन्ध के निमित्त से तेल-म्रक्षित (लगाए गए) शरीर पर धूलि -बन्ध के समान जीव और कर्मप्रदेशों का अन्योन्य / परस्पर में संश्लेष, द्रव्यबन्ध है। कर्म का

-नामन्योन्यसंश्लेषो द्रव्यबंधः; कर्मनिर्मूलनसमर्थः शुद्धात्मोपलब्धिरूपजीवपरिणामो भावमोक्षः, भावमोक्षनिमित्तेन जीवकर्मप्रदेशानां निरवशेषः पृथग्भावो द्रव्यमोक्ष इति सूत्रार्थः॥ ११६॥

एवं जीवाजीवादिनवपदार्थानां नवाधिकारसूचनमुख्यत्वेन गाथासूत्रमेकं गतम्।

तदनंतरं पञ्चदशगाथापर्यंतं जीवपदार्थाधिकारः कथ्यते। तत्र पञ्चदशगाथासु मध्ये प्रथमतस्ता-वज्जीवपदार्थाधिकारसूचनमुख्यत्वेन *जीवा संसारत्था....* इत्यादि गाथासूत्रमेकं, अथ पृथ्वीकायादि-स्थावरैकेन्द्रियपञ्चमुख्यत्वेन *पुढवी य....* इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, अथ विकलेन्द्रियत्रय-व्याख्यानमुख्यत्वेन *संबुक्क....* इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिचतुष्टय-विशिष्टपञ्चेन्द्रियकथनरूपेण *सुरणर....* इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, अथ भेदभावनामुख्यत्वेन हिताहितकर्तृत्वभोक्तृत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन च *ण हि इंदियाणि....* इत्यादि गाथाद्वयं, अथ जीवपदार्थोप-संहारमुख्यत्वेन तथैवाजीवपदार्थप्रारम्भमुख्यत्वेन च *एवमधिगम्म जीव....* इत्यादि सूत्रमेकम्। एवं पञ्चदशगाथाभिः षट्स्थलैर्द्वितीयांतराधिकारे समुदायपातनिका। तथाहि —

निर्मूलन (जड़ मूल से नष्ट) करने में समर्थ शुद्धात्मा की उपलब्धिरूप जीव का परिणाम, भावमोक्ष है; भावमोक्ष के निमित्त से जीव और कर्मप्रदेशों का निरवशेष / पूर्णरूप से पृथग्भाव द्रव्यमोक्ष है — ऐसा सूत्रार्थ है॥ ११६॥

इस प्रकार जीव-अजीवादि नव पदार्थों के नौ अधिकार-सूचन की मुख्यता से एक गाथा-सूत्र पूर्ण हुआ।

इसके बाद, पन्द्रह गाथाओं पर्यन्त ***जीवपदार्थ-अधिकार*** कहते हैं। उन पन्द्रह गाथाओं में से सर्व प्रथम जीवपदार्थाधिकार सूचन की मुख्यता से ***जीवा संसारत्था*** इत्यादि एक गाथा-सूत्र, तत्पश्चात् पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावर एकेन्द्रिय की मुख्यता से ***पुढवीय*** इत्यादि पाठक्रम से चार गाथाएँ हैं। तदुपरान्त तीन विकलेन्द्रिय के व्याख्यान की मुख्यता से ***संबुक्क*** इत्यादि पाठक्रम से तीन गाथा हैं। तदनन्तर नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव-चार गति से विशिष्ट पञ्चेन्द्रिय कथनरूप से ***सुरणर*** इत्यादि पाठक्रम से चार गाथा हैं। इसके बाद भेद-भावना की मुख्यता से और हित-अहित के कर्तृत्व-भोक्तृत्व प्रतिपादन की मुख्यता से ***ण हि इंदियाणि*** इत्यादि दो गाथा हैं। तत्पश्चात् जीवपदार्थ के उपसंहार की मुख्यता से और उसी प्रकार अजीवपदार्थ के प्रारम्भ की मुख्यता से ***एवमधिगम्म जीव*** इत्यादि एक गाथा है।

इस प्रकार पन्द्रह गाथाओं वाले छह स्थलों द्वारा द्वितीय अन्तराधिकार में सामूहिक उत्थानिका पूर्ण हुई।

जीवस्वरूपं निरूपयति –

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा। (१०९)
उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा॥ ११७॥

जीवा जीवा भवन्ति। किंविशिष्टाः ? *संसारत्था णिव्वादा* संसारस्था निर्वृताश्चैव *चेदणप्पगा दुविहा* चेतनात्मका उभयेऽपि कर्मचेतनाकर्मफलचेतनात्मकाः संसारिणः शुद्धचेतनात्मका मुक्ता इति *उवओगलक्खणा वि य* उपयोगलक्षणा अपि च। आत्मनश्चैतन्यानुविधायिपरिणाम उपयोगः केवल-ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणा मुक्ताः क्षायोपशमिका अशुद्धोपयोगयुक्ताः संसारिणः। *देहादेहप्पवीचारा*

द्वितीय अन्तराधिकार का स्थल विभाजन - गाथा ११६ से १३१ पर्यन्त

स्थलक्रम	प्रतिपादित विषय	कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	जीवपदार्थाधिकार की सूचना	११७ वीं	१
२	पञ्च स्थावर एकेन्द्रिय मुख्यता	११८-१२१ वीं	४
३	तीन विकलेन्द्रिय मुख्यता	१२२-१२४ वीं	३
४	चार गतिरूप पञ्चेन्द्रिय के कथनरूप	१२५-१२८ वीं	४
५	भेदभावना, हिताहित कर्तृत्व-भोक्तृत्व प्रतिपादक	१२९-१३० वीं	२
६	जीवाधिकार उपसंहार, अजीवाधिकार प्रारम्भ	१३१ वीं	१

वह इस प्रकार : जीव के स्वरूप का निरूपण करते हैं –

उपयोग लक्षण चेतनात्मक, जीव संसारस्थ वा।
हैं सिद्ध दुविध शरीर के, प्रविचार सहित रहित तथा॥ ११७॥

गाथार्थ - चेतनात्मक और उपयोग लक्षणवाले जीव दो प्रकार के हैं – संसारस्थ और सिद्ध। देह में प्रवीचारसहित संसारस्थ हैं तथा देह में प्रवीचाररहित सिद्ध हैं।

टीकार्थ - ***जीवा*** जीव हैं। वे किस विशेषतावाले हैं ? ***संसारत्था णिव्वादा*** वे संसारस्थ (संसारी) और निर्वृत्त (मुक्त) हैं। ***चेदणप्पगा दुविहा*** वे दोनों ही चेतनात्मक हैं; संसारी, कर्मचेतना और कर्मफलचेतनात्मक हैं; मुक्त, शुद्ध चेतनात्मक हैं। ***उवओगलक्खणा विय*** वे उपयोग लक्षणवाले भी हैं। आत्मा के चैतन्य का अनुसरण करनेवाला परिणाम उपयोग है; केवलज्ञान-दर्शन उपयोग लक्षणवान (अरहन्त-सिद्ध) मुक्त हैं; क्षायोपशमिक अशुद्धोपयोग से युक्त संसारी हैं। ***देहादेहप्पवीचारा*** वे देहादेह-प्रवीचारवाले हैं; अदेह आत्मतत्त्व से विपरीत

देहादेहप्रवीचाराः अदेहात्मतत्त्वविपरीतदेहसहिता देहप्रवीचाराः अदेहाः सिद्धा इति सूत्रार्थः॥ ११७॥

एवं जीवाधिकारसूचनगाथारूपेण प्रथमस्थलं गतम्।

अथ पृथिवीकायादिपञ्चभेदान् प्रतिपादयति —

पुढवी य उदगमगणी वाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया।(११०)
देंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं॥ ११८॥

पृथिवीजलाग्निवायुवनस्पतिजीवान् कर्मतापन्नान् संश्रिताः कायाः ददति प्रयच्छन्ति खलु स्फुटम्। कं? मोहबहुलं स्पर्शविषयं बहुका अंतर्भेदैर्बहुसंख्या अपि ते कायास्तेषां जीवानामिति।

अत्र स्पर्शनेन्द्रियादिरहितमखंडैकज्ञानप्रतिभासमयं यदात्मस्वरूपं तद्भावनारहितेनाल्पसुखार्थं स्पर्शनेन्द्रियविषयलांपट्यपरिणतेन जीवेन यदुपार्जितं स्पर्शनेन्द्रियजनकमेकेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयकाले स्पर्शनेन्द्रियक्षयोपशमं लब्ध्वा स्पर्शविषयज्ञानेन परिणमतीति सूत्राभिप्रायः॥ ११८॥

देहसहित (देह का भोग-उपयोग करनेवाले) देह-प्रवीचारी हैं; (देह का भोग-उपयोग नहीं करनेवाले) अदेह प्रवीचारी सिद्ध हैं — ऐसा सूत्रार्थ है॥ ११७॥

इस प्रकार जीवाधिकार की सूचनापरक गाथारूप से प्रथम गाथा-सूत्र पूर्ण हुआ।

अब, पृथ्वीकाय आदि पाँच भेदों का प्रतिपादन करते हैं —

भू जल अनल वायु वनस्पति, जीव से संयुक्त वे।
बहुविध वदन अति मोहयुत, स्पर्श देते हैं उन्हें॥ ११८॥

गाथार्थ - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति जीव से संश्रित / सहित अनेक प्रकार के वे शरीर, वास्तव में उन्हें (उन जीवों को) मोह से बहुल स्पर्श देते हैं।

टीकार्थ - कर्मता को प्राप्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति जीवों से संश्रित काय / शरीर वास्तव में देते हैं। वे क्या देते हैं? बहुक / अन्तर्भेद से बहु संख्यावाले होने पर भी वे शरीर उन जीवों को मोह से बहुल स्पर्शरूप विषय देते हैं।

यहाँ स्पर्शनेन्द्रिय आदि से रहित, अखण्ड एक ज्ञान प्रतिभासमय जो आत्मस्वरूप, उसकी भावना से रहित तथा अल्पसुख के लिए स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी विषय की लम्पटतारूप से परिणत जीव द्वारा जो उपार्जित, स्पर्शनेन्द्रिय को उत्पन्न करनेवाला एकेन्द्रिय जाति नामकर्म, उसके उदय के समय स्पर्शनेन्द्रिय के क्षयोपशम को प्राप्तकर स्पर्श-विषय के ज्ञानरूप से परिणमित होता है — ऐसा सूत्र का अभिप्राय है॥ ११८॥

अथ व्यवहारेणाग्निवातकायिकानां त्रसत्वं दर्शयति –

तित्थावरतणुजोगा अणिलाणलकाइया य तेसु तसा।(१११)
मणपरिणामविरहिदा जीवा एइंदिया णेया॥ ११९॥

पृथिव्यब्वनस्पतयस्त्रयः स्थावरकाययोगात्संबंधात्स्थावरा भण्यंते अनलानिलकायिकाः तेषु पञ्चस्थावरेषु मध्ये चलनक्रियां दृष्ट्वा व्यवहारेण त्रसा भण्यंते। यदि त्रसास्तर्हि किं मनो भविष्यति? नैवम्। *मणपरिणामविरहिदा* मनः परिणामविहीनास्तथा चैकेन्द्रियाश्च ज्ञेयाः। के? जीवा इति। तत्र स्थावरनामकर्मोदयाद्भिन्नमनंतज्ञानादिगुणसमूहादभिन्नत्वं यदात्मतत्त्वं तदनुभूतिरहितेन जीवेन यदुपार्जितं स्थावरनामकर्म तदुदयाधीनत्वात् यद्यप्यग्निवातकायिकानां व्यवहारेण चलनमस्ति तथापि निश्चयेन स्थावरा इति भावार्थः॥ ११९॥

अब, व्यवहार से अग्नि और वायुकायिक जीवों के त्रसपना दिखाते हैं –

उन सभी में से तीन स्थावर तनु संयोग युत।
हैं अनल अनिल तनु कहे, त्रस एक इन्द्रिय मन रहित॥ ११९॥

गाथार्थ - उनमें से तीन, स्थावर शरीर के संयोगवाले हैं। वायुकायिक और अग्निकायिक त्रस हैं। वे सभी मन परिणाम से विरहित एकेन्द्रिय जीव जानना चाहिए।

टीकार्थ - पृथ्वी, जल, वनस्पति – ये तीन स्थावरकाय के योग से, सम्बन्ध से स्थावर कहलाते हैं। उन पाँच स्थावरों में से अग्नि और वायुकायिक जीव में चलन क्रिया देखकर, उन्हें व्यवहार से त्रस कहा जाता है। यदि वे त्रस हैं तो क्या मन होगा? ऐसा नहीं है; ***मणपरिणाम -विरहिदा*** वे मन परिणाम से विहीन हैं और उसी प्रकार उन्हें एकेन्द्रिय जानना चाहिए। वे कौन हैं? वे जीव हैं।

वहाँ यद्यपि अग्नि-वायुकायिकों के व्यवहार से चलन है; तथापि स्थावर नाम-कर्मोदय से भिन्न अनन्त ज्ञानादि गुण-समूह से अभिन्न जो आत्मतत्त्व है, उसकी अनुभूति से रहित जीव द्वारा जो उपार्जित स्थावर नामकर्म, उसके उदय के अधीन होने के कारण निश्चय से (वे भी) स्थावर हैं – ऐसा भावार्थ है॥ ११९॥

अब, पृथ्वीकायिक आदि पाँचों के एकेन्द्रियत्व का नियम करते हैं –

ये पृथ्वीकायिक आदि जीवनिकाय पाँच प्रकार के।
हैं सभी मनपरिणाम विरहित, जीव एकेन्द्रिय कहे॥ १२०॥

अथ पृथिवीकायिकादीनां पञ्चानामेकेन्द्रियत्वं नियमयति —

एदे जीवणिकाया पंचविहा पुढविकाइयादीया। (११२)
मणपरिणामविरहिदा जीवा एगेंदिया भणिया॥ १२०॥

एते प्रत्यक्षीभूता जीवनिकायाः पञ्चविधाः पृथिवीकायिकादयो जीवाः। ते कथंभूताः ? भणिता मनः परिणामविरहिताः; न केवलं मनः परिणामविरहिता एकेन्द्रियाश्च। कस्मिन् सतीत्थंभूताः भणिताः ? वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सतीति।

अत्र सूत्रे विश्वोपाधिविमुक्तशुद्धसत्तामात्रदेशकेन निश्चयनयेन यद्यपि पृथिव्यादिपञ्चभेदरहिता जीवास्तथापि व्यवहारनयेनाशुद्धमनोगतरागाद्यपध्यानसहितेन शुद्धमनोगतस्वसंवेदनज्ञानरहितेन यद्बद्धमेकेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयेनामनसः एवेकेन्द्रियाश्च भवंतीत्यभिप्रायः॥ १२०॥

अथ पृथिवीकायाद्येकेन्द्रियाणां चैतन्यास्तित्वविषये दृष्टान्तमाह —

गाथार्थ - ये पृथ्वीकायिक आदि पाँच प्रकार के जीवनिकाय मनपरिणाम से विरहित एकेन्द्रिय जीव हैं।

टीकार्थ - ये पृथ्वीकायिक आदि पाँच प्रकार के प्रत्यक्षीभूत जीवनिकाय जीव हैं। वे कैसे हैं? मनपरिणाम से विरहित कहे गए हैं; मात्र मनपरिणाम से विरहित ही नहीं, अपितु एकेन्द्रिय भी कहे गए हैं। कैसे होने पर वे इस प्रकार कहे गए हैं? वीर्यान्तराय और स्पर्शनेन्द्रियावरण के क्षयोपशम का लाभ होने से तथा शेष इन्द्रियावरण का उदय और नो-इन्द्रियावरण का उदय होने पर, वे इस प्रकार कहे गए हैं।

यहाँ सूत्र में विश्व की अथवा अनेक प्रकार की उपाधि से विमुक्त / रहित शुद्ध सत्तामात्र का ज्ञान करानेवाले / कथन करनेवाले निश्चयनय की अपेक्षा यद्यपि जीव पृथ्वी आदि पाँच भेदों से रहित हैं, तथापि व्यवहारनय से अशुद्ध मनोगत रागादि अपध्यान से सहित तथा शुद्ध मनोगत स्वसंवेदन-ज्ञान से रहित होने के कारण जो बँधा हुआ एकेन्द्रिय जाति नामकर्म, उसका उदय होने से एकेन्द्रिय मनरहित ही होते हैं — ऐसा अभिप्राय है॥ १२०॥

अब, पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रियों के चैतन्य सम्बन्धी अस्तित्व के विषय में दृष्टान्त कहते हैं —

ज्यों अण्डे में वर्धित तथा, गर्भस्थ मूर्छित मनुज भी।
प्रत्यक्ष क्रिया विहीन त्यों, जानो एकेन्द्रिय जीव भी॥ १२१॥

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया। (११३)
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया॥ १२१॥

अंडेषु प्रवर्तमानास्तिर्यंचो गर्भस्था मानुष मूर्छागताश्च यादृशा ईहापूर्वव्यवहाररहिता भवन्ति तादृशा एकेन्द्रियजीवा ज्ञेया इति। तथाहि — यथाण्डजादीनां शरीरपुष्टिं दृष्ट्वा बहिरंगव्यापाराभावेऽपि चैतन्यास्तित्वं गम्यते म्लानतां दृष्ट्वा नास्तित्वं च ज्ञायते तथैकेन्द्रियाणामपि।

अयमत्र भावार्थः — परमार्थेन स्वाधीनतानंतज्ञानसुखसहितोऽपि जीवः पश्चादज्ञानेन पराधीनेन्द्रियसुखासक्तो भूत्वा यत्कर्म बध्नाति तेनांडजादिसदृशमेकेन्द्रियजं दुःखितं चात्मानं करोतीति॥ १२१॥

एवं पञ्चस्थावरव्याख्यानमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन द्वितीयस्थलं गतम्।

अथ द्वीन्द्रियभेदान् प्ररूपयति —

गाथार्थ - अण्डे में प्रवर्धमान (बढ़ते हुए), गर्भस्थ और मूर्छा को प्राप्त मनुष्य जैसे हैं; उसी प्रकार एकेन्द्रिय जीव जानना चाहिए।

टीकार्थ - अण्डों में बढ़ते हुए तिर्यञ्च, गर्भस्थ, मूर्छा को प्राप्त मनुष्य जिस प्रकार ईहा (इच्छा) पूर्वक, व्यवहार से रहित होते हैं; उसी प्रकार एकेन्द्रिय जीव जानना चाहिए।

वह इस प्रकार है — जैसे बहिरङ्ग व्यापार का अभाव होने पर भी अण्डज आदि के शरीर की पुष्टि को देखकर चैतन्य का अस्तित्व जान लिया जाता है तथा म्लानता को देखकर नास्तित्व भी ज्ञात हो जाता है; उसी प्रकार एकेन्द्रियों के भी जान लेना।

यहाँ भावार्थ यह है — परमार्थ से स्वाधीन अनन्त ज्ञान-सुख सहित होने पर भी जीव बाद में अज्ञान से पराधीन इन्द्रिय-सुख में आसक्त होकर जो कर्म बाँधता है, उससे अण्डज आदि के समान एकेन्द्रिय से उत्पन्न दुःख से आत्मा को दुःखी करता है॥ १२१॥

इस प्रकार पञ्च स्थावर के व्याख्यान की मुख्यतावाली चार गाथाओं द्वारा दूसरा स्थल पूर्ण हुआ।

अब, दो इन्द्रिय के भेदों को प्ररूपित करते हैं —

जो जानते स्पर्श रस शंबूक शंख रु सीप वा।
मातृवाह पग बिन कृमी आदि जीव दो इंद्रिय कहा॥ १२२॥

संवुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी। (११४)
जाणंति रसं फासं जे ते वे इंदिया जीवाः॥ १२२॥

शंबूकमातृवाहा शंखशुक्त्यपादगकृमयः कर्तारः स्पर्शरसद्वयं जानंत्येते जीवा यतस्ततो द्वीन्द्रिया भवंतीति।

तद्यथा — शुद्धनयेन द्वीन्द्रियस्वरूपात्पृथग्भूतं केवलज्ञानदर्शनद्वयादपृथग्भूतं यत् शुद्धजीवास्ति -कायस्वरूपं तद्भावनोत्थसदानन्दैकलक्षणसुखरसास्वादरहितैः स्पर्शनरसनेन्द्रियादिविषयसुखरसास्वाद -सहितैर्जीवैर्यदुपार्जितं द्वीन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयकाले वीर्यांतरायस्पर्शनरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशम -लाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति द्वीन्द्रिया अमनसो भवंतीति सूत्रार्थः ॥ १२२॥

अथ त्रीन्द्रियभेदान् प्रदर्शयति —

जूगागुंभीमक्कणपिपीलिया विच्छियादिया कीडा। (११५)
जाणंति रसं फासं गंधं तेइंदिया जीवा॥ १२३॥

गाथार्थ - जो रस और स्पर्श को जाननेवाले शम्बूक, मातृवाह, शंख, सीप और पैर रहित कृमी आदि हैं; वे दो इन्द्रिय जीव हैं।

टीकार्थ - शम्बूक, मातृवाह, शंख, शुक्ति (सीप) अपादग / बिना पैरों की चलनेवाली कृमी — ये जीवरूप कर्ता क्योंकि स्पर्श और रस — दो को जानते हैं; इसलिए दो इन्द्रिय हैं।

वह इस प्रकार — शुद्धनय की अपेक्षा दो इन्द्रिय के स्वरूप से पृथग्भूत और केवल ज्ञान -दर्शन दो से अपृथग्भूत जो शुद्ध जीवास्तिकाय का स्वरूप है, उसकी भावना से उत्पन्न सदा आनन्द एक लक्षण सुख रस के आस्वाद से रहित और स्पर्शन, रसना इन्द्रिय आदि के विषय -सुख सम्बन्धी रस के आस्वादसहित जीवों द्वारा उपार्जित (बाँधा गया) दो इन्द्रिय जाति नामकर्म, उसके उदय के समय वीर्यान्तराय, स्पर्शन-रसना इन्द्रियावरण के क्षयोपशम का लाभ होने से तथा शेष इन्द्रियों सम्बन्धी आवरण का उदय होने पर और नो-इन्द्रियावरण का उदय होने पर, दो इन्द्रिय मनरहित होते हैं — ऐसा सूत्रार्थ है॥ १२२॥

अब, तीन इन्द्रिय के भेद प्रदर्शित करते हैं —

जूँ कुंभि खटमल चींटि विच्छू आदि कीड़े जीव जो।
वे तीन इन्द्रियवान जानें गंध रस स्पर्श को॥ १२३॥

गाथार्थ - यूका (जूँ), कुम्भी, मत्कुण (खटमल), पिपीलिका (चींटी), बिच्छू आदि कीट (जन्तु) तीन इन्द्रिय जीव स्पर्श, रस और गन्ध को जानते हैं।

यूकामत्कुणकुंभीपिपीलिकाः पर्णवृश्चिकाश्च गणकीटकादयः कर्तारः स्पर्शरसगंधत्रयं जानन्ति यतस्ततः कारणात् त्रीन्द्रिया भवंतीति। तथाहि — विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मपदार्थसंवित्ति -समुत्पन्नवीतरागपरमानंदैकलक्षणसुखामृतरसानुभवच्युतैः स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियादिविषयसुखमूर्छितै -र्जीवैर्यद्बद्धं त्रीन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयाधीनत्वेन वीर्यांतरायस्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियावरणक्षयोपशम -लाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति त्रीन्द्रिया अमनसो भवंतीति सूत्राभि -प्रायः॥ १२३॥

अथ चतुरिन्द्रियभेदान् प्रदर्शयति —

उद्दंसमसयमक्खियमधुकरभमरा पतंगमादीया। (११६)
रूपं रसं च गंधं फासं पुण ते वि जाणंति॥ १२४॥

उद्दंशमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमरपतंगाद्याः कर्तारः स्पर्शरसगंधवर्णान् जानन्ति यतस्ततः कारणा -च्चतुरिन्द्रिया भवन्ति। तद्यथा — निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानभावनोत्पन्नसुखसुधारसपानविमुखैः स्पर्शन

टीकार्थ - जूँ, खटमल, कुम्भी, चींटी, पर्णबिच्छू गण कीटक आदि (आदि कीड़ों के समूह) रूप कर्ता क्योंकि स्पर्श-रस-गन्ध तीन को जानते हैं, इस कारण तीन इन्द्रिय हैं।

वह इस प्रकार – विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावी आत्मपदार्थ की संवित्ति से समुत्पन्न वीतराग परमानन्द एक लक्षण सुखामृत रस के अनुभव से च्युत और स्पर्शन, रसना, घ्राण इन्द्रिय आदि के विषय-सुख में मूर्छित जीवों द्वारा जो बाँधा गया तीन इन्द्रिय जाति नामकर्म; उसके उदयाधीन होने के कारण वीर्यान्तराय, स्पर्शन, रसना, घ्राण इन्द्रियावरण के क्षयोपशम का लाभ होने से तथा शेष इन्द्रियावरण का उदय और नो-इन्द्रियावरण का उदय होने पर मनरहित तीन इन्द्रिय होते हैं – ऐसा सूत्र अभिप्राय है॥ १२३॥

अब, चार इन्द्रिय के भेदों को दिखाते हैं –

सब डाँस मच्छर मक्खि मधुकर अलि पतंगादि कहे।
हैं चार इन्द्रिय रूप रस स्पर्श गंध को जानते॥ १२४॥

गाथार्थ - डाँस, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भँवरा, पतंगे आदि वे (चार इन्द्रिय जीव) रूप, रस, गन्ध, स्पर्श को जानते हैं।

टीकार्थ - डाँस, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भँवरा, पतंगा आदिरूप कर्ता क्योंकि स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण को जानते हैं, उस कारण चार इन्द्रिय हैं।

-रसनघ्राणचक्षुरादिविषयसुखानुभवाभिमुखैर्बहिरात्मभिर्यदुपार्जितं चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म तद्विपा -काधीना तथा वीर्यांतरायस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् श्रोत्रेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति चतुरिन्द्रिया अमनसो भवंतीत्यभिप्रायः॥ १२४॥

इति विकलेन्द्रियव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण तृतीयस्थलं गतम्।

सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू। (११७)
जलचरथलचरखचरा वलिया पंचेंदिया जीवा॥ १२५॥

पञ्चेन्द्रियभेदानावेदयति — सुरनरनारकतिर्यंचः कर्तारः वर्णरसगंधस्पर्शशब्दज्ञाः यतः कारणात्ततः पञ्चेन्द्रियजीवा भवन्ति तेषु च मध्ये ये तिर्यंचस्ते केचन जलचरस्थलचरखचरा बलिनश्च भवन्ति। ते च के ? जलचरमध्ये ग्राहसंज्ञाः स्थलचरेष्वष्टापदसंज्ञाः खचरेषु भेरुंडा इति।

वह इस प्रकार – निर्विकार स्वसम्वेदन-ज्ञानमयी भावना से उत्पन्न सुखरूपी सुधारस के पान से विमुख और स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु आदि विषयसुखानुभव के सम्मुख बहिरात्माओं द्वारा जो उपार्जित चार इन्द्रिय जाति नामकर्म, उसके विपाक / उदय के अधीन; उसी प्रकार वीर्यान्तराय, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु इन्द्रियावरण के क्षयोपशम का लाभ होने से तथा कर्णेन्द्रिय का उदय और नो-इन्द्रियावरण कर्म का उदय होने पर मनरहित चार इन्द्रिय होते हैं – ऐसा अभिप्राय है॥ १२४॥

इस प्रकार विकलेन्द्रिय-व्याख्यान की मुख्यतावाली तीन गाथाओं द्वारा तीसरा स्थल पूर्ण हुआ।

अब, पञ्चेन्द्रिय-भेदों का आवेदन करते हैं (मर्यादापूर्वक ज्ञान कराते हैं) —

हैं वर्ण रस स्पर्श गंध रु शब्द ज्ञ सुर नारकी।
नर तिर्यग जल थल नभोचर बलवान पंचेन्द्रिय सभी॥ १२५॥

गाथार्थ - स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द को जाननेवाले देव, मनुष्य, नारकी तथा जलचर, थलचर, नभचररूप तिर्यञ्च बलवान पञ्चेन्द्रिय जीव हैं।

टीकार्थ - देव, मनुष्य, नारकी, तिर्यञ्चरूप कर्ता जिस कारण वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, शब्द को जानते हैं; उस कारण पञ्चेन्द्रिय जीव हैं। उनमें से जो तिर्यञ्च हैं, वे कुछ जलचर हैं, कुछ थलचर हैं और कुछ नभचर हैं तथा बलशाली हैं। वे बलशाली कौन हैं ? जलचरों में ग्राह नामवाले, स्थलचरों में अष्टापद नामवाले और नभचरों में भेरुण्ड आदि बलशाली हैं।

तद्यथा — निर्दोषिपरमात्मध्यानोत्पन्ननिर्विकारतात्त्विकानंदैकलक्षणसुखविपरीतं यदिन्द्रियसुखं तदासक्तैर्बहिर्मुखजीवैर्यदुपार्जितं पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयं प्राप्य वीर्यांतरायस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः -श्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभान्नोइन्द्रियावरणोदये सति केचन शिक्षालापोपदेशनशक्तिविकलाः पञ्चेन्द्रिया असंज्ञिनो भवन्ति, केचन पुनर्नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमलाभात्संज्ञिनो भवन्ति तेषु च मध्ये नारकमनुष्यदेवाः संज्ञिन एव, तिर्यंचः पञ्चेन्द्रियाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनो भवन्ति एकेन्द्रियादिचतुरिन्द्रिय -पर्यंता असंज्ञिन एव।

कश्चिदाह — क्षयोपशमविकल्परूपं हि मनो भण्यते तत्तेषामप्यस्तीति कथमसंज्ञिनः ? परिहारमाह — यथा पिपीलिकाया गंधविषये जातिस्वभावेनैवाहारादिसंज्ञारूपं पटुत्वमस्ति न चान्यत्र कार्यकारणव्याप्तिज्ञानविषये अन्येषामप्यसंज्ञिनां तथैव मनः पुनर्जगत्त्रयकालत्रयविषयव्याप्तिज्ञानरूप -केवलज्ञानप्रणीतपरमात्मादितत्त्वानां परोक्षपरिच्छित्तिरूपेण परिच्छेदकत्वात्केवलज्ञानसमानमिति भावार्थः॥ १२५॥

वह इस प्रकार — निर्दोषी परमात्मा के ध्यान से उत्पन्न निर्विकार तात्त्विक आनन्द एक लक्षण सुख से विपरीत जो इन्द्रिय सुख, उसमें आसक्त बहिर्मुख जीवों द्वारा उपार्जित पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्म, उसके उदय को पाकर वीर्यान्तराय; स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इन्द्रियों सम्बन्धी आवरण के क्षयोपशम का लाभ होने से तथा नो-इन्द्रिय आवरण का उदय होने पर कुछ शिक्षा, आलाप, उपदेश ग्रहण की शक्ति से रहित / शून्य असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय होते हैं तथा कुछ नो -इन्द्रिय आवरण के भी क्षयोपशम का लाभ होने से संज्ञी होते हैं। उनमें से नारकी, मनुष्य, देव संज्ञी ही हैं; पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी; परन्तु एकेन्द्रिय आदि से चार इन्द्रिय पर्यन्त असंज्ञी ही होते हैं।

यहाँ कोई कहता है कि मन, वास्तव में क्षयोपशम के विकल्प / भेदरूप कहा गया है, वह उनके भी है; अत: वे असंज्ञी कैसे हो सकते हैं? इसका उत्तर देते हैं — जैसे चींटी के गन्ध विषय में जातिगत स्वभाव से ही आहारादि संज्ञारूप चतुरता है; परन्तु अन्यत्र कार्य-कारण व्याप्ति ज्ञान के विषय में नहीं है; उसी प्रकार अन्य भी असंज्ञिओं को जानना तथा मन तो तीन लोक, तीन काल सम्बन्धी विषय का व्याप्ति ज्ञानरूप से और केवलज्ञान प्रणीत परमात्मा आदि तत्त्वों का परोक्ष जानकारीरूप से परिच्छेदक / ज्ञायक होने के कारण केवलज्ञान के समान है — ऐसा भावार्थ है॥ १२५॥

अब, एकेन्द्रिय आदि भेदरूप से कहे गए जीवों का चार गति के सम्बन्धरूप से उपसंहार करते हैं —

तथैकेन्द्रियादिभेदेनोक्तानां जीवानां चतुर्गतिसंबन्धित्वेनोपसंहारः कथ्यते —

देवा चउण्णिकाया मणुया पुण कम्मभोगभूमीया।(११८)
तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढविभेयगदा॥ १२६॥

भवनवासिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकभेदेन देवाश्चतुर्णिकाया; भोगभूमिकर्मभूमिजभेदेन द्विविधा मनुष्याः; पृथिव्याद्येकेन्द्रियभेदेन शम्बूकयूकोद्दंशकादिविकलेन्द्रियभेदेन जलचरस्थलचरखचरद्विपदचतुः-पदादिपञ्चेन्द्रियभेदेन तिर्यंचो बहुप्रकाराः; रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमः प्रभाभूमिभेदेन नारकाः सप्तविधा भवंतीति।

अत्र चतुर्गतिविलक्षणा स्वात्मोपलब्धिलक्षणा या तु सिद्धगतिस्तद्भावनारहितैर्जीवैः सिद्धसदृश-निजशुद्धात्मभावनारहितैर्वा यदुपार्जितं चतुर्गतिनामकर्म तदुदयवशेन देवादिगतिषूत्पद्यंत इति सूत्रार्थः॥ १२६॥

अथ गतिनामायुःकर्मनिर्वृत्तत्वाद्देवत्वादीनामनात्मस्वभावत्वं दर्शयति; अथवा ये केचन वदन्ति नान्यादृशं जगत्, देवो मृत्वा देव एव, मनुष्य मनुष्या एवेति तन्निषेधार्थं —

नर कर्मभूमिज भोगभूमिज देव चार निकाय हैं।
तिर्यंच बहुविध नारकी पृथ्वी के भेद समान हैं॥ १२६॥

गाथार्थ - देव, चार निकायवाले हैं; मनुष्य, कर्मभूमिज और भोगभूमिज हैं; तिर्यञ्च, अनेक प्रकार के हैं और नारकी, पृथ्वीभेदगत हैं।

टीकार्थ - भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक के भेद से देव चार निकायवाले हैं। भोगभूमिज और कर्मभूमिज के भेद से मनुष्य दो प्रकार के हैं। पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय भेद से, शम्बूक, यूका, डाँस आदि विकलेन्द्रिय के भेद से; जलचर, थलचर, नभचर, द्विपद, चतुष्पद इत्यादि पञ्चेन्द्रिय के भेद से तिर्यञ्च अनेक प्रकार के हैं। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमोप्रभा, महातमोप्रभा भूमि के भेद से नारकी सात प्रकार के हैं।

यहाँ चारों गतियों से विलक्षण स्वात्मोपलब्धि लक्षणमय जो सिद्धगति है, उसकी भावना से रहित जीवों द्वारा अथवा सिद्ध समान निज शुद्धात्मा की भावना से रहित जीवों द्वारा जो उपार्जित चतुर्गति नामकर्म, उसके उदयवश देवादि गतिओं में उत्पन्न होते हैं — ऐसा सूत्रार्थ है॥ १२६॥

[*प्रस्तुत गाथा-टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने चार गति सम्बन्धी गति नामकर्म और आयुकर्म को भी स्पष्ट किया है।*]

अब, गति नामकर्म और आयुकर्म से रचित होने के कारण देवत्व आदि के अनात्मस्वभावत्व

खीणे पुव्वणिबद्धे गदिणामे आउसे च ते वि खलु।(११९)
पापुण्णंति य अण्णं गदिमाउस्सं सलेस्सवसा॥ १२७॥

क्रमेण दत्तफले क्षीणे सति। कस्मिन्? पूर्वनिबद्धे पूर्वोपार्जिते गतिनामकर्मण्यायुषि च तेऽपि खलु ते जीवाः कर्तारः खलु स्फुटं प्राप्नुवन्ति। किम्? अन्यदपूर्वं मनुष्यगत्यपेक्षया देवगत्यादिकं भवांतरे गतिनामायुष्कं च। कथंभूताः संतः? स्वकीयलेश्यावशाः स्वकीयपरिणामाधीना इति। तद्यथा —

चंडो ण मुअइ बेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहियो।
दुट्ठो स ण एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स॥

इत्यादिरूपेण कृष्णादिषड्लेश्यालक्षणं गोम्मटसारशास्त्रादौ विस्तरेण भणितमास्ते तदत्र नोच्यते। कस्मात्? अध्यात्मग्रंथत्वात्। तथा संक्षेपेणात्र कथ्यते। कषायोदयानुरंजिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या सा च गतिनामकर्मणश्च बीजं कारणं भवति तेन कारणेन तद्विनाशः कर्तव्यः। कथमिति चेत्? क्रोधमान

दिखाते हैं अथवा जो कोई कहते हैं कि जगत में अन्य-अन्य नहीं है; देव मरकर देव ही और मनुष्य मरकर मनुष्य ही होते हैं, उनका निषेध करने के लिए यह गाथा कहते हैं —

गति नाम आयु कर्म पूर्व निबद्ध ज्यों ही क्षीण हो।
तब अन्य आयु गति को स्व लेश्या वश प्राप्त हो॥ १२७॥

गाथार्थ - पूर्वबद्ध गति नामकर्म और आयुकर्म क्षीण होने पर वे ही जीव अपनी लेश्या के वश से वास्तव में अन्य गति और अन्य आयु को प्राप्त होते हैं।

टीकार्थ - क्रम से फल देकर क्षीण होने पर। किनके क्षीण होने पर? पूर्वनिबद्ध, पूर्वोपार्जित गति नामकर्म और आयु के क्षीण होने पर वास्तव में वे ही जीवरूप कर्ता प्राप्त करते हैं। वे किसे प्राप्त करते हैं? भवान्तर में (दूसरे भव में) मनुष्यगति की अपेक्षा अन्य नवीन देवगति आदि गति, नाम और आयु को प्राप्त करते हैं। वे कैसे होते हुए इन्हें प्राप्त करते हैं? अपनी लेश्या वश, अपने परिणामों के अधीन हो, इन्हें प्राप्त करते हैं। वह इस प्रकार —

'चण्ड (तीव्र क्रोधादि सहित), बैर नहीं छोड़नेवाला, कलह / युद्ध प्रिय, धर्म-दया से रहित, दुष्ट, दूसरों के वश नहीं होनेवाला — ये कृष्ण लेश्यावाले के लक्षण हैं।'

इत्यादिरूप से कृष्ण आदि छह लेश्याओं के लक्षण **'गोम्मटसार शास्त्र'** आदि में विस्तार से कहे गए हैं, उन्हें यहाँ नहीं कह रहे हैं। यहाँ उन्हें क्यों नहीं कह रहे हैं? अध्यात्मग्रन्थ होने से उन्हें यहाँ नहीं कह रहे हैं; तथापि संक्षेप से यहाँ कहते हैं — कषाय के उदय से

-मायालोभरूपकषायोदयचतुष्काद्भिन्ने अनंतदर्शनसुखवीर्यचतुष्कादभिन्ने परमात्मनि यदा भावना क्रियते तदा कषायोदयविनाशो भवति तद्भावनार्थमेव शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारपरिहारे सति योगत्रयाभावश्चेति कषायोदयरंजितप्रवृत्तिरूपलेश्याविनाशस्तदभावे गतिनामायुष्ककर्मणोरभावस्त -योरभावेऽक्षयानंतसुखादिगुणस्य मोक्षस्य लाभ इति सूत्राभिप्रायः ॥ १२७॥

अथ पूर्वोक्तजीवप्रपञ्चस्य संसारिमुक्तभेदेनोपसंहारव्याख्यानं करोति —

एदे जीवणिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा। (१२०)
देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा य॥ १२८॥

एते जीवनिकाया निश्चयेन शुद्धात्मस्वरूपाश्रिता अपि व्यवहारेण कर्मजनितदेहप्रवीचाराश्रिता

अनुरञ्जित योग प्रवृत्ति लेश्या है और वह गति नामकर्म का बीज, कारण है; उस कारण उसका विनाश करना चाहिए। उसका विनाश कैसे करें ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — **क्रोध, मान, माया, लोभरूप चार कषाय के उदय से भिन्न और अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यरूप अनन्त चतुष्टय से अभिन्न परमात्मा में जब भावना की जाती है, तब कषायोदय का विनाश होता है। उस भावना / तद्रूप परिणमन के लिए ही शुभाशुभ मन-वचन-काय के व्यापार का परिहार होने पर तीनों योगों का अभाव है और कषायोदय से रञ्जित योग -प्रवृत्तिरूप लेश्या का विनाश है। उसका अभाव होने पर गति नामकर्म, आयुकर्म का अभाव होता है; उन दोनों का अभाव होने पर अक्षय अनन्त सुख आदि गुण का, मोक्ष का लाभ होता है — ऐसा सूत्र का अभिप्राय है॥ १२७॥**

अब, पूर्वोक्त जीव-प्रपञ्च का (जीवपदार्थ — व्याख्यान के विस्तार का) संसारी-मुक्त भेद से उपसंहाररूप व्याख्यान करते हैं —

पूर्वोक्त जीवनिकाय तन प्रविचार के आश्रित कहे।
हैं सिद्ध देह विहीन, भव्य-अभव्य संसारी कहे॥ १२८॥

गाथार्थ - ये जीवनिकाय देह प्रवीचार के आश्रित / देह का भोग-उपयोग करनेवाले कहे गए हैं। देह से रहित सिद्ध हैं। संसारी, भव्य और अभव्य दो भेदवाले हैं।

टीकार्थ - ये जीवनिकाय निश्चय से शुद्धात्मस्वरूप के आश्रित होने पर भी व्यवहार से कर्मजनित देह सम्बन्धी प्रवीचार (भोग-उपयोग) के आश्रित कहे गए हैं; देह में प्रवीचार, वर्तना, देह प्रवीचार है। निश्चय से केवलज्ञान देह स्वरूप होने पर भी, कर्मजनित देहरहित होते

भणिताः देहे प्रवीचारो वर्तना देहप्रवीचारः। निश्चयेन केवलज्ञानदेहस्वरूपा अपि कर्मजनितदेहविहीना भवन्ति। ते के ? शुद्धात्मोपलब्धियुक्ताः सिद्धाः। संसारिणस्तु भव्या अभव्याश्चेति।

तथाहि — केवलज्ञानादिगुणव्यक्तिरूपा या शुद्धिस्तस्याः शक्तिर्भव्यत्वं भण्यते तद्विपरीतम -भव्यत्वम्। किंवत् ? पाक्यापाक्यमुद्गवत् सुवर्णेतरपाषाणवद्वा। शुद्धिशक्तिर्यासौ सम्यक्त्वग्रहणकाले व्यक्तिमासादयति अशुद्धशक्तेर्यासौ व्यक्तिः सा चाशुद्धिरूपेण पूर्वमेव तिष्ठति तेन कारणेनानादिरित्य -भिप्रायः॥ १२८॥

एवं गाथाचतुष्टयपर्यंतं पञ्चेन्द्रियव्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थस्थलं गतम्।

अत्र पंचेन्द्रिया इत्युपलक्षणं तेन कारणेन गौणवृत्त्या *तिरिया बहुप्पयारा...* इति पूर्वोक्तगाथा -खण्डेनैकेन्द्रियादिव्याख्यानमपि ज्ञातव्यम्। उपलक्षणविषये दृष्टांतमाह — काकेभ्यो रक्षतां सर्पिरित्युक्ते मार्जारादिभ्योऽपि रक्षणीयमिति।

अथेन्द्रियाणि पृथिव्यादिकायाश्च निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंतीति प्रज्ञापयति —

हैं। कर्मजनित देह से रहित वे कौन हैं ? शुद्धात्मोपलब्धिसहित सिद्ध, उस देह से रहित हैं। संसारी, भव्य और अभव्यरूप हैं।

वह इस प्रकार — केवल ज्ञानादि गुणों की व्यक्तिरूप जो शुद्धि है, उसकी शक्ति भव्यत्व कहलाती है; उसके विपरीत अभव्यत्व है। वे किसके समान हैं ? पकने योग्य और नहीं पकने योग्य मूँग के समान अथवा सुवर्ण-पाषाण और अन्य अन्ध-पाषाण के समान हैं। जो शुद्धि, शक्ति है, वह सम्यक्त्व ग्रहण के समय व्यक्ति को प्राप्त होती है; और जो अशुद्ध शक्ति की व्यक्ति है, वह अशुद्धिरूप से पहले से ही विद्यमान है, उस कारण अनादि है — ऐसा अभिप्राय है॥ १२८॥

इस प्रकार चार गाथा पर्यन्त पञ्चेन्द्रिय-व्याख्यान की मुख्यता से चौथा स्थल पूर्ण हुआ।

यहाँ 'पञ्चेन्द्रिय' — यह शब्द उपलक्षण है, उस कारण गौणवृत्ति से 'तिर्यञ्च अनेक प्रकार के हैं...' इस १२६ वीं गाथा के खण्ड/अंश द्वारा एकेन्द्रिय आदि का व्याख्यान भी जानना चाहिए। उपलक्षण के विषय में दृष्टान्त कहते हैं — 'काकों (कौओं) से घी की रक्षा करो' — ऐसा कहने पर बिल्ली आदि से भी उसकी रक्षा करनी है — ऐसा अर्थ है।

अब, इन्द्रियाँ और पृथ्वी आदि काय, निश्चय से जीव के स्वरूप नहीं हैं, ऐसा प्रज्ञापित करते हैं (प्रकृष्टरूप से ज्ञान कराते हैं) —

हैं इन्द्रियाँ ना जीव षड्विध काय भी ना जीव हैं।
उनमें रहे जो ज्ञान वह ही, जीव ऐसा कथन है॥ १२९॥

ण हि इंदियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता।(१२१)
जं हवदि तेसु णाणं जीवो त्ति य तं परूवंति॥ १२९॥

इन्द्रियाणि जीवा न भवन्ति। न केवलमिन्द्रियाणि। पृथिव्यादिकायाः षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ता ये परमागमे तेऽपि। तर्हि किं जीवः ? यद्भवति तेषु मध्ये ज्ञानं जीव इति तत्प्ररूपयन्तीति।

तद्यथा — अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण स्पर्शनादिद्रव्येंद्रियाणि तथैवाशुद्धनिश्चयेन लब्ध्युप-योगरूपाणि भावेन्द्रियाणि यद्यपि जीवा भण्यंते, तथैव व्यवहारेण पृथिव्यादिषट्कायाश्च; तथापि शुद्धनिश्चयेन यदतीन्द्रियममूर्तं केवलज्ञानांतर्भूतमनंतसुखादिगुणकदंबकं स जीव इति सूत्र-तात्पर्यम्॥ १२९॥

अथ ज्ञातृत्वादि कार्यं जीवस्य संभवतीति निश्चिनोति —

जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो।(१२२)
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं॥ १३०॥

गाथार्थ - इन्द्रियाँ, जीव नहीं हैं, कहे गए छह प्रकार के काय भी जीव नहीं हैं। उनमें जो ज्ञान है, वह जीव है, ऐसा (सर्वज्ञ भगवान) प्ररूपित करते हैं।

टीकार्थ - इन्द्रियाँ, जीव नहीं हैं। मात्र इन्द्रियाँ ही जीव नहीं हैं (इतना ही नहीं), अपितु परमागम में कहे गए जो पृथ्वीकाय आदि छह प्रकार हैं, वे भी जीव नहीं हैं। तो फिर जीव कौन है ? उनमें रहनेवाला जो ज्ञान है, वह जीव है — ऐसा (सर्वज्ञ भगवान) प्ररूपित करते हैं।

वह इस प्रकार — अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से स्पर्शनादि द्रव्येन्द्रियाँ और उसी प्रकार अशुद्ध निश्चयनय से लब्धि-उपयोगरूप भावेन्द्रियाँ यद्यपि जीव कही जाती हैं; उसी प्रकार व्यवहार से पृथ्वी आदि छह काय जीव कहे जाते हैं; तथापि शुद्ध निश्चय से जो अतीन्द्रिय, अमूर्त केवल ज्ञान में अन्तर्गर्भित अनन्त सुखादि गुणों का समूह है, वह जीव है — ऐसा सूत्र तात्पर्य है॥ १२९॥

अब, ज्ञातृत्व आदि कार्य जीव के सम्भव हैं / होते हैं, ऐसा निश्चय करते हैं —

सब जानता व देखता, दुःख से डरे सुख चाहता।
हित अहित करता जीव व उनके फलों को भोगता॥ १३०॥

गाथार्थ - जीव सब जानता है, देखता है, सुख को चाहता है, दुःख से डरता है, हित-अहित करता है और उनके फल को भोगता है।

जानाति पश्यति। किं ? सर्वं वस्तु। इच्छति। किं ? सौख्यम्। विभेति। कस्मात् ? दुःखात्। करोति। किं ? हितमहितं वा। भुंक्ते। स कः कर्ता ? जीवः। किं ? फलम्। कयोः ? तयोर्हिताहितयोरिति।

तथाहि — पदार्थपरिच्छित्तिरूपायाः क्रियाया ज्ञप्तेर्दृशेश्च एव कर्ता न तत्संबन्धः पुद्गल कर्मनोकर्मरूपः सुखपरिणतिरूपायाः इच्छाक्रियायाः स एव, दुःखपरिणतिरूपाया भीतिक्रियायाः स एव च, हिताहितपरिणतिरूपायाः कर्तृक्रियायाश्च स एव, सुखदुःखफलानुभवनरूपाया भोक्तृक्रियायाश्च स एव कर्ता भवतीत्यसाधारणकार्येण जीवास्तित्वं ज्ञातव्यम्।

तच्च कर्तृत्वमशुभशुभशुद्धोपयोगरूपेण त्रिधा भिद्यते अथवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मकर्तृत्वं तथैवाशुद्धनिश्चयेन रागादिविकल्परूपभावकर्मकर्तृत्वं शुद्धनिश्चयेन तु केवलज्ञानादि -शुद्धभावानां परिणमनरूपं कर्तृत्वं नयत्रयेण भोक्तृत्वमपि तथैवेति सूत्रतात्पर्यम्। तथा चोक्तं —

टीकार्थ - जानता-देखता है। किसे जानता-देखता है ? सभी वस्तुओं को जानता -देखता है। चाहता है। किसे चाहता है ? सुख को चाहता है। डरता है। किससे डरता है ? दुःख से डरता है। करता है। क्या करता है ? हित व अहित करता है। भोगता है। (इन सबका) कर्ता वह कौन है ? (इन सभी का कर्ता) जीव है। वह किसे भोगता है ? फल को भोगता है। वह किनके फल को भोगता है ? उन हित-अहित के फल को भोगता है।

वह इस प्रकार — पदार्थों की परिच्छित्तिरूप क्रिया का, जानने-देखने का जीव ही कर्ता है; उस सम्बन्धी कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल, उनका कर्ता नहीं है। सुख-परिणतिरूप इच्छा क्रिया का वह ही कर्ता है तथा दुःख-परिणतिरूप भीति क्रिया का वह ही कर्ता है। हिताहित -परिणतिरूप कर्तृक्रिया का वह ही कर्ता है तथा सुख-दुःख फल के अनुभवनरूप भोक्तृत्व क्रिया का वह ही कर्ता होता है। — इस प्रकार के असाधारण कार्य द्वारा जीव का अस्तित्व जानना चाहिए।

और वह कर्तृत्व अशुभ, शुभ, शुद्धोपयोगरूप से तीन भेदों में विभक्त होता है। अथवा अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से द्रव्यकर्म का कर्तृत्व, उसी प्रकार अशुद्ध निश्चय से रागादि विकल्परूप भावकर्म का कर्तृत्व और शुद्ध निश्चय से केवलज्ञानादि शुद्धभावों के परिणमनरूप कर्तृत्व; उसी प्रकार तीन नय से भोक्तृत्व भी जान लेना चाहिए — ऐसा तात्पर्य है। वैसा ही कहा है —

'आत्मा व्यवहार से पुद्गलकर्म आदि का कर्ता है, निश्चय से चेतनकर्मों का कर्ता है तथा शुद्धनय से शुद्धभावों का कर्ता है।'

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं॥

एवं भेदभावनामुख्यत्वेन प्रथमगाथा जीवस्यासाधारणकार्यकथनरूपेण द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयेन पञ्चमस्थलं गतम्॥ १३०॥

अथ गाथापूर्वार्धेन जीवाधिकारव्याख्यानोपसंहारमुत्तरार्धेन चाजीवाधिकारप्रारंभं करोति —

एवमभिगम्म जीवं अण्णेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं। (१२३)
अभिगच्छदु अज्जीवं णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं॥ १३१॥

एवमभिगम्य ज्ञात्वा। कं ? जीवं अन्यैरपि पर्यायैर्बहुकैः पश्चादभिगच्छतु जानातु। कं ? अजीवं ज्ञानांतरितैर्लिङ्गैरिति।

तद्यथा — एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जीवपदार्थमधिगम्य। कैः ? पर्यायैः। कथंभूतैः ? पूर्वोक्तैः; न केवलं पूर्वोक्तैः व्यवहारेण गुणस्थानमार्गणास्थानभेदगतनामकर्मोदयादिजनितस्वकीयस्वकीयमनुष्यादि -शरीरसंस्थानसंहननप्रभृतिबहिरंगाकारैर्निश्चयेनाभ्यंतरैः रागद्वेषमोहरूपैरशुद्धैस्तथैव च नीरागनिर्विकल्प

इस प्रकार भेद-भावना की मुख्यता से प्रथम गाथा और जीव के असाधारण कार्य के कथनरूप से दूसरी — इस प्रकार स्वतन्त्र दो गाथाओं द्वारा पाँचवाँ स्थल पूर्ण हुआ।

अब, गाथा के पूर्वार्ध द्वारा जीवाधिकार के व्याख्यान का उपसंहार और उत्तरार्ध द्वारा अजीवाधिकार का प्रारम्भ करते हैं —

यों अन्य बहुविध परिणमन से जानकर उस जीव को।
अब ज्ञान से भिन्न चिह्न द्वारा जानना अजीव को॥ १३१॥

गाथार्थ - इस प्रकार अन्य भी अनेक पर्यायों द्वारा जीव को जानकर, ज्ञान से भिन्न लिङ्गों द्वारा अजीव को जानो।

टीकार्थ - इस प्रकार जानकर। किसे जानकर ? अन्य भी अनेक पर्यायों द्वारा जीव को जानकर, बाद में जानो। बाद में किसे जानें ? ज्ञान से भिन्न चिह्नों द्वारा बाद में अजीव को जानो।

वह इस प्रकार — इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से जीवपदार्थ को जानकर। किनके द्वारा उसे जानकर ? पर्यायों द्वारा उसे जानकर। कैसी पर्यायों द्वारा उसे जानकर ? पूर्वोक्त पर्यायों द्वारा उसे जानकर; मात्र पूर्वोक्त पर्यायों द्वारा ही उसे जानकर नहीं; अपितु व्यवहार से गुणस्थान, मार्गणास्थान भेद सम्बन्धी नामकर्म के उदय आदि से उत्पन्न अपने-अपने मनुष्यादि शरीर के संस्थान, संहनन

-चिदानंदैकस्वभावात्मपदार्थसंवित्तिसंजातपरमानंदसुस्थितसुखामृतरसानुभवसमरसीभावपरिणत -मनोरूपैः शुद्धैश्चान्यैरपि। पश्चात् किं करोतु ? जानातु। कं ? अजीवं पदार्थम्। कैः ? लिंगैश्चिन्हैः। किंविशिष्टैः ? अग्रे वक्ष्यमाणैर्ज्ञानांतरितत्वात् जडैश्चेति सूत्राभिप्रायः॥ १३१॥

एवं जीवपदार्थव्याख्यानोपसंहारः तथैवाजीवव्याख्यानप्रारंभ इत्येकसूत्रेण षष्ठमस्थलं गतम्।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण *जीवाजीवा भावा....* इत्यादि नवपदार्थानां नामकथनरूपेण स्वतंत्रगाथा -सूत्रमेकं, तदनंतरं जीवादिपदार्थव्याख्यानेन षट्स्थलैः पञ्चदशसूत्राणीति समुदायेन षोडशगाथाभिर्नव -पदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये द्वितीयांतराधिकारः समाप्तः।

अथ भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायरहितः केवल -ज्ञानाद्यनंतगुणस्वरूपो जीवादिनवपदार्थांतर्गतो भूतार्थपरमार्थरूपः शुद्धसमयसाराभिधान उपादेयभूतो योऽसौ शुद्धजीवपदार्थस्तस्मात्सकाशाद्विलक्षणस्वरूपस्याजीवपदार्थस्य गाथाचतुष्टयेन व्याख्यानं

आदि बहिरङ्ग आकारों से तथा निश्चय से अन्तरङ्ग राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध भावों से और उसी प्रकार नीराग, निर्विकल्प, चिदानन्द एक स्वभावी आत्मपदार्थ की संवित्ति से समुत्पन्न परमानन्द सुस्थित सुखामृत रस के अनुभव द्वारा समरसीभाव से परिणत मनरूप शुद्ध अन्य भावों द्वारा भी उसे जानकर। उसे जानकर बाद में क्या करें ? जानो। किसे जानें ? अजीवपदार्थ को जानो। उसे कैसे जानें ? लिङ्गों, चिह्नों द्वारा उसे जानो। किन विशेषतावाले चिह्नों द्वारा उसे जानें ? आगे कहे जानेवाले, ज्ञान से भिन्न होने के कारण जड़ चिह्नों द्वारा उसे जानो – ऐसा सूत्र का अभिप्राय है॥ १३१॥

इस प्रकार जीव पदार्थ-व्याख्यान के उपसंहार, उसी प्रकार अजीव-व्याख्यान के प्रारम्भ परक एक सूत्र द्वारा छठवाँ स्थल पूर्ण हुआ।

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से ***जीवाजीवाभावा....*** इत्यादि नौ पदार्थों के नाम-कथनरूप से स्वतन्त्र एक गाथा सूत्र, तत्पश्चात् जीवादि पदार्थ के व्याख्यान द्वारा छह स्थलों से पन्द्रह सूत्र – इस प्रकार समूहरूप से सोलह गाथाओं द्वारा ***नौ पदार्थ प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार*** में ***दूसरा अन्तराधिकार*** पूर्ण हुआ।

अब, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, मतिज्ञानादि, विभावगुण, मनुष्य-नारकी आदि विभाव पर्यायरहित, केवलज्ञानादि अनन्त गुण-स्वरूप जीवादि नौ पदार्थों के अन्तर्गत भूतार्थ, परमार्थरूप, शुद्ध समयसार नामक उपादेयभूत जो वह शुद्ध जीवपदार्थ, उससे विलक्षण स्वरूपवाले अजीवपदार्थ का चार गाथा द्वारा व्याख्यान किया जाता है। वहाँ चार गाथाओं में अजीवतत्त्व के प्रतिपादन की

क्रियते। तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये अजीवत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन *आयासकाल....* इत्यादिपाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं भेदभावनार्थं देहगतशुद्धजीवप्रतिपादनमुख्यत्वेन *अरसमरूवं....* इत्यादि सूत्रमेकं, एवं गाथा -चतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेनाजीवाधिकारव्याख्याने समुदायपातनिका। तद्यथा —

अथाकाशादीनामजीवत्वे कारणं प्रतिपादयति —

आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा। (१२४)
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा॥ १३२॥

आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेष्वनंतज्ञानदर्शनादयो जीवगुणाः न सन्ति, ततः कारणात्तेषामचेतनत्वं भणितम्। कस्मात् तेषां जीवगुणा न संतीति चेत् ? युगपज्जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थपरिच्छेदकत्वेन जीवस्यैव चेतकत्वादिति सूत्राभिप्रायः॥ १३२॥

मुख्यता से ***आगासकाल....*** इत्यादि पाठक्रम से तीन गाथाएँ हैं। तदनन्तर भेदभावना के लिए देहगत शुद्धजीव के प्रतिपादन की मुख्यता से ***अरसमरूव....*** इत्यादि एक सूत्र है। — इस प्रकार चार गाथा पर्यन्त दो स्थल द्वारा ***अजीवाधिकार व्याख्यान*** में समुदाय पातनिका है।

चार गाथावाले अजीवाधिकार नामक तृतीय अन्तराधिकार की सारणी

स्थलक्रम	स्थल प्रतिपादित विषय	कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	अजीवतत्त्व का प्रतिपादन	१३२-१३४ वीं	३
२	भेदभावनार्थ देहगत शुद्ध जीव का प्रतिपादन	१३५ वीं	१

वह इस प्रकार - अब, आकाशादि के अजीवत्व में कारण का प्रतिपादन करते हैं —

हैं जीव गुण ना गगन धर्म अधर्म पुद्गल काल में।
उनके अचेतनता कही है, चेतना गुण जीव में॥ १३२॥

गाथार्थ - आकाश, काल, पुद्गल, धर्म, अधर्म में जीव के गुण नहीं हैं। उनके अचेतनता कही गई है तथा जीव के चेतनता है।

टीकार्थ - आकाश, काल, पुद्गल, धर्म, अधर्म में अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि जीव के गुण नहीं हैं; उस कारण उनके अचेतनता कही गई है। उनके जीवगुण किस कारण नहीं हैं ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — एक साथ तीन लोक, तीन कालवर्ती समस्त पदार्थों का परिच्छेदक / ज्ञायक होने से जीव के ही चेतकता होने के कारण उनमें जीव के गुण नहीं हैं — ऐसा सूत्र का अभिप्राय है॥ १३२॥

अथाकाशादीनामेवाचेतनत्वे साध्ये पुनरपि कारणं कथयामीत्यभिप्रायः मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति —

सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं।(१२५)
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं॥ १३३॥

सुखदुःखज्ञातृता वा हितपरिकर्म च तथैवाहितभीरुत्वं यस्य पदार्थस्य न विद्यते नित्यं तं श्रमणा ब्रुबंत्यजीवमिति। तदेव कथ्यते — अज्ञानिनां हितं स्रग्वनिताचंदनादि तत्कारणं दानपूजादि, अहितमहि -विषकंटकादि संज्ञानिनां पुनरक्षयानंतसुखं तत्कारणभूतं निश्चयरत्नत्रयपरिणतं परमात्मद्रव्यं च हितमहितं पुनराकुलत्वोत्पादकं दुःखं तत्कारणभूतं मिथ्यात्वरागादिपरिणतमात्मद्रव्यं च एवं हिताहितादि -परीक्षारूपचैतन्यविशेषाणामभावादचेतना आकाशादयः पञ्चेति भावार्थः॥ १३३॥

अथ संस्थानादिपुद्गलपर्याया जीवेन सह क्षीरनीरन्यायेन तिष्ठंत्यपि निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंतीति भेदज्ञानं दर्शयति —

अब, आकाशादि के ही अचेतनत्व सिद्ध करने में और भी कारण कहता हूँ; ऐसा अभिप्राय मन में धारण कर यह सूत्र प्रतिपादित करते हैं —

सुख दुःख संचेतन अहित का भय हितार्थ प्रयास भी।
जिसके नहीं है नित्य कहते, श्रमण उसे अजीव ही॥ १३३॥

गाथार्थ - जिसके सदैव सुख-दुःख का ज्ञान, हित के लिए उद्यम / प्रयास, अहित से भय नहीं है, उसे श्रमण, अजीव कहते हैं।

टीकार्थ - सुख-दुःख की जानकारी अथवा हित के लिए परिकर्म / प्रयास और उसी प्रकार अहित में भीरुता जिस पदार्थ के नित्य नहीं है, उसे श्रमण, अजीव कहते हैं। उसे ही कहते हैं — **अज्ञानियों को हितमय हार, पत्नी, चन्दन आदि और उनके कारणभूत दान-पूजादि तथा अहितमय सर्प, विष, कण्टक (काँटे) आदि हैं / लगते हैं; परन्तु सम्यग्ज्ञानियों को अक्षय-अनन्त सुख और उसके कारणभूत निश्चय रत्नत्रय परिणत परमात्मद्रव्य हितमय तथा अहितमय आकुलता को उत्पन्न करनेवाला दुःख और उसका कारणभूत मिथ्यात्व -रागादि परिणत आत्मद्रव्य है; इस प्रकार हित-अहित आदि की परीक्षारूप चैतन्य के विशेषों का अभाव होने से आकाशादि पाँच अचेतन हैं — ऐसा भावार्थ है॥ १३३॥**

अब, संस्थान आदि पुद्गल पर्यायें, जीव के साथ क्षीर-नीर न्याय से (दूध-पानी के समान एकमेक होकर) रहती हुईं भी निश्चय से जीव का स्वरूप नहीं है; ऐसा भेदज्ञान दिखाते हैं —

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य। (१२६)
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू॥ १३४॥

समचतुरस्रादिषट्संस्थानानि औदारिकादिशरीरसंबंधिनः पञ्चसंघाताः वर्णरसगंधशब्दाश्च संस्थानादिपुद्गलविकाररहितात्केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयसहितात्परमात्मपदार्थान्निश्चयेन भिन्नत्वादेते सर्वे च पुद्गलद्रव्यप्रभवाः। एतेषु मध्ये के गुणाः के पर्याया ? इति प्रश्ने सति प्रत्युत्तरमाह — वर्णरसस्पर्शगंध -गुणा भवन्ति संस्थानादयस्तु पर्यायास्ते च प्रत्येकं बहव इति सूत्राभिप्रायः॥ १३४॥

एवं पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणामजीवत्वकथनमुख्यतया गाथात्रयेण प्रथमस्थलं गतम्।

अथ यदि संस्थानादयो जीवस्वरूपं न भवन्ति तर्हि किं जीवस्वरूपमिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह —

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं। (१२७)
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं॥ १३५॥

संस्थान वा संघात वर्ण स्पर्श रस गन्ध शब्द या।
अन्यान्य गुण पर्याय भी पुद्गल रचित ही हैं कहा॥ १३४॥

गाथार्थ - संस्थान, संघात, वर्ण, रस, स्पर्श, गन्ध, शब्द इत्यादि अनेक गुण और पर्यायें पुद्गलद्रव्य से उत्पन्न होती हैं।

टीकार्थ - समचतुरस्र आदि छह संस्थान, औदारिक आदि शरीर सम्बन्धी पाँच संघात, वर्ण, रस, स्पर्श, गन्ध और शब्द – ये सभी संस्थानादि निश्चय से पुद्गल विकार से रहित; केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टयसहित परमात्म-पदार्थ से भिन्न होने के कारण, पुद्गलद्रव्य से उत्पन्न हैं। इनमें से गुण कौन हैं ? पर्यायें कौन हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर प्रत्युत्तर कहते / देते हैं – वर्ण, रस, स्पर्श, गन्ध गुण हैं तथा संस्थान आदि पर्यायें हैं; वे प्रत्येक / दोनों ही अनेक हैं – ऐसा सूत्र का अभिप्राय है॥ १३४॥

इस प्रकार पुद्गलादि पाँच द्रव्यों के अजीवत्व कथन की मुख्यतावाली तीन गाथाओं द्वारा प्रथम स्थल पूर्ण हुआ।

अब, यदि संस्थान आदि जीव के स्वरूप नहीं हैं, तो जीव का स्वरूप क्या है ? ऐसा प्रश्न होने पर प्रत्युत्तर कहते / देते हैं –

है चेतना गुण जीव अरस अरूप-गंध अव्यक्त है।
जानो अलिंगग्रहण अशब्द व अनिर्दिष्ट संस्थान है॥ १३५॥

अरसं रसगुणसहितपुद्गलद्रव्यरूपो न भवति, रसगुणमात्रो वा न भवति, रसग्राहकपौद्गलिक -जिह्वाभिधानद्रव्येन्द्रियरूपो न भवति, तेनैव जिह्वाद्रव्येन्द्रियेण करणभूतेन परेषां स्वस्य वा रसवत्परिच्छेद्यो न भवति, निश्चयेन येन स्वयं द्रव्येन्द्रियेण रसग्राहको न भवतीति; निश्चयेन यः ग्राहको न भवतीति सर्वत्र संबंधनीयः; तथा रसास्वादपरिच्छेदकं क्षायोपशमिकं यद्भावेन्द्रियं तद्रूपो न भवति, तेनैव भावेन्द्रियेण करणभूतेन परेषां स्वस्य वा रसवत्परिच्छेद्यो न भवति, पुनस्तेनैव भावेन्द्रियेण रसपरिच्छेदको न भवति; तथैव सकलग्राहकाखंडैकप्रतिभासमयं यत्केवलज्ञानं तद्रूपत्वात् पूर्वोक्तं रसास्वादकं यद्भावेन्द्रियं तस्मात्कारणभूतादुत्पन्नं यत्कार्यभूतं रसपरिच्छित्तिमात्रं खंडज्ञानं तद्रूपो न भवति, तथैव च रसं जानाति रसरूपेण तन्मयो न भवतीत्यरसः।

अनेन प्रकारेण यथासंभवं रूपगंधशब्दविषयेषु तथा चाध्याहारं कृत्वा स्पर्शविषये च योजनीयम्।

अव्वत्तं **यथा क्रोधादिकषायचक्रं मिथ्यात्वरागादिपरिणतमनसां निर्मलस्वरूपोपलब्धिरहितानां**

गाथार्थ – जीव को अरस, अरूप, अगन्ध, अव्यक्त, चेतनागुण सहित, अशब्द, अलिङ्गग्रहण और अनिर्दिष्ट संस्थानवाला जानो।

टीकार्थ - ***अरस*** – रसगुणसहित पुद्गलद्रव्यरूप नहीं होता है; अथवा रसगुणमात्र नहीं है; रस को ग्रहण करनेवाली पौद्गलिक जिह्वा (जीभ) नामक द्रव्येन्द्रियरूप नहीं है; उसी करणभूत जिह्वा इन्द्रिय द्वारा रस के समान दूसरों की अथवा अपनी जानकारी नहीं होती है; निश्चय से जिस द्रव्येन्द्रिय द्वारा स्वयं रसग्राहक / रस को ग्रहण करने / जाननेवाला नहीं है; निश्चय से जो ग्राहक नहीं है – ऐसा सम्बन्ध सर्वत्र जानना चाहिए।

उसी प्रकार रस के आस्वाद को जाननेवाली क्षायोपशमिकरूप जो भावेन्द्रिय है, उसरूप नहीं होता है; उसी करणभूत भावेन्द्रिय द्वारा रस के समान दूसरों की अथवा अपनी जानकारी नहीं होती है तथा उसी से भावेन्द्रिय द्वारा रस का परिच्छेदक नहीं है।

उसी प्रकार सभी को ग्रहण करने / जाननेवाला अखण्ड एक प्रतिभासमय जो केवलज्ञान, उसरूप होने के कारण पूर्वोक्त रस का आस्वाद करनेवाली जो भावेन्द्रिय, उस करणभूत से उत्पन्न जो कार्यभूत रसपरिच्छित्ति / रस की जानकारी मात्र खण्डज्ञान, उसरूप नहीं होता है और उसी प्रकार रस को जानता होने पर भी रसरूप से तन्मय नहीं होता है; इसलिए अरस है।

इसी प्रकार से यथासम्भव रूप, गन्ध, शब्द के विषय में तथा 'च' से अध्याहार कर ('च = और' के माध्यम से ग्रहण कर) स्पर्श के विषय में घटित कर लेना चाहिए।

अव्वत्तं मिथ्यात्व-रागादि परिणत मनवाले, निर्मलस्वरूप की उपलब्धि से रहित

व्यक्तिमायाति तथा परमात्मा नायातीत्यव्यक्तः। *असंठाणं* वृत्तचतुरस्त्रादिसकलसंस्थानरहिताखण्डैक -प्रतिभासमयपरमात्मरूपत्वात् पौद्गलिककर्मोदयजनितसमचतुरस्त्रादिषट्संस्थानरहितत्वादसंस्थानः *अलिंगग्गहणं* यद्यप्यनुमानेन लक्षणेन परोक्षज्ञानेन व्यवहारनयेन धूमादग्निवदशुद्धात्मा ज्ञायते तथापि रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानसमुत्पन्नपरमानंदरूपानाकुलत्वसुस्थितवास्तवसुखामृतजलेन पूर्णकलशवत्सर्वप्रदेशेषु भरितावस्थानां पमरयोगिनां यथा शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति तथेतराणां न भवतीत्य -लिंगग्रहणः। *चेदणागुणं* –

यत्सर्वाणि चराचराणि विविधद्रव्याणि तेषां गुणान्, पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा॥
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते, सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः॥

इति वृत्तकथितलक्षणेन केवलज्ञानसंज्ञेन शुद्धचेतनागुणेन युक्तत्वाच्चेतनागुणश्च यः *जाण जीवं* हे शिष्य तमेवं गुणविशिष्टं शुद्धजीवपदार्थं जानीहीति भावार्थः॥ १३५॥

जीवों को जैसे क्रोधादि कषायों का समूह व्यक्ति को प्राप्त है / प्रगट है; उस प्रकार परमात्मा प्रगट प्राप्त नहीं है; अत: अव्यक्त है। ***असंठाणं*** वृत्त, चतुरस्त्र आदि सकल संस्थानरहित अखण्ड एक प्रतिभासमय परमात्मरूप होने के कारण पौद्गलिक कर्म के उदय से उत्पन्न समचतुरस्त्र आदि छह संस्थानरहित होने से असंस्थान है।

अलिंगग्गहणं यद्यपि अशुद्धात्मा व्यवहारनय की अपेक्षा धूम से अग्नि के समान अनुमान लक्षणमय परोक्ष ज्ञान द्वारा ज्ञात होता है; तथापि रागादि विकल्परहित स्वसम्वेदन ज्ञान से समुत्पन्न परमानन्दरूप अनाकुलत्व से सुस्थित वास्तविक सुखामृतरूप जल से पूर्ण भरे कलश के समान सभी प्रदेशों में भरितावस्थ परमयोगियों को शुद्धात्मा जैसा प्रत्यक्ष है, वैसा दूसरों को नहीं है; इसलिए अलिङ्गग्रहण है।

चेदणागुणं विविध सभी चराचर द्रव्यों को, उनके सभी गुणों को, भूत-भावि-वर्तमान सभी पर्यायों को भी सदा सर्वदा एक साथ प्रतिक्षण जानने के कारण जो सर्वज्ञ कहलाते हैं, उन महान सर्वज्ञ वीर जिनेश्वर के लिए नमस्कार हो।'

– इस पद्य में कहे गए लक्षणयुक्त केवलज्ञान नामक शुद्ध चेतनागुण से युक्त होने के कारण जो चेतनागुण-सम्पन्न है। ***जाण जीवं*** हे शिष्य! इस प्रकार के गुणों से विशिष्ट उसे जीवपदार्थ जानो – ऐसा भावार्थ है॥ १३५॥

[*प्रस्तुत गाथा समयसार में ४९ वीं, नियमसार में ४६ वीं, प्रवचनसार में १७२ वीं, अष्टपाहुड़-भावपाहुड़ में ६४ वीं, धवला पुस्तक-३ में पहली, लघु द्रव्यसंग्रह में पाँचवीं इत्यादि अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध है।*]

एवं भेदभावनार्थसर्वप्रकारोपादेयशुद्धजीवकथनरूपेणैकसूत्रेण द्वितीयस्थलं गतम्।

इति गाथाचतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये तृतीयांतराधिकारः समाप्तः।

अथ द्रव्यस्य सर्वथा तन्मयपरिणामित्वे सति एक एव पदार्थो जीवपुद्गलसंयोगपरिणतिरूपः, अथवा सर्वप्रकारेणापरिणामित्वे सति द्वावेव पदार्थौ जीवपुद्गलौ शुद्धौ; न च पुण्यपापादिघटनात्ततश्च किं दूषणं ? बंधमोक्षाभावः; तद्दूषणनिराकरणार्थमेकांतेन परिणामित्वापरिणामित्वयोर्निषिद्धः। तस्मिन्निषेधे सति कथंचित्परिणामित्वमिति ततश्च सप्तपदार्थानां घटना भवतीति। अत्राह शिष्यः — यद्यपि कथंचित्परिणामित्वे सति पुण्यादिसप्तपदार्था घटंते, तथापि तैः प्रयोजनं जीवाजीवाभ्यामेव पूर्यते यतस्तेऽपि तयोरेव पर्याया इति ? परिहारमाह — भव्यानां हेयोपादेयतत्त्वदर्शनार्थं तेषां कथनम्। तदेव कथ्यतेदुःखं हेयतत्त्वं, तस्य कारणं संसारः, संसारकारणमास्त्रवबंधपदार्थौ, तयोश्च कारणं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रत्रयमिति; सुखमुपोदयं, तस्य कारणं मोक्षः, मोक्षस्य कारणं संवरनिर्जरापदार्थद्वयं,

---

अब, द्रव्य के सर्वथा तन्मय परिणामित्व होने पर जीव-पुद्गल के संयोगमय परिणतिरूप एक ही पदार्थ सिद्ध होता है अथवा सर्व प्रकार से सर्वथा अपरिणामित्व होने पर पुण्य-पाप आदि घटित न होने से शुद्ध जीव-पुद्गल दो ही पदार्थ सिद्ध होते हैं। उससे क्या दूषण होगा ? इनके घटित न होने पर बन्ध-मोक्ष का अभाव होगा। उस दूषण के निराकरणार्थ एकान्त से (सर्वथा) परिणामित्व-अपरिणामित्व का निषेध किया है। उसका निषेध होने पर कथञ्चित् परिणामित्व सिद्ध होता है, उससे सात पदार्थों की घटना घटित होती है।

यहाँ शिष्य कहता है — यद्यपि कथञ्चित् परिणामित्व होने पर पुण्यादि सात पदार्थ घटित होते हैं; तथापि उनसे सिद्ध होनेवाला प्रयोजन जीव-अजीव से ही पूर्ण हो जाता है; क्योंकि वे भी उन दोनों की ही पर्यायें हैं ?

उसका परिहार कहते / करते हैं — भव्यों को हेय-उपादेय तत्त्व दिखाने के लिए उनका कथन किया है। उसे ही कहते हैं — दुःख हेय तत्त्व है, उसका कारण संसार है, संसार के कारण आस्त्रव और बन्ध पदार्थ हैं, उनके कारण मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र — ये तीनों हैं। सुख उपादेय है, उसका कारण मोक्ष है, मोक्ष के कारण संवर-निर्जरा दो पदार्थ हैं, उनके कारण सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्र — ये तीन हैं। — इस प्रकार पूर्वोक्त जीव-अजीव पदार्थरूप दो तथा आगे कहे जानेवाले पुण्यादि सात पदार्थरूप सात — इस प्रकार दोनों के समुदाय से नौ पदार्थ बनते हैं।

इस प्रकार नौ पदार्थ-स्थापन-प्रकरण पूर्ण हुआ।

तयोश्च कारणं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमिति। एवं पूर्वोक्तं जीवाजीवपदार्थद्वयं वक्ष्यमाणं पुण्यादिसप्त -पदार्थसप्तकं चेत्युभयसमुदायेन नवपदार्था युज्यंते। इति नवपदार्थस्थापनप्रकरणं गतम्।

इत ऊर्ध्वं य एव पूर्वं कथंचित्परिणामित्वबलेन जीवपुद्गलोः संयोगपरिणामः स्थापितः स एव वक्ष्यमाणपुण्यादिसप्तपदार्थानां कारणं बीजं ज्ञातव्यमिति चतुर्थान्तराधिकारे पातनिका –

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो। (१२८)
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी॥ १३६॥

गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते। (१२९)
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो व॥ १३७॥

जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि। (१३०)
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा॥ १३८॥

इससे आगे अब, जो पहले कथञ्चित् परिणामित्व के बल से जीव-पुद्गल का संयोग -परिणाम स्थापित किया था, वह ही आगे कहे जानेवाले पुण्यादि सात पदार्थों का कारण, बीज जानना चाहिए; इस प्रकार चतुर्थ अन्तराधिकार में पातनिका है (इसे तीन गाथाओं द्वारा स्पष्ट करते हैं) –

संसारस्थित जीव उससे सतत ही परिणाम हों।
परिणाम से हों कर्म कर्मोदय से गति में गमन हो॥ १३६॥

गति-प्राप्त को तन मिले, तन से इन्द्रियाँ उत्पन्न हों।
उनसे विषय का ग्रहण उनसे सतत राग रु द्वेष हों॥ १३७॥

यों भाव होते जीव के, संसार-चक्र में सदा ही।
जिनवर कहें वे अनादि अनिधन तथा हैं सान्त भी॥ १३८॥

गाथार्थ - वास्तव में जो संसारस्थ जीव है, उससे ही परिणाम होता है; परिणाम से कर्म, कर्मोदय के कारण गतिओं में गमन होता है।

गति प्राप्त के देह है, देह से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं, उनसे विषयों का ग्रहण होता है, उनसे राग या द्वेष होता है।

ये भाव, संसार-चक्र में जीव के अनादि-अनन्त या अनादि-सान्त होते रहते हैं – ऐसा जिनवरों ने कहा है।

यः खलु संसारस्थो जीवः ततः परिणामो भवति परिणामादभिनवं कर्म भवति कर्मणः सकाशाद्गतिषु गतिर्भवति इति प्रथमगाथा। गतिमधिगतस्य देहो भवति देहादिन्द्रियाणि जायंते तेभ्यो विषयग्रहणं भवतीति ततो रागद्वेषौ चेति द्वितीयगाथा। जायते जीवस्यैवं भ्रमः परिभ्रमणं। क्व ? संसार-चक्रवाले। स च किं विशिष्टः ? जिनवरैर्भणितः। पुनरपि किं विशिष्टः ? अभव्यभव्यजीवापेक्षयानादि-निधनसनिधनश्चेति तृतीयगाथा।

तद्यथा — यद्यपि शुद्धनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावोऽयं जीवस्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबंध-वशादात्मसंवित्तिविलक्षणमशुद्धपरिणामं करोति, ततः परिणामात्कर्मातीतानंतज्ञानादिगुणात्मस्वभाव-प्रच्छादकं पौद्गलिकं ज्ञानावरणादिकर्म बध्नाति, कर्मोदयादात्मोपलब्धिलक्षणपञ्चमगतिसुखवि-लक्षणासु सुरनरनारकादिचतुर्गतिषु गमनं भवति, ततश्च शरीररहितचिदानंदैकस्वभावात्मविपरीतो देहो भवति, ततोऽतीन्द्रियामूर्तपरमात्मस्वरूपात्प्रतिपक्षभूतानीन्द्रियाणि समुत्पद्यंते, तेभ्योऽपि निर्विषयशुद्धात्म-ध्यानोत्थवीतरागपरमानंदैकस्वरूपसुखविपरीतं पञ्चेन्द्रियविषयसुखपरिणमनं भवति, ततो रागादिदोष

टीकार्थ - जो वास्तव में संसारस्थ जीव है, उससे परिणाम होता है, परिणाम से नवीन कर्म होता है, कर्म (के उदय) के कारण गतिओं में गमन होता है। — इस प्रकार प्रथम (१३६ वीं) गाथा पूर्ण हुई।

गति-प्राप्त के देह है, देह से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं, उनसे विषय-ग्रहण होता है, उनसे राग, द्वेष होते हैं। — इस प्रकार द्वितीय (१३७ वीं) गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार जीव के भ्रम-परिभ्रमण होता है। वह कहाँ होता है ? वह संसार चक्रवाल में होता है, और वह किस विशेषतावाला है ? जिनवरों द्वारा कहा गया है। और वह किस विशेषतावाला है ? वह अभव्य जीव की अपेक्षा अनादि-अनिधन और भव्य जीव की अपेक्षा अनादि-सनिधन है। — इस प्रकार तृतीय (१३८ वीं) गाथा पूर्ण हुई।

वह इस प्रकार — यद्यपि यह जीव शुद्धनय से विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावी है; तथापि व्यवहार से अनादि कर्मबन्ध के वश आत्मसम्वित्ति लक्षण (स्वानुभवगोचर) अशुद्ध परिणाम करता है। उस परिणाम से कर्मातीत अनन्त ज्ञानादि गुणमय आत्मस्वभाव को आच्छादित करनेवाला ज्ञानावरणादि पौद्‌गलिक कर्म का बन्ध होता है। कर्म के उदय से आत्मोपलब्धि लक्षण पञ्चम गति के सुख से विलक्षण देव, मनुष्य, नारकी आदि चारों गतियों में गमन होता है और उससे शरीररहित चिदानन्द एक स्वभावी आत्मा से विपरीत देह होता है; उससे अतीन्द्रिय, अमूर्त परमात्मस्वरूप से प्रतिपक्षभूत इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं; उनसे भी निर्विषय शुद्धात्मा के ध्यान से उत्पन्न वीतराग परमानन्द एक स्वरूप सुख से विपरीत, पञ्चेन्द्रिय विषयसुख में परिणमन होता

-रहितानंतज्ञानादिगुणास्पदात्मतत्त्वविलक्षणौ रागद्वेषौ समुत्पद्येते, रागद्वेषपरिणामात्करणभूतात्पूर्ववत् पुनरपि कार्यभूतं कर्म भवतीति रागादिपरिणामानां कर्मणश्च योऽसौ परस्परं कार्यकारणभावः स एव वक्ष्यमाणपुण्यादिपदार्थानां कारणमिति ज्ञात्वा पूर्वोक्तसंसारचक्रविनाशार्थमव्याबाधानंतसुखादिगुणानां चक्रभूते समूहरूपे निजात्मस्वरूपे रागादिविकल्पपरिहारेण भावना कर्तव्येति।

किंच कथंचित्परिणामित्वे सत्यज्ञानी जीवो निर्विकारस्वसंवित्त्यभावे सति पापपदार्थस्यास्त्रव -बंधपदार्थयोश्च कर्ता भवति। कदाचिन्मंदमिथ्यात्वोदयेन दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन भाविकाले पापानुबन्धिपुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवति। यस्तु ज्ञानी जीवः स निर्विकारात्मतत्त्वविषये या रुचिस्तथा परिच्छित्तिर्निश्चलानुभूतिरित्यभेदरत्नत्रयपरिणामेन संवरनिर्जरामोक्षपदार्थानां कर्ता भवति, यदा पुनः पूर्वोक्तनिश्चयरत्नत्रये स्थातुं न शक्नोति, तदा निर्दोषिपरमात्मस्वरूपार्हत्सिद्धानां तदाराधका -चार्योपाध्यायसाधूनां च निर्भरासाधारणभक्तिरूपं संसारविच्छित्तिकारणं परंपरया मुक्तिकारणं च तीर्थकरप्रकृत्यादिपुण्यानुबंधिविशिष्टपुण्यरूपमनीहितवृत्त्या निदानरहितपरिणामेन पुण्यपदार्थं च

है; उससे रागादि दोषरहित अनन्त ज्ञानादि गुणों के आश्रयभूत आत्मतत्त्व में विलक्षण राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। करणभूत राग-द्वेष परिणाम से पहले के समान (उपर्युक्त क्रमानुसार) फिर से कार्यभूत कर्म होता है। – इस प्रकार रागादि परिणामों का और कर्म का जो वह परस्पर कार्य -कारण भाव है, वह ही आगे कहे जानेवाले पुण्यादि पदार्थों का कारण है – ऐसा जानकर पूर्वोक्त संसार-चक्र को नष्ट करने के लिए अव्याबाध अनन्त सुखादि गुणों के चक्रभूत, समूहरूप निजात्मस्वरूप में रागादि विकल्पों के त्यागपूर्वक भावना करना चाहिए।

विशेष यह है कि कथञ्चित् परिणामित्व होने से अज्ञानी जीव, निर्विकार स्वसंवित्ति के अभाव में पापपदार्थ का और आस्रव-बन्ध पदार्थ का कर्ता होता है। कदाचित् मन्द मिथ्यात्व के उदय से दृष्ट-श्रुत-अनुभूत भोगों की आकाँक्षारूप निदान बन्ध से आगामी काल में पापानुबन्धी पुण्यपदार्थ का भी कर्ता होता है; परन्तु जो ज्ञानी जीव है, वह निर्विकार आत्मतत्त्व के विषय में जो रुचि, उसी प्रकार परिच्छित्ति / जानकारी, उसी में निश्चल अनुभूति – इस प्रकार अभेद रत्नत्रय परिणाम से संवर, निर्जरा, मोक्ष पदार्थों का कर्ता होता है और जब वह पूर्वोक्त निश्चय रत्नत्रय में स्थित रहने के लिए असमर्थ होता है, तब निर्दोषी परमात्मस्वरूप अरहन्त-सिद्धों की और उनके आराधक आचार्य-उपाध्याय-साधुओं की निर्भर असाधारण भक्तिरूप, संसार-विच्छित्ति / विनाश के कारणभूत और परम्परा से मुक्ति के कारणभूत और अनीहित वृत्ति / निःकांक्षितभाव से निदानरहित परिणाम द्वारा तीर्थङ्कर प्रकृति आदि पुण्यानुबन्धी विशिष्ट पुण्यरूप पुण्य पदार्थ को करता है।

करोतीत्यनेन प्रकारेणाज्ञानी जीवः पापादिपदार्थचतुष्टयस्य कर्ता, ज्ञानी तु संवरादिपदार्थत्रयस्येति भावार्थः ॥ १३६-१३७-१३८ ॥

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यादिसप्तपदार्था जीवपुद्गलसंयोगवियोग -परिणामेन निर्वृत्ता इति कथनमुख्यतया गाथात्रयेण चतुर्थांतराधिकारः समाप्तः।

अथ पुण्यपापाधिकारे गाथाचतुष्टयं भवति तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये प्रथमं तावत्परमानन्दैकस्व-भावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य भावपुण्यपापयोग्यपरिणामस्य सूचनमुख्यत्वेन *मोहो व रागदोसो....* इत्यादिगाथासूत्रमेकम्। अथ शुद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य देहस्वरूपस्य द्रव्यभाव -पुण्यपापद्वयस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन *सुहपरिणामो....* इत्यादि सूत्रमेकं, अथ नैयायिकमतनिराकरणार्थं पुण्यपापद्वयस्य मूर्तत्वसमर्थनरूपेण *जम्हा कम्मस्स फलं....* इत्यादि सूत्रमेकं, अथ चिरंतनागंतुकयोर्मूर्तयोः कर्मणोः स्पृष्टबद्धत्वस्थापनार्थं शुद्धत्वनिश्चयेनामूर्तस्यापि जीवस्यानादिबंधसंतानापेक्षया व्यवहारनयेन मूर्तत्वं मूर्तजीवेन सह मूर्तकर्मणो बंधप्रतिपादनार्थं च *मुत्तो पासदि....* इत्यादि सूत्रमेकमिति गाथाचतुष्टयेन पञ्चमांतराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा —

इस प्रकार अज्ञानी जीव, पापादि चार पदार्थ का कर्ता है तथा ज्ञानी, संवर आदि तीन पदार्थ का कर्ता है — ऐसा भावार्थ है॥ १३६-१३८॥

इस प्रकार ***नौ पदार्थ प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार*** में पुण्य आदि सात पदार्थ, जीव -पुद्‌गल के संयोग-वियोगरूप परिणाम से रचित हैं — इस कथन की मुख्यतावाली तीन गाथाओं द्वारा ***चतुर्थ अन्तराधिकार*** पूर्ण हुआ।

अब, पाँचवें पुण्य-पाप अन्तराधिकार में चार गाथाएँ हैं। उन चार गाथाओं में से सर्व प्रथम परमानन्द एक स्वभावी शुद्धात्मा से भिन्न भाव पुण्य-पाप के योग्य परिणाम सम्बन्धी सूचना की मुख्यता से ***मोहो व रागदोसो*** इत्यादि एक गाथा-सूत्र है। तत्पश्चात् शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी शुद्धात्मा से भिन्न हेयस्वरूप द्रव्य-भाव पुण्य-पाप दोनों के व्याख्यान की मुख्यता से ***सुहपरिणामो*** इत्यादि एक सूत्र है। तदुपरान्त नैयायिकमत के निराकरणार्थ पुण्य-पाप दोनों के मूर्तत्व-समर्थनरूप से ***जम्हा कम्मस्स फलं*** इत्यादि एक सूत्र है। तदनन्तर चिरन्तन / प्राचीन, आगन्तुक / नवीन मूर्त कर्मों के स्पृष्टत्व-बद्धत्व-स्थापन के लिए निश्चय से शुद्धतामय अमूर्त जीव के भी अनादि-बन्ध-परम्परा की अपेक्षा व्यवहारनय से मूर्तत्व है; इस मूर्त जीव के साथ मूर्त कर्म का बन्ध-प्रतिपादनार्थ ***मुत्तो पासदि*** इत्यादि एक सूत्र है — इस प्रकार चार गाथाओं द्वारा पाँचवें अन्तराधिकार में समुदायपातनिका है। वह इस प्रकार —

अथ पुण्यपापयोग्यभावस्वरूपं कथ्यते —

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि। (१३१)
विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो॥ १३९॥

मोहो वा रागो वा द्वेषश्चित्तप्रसादश्च यस्य जीवस्य भावे मनसि विद्यते तस्य शुभोऽशुभो वा भवति परिणाम इति। इतो विशेषः — दर्शनमोहोदये सति निश्चयशुद्धात्मरुचिरहितस्य व्यवहाररत्नत्रय -तत्त्वार्थरुचिरहितस्य वा योऽसौ विपरीताभिनिवेशपरिणामः स दर्शनमोहस्तस्यैवात्मनो विचित्रचारित्र -मोहोदये सति निश्चयवीतरागचारित्ररहितस्य व्यवहारव्रतादिपरिणामरहितस्य इष्टानिष्टविषये प्रीत्यप्रीतिपरिणामौ रागद्वेषौ भण्येते, तस्यैव मोहस्य मंदोदये सति चित्तस्य विशुद्धिश्चित्तप्रसादो भण्यते।

अत्र मोहद्वेषावशुभौ विषयाद्यप्रशस्तरागश्चाशुभो, दानपूजाव्रतशीलादिरूपः शुभरागश्चित्त -प्रसादपरिणामश्च शुभ इति सूत्राभिप्रायः॥ १३९॥

अब, पुण्य-पाप के योग्य भावों का स्वरूप कहते हैं —

है मोह राग रु द्वेष चित्त प्रसाद जिसके भाव में।
होते उसी के शुभ अशुभ परिणाम भी विद्यमान हैं॥ १३९॥

गाथार्थ - जिसके भाव में मोह, राग, द्वेष या चित्त की प्रसन्नता विद्यमान है; उसके शुभ या अशुभ परिणाम होते हैं।

टीकार्थ - मोह या राग या द्वेष और चित्त-प्रसाद / मन की प्रसन्नता जिस जीव के भाव में, मन में पाई जाती है, उसके शुभ या अशुभ परिणाम होता है।

यहाँ विशेष कहते हैं — दर्शनमोह का उदय होने पर निश्चय शुद्धात्मा की रुचि से रहित अथवा व्यवहार रत्नत्रय के विषयभूत तत्त्वार्थ की रुचि से रहित के जो विपरीत अभिनिवेशरूप परिणाम है, वह दर्शनमोह है; उसी आत्मा के विचित्र चारित्रमोह का उदय होने पर निश्चय वीतरागचारित्र से रहित तथा व्यवहार व्रतादि परिणाम से रहित के इष्टानिष्ट विषय में प्रीति -अप्रीतिरूप परिणाम राग-द्वेष कहलाते हैं; उसी मोह का मन्द उदय होने पर चित्त की विशुद्धि चित्त-प्रसाद कहलाती है।

यहाँ मोह, द्वेष और विषयादि में प्रवृत्त अप्रशस्तराग अशुभ है तथा दान, पूजा, व्रत, शीलादि रूप शुभराग और चित्त के प्रसादरूप परिणाम शुभ हैं — ऐसा सूत्र का अभिप्राय है॥ १३९॥

इस प्रकार शुभ-अशुभ परिणाम-कथनरूप एक सूत्र द्वारा प्रथम स्थल पूर्ण हुआ।

एवं शुभाशुभपरिणामकथनरूपेणैकसूत्रेण प्रथमस्थलं गतम्।

अथ गाथापूर्वार्धेन भावपुण्यपापद्वयमपरार्धेन तु द्रव्यपुण्यपापद्वयं चेति प्रतिपादयति —

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावंति हवदि जीवस्स।(१३२)
दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो॥ १४०॥

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति होदि शुभपरिणामः पुण्यं अशुभः पापमिति भवति। कस्य परिणामः ? *जीवस्स* जीवस्य *दोण्हं* द्वाभ्यां पूर्वोक्तशुभाशुभजीवपरिणामाभ्यां निमित्तभूताभ्यां सकाशात् *भावो* भावः ज्ञानावरणादिपर्यायः। किंविशिष्टः ? *पोग्गलमेत्तो* पुद्गलमात्रः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गल -पिण्डरूपः *कम्मत्तणं पत्तो* कर्मत्वं द्रव्यकर्मपर्यायं प्राप्त इति।

तथाहि — यद्यपि शुद्धनिश्चयेन जीवेनोपादानकारणभूतेन जनितौ शुभाशुभपरिणामौ तथाप्यनु -पचरितासद्भूतव्यवहारेण नवतरद्रव्यपुण्यपापद्वयस्य कारणभूतौ यतस्ततः कारणाद्भावपुण्यपापपदार्थौ भण्येते, यद्यपि निश्चयेन कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिण्डजनितौ तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण जीवेन

अब, गाथा पूर्वार्ध द्वारा भाव पुण्य-पाप दोनों तथा अपरार्ध द्वारा द्रव्य पुण्य-पाप दोनों का प्रतिपादन करते हैं —

हैं जीव के शुभ भाव पुण्य रु पाप भाव अशुभ कहे।
दोनों से पुद्‌गल मात्र भाव कर्मत्व रूप से परिणमे॥ १४०॥

गाथार्थ - जीव के शुभपरिणाम, पुण्य और अशुभपरिणाम, पाप हैं। उन दोनों के द्वारा पुद्‌गलमात्र भाव, कर्मत्व को प्राप्त होते हैं।

टीकार्थ - ***सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावंति हवदि*** शुभपरिणाम, पुण्य; अशुभ, पाप — ऐसा है। इस रूप किसका परिणाम है ? ***जीवस्स*** जीव का परिणाम है। ***दोण्हं*** दोनों से, जीव के पूर्वोक्त शुभाशुभ परिणामों के निमित्त से ***भावो*** भाव, ज्ञानावरणादि पर्याय है। वह किस विशेषतावाली है ? ***पोग्गलमेत्तो*** वह पुद्‌गलमात्र, कर्मवर्गणा के योग्य पुद्‌गल पिण्डरूप है। ***कम्मत्तणं पत्तो*** वह कर्मत्व, द्रव्यकर्म पर्याय को प्राप्त है।

वह इस प्रकार — यद्यपि शुद्ध निश्चय से शुभाशुभ परिणाम उपादान कारणभूत जीव से उत्पन्न हैं; तथापि अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहार से क्योंकि नवीन द्रव्य पुण्य-पाप दोनों के कारणभूत हैं, उस कारण भाव पुण्य-पाप पदार्थ कहे गए हैं; तथा सातावेदनीय, असातावेदनीय आदि द्रव्य प्रकृतिरूप पुद्‌गल पिण्ड यद्यपि निश्चय से कर्मवर्गणा योग्य / पुद्‌गल पिण्ड से उत्पन्न

शुभाशुभपरिणामेन जनितौ सद्वेद्यासद्वेद्यादिद्रव्यप्रकृतिरूपपुद्गलपिण्डौ द्रव्यपुण्यपापपदार्थौ भण्येते चेति सूत्रार्थः ॥ १४० ॥

एवं शुद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य हेयरूपस्य द्रव्यभावपुण्यपापद्वयस्य व्याख्यानेनैकसूत्रेण द्वितीयस्थलं गतम्।

अथ कर्मणां मूर्तत्वं व्यवस्थापयति —

जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं। (१३३)
जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि॥ १४१ ॥

जम्हा यस्मात्कारणात् *कम्मस्स फलं* उदयागतकर्मणः फलं। तत्कथंभूतं? *विसयं* मूर्त-पञ्चेन्द्रियविषयरूपं *भुंजदे* भुज्यते *णियदं* निश्चितम्। केन कर्तृभूतेन? *जीवेण* जीवेन विषयातीत-परमात्मभावनोत्पन्नसुखामृतरसास्वादच्युतेन जीवेन। कैः करणभूतैः? *फासेहिं* स्पर्शनेन्द्रियादिरहिता-मूर्तशुद्धात्मतत्त्वविपरीतैः स्पर्शनादिमूर्तेन्द्रियैः। पुनरपि कथंभूतं तत्पञ्चेन्द्रियविषयरूपं कर्मफलं?

हैं, तथापि अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से जीवरूप शुभाशुभ परिणाम से उत्पन्न हैं; अतः द्रव्य पुण्य-पाप पदार्थ कहे गए हैं — ऐसा सूत्रार्थ है॥ १४० ॥

इस प्रकार शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी शुद्धात्मा से भिन्न, हेयरूप द्रव्य-भाव पुण्य-पाप — दोनों के व्याख्यानरूप एक गाथा द्वारा दूसरा स्थल पूर्ण हुआ।

अब, कर्मों का मूर्तत्व विशेषरूप से स्थापित करते हैं —

कर्म के फल विषय स्पर्शादि द्वारा नियम से।
सुख दुःख भोगे जीव उससे कर्म मूर्तिक नियम से॥ १४१ ॥

गाथार्थ - क्योंकि कर्म का फल विषय नियम से स्पर्शनादि इन्द्रियों द्वारा सुख-दुःखरूप में जीव भोगता है; इसलिए कर्म मूर्त है।

टीकार्थ - ***जम्हा*** जिस कारण से ***कम्मस्स फलं*** उदय में आए कर्म का फल। वह फल कैसा है? ***विसयं*** मूर्त पञ्चेन्द्रिय विषयरूप है ***भुंजदे*** भोगा जाता है, ***णियदं*** निश्चित। कर्ताभूत किसके द्वारा भोगा जाता है? ***जीवेण*** विषयातीत परमात्मभावना से उत्पन्न सुखामृत रस के आस्वाद से च्युत जीव द्वारा भोगा जाता है। उसके द्वारा किन साधनों से भोगा जाता है? ***फासेहिं*** स्पर्शन इन्द्रिय आदि से रहित अमूर्त शुद्धात्मतत्त्व से विपरीत स्पर्शन आदि मूर्त इन्द्रियों द्वारा भोगा जाता है। वह पञ्चेन्द्रिय विषयरूप कर्मफल और कैसा है? ***सुहं दुक्खं*** सुख

_सुहं दुक्खं_ सुखं दुःखं यद्यपि शुद्धनिश्चयेनामूर्तं तथापि अशुद्धनिश्चयेन पारमार्थिकामूर्तपरमाह्लादैक -लक्षणनिश्चयसुखाद्विपरीतत्वाद्धर्षविषादरूपं मूर्तं सुखदुःखं _तम्हा मुत्ताणि कम्माणि_ यस्मात्पूर्वोक्त -प्रकारेण स्पर्शादिमूर्तपञ्चेन्द्रियरूपं मूर्तेन्द्रियैर्भुज्यते स्वयं च मूर्तं सुखदुःखादिरूपं कर्म कार्यं दृश्यते, तस्मात्कारणसदृशं कार्यं भवतीति मत्त्वा कार्यानुमानेन ज्ञायंते मूर्तानि कर्माणि इति सूत्रार्थः॥ १४१॥

एवं नैयायिकमताश्रितशिष्यसंबोधनार्थं नयविभागेन पुण्यपापद्वयस्य मूर्तत्वसमर्थनरूपेणैक -सूत्रेण तृतीयस्थलं गतम्।

अथ चिरंतनाभिनवमूर्तकर्मणोस्तथैवामूर्तकर्मणोश्च नयविभागेन बंधप्रकारं कथयंति। अथवा मूर्तरहितो जीवो मूर्तकर्माणि कथं बध्नातीति ? नैयायिकादिमतानुसारिणा शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति नयविभागेन परिहारं ददाति —

मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि। (१३४)
जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि॥ १४२॥

–दुःखरूप है। यद्यपि शुद्ध निश्चय से अमूर्त है, तथापि अशुद्ध निश्चय से पारमार्थिक अमूर्त परमाह्लादमय एक लक्षण निश्चय सुख से विपरीत होने के कारण, वह सुख–दुःख हर्ष–विषादरूप मूर्त है। ***तम्हा मुत्ताणि कम्माणि*** जिस कारण पूर्वोक्त प्रकार से स्पर्श आदि मूर्त पञ्चेन्द्रियरूप मूर्त इन्द्रियों द्वारा भोगा जाता है और स्वयं मूर्त सुख–दुःखादिरूप कर्म, कार्य देखा जाता है; इसलिए 'कारण के समान कार्य होता है' — ऐसा मानकर कार्यरूप अनुमान से कर्म मूर्त हैं, ऐसा ज्ञात होता है — यह सूत्रार्थ है॥ १४१॥

इस प्रकार नैयायिकमत का आश्रय लेनेवाले शिष्य के सम्बोधनार्थ नय–विभाग से पुण्य –पाप दोनों के मूर्तत्व–समर्थनरूप एक सूत्र द्वारा तीसरा स्थल पूर्ण हुआ।

अब, प्राचीन और नवीन मूर्त कर्मों के और उसी प्रकार अमूर्त जीव और मूर्त कर्मों के बन्ध का प्रकार नय–विभाग से कहते हैं; अथवा मूर्तरहित जीव, मूर्त कर्मों को कैसे बाँधता है ? — ऐसा नैयायिक आदि मतानुसारी शिष्य द्वारा पूर्वपक्ष (प्रश्न) किए जाने पर नयविभाग से परिहार देते / करते हैं —

मूर्त स्पर्शे मूर्त को मूर्त मूर्त से बँधता सदा।
है ग्रहण करता मूर्त बिन आत्मा ग्रहण होता तथा॥ १४२॥

गाथार्थ - मूर्त, मूर्त को स्पर्श करता है; मूर्त, मूर्त के साथ बन्ध का अनुभव करता / बँधता है; मूर्ति–विरहित जीव उन्हें अवगाहन देता है और उनके द्वारा अवगाहित होता है।

मुत्तो निर्विकारशुद्धात्मसंवित्त्यभावेनोपार्जितमनादिसंतानेनागतं मूर्तं कर्म तावदास्ते जीवे। तच्च किं करोति? *फासदि मुत्तं* स्वयं स्पर्शादिमत्त्वेन मूर्तत्वादभिनवं स्पर्शादिमत्संयोगमात्रेण मूर्तं कर्म स्पृशति। न केवलं स्पृशति; *मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि* अमूर्तातीन्द्रियनिर्मलात्मानुभूतिविपरीतं जीवस्य मिथ्यात्वरागादिपरिणामं निमित्तं लब्ध्वा पूर्वोक्तं मूर्तं कर्म नवतरमूर्तकर्मणा सह स्वकीयस्निग्धरूक्ष -परिणत्युपादानकारणेन संश्लेषरूपं बंधमनुभवति इति मूर्तकर्मणोर्बंधप्रकारो ज्ञातव्यः।

इदानीं पुनरपि मूर्तजीवमूर्तकर्मणोबंधः कथ्यते। *जीवो मुत्तिविरहिदो* शुद्धनिश्चयेन जीवो मूर्तिविरहितोऽपि व्यवहारेण अनादिकर्मबंधवशान्मूर्तः सन्। किं करोति? *गाहदि ते* अमूर्तातीन्द्रिय -निर्विकारसदानंदैकलक्षणसुखरसास्वादविपरीतेन मिथ्यात्वरागादिपरिणामेन परिणतः सन् तान् कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलान् गाहते परस्परानुप्रवेशरूपेण बध्नाति *तेहिं उग्गहदि* निर्मलानुभूतिविपरीतेन जीवस्य रागादिपरिणामेन कर्मत्वपरिणतैस्तैः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कंदैः कर्तृभूतैर्जीवोऽप्यवगाह्यते बध्यत इति।

टीकार्थ - ***मुत्तो*** निर्विकार शुद्धात्मसंवित्ति का अभाव होने से उपार्जित अनादि काल से चला आया मूर्तकर्म, जीव में रहता है। वह क्या करता है? ***फासदि मुत्तं*** स्वयं स्पर्शादिवान होने के कारण मूर्त होने से स्पर्शादिवान के संयोगमात्र से नवीन मूर्तकर्म का स्पर्श करता है। मात्र स्पर्श ही नहीं करता; अपितु ***मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि*** अमूर्त अतीन्द्रिय निर्मल आत्मानुभूति से विपरीत जीव के मिथ्यात्व-रागादि परिणामों का निमित्त पाकर पूर्वोक्त मूर्तकर्म नवीन मूर्तकर्म के साथ अपनी स्निग्ध-रूक्ष परिणतिरूप उपादान कारण से संश्लेषरूप बन्ध का अनुभव करता है — इस प्रकार मूर्तकर्म के बन्ध का प्रकार जानना चाहिए।

अब, फिर से मूर्त जीव और मूर्तकर्म का बन्ध कहते हैं — ***जीवो मुत्ति विरहिदो*** शुद्ध निश्चय से जीव, मूर्ति-विरहित होने पर भी व्यवहार से अनादि कर्म बन्ध के वश मूर्त होता हुआ। वह मूर्त होता हुआ क्या करता है? ***गाहदि ते*** अमूर्त, अतीन्द्रिय, निर्विकार, सदा आनन्दमयी एक लक्षणवाले सुख रस के आस्वाद से विपरीत मिथ्यात्व-रागादि परिणाम से परिणत होता हुआ, उन कर्मवर्गणा-योग्य पुद्‌गलों को ग्रहण करता है, परस्पर अनुप्रवेशरूप से बाँधता है, ***तेहिं उग्गहदि*** जीव के निर्मल अनुभूति से विपरीत रागादि परिणाम द्वारा कर्मत्वरूप परिणत कर्ताभूत उन कर्मवर्गणा-योग्य पुद्‌गल-स्कन्धों से जीव भी अवगाहित होता है, बँधता है।

यहाँ निश्चय से अमूर्त जीव के भी व्यवहार से मूर्तत्व होने पर बन्ध सम्भव होता है — ऐसा सूत्रार्थ है। वैसा ही कहा है —

अत्र निश्चयेनामूर्तस्यापि जीवस्य व्यवहारेण मूर्तत्वे सति बंधः संभवतीति सूत्रार्थः। तथा चोक्तं —

बंधं पडि एयत्तं लक्खणदो होदि तस्स णाणत्तं।
तम्हा अमुत्तिभावो णेगंतो होदि जीवस्स॥ १४२॥

इति सूत्रचतुर्थस्थलं गतम्।

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यपापव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयेन पञ्चमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

अथ भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायैः शून्यात् शुद्धात्म -सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानंदसमरसीभावेन पूर्ण -कलशवद्भरितावस्थात्परमात्मनः सकाशाद्भिन्ने शुभाशुभास्रवाधिकारे गाथाषट्कं भवति। तत्र गाथा -षट्कमध्ये प्रथमं तावत्पुण्यास्रवकथनमुख्यत्वेन *रागो जस्स पसत्थो* इत्यादिपाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं,

---

'बन्ध की अपेक्षा एकत्व होने पर भी उसके लक्षण की अपेक्षा भिन्नत्व है; इसलिए जीव का अमूर्तिक भाव एकान्त से नहीं है।'॥ १४२॥

इस प्रकार एक गाथा द्वारा चौथा स्थल पूर्ण हुआ।

इस प्रकार ***नौ पदार्थ-प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार*** में ***पुण्य-पाप-व्याख्यान*** की मुख्यतारूप चार गाथाओं द्वारा ***पाँचवाँ अन्तराधिकार*** पूर्ण हुआ।

अब, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, मतिज्ञानादि विभावगुण, मनुष्य-नारकी आदि विभाव पर्यायों से शून्य शुद्धात्मा के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप अभेद रत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि से समुत्पन्न, परमानन्द समरसी भाव से पूर्ण कलश के समान भरितावस्थ परमात्मा से भिन्न शुभ-अशुभ आस्रव अधिकार में छह गाथाएँ हैं। उन छह गाथाओं में से सर्व प्रथम पुण्यास्रव-कथन की मुख्यता से ***रागो जस्स पसत्थो*** इत्यादि पाठक्रम से चार गाथाएँ हैं। तत्पश्चात् पापास्रव में ***चरिया पमादबहुला*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं — इस प्रकार पुण्य-पापास्रव व्याख्यान में सामूहिक उत्थानिका है। वह इस प्रकार —

छह गाथाओंवाले आस्रवाधिकार नामक षष्ठम अन्तराधिकार की सारणी

स्थलक्रम	स्थल प्रतिपादित विषय	गाथा कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	शुभास्रव	१४३-१४६ वीं	४
२	अशुभास्रव	१४७-१४८ वीं	२

तदनंतरं पापास्त्रवे *चरिया पमादबहुला...* इत्यादि गाथाद्वयं, इति पुण्यपापास्त्रवव्याख्याने समुदाय -पातनिका। तद्यथा —

अथ निरास्त्रवशुद्धात्मपदार्थात्प्रतिपक्षभूतं शुभास्त्रवमाख्याति —

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो।(१३५)
चित्ते णत्थि कलुस्सं पुण्णं जीवस्स आसवदि॥ १४३॥

रागो जस्स पसत्थो रागो यस्य प्रशस्तः वीतरागपरमात्मद्रव्याद्विलक्षणः पञ्चपरमेष्ठिनिर्भरगुणा -नुरागरूपः प्रशस्तधर्मानुरागः *अणुकंपासंसिदो य परिणामो* अनुकंपासंश्रितश्च परिणामः दयासहितो मनोवचनकायव्यापाररूपः शुभपरिणामः *चित्ते णत्थि कलुस्सं* चित्ते कालुष्यं मनसि क्रोधादिकलुष -परिणामो नास्ति *पुण्णं जीवस्स आसवदि* यस्यैते पूर्वोक्ता त्रयः शुभपरिणामाः संति तस्य जीवस्य द्रव्यपुण्यास्त्रवकारणभूतं भावपुण्यमास्त्रवतीति सूत्राभिप्रायः॥ १४३॥

एवं शुभास्त्रवे सूत्रगाथा गता।

अब, निरास्त्रवी शुद्धात्मपदार्थ से प्रतिपक्षभूत शुभ आस्त्रव का आख्यान करते हैं —

हो रागभाव प्रशस्त अनुकम्पा सहित परिणाम हो।
हो कलुषता ना चित्त में हो पुण्य आस्त्रव उसी को॥ १४३॥

गाथार्थ - जिस जीव के प्रशस्त राग है, अनुकम्पा से युक्त परिणाम है, चित्त में कलुषता नहीं है, उसे पुण्य का आस्त्रव होता है।

टीकार्थ - ***रागो जस्स पसत्थो*** राग जिसके प्रशस्त है, वीतराग परमात्म-द्रव्य से विलक्षण पञ्च परमेष्ठी के प्रति निर्भर गुणानुरागरूप प्रशस्त धर्मानुराग, ***अणुकंपा संसिदो य परिणामो*** और अनुकम्पा से सहित परिणाम, दयासहित मन-वचन-काय के व्यापाररूप शुभपरिणाम हैं, ***चित्तम्हि णत्थि कलुसो*** चित्त में कलुषता नहीं है, मन में क्रोधादि कलुष परिणाम नहीं हैं, ***पुण्णं जीवस्स आसवदि*** जिसके ये पूर्वोक्त तीन शुभपरिणाम हैं, उस जीव के द्रव्य-पुण्य-आस्त्रव का कारणभूत भाव-पुण्य-आस्त्रव होता है — ऐसा सूत्र का अभिप्राय है॥ १४३॥

इस प्रकार शुभास्त्रव में पहली गाथा पूर्ण हुई।

अब, प्रशस्तराग के स्वरूप का आवेदन करते हैं (मर्यादापूर्वक ज्ञान कराते हैं) —

अरहंत साधु सिद्ध प्रति भक्ति धर्म में चेष्टा।
गुरुओं का हो अनुगमन राग प्रशस्त है जिनवर कहा॥ १४४॥

अथ प्रशस्तरागस्वरूपमावेदयति —

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा।(१३६)
अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति॥ १४४॥

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिः *धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा* धर्मे शुभरागचरित्रे या खलु चेष्टा *अणुगमणं पि* अनुगमनमनुव्रजनमनुकूलवृत्तिरित्यर्थः। केषां? *गुरूणं* गुरूणां *पसत्थरागो त्ति वुच्चंति* एते सर्वे पूर्वोक्ताः शुभभावाः परिणामाः प्रशस्तरागा इत्युच्यंते।

तथाहि — निर्दोषिपरमात्मनः प्रतिपक्षभूतं यदार्तरौद्ररूपध्यानद्वयं तेनोपार्जिता या ज्ञानावरणादि -मूलोत्तरप्रकृतयस्तासां रागादिविकल्परहितधर्मध्यानशुक्लध्यानद्वयेन विनाशं कृत्वा क्षुधाद्यष्टादशदोष -रहिताः केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयसहिताश्च जाता एतेऽर्हंतो भण्यंते। लौकिकांजनसिद्धादिविलक्षणा ज्ञानावरणाद्यष्टकर्माभावेन सम्यक्त्वाद्यष्टगुणलक्षणा लोकाग्रनिवासिनश्च ये ते सिद्धा भवंति। विशुद्ध -ज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वविषये या निश्चयरुचिस्तथा परिच्छित्तिस्तथैव निश्चलानुभूतिः परद्रव्येच्छा -परिहारेण तत्रैवात्मद्रव्ये प्रतपनं तपश्चरणं तथैव स्वशक्त्यनवगूहनानुष्ठानमिति निश्चयपञ्चाचारः

गाथार्थ - अरहन्त, सिद्ध, साधुओं के प्रति भक्ति; धर्म में यथार्थतया चेष्टा और गुरुओं का भी अनुगमन प्रशस्तराग है — ऐसा कहते हैं।

टीकार्थ - अरहन्त, सिद्ध, साधु में भक्ति; ***धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा*** धर्म में, शुभरागरूप चारित्र में जो वास्तविक चेष्टा है, ***अणुगमणं पि*** अनुगमन, अनुव्रजन, अनुकूलवृत्ति — ऐसा अर्थ है। किनके प्रति अनुकूल वृत्ति? ***गुरूणं*** गुरुओं के प्रति अनुकूल वृत्ति, ***पसत्थरागो त्ति वुच्चन्ति*** ये सभी पूर्वोक्त शुभभावरूप परिणाम प्रशस्तराग हैं — ऐसा कहते हैं।

वह इस प्रकार — निर्दोषी परमात्मा से प्रतिपक्षभूत जो आर्त-रौद्ररूप दो ध्यान, उससे उपार्जित जो ज्ञानावरणादि मूलोत्तर प्रकृतियाँ, उनका रागादि विकल्परहित धर्मध्यान-शुक्लध्यानरूप दो ध्यान से विनाशकर, क्षुधा आदि अठारह दोषों से रहित और केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय से जो सहित हैं, वे अरहन्त कहलाते हैं।

लौकिक अञ्जनसिद्ध आदि से विलक्षण ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का अभाव होने से सम्यक्त्व आदि आठ गुण लक्षणमय और जो लोकाग्र निवासी हैं, वे सिद्ध हैं।

विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभावी आत्मतत्त्व के विषय में जो रुचि तथा परिच्छित्ति और उसमें ही निश्चल अनुभूति, परद्रव्यों की इच्छा के परिहारपूर्वक उसी आत्मद्रव्य में प्रतपन तपश्चरण और वहाँ स्वशक्ति को न छिपाते हुए अनुष्ठान — ये निश्चय पञ्चाचार; उसी

तथैवाचारादिशास्त्रकथितक्रमेण तत्साधकव्यवहारपञ्चाचारः इत्युभयमाचारं स्वयमाचरंत्यन्याना -चारयंति ये ते भवंत्याचार्याः। पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु मध्ये जीवास्तिकायं शुद्धजीव -द्रव्यं शुद्धजीवतत्त्वं शुद्धजीवपदार्थं च निश्चयनयेनोपादेयं कथयंति तथैव भेदाभेदरत्नत्रयलक्षणं मोक्षमार्गं प्रतिपादयंति स्वयं भावयंति च ये ते भवंत्युपाध्यायाः। निश्चयचतुर्विधाराधनया ये शुद्धात्म -स्वरूपं साधयंति ते भवंति साधव इति। एवं पूर्वोक्तलक्षणयोर्जिनसिद्धयोस्तथा साधुशब्दवाच्येष्वा -चार्योपाध्यायसाधुषु च या बाह्याभ्यंतरा भक्तिः सा प्रशस्तरागो भण्यते। तत्प्रशस्तरागमज्ञानी जीवो भोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन करोति, ज्ञानी पुनर्निर्विकल्पसमाध्यभावे विषयकषायरूपाशुभरागविनाशार्थं करोतीति भावार्थः॥ १४४॥

अथानुकंपास्वरूपं कथयति –

तिसिदं वुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो।(१३७)
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा॥ १४५॥

प्रकार आचारादिशास्त्र में कहे गए क्रम से उसके साधक व्यवहार पञ्चाचार – इस प्रकार दोनों आचारों का जो स्वयं आचरण करते हैं, दूसरों से कराते हैं, वे आचार्य हैं।

पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थों में से जीवास्तिकाय, शुद्ध जीवद्रव्य, शुद्ध जीवतत्त्व और शुद्ध जीव-पदार्थ को निश्चय से उपादेय कहते हैं; जो उसी भेदाभेद रत्नत्रय लक्षण मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करते हैं और स्वयं भावना (तद्रूप परिणमन) करते हैं, वे उपाध्याय हैं।

चार प्रकार की निश्चय आराधना से जो शुद्धात्मस्वरूप को साधते हैं, वे साधु हैं। – इस प्रकार पूर्वोक्त लक्षणवाले जिन (अरहन्त) – सिद्ध में तथा साधु शब्द से वाच्य आचार्य, उपाध्याय, साधुओं में जो बाह्य-अभ्यन्तर भक्ति है, वह प्रशस्तराग कहलाती है। वह प्रशस्तराग अज्ञानी जीव तो भोगाकांक्षारूप निदान बन्धपूर्वक करता है तथा ज्ञानी निर्विकल्प समाधि के अभाव में विषय-कषायरूप अशुभराग को नष्ट करने के लिए करता है – ऐसा भावार्थ है॥ १४४॥

अब, अनुकम्पा का स्वरूप कहते हैं –

जो देख दुखित तृषित क्षुधित को दुखित मन हो दया से।
स्वीकार करता है उसे अनुकम्पा है उस भाव से॥ १४५॥

गाथार्थ - तृषातुर, क्षुधातुर या दुःखी को देखकर जो दुःखित मनवाला उनके प्रति कृपापूर्वक प्रवर्तन करता है, उसके यह अनुकम्पा है।

तृषितं वा बुभुक्षितं वा दुःखितं वा कमपि प्राणिनं दृष्ट्वा *जो हि दुहिदमणो* यः खलु दुःखितमनाः सन् *पडिवज्जदि तं किवया* प्रतिपद्यति स्वीकरोति तं प्राणिनं कृपया *तस्सेसा होदि अणुकंपा* तस्यैषा भवत्यनुकंपेति।

तथाहि — तीव्रतृष्णातीव्रक्षुधातीव्ररोगादिना पीडितमवलोक्याज्ञानी जीवः केनाप्युपायेन प्रतिकारं करोतीति व्याकुलो भूत्वानुकंपां करोति, ज्ञानी तु स्वस्य भावनामलभमानः सन् संक्लेशपरित्यागेन यथासंभवं प्रतिकारं करोति तं दुःखितं दृष्ट्वा विशेषसंवेगवैराग्यभावनां च करोतीति सूत्र-तात्पर्यम्॥ १४५॥

अथ चित्तकलुषतास्वरूपं प्रतिपादयति —

कोधो व जदा माणो माया लोहो व चित्तमासेज्ज।(१३८)
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति॥ १४६॥

कोधो व उत्तमक्षमापरिणतिरूपशुद्धात्मतत्त्वसंवित्तेः प्रतिपक्षभूतक्रोधादयो वा *जदा माणो*

टीकार्थ - तृषातुर, क्षुधातुर या दुःखित किसी प्राणी को देखकर ***जो हि दुहिदमणो*** जो वास्तव में दुःखित मन होता हुआ ***पडिवज्जदि तं किवया*** उस प्राणी को कृपापूर्वक स्वीकार करता है, ***तस्सेसा होदि अणुकंपा*** उसके यह अनुकम्पा होती है।

वह इस प्रकार – तीव्र प्यास, तीव्र क्षुधा, तीव्र रोग आदि से पीड़ित को देखकर 'किसी भी उपाय से प्रतिकार करता हूँ' – इस प्रकार अज्ञानी जीव व्याकुल होकर अनुकम्पा करता है; परन्तु ज्ञानी तो स्वयं की भावना/आत्मलीनता को प्राप्त न करता हुआ, संक्लेश के परित्यागपूर्वक यथासम्भव प्रतिकार करता है तथा उस दुःखी को देखकर विशेष संवेग-वैराग्यभावना करता है – ऐसा सूत्र तात्पर्य है॥ १४५॥

अब, चित्त की कलुषता का स्वरूप प्रतिपादित करते हैं –

निज चित्त आश्रय प्राप्त कर मद क्रोध माया लोभ या।
करते क्षुभित जब जीव को तो कलुषता वह बुध कहा॥ १४६॥

गाथार्थ - जब चित्त का आश्रय पाकर क्रोध, मान, माया, लोभ जीव को क्षुब्ध करते हैं; तब उसे ज्ञानी, कलुषता कहते हैं।

टीकार्थ - ***कोधो व*** उत्तमक्षमा परिणतिरूप शुद्धात्मतत्त्व की संवित्ति से प्रतिपक्षभूत होनेवाले क्रोधादि अथवा ***जदा माणो*** जिस समय निरहङ्कार शुद्धात्मा की उपलब्धि से प्रतिकूल

निरहंकारशुद्धात्मोपलब्धेः प्रतिकूलो यदा काले मानो वा *माया* निःप्रपञ्चात्मोपलंभविपरीता माया वा *लोहो व* शुद्धात्मभावनोत्थतृप्तेः प्रतिबंधको लोभो वा *चित्तमासेज्ज* चित्तमाश्रित्य *जीवस्स कुणदि खोहं* अक्षुभितशुद्धात्मानुभूतेर्विपरीतं जीवस्य क्षोभं चित्तवैकल्यं करोति *कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति* तत्क्रोधादिजनितं चित्तवैकल्यं कालुष्यमिति बुधा वदंति कथयंतीति।

तद्यथा — तस्य कालुष्य विपरीतमकालुष्यं भण्यते तच्चाकालुष्यं पुण्यास्त्रवकारणभूतं कदाचिद -नंतानुबंधिकषायमंदोदये सत्यज्ञानिनो भवति, कदाचित्पुनर्निर्विकारस्वसंवित्त्यभावे सति दुर्ध्यानवंचनार्थं ज्ञानिनोऽपि भवतीत्यभिप्रायः॥ १४६॥

एवं गाथाचतुष्टयेन पुण्यास्त्रवप्रकरणं गतम्।

अथ गाथाद्वयेन पापास्त्रवस्वरूपं निरूपयति —

चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु।(१३९)
परपरितावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि॥ १४७॥

मान, वा ***माया*** अथवा निःप्रपञ्च आत्मा की उपलब्धि से विपरीत माया, ***लोहो व*** अथवा शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न तृप्ति का प्रतिबन्धक लोभ ***चित्तमासेज्ज*** चित्त का आश्रयकर ***जीवस्स कुणदि खोहं*** अक्षुभित शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत जीव को क्षोभ, चित्त की विकलता करता है, ***कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति*** तो वह क्रोधादि जनित चित्त की विकलता, कलुषता है — ऐसा ज्ञानी कहते हैं।

वह इस प्रकार — उस कलुषता से विपरीत अकलुषता कहलाती है और वह पुण्यास्त्रव की कारणभूत अकलुषता अनन्तानुबन्धी कषाय का मन्द उदय होने पर कदाचित् अज्ञानी को होती है तथा निर्विकार स्वसंवित्ति का अभाव होनेपर दुर्ध्यान को नष्ट करने के लिए कदाचित् ज्ञानी के भी होती है — ऐसा अभिप्राय है॥ १४६॥

इस प्रकार चार गाथा द्वारा पुण्यास्त्रव का प्रकरण पूर्ण हुआ।

अब, दो गाथा द्वारा पापास्त्रव के स्वरूप का निरूपण करते हैं —

चर्या प्रमाद-बहुल कलुषता लुब्धता हो विषय में।
परिताप पर अपवादपर ये पाप का आस्त्रव करें॥ १४७॥

गाथार्थ - प्रमाद की बहुलतायुक्त चर्या, कलुषता और विषयों में लोलुपता तथा पर को परिताप देना और पर का अपवाद करना, पाप का आस्त्रव करता है।

चरिया पमादबहुला निःप्रमादचिच्चमत्कारपरिणतेः प्रतिबंधिनी प्रमादबहुला चर्या परिणति -श्चारित्रपरिणतिः *कालुस्सं* अकलुषचैतन्यचमत्कारमात्राद्विपरीता कालुष्यपरिणतिः *लोलदा य विसयेसु* विषयातीतात्मसुखसंवित्तेः प्रतिकूला विषयलौल्यपरिणतिः *परपरिदाव* परपरितापरहितशुद्धात्मानुभूतेर्वि -लक्षणा परपरितापपरिणतिः *अपवादो* निरपवादस्वसंवित्तेर्विपरीता परापवादपरिणतिश्चेति *पापस्स य आसवं कुणदि* इयं पञ्चप्रकारा परिणतिर्द्रव्यपापास्त्रवकारणभूता भावपापास्त्रवो भण्यते भावपापा -स्त्रवनिमित्तेन मनोवचनकाययोगद्वारेणागतं द्रव्यकर्म द्रव्यपापास्त्रव इति सूत्रार्थः॥ १४७॥

अथ भावपापास्त्रवस्य विस्तरं कथयति —

सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अट्टरुद्दाणि। (१४०)
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति॥ १४८॥

सण्णाओ आहारादिसंज्ञारहितशुद्धचैतन्यपरिणतेर्भिन्नाश्चतस्त्र आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञा

टीकार्थ - ***चरिया पमादबहुला*** निष्प्रमाद चैतन्य चमत्कारमय परिणति की प्रतिबन्धिनी प्रमाद की बहुलतावाली चर्या, परिणति, चारित्र की परिणति; ***कालुस्सं*** अकलुष चैतन्य चमत्कारमात्र से विपरीत कलुषतारूप परिणति, ***लोलदा य विसयेसु*** विषयातीत आत्मसुखसंवित्ति से प्रतिकूल विषयों में लोलुपतारूप परिणति, ***परपरिदाव*** पर परिताप से रहित शुद्धात्मा की अनुभूति से विलक्षण पर परिताप (दूसरों को कष्ट देने) रूप परिणति, ***अपवादो*** तथा निरपवाद स्वसंवित्ति से विपरीत पर का अपवाद करनेरूप परिणति, ***पापस्स य आसवं कुणदि*** यह पाँच प्रकार की परिणति, द्रव्य पापास्त्रव की कारणभूत भाव पापास्त्रव कहलाती है; भाव पापास्त्रव के निमित्तभूत मन, वचन, कायरूप योगद्वार से आए हुए द्रव्यकर्म, द्रव्यपापास्त्रव हैं — ऐसा सूत्रार्थ है॥ १४७॥

अब, भाव पापास्त्रव का विस्तार से कथन करते हैं —

संज्ञा त्रिलेश्या इन्द्रियों की तंत्रता आर्त रौद्र वा।
हो दुष्प्रयुक्तता ज्ञान की व मोह पापप्रदा सदा॥ १४८॥

गाथार्थ - (चार) संज्ञाएँ, तीन लेश्याएँ, इन्द्रियों की अधीनता, आर्त और रौद्रध्यान, दुष्प्रयुक्त ज्ञान और मोह — ये पापप्रद हैं।

टीकार्थ - ***सण्णाओ*** आहार आदि संज्ञारहित शुद्ध चैतन्य परिणति से भिन्न आहार, भय, मैथुन, परिग्रह — ये चार संज्ञाएँ; ***तिलेस्सा*** कषाय-योग — दोनों के अभावरूप विशुद्ध

तिलेस्सा कषाययोगद्वयाभावरूपविशुद्धचैतन्यप्रकाशात्पृथग्भूताः कषायोदयरंजितयोगप्रवृत्तिलक्षणा-स्तिस्रः कृष्णनीलकापोतलेश्याः *इंदियवसदा य* स्वाधीनातीन्द्रियसुखास्वादपरिणतेः प्रच्छादिका पञ्चेंद्रियविषयाधीनता *अट्टरुद्दाणि* समस्तविभावाकांक्षारहितशुद्धचैतन्यभावनायाः प्रतिबंधकं इष्ट-संयोगानिष्टवियोगव्याधिविनाशभोगनिदानाकांक्षारूपेणोद्रेकभावप्रचुरं चतुर्विधमार्तध्यानं क्रोधावेश-रहितशुद्धात्मानुभूतिभावनायाः पृथग्भूतं क्रूरचित्तोत्पन्नं हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणानंदरूपं चतुर्विधं रौद्रध्यानं च *णाणं च दुप्पउत्तं* शुभशुद्धोपयोगद्वयं विहाय मिथ्यात्वरागाद्यधीनत्वेनान्यत्र दुष्टभावे प्रवृत्तं दुःप्रयुक्तं ज्ञानं *मोहो* मोहोदयजनितममत्वादिविकल्पजालवर्जितस्वसंवित्तेर्विनाशको दर्शनचारित्रमोहश्च इति विभावपरिणामप्रपञ्चः *पावप्पदा होदि* पापप्रदायको भवति।

एवं द्रव्यपापास्रवकारणभूतः पूर्वसूत्रोदितभावपापास्रवस्य विस्तरो ज्ञातव्य इत्यभिप्रायः ॥१४८॥

किं च — पुण्यपापद्वयं पूर्वं व्याख्यातं तेनैव पूर्यते, पुण्यपापास्रवव्याख्यानं किमर्थमिति प्रश्ने परिहारमाह — जलप्रवेशद्वारेण जलमिव पुण्यपापद्वयमास्रवत्यागच्छत्यनेनेत्यास्रवः। अत्रागमनं मुख्यं

चैतन्य प्रकाश से पृथग्भूत कषाय के उदय से रञ्जित योग-प्रवृत्ति लक्षण तीन कृष्ण, नील, कापोत लेश्याएँ; ***इन्दियवसदा य*** स्वाधीन अतीन्द्रिय सुखास्वाद परिणति की प्रच्छादिकारूप पञ्चेन्द्रिय विषयों की अधीनता; ***अट्टरुद्दाणि*** समस्त विभावों की आकाँक्षा से रहित शुद्ध चैतन्यभावना का प्रतिबन्धक इष्टसंयोग, अनिष्टवियोग, व्याधिविनाश, भोग-निदान की आकांक्षारूप से उद्रेक भाव-प्रचुरतामय चार प्रकार का आर्तध्यान; क्रोधावेश से रहित शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप भावना से पृथग्भूत क्रूरचित्त से उत्पन्न हिंसा, असत्य, चोरी, विषयसंरक्षण से आनन्दरूप चार प्रकार का रौद्रध्यान; ***णाणं च दुप्पउत्तं*** शुभ-शुद्ध – दोनों उपयोगों को छोड़कर मिथ्यात्व-रागादि के अधीन होने से अन्यत्र दुष्ट भाव में प्रवृत्त ज्ञान दुष्प्रयुक्त ज्ञान; ***मोहो*** मोह के उदय से उत्पन्न ममत्व आदि विकल्पजाल से रहित स्वसंवित्ति का विनाशक दर्शन और चारित्र मोह – इस प्रकार के विभाव परिणामों का प्रपञ्च ***पावप्पदो हवदि*** पाप-प्रदायक है।

इस प्रकार द्रव्य-पापास्रव के कारणभूत पूर्व सूत्र में कहे गए भाव-पापास्रव का विस्तार जानना चाहिए – ऐसा अभिप्राय है॥ १४८॥

दूसरी बात यह है कि पुण्य-पाप दोनों का पहले व्याख्यान किया जा चुका है, वह ही पर्याप्त था, पुण्य-पाप आस्रव का व्याख्यान किसलिए किया? ऐसा प्रश्न होने पर परिहार कहते / करते हैं – जलप्रवेश द्वार से जल-आस्रव के समान पुण्य-पाप दोनों आस्रवित होते हैं, आते हैं; इस कारण उन्हें आस्रव कहा। यहाँ आगमन मुख्य है; वहाँ तो पुण्य-पाप दोनों के आगमन

तत्र तु पुण्यपापद्वयस्यागमनानंतरं स्थित्यनुभागबंधरूपेणावस्थानं मुख्यमित्येतावद्विशेषः।

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यपापास्त्रवव्याख्यानमुख्यतया गाथाषट्क -समुदायेन षष्ठमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

अथ ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिसमस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्प -वर्जितशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणपरमोपेक्षासंयमसाध्ये संवरव्याख्याने *इंदियकसाय....* इत्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका।

अथ पूर्वसूत्रकथितपापास्त्रवस्य संवरमाख्याति —

इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठुमग्गम्मि।(१४१)
जावत्तावत्तेसिं पिहिदं पावासवच्छिद्दं॥ १४९॥

इंद्रियकषायसंज्ञा *णिग्गहिदा* निर्गृहीता निषिद्धा *जेहिं* यैः कर्तृभूतैः पुरुषैः *सुट्ठु* सुष्ठु विशेषेण। किंकृत्वा ? पूर्वं स्थित्वा। क्व ? *मग्गम्मि* संवरकारणरत्नत्रयलक्षणे मोक्षमार्गे। कथं निर्गृहीता ?

के बाद स्थिति-अनुभाग बन्धरूप से अवस्थान मुख्य था — इतना दोनों में अन्तर है।

इस प्रकार ***नौ पदार्थ-प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार*** में ***पुण्य-पाप आस्त्रव*** के व्याख्यान की मुख्यतावाली छह गाथाओं के समुदाय द्वारा ***छठवाँ अन्तराधिकार*** पूर्ण हुआ।

अब, ख्याति, पूजा, लाभ, दृष्ट, श्रुत, अनुभूत भोगों की आकाँक्षारूप निदान बन्ध आदि समस्त शुभ-अशुभ सङ्कल्प-विकल्प से रहित शुद्धात्मसंवित्ति लक्षण परम उपेक्षा संयम से साध्य संवर के व्याख्यान से ***इंदियकसाय*** इत्यादि तीन गाथा द्वारा समुदायपातनिका है।

अब, पूर्वकथित पापास्त्रव के संवर का आख्यान करते हैं —

जो जितनी इन्द्रिय कषायें, संज्ञाएं रोके मार्ग में।
उतने ही उनके पापआस्त्रव छिद्र रुकते स्वयं से॥ १४९॥

गाथार्थ - सम्यक्तया मार्ग में रहकर जिसके द्वारा जितना इन्द्रिय, कषाय और संज्ञाओं का निग्रह किया जाता है, उसके उतना पापास्त्रवों का छिद्र बन्द होता है।

टीकार्थ - इन्द्रिय, कषाय, संज्ञा ***णिग्गहिदा*** निर्गृहीत, निषिद्ध किए, रोके गए हैं, ***जेहिं*** कर्ताभूत जिन पुरुषों द्वारा, ***सुट्ठु*** सुष्ठु, विशेषरूप से। क्या करके रोके गए हैं ? पहले स्थित होकर रोके गए हैं। कहाँ स्थित होकर रोके गए हैं ? ***मग्गम्हि*** संवर के कारणभूत रत्नत्रय लक्षण मोक्षमार्ग में स्थित होकर रोके गए हैं ? कैसे रोके गए हैं ? ***यावत्*** जब जिस गुणस्थान में जितने

यावत् यस्मिन् गुणस्थाने यावंतं कालं यावतांशेन –

सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा।
दुगतीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को॥

इति गाथाकथितत्रिभंगीक्रमेण तावत्तस्मिन् गुणस्थाने तावत्कालं तावतांशेन स्वकीयस्वकीय-गुणस्थानपरिणामानुसारेण *तेसिं* तेषां पूर्वोक्तपुरुषाणां *पिहिदं* पिहितं प्रच्छादितं झंपितं भवति। किं ? *पापासवच्छिद्दं* पापास्त्रवछिद्रं पापागमनद्वारमिति।

अत्र सूत्रे पूर्वगाथोदितद्रव्यपापास्त्रवकारणभूतस्य भावपापास्त्रवस्य निरोधः तु द्रव्यपापास्त्रवसंवर-कारणभूतो भावपापास्त्रवसंवरो ज्ञातव्य इति सूत्रार्थः॥ १४९॥

अथ सामान्येन पुण्यपापसंवरस्वरूपं कथयति –

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु।(१४२)
णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स॥ १५०॥

काल, जिस अंश से ''(गुणस्थान के अनुसार क्रमशः) सोलह, पच्चीस, शून्य, दश, चार, छह, एक; अपूर्वकरण में २ + ३० + ४ = कुल छत्तीस; पाँच, सोलह और योगी के (तेरहवें गुणस्थान में) एक की बन्ध-व्युच्छित्ति होती है।''

– इस प्रकार गाथा में कहे गए त्रिभङ्गी के क्रम से रोके गए हैं; तब उस गुणस्थान में, उस समय, उतने अंश से, अपने-अपने गुणस्थान के परिणामानुसार ***तेसिं*** उन पूर्वोक्त पुरुषों के, ***पिहिदं*** पिहित, प्रच्छादित, झंपित, बन्द होता है। क्या बन्द होता है ? ***पापासवच्छिद्दं*** पापास्त्रव का छिद्र, पापों के आने का द्वार बन्द होता है।

यहाँ सूत्र में पूर्व गाथा कथित द्रव्य पापास्त्रव के कारणभूत भाव पापास्त्रव का निरोध बताया है, उससे द्रव्य-पापास्त्रव के संवर का कारणभूत भाव पापास्त्रव का संवर जानना चाहिए – ऐसा सूत्रार्थ है॥ १४९॥

अब, सामान्य से पुण्य-पाप संवर का स्वरूप कहते हैं –

सम दुःखसुख जिन मुनि के न राग द्वेष विमोह हो।
सब द्रव्य में तो नहीं उनके शुभाशुभ आस्त्रवित हों॥ १५०॥

गाथार्थ - सुख-दुःख में समभावी जिन भिक्षु / मुनि के सभी द्रव्यों में राग, द्वेष, मोह नहीं है; उन्हें शुभ-अशुभ का आस्त्रव नहीं होता है।

जस्स ण विज्जदि यस्य न विद्यते। स कः ? *रागो दोसो मोहो व* जीवस्य शुद्धपरिणामात् परमधर्मलक्षणाद्विपरीतो रागद्वेषपरिणामो मोहपरिणामो वा। केषु विषयेषु ? *सव्वदव्वेसु* शुभाशुभसर्व -द्रव्येषु *णासवदि सुहं असुहं* नास्त्रवति शुभाशुभकर्म। कस्य ? *भिक्खुस्स* तस्य रागादिरहितशुद्धोपयोगेन तपोधनस्य। कथंभूतस्य ? *समसुहदुक्खस्स* समस्तशुभाशुभसंकल्परहितशुद्धात्मध्यानोत्पन्नपरमसुखा -मृततृप्तिरूपैकाकारसमरसीभावबलेन अनभिव्यक्तसुखदुःखरूपहर्षविषादविकारत्वात्समसुख -दुःखस्येति।

अत्र शुभाशुभसंवरसमर्थः शुद्धोपयोगो भावसंवरः भावसंवराधारेण नवतरकर्मनिरोधो द्रव्यसंवर इति तात्पर्यार्थः॥ १५०॥

अथायोगिकेवलिजिनगुणस्थानापेक्षया निरवशेषेण पुण्यपापसंवरं प्रतिपादयति —

जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स।(१४३)
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स॥ १५१॥

टीकार्थ - ***जस्स ण विज्जदि*** जिनके नहीं है। वह क्या नहीं है ? ***रागो दोसो मोहो*** जीव के शुद्धपरिणामरूप परम धर्म लक्षण से विपरीत राग-द्वेषपरिणाम या मोहपरिणाम नहीं है। किन विषयों में ये नहीं हैं ? ***सव्वदव्वेसु*** सभी शुभाशुभ द्रव्यों में ये नहीं हैं। ***णासवदि सुहं असुहं*** शुभाशुभ कर्म आस्त्रवित नहीं होते हैं। किसके ये आस्त्रवित नहीं होते हैं ? ***भिक्खुस्स*** रागादि से रहित शुद्धोपयोग से सहित उन तपोधन के वे आस्त्रवित नहीं होते हैं। कैसे तपोधन के वे आस्त्रवित नहीं होते हैं ? ***समसुहदुक्खस्स*** समस्त शुभ-अशुभ सङ्कल्प से रहित शुद्धात्मा के ध्यान से उत्पन्न परम सुखामृत की तृप्तिरूप एकाकार समरसी भाव के बल से सुख-दुःखरूप हर्ष-विषादमय विकार व्यक्त नहीं होने के कारण, सुख-दुःख में समभावी तपोधन के वे आस्त्रवित नहीं होते हैं।

यहाँ शुभ-अशुभ के संवर में समर्थ शुद्धोपयोग भावसंवर है और भावसंवर के आधार से नवीन द्रव्यकर्मों का निरोध / नहीं आना, द्रव्यसंवर है — ऐसा तात्पर्यार्थ है॥ १५०॥

अब, अयोग-केवली जिन (चौदहवें) गुणस्थान की अपेक्षा सम्पूर्ण पुण्य-पाप-संवर का प्रतिपादन करते हैं —

जब जिन विरत के योग में, ना पाप हो ना पुण्य ही।
हो तभी उनके शुभाशुभकृत, कर्म का संवरण भी॥ १५१॥

गाथार्थ - वास्तव में जब जिस विरत के योग में पुण्य-पाप नहीं है, तब उसके शुभाशुभ कृत कर्म का संवर होता है।

जस्स यस्य योगिनः। कथंभूतस्य? *विरदस्स* शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितस्य *णत्थि* नास्ति *जदा खलु* यदा काले खलु स्फुटम्। किं नास्ति? *पुण्णं पावं च* पुण्यपापद्वयम्। क्व। नास्ति? *जोगे* योगे मनोवाक्कायकर्मणि। न केवलं पुण्यपापद्वयं नास्ति। वस्तुतस्तु योगोऽपि संवरणं *तस्स तदा* तस्य भगवतस्तदा संवरणं भवति। कस्य संबंधि? *कम्मस्स* पुण्यपापरहितानंतगुणस्वरूपपरमात्मनो विलक्षणस्य कर्मणः। पुनरपि किंविशिष्टस्य? *सुहासुहकदस्स* शुभाशुभकृतस्येति।

अत्र निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिर्भावसंवरस्तन्निमित्तद्रव्यकर्मनिरोधो द्रव्यसंवर इति भावार्थः॥ १५१॥

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये संवरपदार्थव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण सप्तमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

अथ शुद्धात्मानुभूतिलक्षणशुद्धोपयोगसाध्ये निर्जराधिकारे *संवरजोगेहिं जुदो...* इत्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका।

अथ निर्जरास्वरूपं कथयति —

टीकार्थ - ***जस्स*** जिस योगी के। कैसे जिस योगी के? ***विरदस्स*** शुभाशुभ सङ्कल्प-विकल्प से रहित जिस योगी के ***णत्थि*** नहीं है, ***जदा खलु*** जिस समय वास्तव में। उसके क्या नहीं है? ***पुण्णं पावं च*** पुण्य और पाप दोनों उसके नहीं हैं। उसके वे किसमें नहीं हैं? ***जोगे*** योग में मन, वचन, काय के कर्म में / व्यापार में उसके वे नहीं हैं; वास्तव में तो योग भी संवरणरूप है / नष्ट हो गया है; ***तस्स तदा*** उन भगवान के तब संवर होता है। उनके किस सम्बन्धी संवर होता है? ***कम्मस्स*** पुण्य-पापरहित अनन्त गुणस्वरूप परमात्मा से विलक्षण कर्म का संवर होता है। किस विशेषतावाले कर्म का संवर होता है? ***सुहासुहकदस्स*** शुभाशुभकृतकर्म का संवर होता है।

यहाँ निर्विकार शुद्धात्मानुभूति भावसंवर है और उसके निमित्त से द्रव्यकर्म का निरोध होना द्रव्यसंवर है - ऐसा भावार्थ है॥ १५१॥

इस प्रकार ***नौ पदार्थों के प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार*** में ***संवर-पदार्थ*** के व्याख्यान की मुख्यतावाली तीन गाथाओं से ***सातवाँ अन्तराधिकार*** पूर्ण हुआ।

अब, शुद्धात्मानुभूति लक्षण शुद्धोपयोग से साध्य निर्जरा-अधिकार में ***संवरजोगेहिं जुदो....*** इत्यादि तीन गाथा द्वारा समुदायपातनिका है।

अब, निर्जरा का स्वरूप कहते हैं —

संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं। (१४४)
कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं॥ १५२॥

संवरजोगेहिं जुदो संवरयोगाभ्यां युक्तः निर्मलात्मानुभूतिबलेन शुभाशुभपरिणामनिरोधः संवरः, निर्विकल्पलक्षणध्यानशब्दवाच्यशुद्धोपयोगो योगस्ताभ्यां युक्तः _तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं_ तपोभिर्य -श्चेष्टते बहुविधैः अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशैयासनकायक्लेशभेदेन शुद्धात्मानुभूतिसहकारिकारणैर्बहिरंगषड्विधस्तथैव प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यान -भेदेन सहजशुद्धस्वस्वरूपप्रतपनलक्षणैरभ्यंतरषड्विधैश्च तपोभिर्वर्तते यः _कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं_ कर्मणां निर्जरणं बहुकानां करोति स पुरुषः नियतं निश्चितमिति।

अत्र द्वादशविधतपसा वृद्धिंगतो वीतरागपरमानंदैकलक्षणः कर्मशक्तिनिर्मूलनसमर्थः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा तस्य शुद्धोपयोगस्य सामर्थ्येन नीरसीभूतानां पूर्वोपार्जितकर्मपुद्गलानां संवरपूर्वकभावेनैकदेशसंक्षयो द्रव्यनिर्जरेति सूत्रार्थः॥ १५२॥

जो योग संवर से सहित, बहुविध तपों में वर्तता।
वह नियम से करता अनेकों, कर्म की भी निर्जरा॥ १५२॥

गाथार्थ – संवर और योग से युक्त जो जीव अनेक प्रकार के तपों में प्रवृत्ति करता है, वह नियम से अनेक कर्मों की निर्जरा करता है।

टीकार्थ – ***संवरजोगेहिं जुदो*** संवर और योग से युक्त, निर्मल आत्मानुभूति के बल से शुभाशुभ परिणामों का निरोध होना संवर है तथा निर्विकल्प लक्षण ध्यान शब्द का वाच्य शुद्धोपयोग योग है; उन दोनों से युक्त; ***तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं*** जो अनेक प्रकार के तपों में चेष्टा करता है, शुद्धात्मानुभूति के सहकारी कारणभूत अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशैयासन, कायक्लेश के भेद से छह प्रकार के बहिरङ्ग तपों में और उसी प्रकार सहज शुद्ध स्वरूप में प्रतपन लक्षण प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान के भेद से छह अन्तरङ्ग तपों में प्रवृत्ति करता है; ***कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं*** वह पुरुष निश्चित ही अनेक कर्मों की निर्जरा करता है।

यहाँ बारह प्रकार के तपों से वृद्धिङ्गत, वीतराग परमानन्द एक लक्षणमय, कर्मनिर्मूलन में (कर्म को जड़मूल से नष्ट करने में) समर्थ शुद्धोपयोग भावनिर्जरा है तथा उस शुद्धोपयोग की सामर्थ्य से नीरसीभूत (फल देने की क्षमतारहित) पूर्वोपार्जित कर्म-पुद्गलों का संवरपूर्वक भाव द्वारा एकदेश संक्षय होना द्रव्यनिर्जरा है – ऐसा सूत्रार्थ है॥ १५२॥

अथात्मध्यानं मुख्यवृत्त्या निर्जराकारणमिति प्रकटयति —

जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठपसाहगो हि अप्पाणं। (१४५)
मुणिदूण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं॥ १५३॥

जो संवरेण जुत्तो यः संवरेण युक्तः यः कर्ता शुभाशुभरागाद्यास्त्रवनिरोधलक्षणसंवरेण युक्तः *अप्पट्ठपसाहगो हि* आत्मार्थप्रसाधकः हि स्फुटं हेयोपादेयतत्त्वं विज्ञाय परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्य शुद्धात्मा -नुभूतिलक्षणकेवलस्वकार्यप्रसाधकः *अप्पाणं* सर्वात्मप्रदेशेषु निर्विकारनित्यानन्दैकाकारपरिणतमात्मानं *मुणिदूण* मत्वा ज्ञात्वा रागादिविभावरहितस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा *झादि* निश्चलात्मोपलब्धिलक्षण -निर्विकल्पध्यानेन ध्यायति *णियदं* निश्चितं घोरोपसर्गपरिषहप्रस्तावे निश्चलं यथा भवति। कथंभूत -मात्मानं ? *णाणं* निश्चयेन गुणगुणिनोरभेदाद्विशिष्टभेदज्ञानपरिणतत्वादात्मापि ज्ञानं *सो* सः पूर्वोक्तलक्षणः परमात्मध्यानं ध्याता। किं करोति ? *संधुणोदि कम्मरयं* संधुनोति कर्मरजो निर्जरयतीति।

अत्र वस्तुवृत्त्या ध्यानं निर्जराकारणं व्याख्यातमिति सूत्रतात्पर्यम्॥ १५३॥

अब, मुख्य वृत्ति से आत्मध्यान निर्जरा का कारण है, ऐसा प्रगट करते हैं —

संवर सहित आत्मार्थ साधक, आत्मा को जानकर।
जो नियत ध्यावे ज्ञान उसके, निर्जरित हो कर्मरज॥ १५३॥

गाथार्थ - आत्मार्थ का प्रसाधक, संवर से युक्त जो (जीव) वास्तव में आत्मा को जानकर नियत ज्ञान का ध्यान करता है, वह कर्मरज की निर्जरा करता है।

टीकार्थ - ***जो संवरेण जुत्तो*** जो संवर से युक्त, शुभाशुभ रागादि आस्त्रवों के निरोध लक्षणमय संवर से सहित कर्तारूप जो ***अप्पट्ठपसाहगो हि*** वास्तव में आत्मार्थ का प्रसाधक है; हेय-उपादेय तत्त्व को जानकर पर सम्बन्धी प्रयोजनों से निर्वृत्त होकर, शुद्धात्मानुभूति लक्षणमय मात्र अपने कार्य को प्रकृष्टरूप से साधनेवाला; ***अप्पाणं*** सम्पूर्ण आत्मप्रदेशों में निर्विकार, नित्यानन्द, एकाकाररूप से परिणत आत्मा को ***मुणिदूण*** मानकर, जानकर, रागादि विभावरहित स्वसम्वेदन-ज्ञान से जानकर, ***झादि*** निश्चल आत्मोपलब्धि लक्षण निर्विकल्प ध्यान द्वारा ध्याता है। ***णियदं*** निश्चित, घोर उपसर्ग-परिषह का प्रसङ्ग आने पर निश्चल जैसा होता है। कैसे आत्मा का ध्यान करता है ? ***णाणं*** निश्चय की अपेक्षा गुण-गुणी का अभेद होने से विशिष्ट भेदज्ञानरूप परिणत होने के कारण आत्मा ही ज्ञान है; ***सो*** वह पूर्वोक्त लक्षण परमात्मा का ध्यान करनेवाला ध्याता क्या करता है ? ***संधुणोदि कम्मरयं*** वह कर्मरज निर्जरित करता है।

अथ पूर्वं यन्निर्जराकारणं भणितं ध्यानं तस्योत्पत्तिसामग्रीं लक्षणं च प्रतिपादयति —

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिणामो।(१४६)
तस्स सुहासुहदहणो झाणमओ जायदे अगणी॥ १५४॥

जस्स ण विज्जदि **यस्य न विद्यते। स कः ?** ***रागो दोसो मोहो व*** **दर्शनचारित्रमोहोदयजनितदेहादि -ममत्वरूपविकल्पजालविरहितनिर्मोहशुद्धात्मसंवित्त्यादिगुणसहितपरमात्मविलक्षणो रागद्वेषपरिणामो मोहपरिणामो वा। पुनरपि किं नास्ति यस्य योगिनः ?** ***जोगपरिणामो*** **शुभाशुभकर्मकांडरहितनिः -क्रियशुद्धचैतन्यपरिणतिरूपज्ञानकांडसहितपरमात्मपदार्थस्वभावाद्विपरीतो मनोवचनकायक्रिया -रूपव्यापारः। इयं ध्यानसामग्री कथिता।**

अथ ध्यानलक्षणं कथ्यते — ***तस्स सुहासुहदहणो झाणमओ जायदे अगणी*** **तस्य निर्विकारनिः -क्रियचैतन्यचमत्कारपरिणतस्य शुभाशुभकर्मेन्धनदहनसामर्थ्यलक्षणो ध्यानमयोऽग्निर्जायते इति।**

यहाँ वस्तु-वृत्ति से (मुख्यरूप से) ध्यान, निर्जरा का कारण है, ऐसा व्याख्यान किया गया है — यह सूत्र-तात्पर्य है॥ १५३॥

अब, पहले जो निर्जरा का कारण ध्यान कहा गया है, उसे उत्पन्न करनेवाली सामग्री और लक्षण का प्रतिपादन करते हैं —

ना राग द्वेष विमोह जिसके, योग परिणम भी नहीं।
उत्पन्न हो ध्यानाग्नि उसके, शुभाशुभ दाहक वही॥ १५४॥

गाथार्थ - जिसके राग, द्वेष, मोह तथा योग परिणमन नहीं है, उसके शुभाशुभ को जलानेवाली ध्यानमय अग्नि उत्पन्न होती है।

टीकार्थ - ***जस्स ण विज्जदि*** जिसके नहीं है। वह क्या नहीं है ? ***रागो दोसो मोहो व*** दर्शन-चारित्र-मोह के उदय से उत्पन्न ममत्वरूप विकल्प जाल से विरहित निर्मोह शुद्धात्मा की संवित्ति आदि गुणसहित परमात्मा से विलक्षण राग-द्वेष परिणाम या मोह परिणाम जिसके नहीं है। जिस योगी के और क्या नहीं है ? ***जोगपरिणामो*** शुभ-अशुभ कर्मकाण्ड से रहित निष्क्रिय शुद्ध चैतन्यपरिणतिरूप ज्ञानकाण्डसहित परमात्मपदार्थ के स्वभाव से विपरीत मन, वचन, काय की क्रियारूप व्यापार भी जिसके नहीं है। — यह ध्यान सामग्री कही।

अब, ध्यान का लक्षण कहते हैं — ***तस्स सुहासुहदहणो झाणमओ जायदे अगणी*** निर्विकार निःक्रिय चैतन्य चमत्काररूप परिणत उसके शुभाशुभ कर्मरूपी ईंधन को जलाने में समर्थ लक्षणवाली ध्यानमय अग्नि उत्पन्न होती है।

तथाहि — यथा स्तोकोऽप्यग्निः प्रचुरतृणकाष्ठराशिं स्तोककालेनैव दहति तथा मिथ्यात्व -कषायादिविभावपरित्यागलक्षणेन महावातेन प्रज्वलितस्तथापूर्वाद्भुतपरमाह्लादैकसुखलक्षणेन घृतेन सिंचितो निश्चलात्मसंवित्तिलक्षणो ध्यानाग्निः मूलोत्तरप्रकृतिर्भेदभिन्नं कर्मेन्धनराशिं क्षणमात्रेण दहतीति।

अत्राह शिष्यः — अद्य काले ध्यानं नास्ति। कस्मादिति चेत्? दशचतुर्दशपूर्वश्रुताधारपुरुषा -भावात्प्रथमसंहननाभावाच्च। परिहारमाह — अद्य काले शुक्लध्यानं नास्ति। तथा चोक्तं श्रीकुंडकुंदाचार्य -देवैरेव मोक्षप्राभृते —

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स।
तं अप्पसहावविदे ण हु मण्णइ सो दु अण्णाणी॥
अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहि इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति॥

वह इस प्रकार — जैसे अल्प / थोड़ी सी भी अग्नि बहुत अधिक तृण, काष्ठ की राशि को अल्प समय में ही जला देती है; उसी प्रकार मिथ्यात्व, कषाय आदि विभावों के परित्याग लक्षणरूप महावायु / तेज हवा द्वारा प्रज्वलित तथा अपूर्व अद्भुत परम आह्लादमय एक सुख लक्षणरूप घी से सिञ्चित निश्चल आत्मसंवित्ति लक्षण ध्यानाग्नि मूल-उत्तर प्रकृति भेद से भिन्न कर्मरूप ईंधन-राशि को क्षणमात्र में जला देती है।

यहाँ शिष्य कहता है — इस समय ध्यान नहीं है। क्यों नहीं है? ऐसा प्रश्न करने पर वह कहता है — दश पूर्व, चौदह पूर्व श्रुत के धारक पुरुष का अभाव होने से और प्रथम संहनन का अभाव होने से इस समय ध्यान नहीं होता है।

उसका परिहार कहते / करते हैं — इस समय शुक्लध्यान नहीं होता है (परन्तु धर्मध्यान तो होता है)। वैसा ही श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने मोक्षप्राभृत में कहा है —

'उस आत्मस्वभाव को जाननेवाले ज्ञानी के भरतक्षेत्र दुष्षम काल में भी धर्मध्यान होता है; जो ऐसा नहीं मानता, वह अज्ञानी है।'

'आज भी तीन रत्न से शुद्ध (निश्चय सम्यक्रत्नत्रय-सम्पन्न) आत्मा ध्यान द्वारा ही इन्द्रत्व और लौकान्तिक देवत्व को प्राप्त करते हैं और वहाँ से च्युत होकर (मनुष्य हो) निर्वाण / मोक्ष प्राप्त करते हैं।'

तत्र युक्तिमाह — यद्यद्यकाले यथाख्यातसंज्ञं निश्चयचारित्रं नास्ति तर्हि सरागचारित्रसंज्ञमपहृत-संयममाचरंतु तपस्विनः। तथा चोक्तं तत्त्वानुशासनध्यानग्रंथे —

चरितारो न संत्यद्य यथाख्यातस्य संप्रति।
तत्किमन्ये यथाशक्तिमाचरंतु तपोधनाः॥

यच्चोक्तं सकलश्रुतधारिणां ध्यानं भवति तदुत्सर्गवचनं, अपवादव्याख्याने तु पञ्चसमितित्रिगुप्ति-प्रतिपादकश्रुतिपरिज्ञानमात्रेणैव केवलज्ञानं जायते; यद्येवं न भवति तर्हि — *'तुसमासं घोसंतो सिवभूदी केवली जादो।'* इत्यादि वचनं कथं घटते? तथा चोक्तं चारित्रसारादिग्रंथे पुलाकादिपञ्चनिर्ग्रंथव्याख्यान-काले मुहूर्तादूर्ध्वं ये केवलज्ञानमुत्पादयंति ते निर्ग्रंथा भण्यंते क्षीणकषायगुणस्थानवर्तिनस्तेषामुत्कृष्टेन श्रुतं चतुर्दशपूर्वाणि जघन्येन पुनः पञ्चसमितित्रिगुप्तिसंज्ञा अष्टौ प्रवचनमातरः।

यदप्युक्तं बज्रवृषभनाराचसंज्ञप्रथमसंहननेन ध्यानं भवति तदप्युत्सर्गवचनं अपवादव्याख्यानं पुनरपूर्वादिगुणस्थानवर्तिनां उपशमक्षपकश्रेण्योर्यच्छुक्लध्यानं तदपेक्षया स नियमः अपूर्वादधस्तनगुण-स्थानेषु धर्मध्याने निषेधकं न भवति। तदप्युक्तं तत्रैव तत्त्वानुशासने —

उसमें युक्ति कहते हैं — यदि इस समय यथाख्यात नामक निश्चयचारित्र नहीं है तो तपस्विओं को सरागचारित्र नामक अपहृतसंयम का आचरण करना चाहिए। वैसा ही 'तत्त्वानुशासन' नामक ध्यानग्रन्थ में कहा है —

'आज इस समय यथाख्यातचारित्र नहीं है तो उससे क्या? तपस्वी यथाशक्ति अन्य चारित्र का आचरण करें।'

और जो कहा गया है कि 'सकल श्रुतधारिओं के ध्यान होता है' — वह उत्सर्ग वचन है; अपवाद व्याख्यान में तो पाँच समिति, तीन गुप्ति की प्रतिपादक श्रुति के परिज्ञानमात्र से ही केवलज्ञान प्रगट हो जाता है; यदि ऐसा नहीं होता तो 'तुष-माष का घोष करनेवाले शिवभूति केवली हुए' — इत्यादि वचन कैसे घटित होता? वैसा ही चारित्रसार आदि ग्रन्थों में पुलाक आदि पाँच निर्ग्रन्थों सम्बन्धी व्याख्यान के समय कहा गया है — 'एक मुहूर्त के बाद जो केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, वे निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। उन क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती के श्रुत उत्कृष्ट से चौदह पूर्व और जघन्य से पाँच समिति, तीन गुप्ति नामक आठ प्रवचनमातामात्र होता है।'

और जो यह कहा गया है कि 'बज्रवृषभनाराच नामक प्रथम संहनन से ध्यान होता है' — वह भी उत्सर्ग-वचन है; अपवादव्याख्यान तो अपूर्व (करण नामक आठवें) आदि गुणस्थानवर्ती उपशमक-क्षपकश्रेणी का जो शुक्लध्यान है, उसकी अपेक्षा से है; वह नियम अपूर्वकरण

'यत्पुनर्बज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वचः।
श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तत्राधस्तान्निषेधकम्॥'

एवं स्तोकश्रुतेनापि ध्यानं भवतीति ज्ञात्वा किमपि शुद्धात्मप्रतिपादकं संवरनिर्जराकरणं जरमरणहरं सारोपदेशं गृहीत्वा ध्यानं कर्तव्यमिति भावार्थः। उक्तं च —

'अंतो णत्थि सुदीणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा।
तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ॥'

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये निर्जराप्रतिपादकमुख्यतया गाथात्रयेणाष्टमो-ऽन्तराधिकारः समाप्तः॥ १५४॥

अथ निर्विकारपरमात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयमोक्षमार्गाद्विलक्षणे बंधाधिकारे *जं सुह* मित्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका।

अथ बंधस्वरूपं कथयति —

(आठवें गुणस्थान) से नीचे गुणस्थानों में धर्मध्यान का निषेधक नहीं है। वह भी उसी 'तत्त्वानुशासन' (नामक ग्रन्थ) में कहा है –

'बज्रकायवाले के जो ध्यान आगम में कहा गया है, वह तो श्रेणी सम्बन्धी ध्यान की अपेक्षा कहा गया है; वह कथन उससे नीचे उस ध्यान का (मात्र श्रेणी सम्बन्धी शुक्लध्यान का) निषेधक है।'

इस प्रकार स्तोक/अल्प-श्रुत से भी ध्यान होता है – ऐसा जानकर शुद्धात्मा के प्रतिपादक, संवर-निर्जरा के कारणभूत, जन्म-मरण का नाश करनेवाले कुछ भी उपदेश के सार को ग्रहणकर ध्यान करना चाहिए – ऐसा भावार्थ है। कहा भी है –

'श्रुतिओं का अन्त नहीं है, समय अल्प / कम है और हम दुर्मेधा / कम बुद्धिवाले हैं; अत: वह विशेषरूप से सीख लेना चाहिए, जो जन्म-मरण का क्षय करता है।'

इस प्रकार ***नौ पदार्थ प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार*** में ***निर्जरा-प्रतिपादन*** की मुख्यतावाली तीन गाथा द्वारा ***आठवाँ अन्तराधिकार*** पूर्ण हुआ॥ १५४॥

अब, निर्विकार परमात्मा के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, अनुष्ठानरूप निश्चयमोक्षमार्ग से विलक्षण बन्धाधिकार में ***जं सुह*** इत्यादि तीन गाथा द्वारा समुदाय पातनिका है।

अब, बन्ध का स्वरूप कहते हैं –

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा। (१४७)
सो तेण हवदि बंधो पोग्गलकम्मेण विविहेण॥ १५५॥

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा **यं शुभाशुभमुदीर्णं भावं रक्तः करोति यद्यात्मा निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावोऽपि व्यवहारेणानादिबंधनोपाधिवशाद्रक्तः सन् निर्मलज्ञाना-नंदादिगुणास्पदशुद्धात्मस्वरूपपरिणतेः पृथग्भूतामुदयागतं शुभमशुभं वा स्वसंवित्तेश्च्युतो भूत्वा भावं परिणामं करोति *सो तेण हवदि बंधो* तदा स आत्मा तेन रागपरिणामेन कर्तृभूतेन बंधो भवति। केन करणभूतेन? *पोग्गलकम्मेण विविहेण* कर्मवर्गणारूपपुद्गलकर्मणा विविधेनेति।**

अत्र शुद्धात्मपरिणतेर्विपरीतः शुभाशुभपरिणामो भावबंधः तन्निमित्तेन तैलम्रक्षितानां मलबंध इव जीवेन सह कर्मपुद्गलानां संश्लेषो द्रव्यबंध इति सूत्राभिप्रायः॥ १५५॥

यदि रक्त आत्मा शुभ अशुभ से, व्यक्त भाव करे सदा।
तो वह उसी से विविध पुद्गल, कर्म से बँधता रहा॥ १५५॥

गाथार्थ - यदि रागी आत्मा, उन शुभ-अशुभ से प्रगट होनेवाला भाव करता है तो वह उसके द्वारा अनेक प्रकार के पुद्गलकर्म से बँधता है।

टीकार्थ - ***जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा*** उस शुभ-अशुभ से व्यक्त भाव को यदि रक्त आत्मा करता है; निश्चयनय से शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी होने पर भी स्वसम्वित्ति से च्युत होकर यदि यह आत्मा व्यवहार से अनादि-बन्धन की उपाधि के वश रक्त / आसक्त / रागी होता हुआ निर्मल ज्ञानानन्द आदि गुणों के आधारभूत शुद्धात्मा सम्बन्धी स्वरूपमय परिणति से पृथग्भूत उदय में आए हुए शुभ या अशुभभाव / परिणाम को करता है; ***सो तेण हवदि बंधो*** तब वह आत्मा उस कर्ताभूत रागपरिणाम से बँधता है। उसके द्वारा किससे बँधता है? ***पोग्गलकम्मेण विविहेण*** अनेक प्रकार के कर्मवर्गणारूप पुद्गलकर्म से बँधता है।

यहाँ शुद्धात्मपरिणति से विपरीत शुभ-अशुभपरिणाम, भावबन्ध है; तथा उसके निमित्त से तेलम्रक्षितों (तेल का मालिश किए हुए) का मल (गन्दगी) के बन्ध-समान जीव के साथ कर्म-पुद्गलों का संश्लेष, द्रव्यबन्ध है — ऐसा सूत्र का अभिप्राय है॥ १५५॥

अब, बहिरङ्ग-अन्तरङ्ग बन्ध के कारण का उपदेश देते हैं —

है योग हेतुक ग्रहण मन वच काय हेतुक योग है।
है भाव हेतुक बंध रति राग द्वेष मोह ये भाव हैं॥ १५६॥

अथ बहिरंगांतरंगबंधकारणमुपदिशति —

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो। (१४८)
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो॥ १५६॥

योगनिमित्तेन ग्रहणं कर्मपुद्गलादानं भवति। योग इति कोऽर्थः ? *जोगो मणवयणकायसंभूदो* योगो मनोवचनकायसंभूतः निष्क्रियनिर्विकारचिज्ज्योतिः परिणामाद्भिन्नो मनोवचनकायवर्गणा -लंबनरूपो व्यापारः आत्मप्रदेशपरिस्पंदलक्षणो वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितः कर्मादानहेतुभूतो योगः *भावणिमित्तो बंधो* भावनिमित्तो भवति। स कः ? स्थित्यनुभागबंधः।

भावः कथ्यते — *भावो रदिरागदोसमोहजुदो* रागादिदोषरहितचैतन्यप्रकाशपरिणतेः पृथक्भूतो -मिथ्यात्वादिकषायादिदर्शनचारित्रमोहनीयत्रीणि द्वादशभेदात् पृथग्भूतो भावो रतिरागद्वेषमोहयुक्तः। अत्र रतिशब्देन हास्याबिनाभाविनोकषायान्तर्भूता रतिर्ग्राह्या, रागशब्देन तु मायालोभरूपो रागपरिणाम इति, द्वेषशब्देन तु क्रोधमानारतिशोकभयजुगुप्सारूपो द्वेषपरिणामो षट्प्रकारं भवति मोहशब्देन दर्शनमोहो गृह्यते इति।

अत्र यतः कारणात्कर्मादानरूपेण प्रकृतिप्रदेशबंधहेतुस्ततः कारणाद्बहिरंगनिमित्तं योगः

गाथार्थ – ग्रहण योग निमित्तक है; योग मन, वचन, काय से उत्पन्न होता है; बन्ध भाव निमित्तक है; भाव रति, राग, द्वेष, मोह युक्त है।

टीकार्थ – योग के निमित्त से कर्मपुद्गलों का ग्रहण होता है। 'योग' इसका क्या अर्थ है ? ***जोगो मणवयणकायसंभूदो*** योग मन, वचन, काय से उत्पन्न है; निष्क्रिय निर्विकार चैतन्य ज्योतिरूप परिणाम से भिन्न; मन, वचन, काय वर्गणा के आलम्बनरूप व्यापार, आत्मप्रदेशों में परिस्पन्द लक्षणमय, वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न; कर्मों को ग्रहण करने में हेतुभूत योग है। ***भावणिमित्तो बंधो*** भाव निमित्तक है। ऐसा वह कौन है ? स्थिति-अनुभाग बन्ध ऐसा है। भाव कहते हैं – ***भावो रदिरागदोसमोहजुदो*** रागादि दोषसहित चैतन्यप्रकाश परिणति से पृथग्भूत मिथ्यात्व आदि दर्शनमोहनीय के तीन तथा कषाय आदि चारित्रमोहनीय के बारह भेद से पृथग्भूत / विभक्त भाव रति, राग, द्वेष, मोह युक्त है। यहाँ 'रति' शब्द से रति में अन्तर्भूत हास्य की अबिनाभावी नो कषायें ग्रहण करना; 'राग' शब्द से माया-लोभरूप रागपरिणाम; 'द्वेष' शब्द से क्रोध, मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सारूप छह प्रकार के द्वेषपरिणाम; तथा मोह शब्द से दर्शनमोह ग्रहण किया गया है।

यहाँ जिस कारण कर्मादानरूप से प्रकृति-प्रदेशबन्ध को हेतु है, उस कारण योग बहिरङ्ग

चिरकालस्थायित्वेन स्थित्यनुभागबंधहेतुत्वादभ्यंतरकारणं कषाया इति तात्पर्यम्॥ १५६॥

अथ न केवलं योगा बंधस्य बहिरंगनिमित्तं भवंति मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्यया अपि रागादिभाव-प्रत्ययापेक्षया बहिरंगनिमित्तमिति समर्थयति —

हेदु हि चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणियं।(१४९)
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंते॥ १५७॥

हेदु हि हेतुः कारणं हि स्फुटम्। कतिसंख्योपेतः ? *चदुव्वियप्पो* उदयागतमिथ्यात्वाविरतिकषाय-योगद्रव्यप्रत्ययरूपेण चतुर्विकल्पो भवति। *कारणं भणियं* स च द्रव्यप्रत्ययरूपश्चतुर्विकल्पो हेतुः कारणं भणितः। कस्य ? *अट्ठवियप्पस्स* रागाद्युपाधिरहितसम्यक्त्वाद्यष्टगुणसहितपरमात्मस्वभाव-प्रच्छादकस्य नवतराष्टविधद्रव्यकर्मणः *तेसिं पि य रागादी* तेषामपि रागादयः तेषां पूर्वोक्तद्रव्यप्रत्ययानां रागादिविकल्परहितशुद्धात्मद्रव्यपरिणतेर्भिन्ना जीवगतरागादयः कारणा भवंति। कस्मादिति चेत् ?

निमित्त है; चिरकाल स्थायी होने से स्थिति-अनुभाग बन्ध का हेतु होने के कारण कषायें अभ्यन्तरकारण हैं — ऐसा तात्पर्य है॥ १५६॥

अब, बन्ध का बहिरङ्ग निमित्त, मात्र योग ही नहीं है; अपितु मिथ्यात्वादि द्रव्य प्रत्यय भी रागादि भावप्रत्यय की अपेक्षा बहिरङ्ग निमित्त हैं; ऐसा समर्थन करते हैं —

हेतु चतुर्विध कर्म अष्ट प्रकार के कारण कहे।
उनके भी कारण राग आदि के अभाव में न बँधे॥ १५७॥

गाथार्थ - चार प्रकार के हेतु आठ प्रकार के (कर्मों के) कारण कहे गए हैं, उनके भी कारण रागादि हैं, उन (रागादि) के अभाव में (कर्म) नहीं बँधते हैं।

टीकार्थ - ***हेदू हि*** वास्तव में हेतु कारण हैं। कितनी संख्या से सहित हेतु हैं ? ***चदुव्वियप्पो*** उदय में आए हुए मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योगमय द्रव्य प्रत्ययरूप से चार प्रकार के कारण हैं। ***कारणं भणियं*** और वे द्रव्य-प्रत्ययरूप चार विकल्प हेतु, कारण कहे गए हैं। वे किसके कारण हैं ? ***अट्ठवियप्पस्स*** रागादि उपाधिरहित सम्यक्त्व आदि आठ गुणसहित परमात्मस्वभाव के प्रच्छादक नवीन आठ द्रव्य के कारण हैं। ***तेसिं पि य रागादी*** उनके भी कारण रागादि हैं; उन पूर्वोक्त द्रव्य-प्रत्ययों के कारण रागादि विकल्परहित शुद्धात्म-द्रव्यमय परिणति से भिन्न जीवगत रागादि हैं। वे उनके कारण कैसे हैं ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — ***तेसिमभावे ण बज्झंते*** जिस कारण द्रव्य-प्रत्ययों के विद्यमान होने पर भी, सम्पूर्ण इष्ट-अनिष्ट विषयों में ममत्व के

तेसिमभावे ण बज्झंते यतः कारणात्तेषां जीवगतरागादिभावप्रत्ययानामभावे द्रव्यप्रत्ययेषु विद्यमानेष्वपि सर्वेष्टानिष्टविषयममत्वाभावपरिणता जीवा न बध्यंत इति।

तथाहि — यदि जीवगतरागाद्यभावेऽपि द्रव्यप्रत्ययोदयमात्रेण बंधो भवति तर्हि सर्वदैव बंध एव। कस्मात्? संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वादिति। तस्माद् ज्ञायते नवतरद्रव्यकर्मबंधस्यो-दयागतद्रव्यप्रत्यया हेतवस्तेषां च जीवगतरागादयो हेतव इति। ततः स्थितं न केवलं योगा बहिरंगबंध-कारणं, द्रव्यप्रत्यया अपीति भावार्थः॥ १५७॥

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये बंधव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण नवमोऽन्तरा-धिकारः समाप्तः।

अनंतरं शुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसाध्ययागमभाषया रागादिविकल्परहितशुक्ल-ध्यानसाध्ये वा मोक्षाधिकारे गाथाचतुष्टयं भवति। तत्र भावमोक्षः केवलज्ञानोत्पत्तिः जीवन्मुक्तोऽर्हत्पद-मित्येकार्थः तस्याभिधानचतुष्टययुक्तस्यैकदेशमोक्षस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन हेदु *अभावे....* इत्यादि सूत्रद्वयम्। तदनंतरमयोगिचरमसमये शेषाघातिद्रव्यकर्ममोक्षप्रतिपादनरूपेण *दंसणणाणसमग्गं....* इत्यादि

अभावरूप से परिणमित जीव, उन जीवगत रागादि भाव-प्रत्ययों का अभाव होने के कारण नहीं बँधते हैं; इसलिए वे ही उनके कारण हैं।

वह इस प्रकार — यदि जीवगत रागादि का अभाव होने पर भी द्रव्य-प्रत्यय के उदयमात्र से बंध होता तो सर्वदा बंध ही होता। सर्वदा बंध ही कैसे होता? संसारी जीवों के सर्वदा ही कर्म का उदय विद्यमान होने से सर्वदा बंध ही होता (परन्तु उनके सर्वदा बंध नहीं होता है); उससे ज्ञात होता है कि उदय में आए द्रव्य-प्रत्यय नवीन द्रव्यकर्म बंध के कारण हैं और उसके कारण जीवगत रागादि हैं। इससे यह निश्चित हुआ कि मात्र योग ही बंध के बहिरङ्ग कारण नहीं हैं; अपितु द्रव्य-प्रत्यय भी हैं — ऐसा भावार्थ है॥ १५७॥

इस प्रकार ***नौ पदार्थों के प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार*** में ***बंध*** के व्याख्यान की मुख्यतावाली तीन गाथा द्वारा ***नवम अन्तराधिकार*** पूर्ण हुआ।

तदुपरान्त शुद्धात्मानुभूति लक्षण निर्विकल्प समाधि में साध्य अथवा आगम भाषा की अपेक्षा रागादि विकल्परहित शुक्लध्यान से साध्य मोक्षाधिकार में चार गाथाएँ हैं। वहाँ भावमोक्ष, केवलज्ञान की उत्पत्ति, जीवन्मुक्त, अरहन्तपद ये एकार्थवाची हैं; उन चार नामों से सहित एकदेश मोक्ष के व्याख्यान की मुख्यता से ***हेदु अभावे*** इत्यादि दो सूत्र हैं। तत्पश्चात् अयोगी (चौदहवें गुणस्थान) के अन्तिम समय में शेष अघाति द्रव्यकर्म से मोक्ष-प्रतिपादन की अपेक्षा

सूत्रद्वयम्। एवं गाथाचतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन मोक्षाधिकारव्याख्याने समुदायपातनिका।

अथ घातिचतुष्टयद्रव्यकर्ममोक्षहेतुभूतं परमसंवररूपं च भावमोक्षमाह —

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।(१५०)
आसवभावेण बिणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो॥ १५८॥

कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य। (१५१)
पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं॥ १५९॥ जुम्मम्॥

हेदुमभावे द्रव्यप्रत्ययरूपहेत्वभावे सति *णियमा* निश्चयात् *जायदि* जायते। कस्य? *णाणिस्स* ज्ञानिनः। स कः? *आसवणिरोधो* जीवाश्रितरागाद्यास्रवनिरोधः *आसवभावेण बिणा* भावास्रवस्वरूपेण

दंसणणाणसमग्गं इत्यादि दो सूत्र हैं। इस प्रकार चार गाथा पर्यन्त दो स्थल द्वारा मोक्षाधिकार व्याख्यान में समुदाय पातनिका है।

गाथा १५८ से १६१ पर्यन्त मोक्षाधिकार संज्ञक दशम अन्तराधिकार

स्थलक्रम	स्थल प्रतिपादित विषय	कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	एकदेश मुक्ति	१५८-१५९ वीं	२
२	सकलमुक्ति	१६०-१६१ वीं	२

अब, चार द्रव्यघातिकर्म से मोक्ष के हेतुभूत परमसंवररूप भावमोक्ष को कहते हैं —

हेतु अभाव में नियम से आस्रव निरोध हो ज्ञानि के।
उन भाव आस्रव के बिना ही, रोध कर्मों का बने॥ १५८॥

उन कर्म बिन सकलज्ञ सकल-पदार्थ-दर्शी हो वही।
पाते अतीन्द्रिय अन्तबिन निरबाध सुख को भी वही॥ १५९॥

गाथार्थ - हेतु के अभाव में ज्ञानी के नियम से आस्रव का निरोध होता है तथा आस्रवभाव के नहीं होने से कर्म का निरोध हो जाता है।

कर्म का अभाव होने पर सर्वज्ञ और सर्वलोकदर्शी होते हुए इन्द्रियरहित अव्याबाध अनन्त सुख को प्राप्त होते हैं।

टीकार्थ - ***हेदुं अभावे*** द्रव्य-प्रत्ययरूप हेतु का अभाव होने पर ***णियमा*** निश्चय से ***जायदि*** होता है। किसके होता है? ***णाणिस्स*** ज्ञानी के होता है। वह क्या होता है? ***आसवणिरोधो***

बिना *जायदि कम्मस्स दु णिरोधो* मोहनीयादिघातिचतुष्टयरूपस्य कर्मणो जायते निरोधो विनाशः। इति प्रथमगाथा।

कम्मस्साभावेण य **घातिकर्मचतुष्टयस्याभावेन च *सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य* सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च सन्। किं करोति? *पावदि* प्राप्नोति। किं? *सुहं* सुखम्। किं विशिष्टं? *इंदियरहिदं अव्वाबाहमणंतं* अतीन्द्रियमव्याबाधमनंतं चेति। इति संक्षेपेण भावमोक्षो ज्ञातव्यः।**

तद्यथा — कोऽसौ भावः कश्च मोक्षः? इति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह — भावः स त्वत्र विवक्षितः कर्मावृतसंसारिजीवस्य क्षायोपशमिकज्ञानविकल्परूपः। स चानादिमोहोदयवशेन रागद्वेषमोहरूपेणा-शुद्धो भवतीति। इदानीं तस्य भावस्य मोक्षः कथ्यते — यदायं जीवः आगमभाषया कालादिलब्धिरूप-मध्यात्मभाषया शुद्धात्माभिमुखपरिणामरूपं स्वसंवेदनज्ञानं लभते तदा प्रथमतस्तावन्मिथ्यात्वादिसप्त-प्रकृतीनामुपशमेन क्षयोपशमेन च सरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पञ्चपरमेष्ठिभक्त्यादिरूपेण पराश्रितधर्म्य-ध्यानबहिरंगसहकारित्वेनानंतज्ञानादिस्वरूपोऽहमित्यादिभावनास्वरूपमात्माश्रितं धर्म्यध्यानं प्राप्य

जीवाश्रित रागादि आस्रवों का निरोध होता है। ***आसवभावेण बिणा*** भावास्रव स्वरूप के बिना (भावास्रव नहीं होने पर) ***जायदि कम्मस्स दु णिरोधो*** मोहनीय आदि चार घातिरूप कर्म का निरोध, विनाश होता है। – इस प्रकार प्रथम (१५८ वीं) गाथा है।

कम्मस्साभावेण य और चार घातिकर्म का अभाव होने पर ***सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य*** सर्वज्ञ और सर्व लोकदर्शी होते हुए। ऐसे होते हुए वे क्या करते हैं? ***पावदि*** प्राप्त करते हैं। वे क्या प्राप्त करते हैं? ***सुहं*** सुख प्राप्त करते हैं। वे किस विशेषतावाला सुख प्राप्त करते हैं? ***इंदियरहिदं अव्वाबाहमणंतं*** अतीन्द्रिय, अव्याबाध और अनन्त सुख को प्राप्त करते हैं। – इस प्रकार संक्षेप से भावमोक्ष जानना चाहिए।

वह इस प्रकार – वह भाव क्या है? और मोक्ष क्या है? ऐसा प्रश्न होने पर प्रत्युत्तर कहते / देते हैं – यहाँ विवक्षित कर्मावृत संसारी जीव का क्षायोपशमिकज्ञान विकल्परूप तो भाव है; और वह अनादि मोहोदयवश राग, द्वेष, मोह से अशुद्ध है। अब, उस भाव का मोक्ष कहते हैं –

जब यह जीव आगम भाषा से कालादि लब्धिरूप और अध्यात्मभाषा से शुद्धात्मा के अभिमुख परिणामरूप स्वसंवेदन-ज्ञान प्राप्त करता है, तब सर्व प्रथम मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम या क्षयोपशम से सराग सम्यग्दृष्टि होकर पराश्रित धर्मध्यान के बहिरङ्ग सहकारी होने के कारण पञ्च परमेष्ठी की भक्ति आदिरूप से 'अनन्त ज्ञानादि स्वरूप मैं हूँ' – इत्यादि भावनास्वरूप आत्माश्रित धर्मध्यान को प्राप्तकर आगम कथित क्रम से असंयत

आगमकथितक्रमेणासंयतसम्यग्दृष्ट्यादिगुणस्थानचतुष्टयमध्ये क्वापि गुणस्थाने दर्शनमोहक्षयेण क्षायिकसम्यक्त्वं कृत्वा तदनंतरमपूर्वादिगुणस्थानेषु प्रकृतिपुरुषनिर्मलविवेकज्योतिरूपप्रथमशुक्लध्यान -मनुभूय रागद्वेषरूपचारित्रमोहोदयाभावेन निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिरूपं चारित्रमोहविध्वंसनसमर्थं वीतरागचारित्रं प्राप्य मोहक्षपणं कृत्वा मोहक्षयानंतरं क्षीणकषायगुणस्थानेऽन्तर्मुहूर्तकालं स्थित्वा द्वितीय -शुक्लध्यानेन ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मत्रयं युगपदंत्यसमये निर्मूल्य केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयस्वरूपं भावमोक्षं प्राप्नोतीति भावार्थः॥ १५८-१५९॥

एवं भावमोक्षस्वरूपकथनरूपेण गाथाद्वयं गतम्।

अथ वेदनीयादिशेषाघातिकर्मचतुष्टयविनाशरूपायाः सकलद्रव्यनिर्जरायाः कारणं ध्यानस्वरूपं कथयति —

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं। (१५२)
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साहुस्स॥ १६०॥

दंसण.... **इत्यादि पदखंडनरूपेण व्याख्यानं क्रियते —** ***दंसणणाण*** **दर्शनज्ञानाभ्यां कृत्वा**

सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानों में से किसी भी गुणस्थान में दर्शनमोह के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व कर, तत्पश्चात् अपूर्व आदि गुणस्थानों में प्रकृति और पुरुष के मध्य निर्मल विवेक ज्योतिरूप प्रथम शुक्लध्यान का अनुभव कर, राग-द्वेष रूप चारित्रमोह के उदय का अभाव होने से चारित्रमोह को विध्वस्त करने में समर्थ निर्विकार शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागचारित्र को प्राप्तकर, मोह क्षयकर, मोह क्षय के बाद क्षीणकषाय-गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्तकाल स्थित होकर अन्तिम समय में द्वितीय शुक्लध्यान द्वारा युगपत् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय — इन तीन कर्मों का निर्मूलन कर केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय स्वरूप भावमोक्ष को प्राप्त होता है — ऐसा भावार्थ है॥ १५८-१५९॥

इस प्रकार भावमोक्ष के स्वरूप-कथनरूप से दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, वेदनीय आदि शेष चार अघाति कर्म के विनाशरूप सकल द्रव्य की निर्जरा के कारणभूत ध्यान का स्वरूप कहते हैं —

ना अन्य द्रव्यों से सहित, परिपूर्ण दर्शन ज्ञान युत।
है ध्यान हेतु निर्जरा का, साधु के निज भाव युत॥ १६०॥

गाथार्थ - स्वभावसहित साधु के दर्शन-ज्ञान से परिपूर्ण, अन्य द्रव्यों से संयुक्त नहीं होनेवाला ध्यान, निर्जरा का हेतु होता है।

टीकार्थ - ***दंसण*** इत्यादि पद-खण्डनारूप से व्याख्यान करते हैं — ***दंसणणाण***

समग्गं परिपूर्णम्। किं ? *झाणं* ध्यानम्। पुनरपि किंविशिष्टं ? *णो अण्णदव्वसंजुत्तं* अन्यद्रव्यसंयुक्तं न भवति। इत्थंभूतं ध्यानं *जायदि णिज्जरहेदू* निर्जराहेतुर्जायते। कस्य ? *सहावसहिदस्स साहुस्स* शुद्धस्वभावसहितस्य साधोरिति।

तथाहि — तस्य पूर्वोक्तभावमुक्तस्य केवलिनो निर्विकारपरमानंदैकलक्षणस्वात्मोत्थसुखतृप्त -त्वाद्व्यावृत्तहर्षविषादरूपसांसारिकसुखदुःखविक्रियस्य केवलज्ञानदर्शनावरणविनाशादसहायकेवल -ज्ञानदर्शनसहितसहजशुद्धचैतन्यपरिणतत्वादिन्द्रियव्यापारादिबहिर्द्रव्यालंबनाभावाच्च परद्रव्यसंयोग -रहितं स्वरूपनिश्चलत्वादविचलितचैतन्यवृत्तिरूपं च यदात्मनः स्वरूपं तत्पूर्वसंचितकर्मणां ध्यानकार्यभूतं स्थितिविनाशं गलनं च दृष्ट्वा निर्जरारूपध्यानस्य कार्यकारणमुपचर्योपचारेण ध्यानं भण्यत इत्यभिप्रायः।

अत्राह शिष्यः — इदं परद्रव्यालंबनरहितं ध्यानं केवलिनां भवतु। कस्मात् ? केवलिनामुपचारेण ध्यानमिति वचनात्। चारित्रसारादौ ग्रंथे भणितमास्ते — छद्मस्थतपोधनाः द्रव्यपरमाणुं भावपरमाणुं वा ध्यात्वा केवलज्ञानमुत्पादयंति तत्परद्रव्यालंबनरहितं कथं घटत इति ?

दर्शन-ज्ञान से, ***समग्गं*** परिपूर्ण है। इनसे परिपूर्ण कौन है ? ***झाणं*** ध्यान इससे परिपूर्ण है। वह और किस विशेषतावाला है ? ***णो अण्णदव्वसंजुत्तं*** वह अन्य द्रव्य से संयुक्त नहीं है। इस प्रकार का ध्यान ***जायदि णिज्जरहेदू*** निर्जरा का हेतु होता है। वह किसके निर्जरा का हेतु होता है ? ***सहावसहिदस्स साहुस्स*** शुद्ध स्वभावसहित साधु के वह निर्जरा का हेतु होता है।

वह इस प्रकार — निर्विकार परमानन्द एक लक्षण स्वात्मोत्थसुख से तृप्त हो जाने के कारण हर्ष-विषादरूप सांसारिक सुख-दुःखरूप विक्रिया / परिणमन से व्यावृत्त / रहित उन पूर्वोक्त भावयुक्त केवली के, केवल-ज्ञानावरण-दर्शनावरण के विनाश से असहाय (जिसे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं / पूर्ण निरपेक्ष) केवल-ज्ञान-दर्शन-सहित, सहज शुद्ध चैतन्यरूप से परिणत होने के कारण और इन्द्रिय-व्यापार आदि बाह्य द्रव्यों के आलम्बन का अभाव होने के कारण, परद्रव्य के संयोग से रहित तथा स्वरूप में निश्चल हो जाने के कारण अविचलित चैतन्यवृत्तिरूप जो आत्मा का स्वरूप है, उससे ध्यान के कार्यभूत पूर्व सञ्चित् कर्मों के स्थिति-विनाश और स्थिति-गलनरूप कार्य को देखकर, ध्यान के निर्जरारूप कार्य में कारण का उपचार करके, उसे उपचार से ध्यान कहते हैं — ऐसा अभिप्राय है।

यहाँ शिष्य कहता है — परद्रव्य के आलम्बनरहित यह ध्यान केवलियों के हो। उनके किस कारण हो ? केवलियों के उपचार से ध्यान है — ऐसा वचन होने पर उनके वह हो; परन्तु चारित्रसार आदि ग्रन्थ में कहा गया है कि छद्मस्थ तपोधन द्रव्यपरमाणु या भावपरमाणु का ध्यानकर केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, तब फिर वह परद्रव्य के आलम्बन से रहित कैसे घटित होता है ?

परिहारमाह — द्रव्यपरमाणुशब्देन द्रव्यसूक्ष्मत्वं ग्राह्यं भावपरमाणुशब्देन च भावसूक्ष्मत्वं न च पुद्गलपरमाणुः। इदं व्याख्यानं सर्वार्थसिद्धिटिप्पणके भणितमास्ते। अस्य संवादवाक्यस्य विवरणं क्रियते। द्रव्यशब्देनात्मद्रव्यं ग्राह्यं तस्य तु परमाणु। परमाणुरिति कोऽर्थः ? रागाद्युपाधिरहिता सूक्ष्मावस्था। तस्याः सूक्ष्मत्वं कथमिति चेत् ? निर्विकल्पसमाधिविषयादिति द्रव्यपरमाणुशब्दस्य व्याख्यानम्। भावशब्देन तु तस्यैवात्मद्रव्यस्य स्वसंवेदनज्ञानपरिणामो ग्राह्यः तस्य भावस्य परमाणुः। परमाणुरिति कोऽर्थः ? रागादिविकल्परहिता सूक्ष्मावस्था। तस्याः सूक्ष्मत्वं कथमिति चेत् ? इंद्रियमनोविकल्पाविषयत्वादिति भावपरमाणुशब्दस्य व्याख्यानं ज्ञातव्यम्।

अयमत्र भावार्थः— प्राथमिकानां चित्तस्थिरीकरणार्थं विषयाभिलाषरूपध्यानबंचनार्थं च परंपरया मुक्तिकारणं पंचपरमेष्ठ्यादिपरद्रव्यं ध्येयं भवति, दृढतरध्यानाभ्यासेन चित्ते स्थिरे जाते सति निजशुद्धात्मस्वरूपमेव ध्येयम्। तथा चोक्तं श्रीपूज्यपादस्वामिभिः निश्चयध्येयव्याख्यानं —

इसका परिहार कहते / करते हैं — द्रव्यपरमाणु शब्द से द्रव्य की सूक्ष्मता तथा भावपरमाणु शब्द से भाव की सूक्ष्मता ग्रहण करना चाहिए; पुद्गल परमाणु ग्रहण नहीं करना चाहिए — यह व्याख्यान ***'सर्वार्थसिद्धि-टीका'*** में किया गया है। इस संवाद (सम्यक् कथनरूप) वाक्य का विवरण करते हैं — द्रव्य शब्द से आत्मद्रव्य ग्रहण करना चाहिए; उसका परमाणु-द्रव्यपरमाणु। ***'परमाणु'*** इसका क्या अर्थ है ? रागादि उपाधि से रहित सूक्ष्मावस्था — इसका अर्थ है। उसके सूक्ष्मता कैसे है ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — निर्विकल्प समाधि का विषय होने से उसके सूक्ष्मता है। — इस प्रकार द्रव्यपरमाणु शब्द का व्याख्यान किया।

भाव शब्द से उस ही आत्मद्रव्य का स्वसंवेदन-ज्ञानपरिणाम ग्रहण करना चाहिए, उस भाव का परमाणु। ***'परमाणु'*** इसका क्या अर्थ है ? रागादि विकल्परहित सूक्ष्मावस्था — परमाणु का अर्थ है। उसके सूक्ष्मता कैसे है ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — इन्द्रिय और मन सम्बन्धी विकल्प का विषय नहीं होने के कारण, वह सूक्ष्म है। — इस प्रकार भावपरमाणु शब्द का व्याख्यान जानना चाहिए।

यहाँ भावार्थ यह है — प्राथमिक दशावालों को चित्त-स्थिर करने के लिए और विषयाभिलाषारूप ध्यान से बचने के लिए परम्परा से मुक्ति के कारणभूत पञ्च परमेष्ठी आदि परद्रव्य ध्येय हैं; परन्तु दृढ़तर ध्यान के अभ्यास से चित्त-स्थिर हो जाने पर, निज शुद्धात्मा का स्वरूप ही ध्येय है। वैसा ही ***'पूज्यपाद स्वामी'*** द्वारा निश्चय-ध्येय का व्याख्यान किया गया है — 'वह आत्मा, आत्मा के द्वारा, आत्मा में ही, आत्मा को क्षण भर के लिए लीन करता हुआ स्वयंभू होता है।'

'आत्मानमात्मा। आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सन् स्वयंभूः प्रवृत्तः ॥'

अस्य व्याख्यानं क्रियते — आत्मा कर्ता, आत्मानं कर्मतापन्नं, आत्मन्येवाधिकरणभूते, आत्मना करणभूतेन, असौ प्रत्यक्षीभूतात्मा क्षणमन्तर्मुहूर्तमुपजनयन् धारयन् सन् स्वयंभूः प्रवृत्तः सर्वज्ञो जात इत्यर्थः।

इति परस्परसापेक्षनिश्चयव्यवहारनयाभ्यां साध्यसाधकभावं ज्ञात्वा ध्येयविषये विवादो न कर्तव्यः ॥ १६० ॥

अथ सकलमोक्षसंज्ञं द्रव्यमोक्षमावेदयति —

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोय सव्वकम्माणि। (१५३)
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो ॥ १६१ ॥

जो **यः कर्ता** ***संवरेण जुत्तो*** **परमसंवरेण युक्तः। किं कुर्वन्?** ***णिज्जरमाणो य*** **निर्जरयंश्च। कानि?** ***सव्वकम्माणि*** **सर्वकर्माणि। पुनः किंविशिष्टः?** ***ववगदवेदाउस्सो*** **व्यपगतवेदनीयायुष्यसंज्ञकर्मद्वयः। एवंभूतः स किं करोति?** ***मुयदि भवं*** **त्यजति भवं येन कारणेन भवशब्दवाच्यं नामगोत्रसंज्ञं कर्मद्वयं मुंचति**

इसका व्याख्यान करते हैं — आत्मारूपी कर्ता, कर्मता को प्राप्त आत्मा को, अधिकरणभूत आत्मा में, करणभूत आत्मा द्वारा, वह प्रत्यक्षीभूत आत्मा क्षण भर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त धारण करता हुआ स्वयम्भू, सर्वज्ञ होता है — ऐसा अर्थ है।

इस प्रकार परस्पर सापेक्ष निश्चय-व्यवहारनय से साध्य-साधक भाव को जानकर ध्येयभूत विषय में विवाद नहीं करना चाहिए॥ १६० ॥

अब, सकल मोक्ष नामक द्रव्यमोक्ष का आवेदन करते हैं (मर्यादापूर्वक ज्ञान कराते हैं) —

संवर सहित सब कर्म की, जो निर्जरा करता हुआ।
वह वेद आयु रहित हो, भव छोड़ता शिव है अतः ॥ १६१ ॥

गाथार्थ - जो संवर से सहित, सभी कर्मों की निर्जरा करता हुआ, वेदनीय और आयुष्क से रहित है, वह भव को छोड़ता है; इसलिए मोक्ष है।

टीकार्थ - ***जो*** कर्तारूप जो ***संवरेण जुत्तो*** संवर से युक्त; क्या करता हुआ? निर्जरा करता हुआ, किनकी निर्जरा करता हुआ? ***सव्वकम्माणि*** सभी कर्मों की निर्जरा करता हुआ जो और किस विशेषतावाला है? ***ववगदवेदाउस्सो*** जो वेदनीय और आयुष्क नामक दो कर्मों से रहित है। ऐसा होता हुआ वह क्या करता है? ***मुयदि भवं*** भव को छोड़ता है। जिस कारण भव शब्द से वाच्य नाम-गोत्र नामक दो कर्मों को छोड़ता है, ***तेण सो मोक्खो*** उस कारण वह प्रसिद्ध मोक्ष होता है; अथवा वह पुरुष ही अभेद से मोक्ष है — ऐसा अर्थ है।

तेण सो मोक्खो तेन कारणेन स प्रसिद्धो मोक्षो भवति; अथवा स पुरुष एवाभेदेन मोक्षो भवतीत्यर्थः।

तद्यथा— अथास्य केवलिनो भावमोक्षे सति निर्विकारसंवित्तिसाध्यं सकलसंवरं कुर्वतः पूर्वोक्त-शुद्धात्मध्यानसाध्यां चिरसंचितकर्मणां सकलनिर्जरां चानुभवतोऽन्तर्मुहूर्तजीवितशेषे सति वेदनीयनाम-गोत्रसंज्ञकर्मत्रयस्यायुषः सकाशादधिकस्थितिकाले तत्कर्मत्रयाधिकस्थितिविनाशार्थं वा संसारस्थिति-विनाशार्थं वा दंडकपाटप्रतरलोकपूर्णसंज्ञं केवलिसमुद्घातं कृत्वाथवायुष्यसहकर्मत्रयस्य संसारस्थितेर्वा समानस्थितिकाले पुनरकृत्वा च तदनन्तरं स्वशुद्धात्मानिश्चलवृत्तिरूपं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञमुपचारेण तृतीयशुक्लध्यानं कुर्वतः सयोगिगुणस्थानमतिक्रम्य सर्वप्रदेशाह्लादैकाकारपरिणतपरमसमरसीभाव-लक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तं समस्तशीलगुणनिधानं समुच्छिन्नक्रियासंज्ञं चतुर्थशुक्लध्यानाभिधानं परमयथाख्यातचारित्रं प्राप्तस्यायोगिद्विचरमसमये शरीरादिद्वासप्ततिप्रकृतिचरमसमये वेदनीयायुष्यनाम-गोत्रसंज्ञकर्मचतुष्करूपस्य त्रयोदशप्रकृतिपुद्गलपिंडस्य जीवेन सहात्यन्तविश्लेषो द्रव्यमोक्षो भवति।

तदनंतरं किं करोति भगवान्? पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्चेति हेतु-चतुष्टयात् रूपात् सकाशाद्यथासंख्येनाविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखा

वह इस प्रकार — भावमोक्ष होने पर अब इन केवली के निर्विकार संवित्ति से साध्य सकल संवर करते हुए तथा पूर्वोक्त शुद्धात्मध्यान से साध्य चिरसञ्चित कर्मों की सकल निर्जरा का अनुभव करते हुए, अन्तर्मुहूर्त जीवन शेष रहने पर वेदनीय, नाम, गोत्र नामक तीन कर्मों का स्थिति-समय आयुष्क से अधिक होने पर उन तीन कर्मों की अधिक स्थिति को नष्ट करने के लिए; अथवा संसार की स्थिति नष्ट करने के लिए; दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण नामक केवली समुद्घात करके; अथवा आयुष्क के साथ तीन कर्मों का या संसार की स्थिति का समय समान होने पर उसे नहीं कर; तत्पश्चात् स्वशुद्धात्मा में निश्चल वृत्तिरूप सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाति नामक तृतीय शुक्लध्यान का उपचार करते हुए; तदुपरान्त सयोगीगुणस्थान का उल्लङ्घन कर सम्पूर्ण प्रदेशों में आह्लादमय एकाकाररूप से परिणत परम समरसी भाव लक्षण सुखामृत के रसास्वाद से तृप्त, समस्त शील-गुणों के निधान स्वरूप, समुच्छिन्न-क्रिया नामक चतुर्थ शुक्लध्यान से कहे जानेवाले परम यथाख्यातचारित्र को प्राप्त अयोगी के द्विचरम (उपान्त्य) समय में शरीर आदि बहत्तर प्रकृतियों का तथा अन्तिम समय में वेदनीय, आयुष्क, नाम, गोत्र नामक चार कर्मों की तेरह प्रकृतिरूप पुद्गल-पिण्ड का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (छूट जाने) रूप द्रव्यमोक्ष होता है।

उसके बाद भगवान क्या करते हैं? पूर्व प्रयोग से, असङ्ग हो जाने से, बन्ध का छेद हो जाने से और उसी प्रकार का गति-परिणाम हो जाने से — इन चार कारणरूप से तथा यथाक्रम से आबिद्ध कुलाल चक्र के समान, आलाबु (तूँबड़ी) के लेप से रहित हो जाने के समान, एरण्ड बीज के समान और अग्निशिखा के समान — इस प्रकार चार दृष्टान्त द्वारा एक समय से / में

-वच्चेति दृष्टांतचतुष्टयेनैकसमयेन लोकाग्रं गच्छति। परतो गतिकारणभूतधर्मास्तिकायाभावात्तत्रैव लोकाग्रे स्थितः सन् विषयातीतमनश्वरं परमसुखमनंतकालमनुभवतीति भावार्थः॥ १६१॥

इति द्रव्यमोक्षस्वरूपकथनरूपेण सूत्रद्वयं गतम्।

एवं भावमोक्षद्रव्यमोक्षप्रतिपादनमुख्यतया गाथाचतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन दशमोऽन्तराधिकारः।

इति *तात्पर्यवृत्तौ* प्रथमतस्तावत् *अभिवंदिऊण सिरसा...* इमां गाथामादिं कृत्वा गाथाचतुष्टयं व्यवहारमोक्षमार्गकथनमुख्यत्वेन, तदनंतरं षोडशगाथा जीवपदार्थप्रतिपादनेन, तदनंतरं गाथाचतुष्टयम -जीवपदार्थनिरूपणार्थं, ततश्च गाथात्रयं पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकारूपेण सूचनार्थं, तदनन्तरं गाथाचतुष्टयं पुण्यपापपदार्थद्वयविवरणार्थं, ततश्च गाथाषट्कं शुभाशुभास्त्रवव्याख्यानार्थं, तदनन्तरं सूत्रत्रयं संवरपदार्थस्वरूपकथनार्थं, ततश्च गाथात्रयं निर्जरापदार्थव्याख्यानेन निमित्तं, तदनंतरं सूत्रत्रयं बंधपदार्थकथनार्थं, तदनंतरं सूत्रचतुष्टयं मोक्षपदार्थव्याख्यानार्थं चेति दशभिरंतराधिकारैः पञ्चाशद्गाथा -भिर्व्यवहारमोक्षमार्गावयवभूतयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतानां *जीवादिनवपदार्थानां प्रतिपादकः द्वितीय -महाधिकारः* समाप्तः॥ २॥

लोकाग्र को जाते हैं। उससे आगे गति में निमित्त कारणभूत धर्मास्तिकाय का अभाव होने से वहाँ लोकाग्र में ही स्थित होते हुए विषयातीत, अनश्वर, परम सुख को अनन्त काल तक अनुभव करते हैं – ऐसा भावार्थ है॥ १६१॥

इस प्रकार द्रव्यमोक्ष के स्वरूप-कथन रूप दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार चार गाथा पर्यन्त भावमोक्ष-द्रव्यमोक्ष के प्रतिपादन की मुख्यतावाले दो स्थल द्वारा दशम अन्तराधिकार पूर्ण हुआ।

इस प्रकार ***तात्पर्यवृत्ति*** में सर्व प्रथम ***अभिवंदिऊण सिरसा*** इस गाथा से प्रारम्भ कर चार गाथाएँ ***व्यवहार मोक्षमार्ग*** के कथन की मुख्यता से हैं। तत्पश्चात् सोलह गाथाएँ ***जीव पदार्थ-प्रतिपादन*** रूप से, तुदपरान्त चार गाथाएँ ***अजीव पदार्थ-निरूपण*** के लिए, तदनन्तर तीन गाथाएँ ***पुण्य-पाप आदि सात पदार्थों की पीठिका*** रूप से सूचना के लिए, उसके बाद चार गाथाएँ ***पुण्य-पाप – दो पदार्थों के विवरण*** के लिए, तदनन्तर छह गाथाएँ ***शुभ-अशुभ आस्त्रव के व्याख्यान*** हेतु, तत्पश्चात् तीन सूत्र ***संवर पदार्थ का स्वरूप*** कहने के लिए, तदुपरान्त तीन गाथाएँ ***निर्जरा पदार्थ के व्याख्यान*** हेतु, तत्पश्चात् तीन सूत्र ***बन्ध पदार्थ का कथन*** करने के लिए और उसके बाद चार सूत्र ***मोक्ष पदार्थ के व्याख्यान*** हेतु हैं – इस प्रकार दश अन्तराधिकारों में विभक्त पचास गाथाओं द्वारा ***व्यवहार मोक्षमार्ग*** के ***अवयव दर्शन-ज्ञान के विषयभूत जीवादि नौ पदार्थों का प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार*** समाप्त हुआ॥ २॥

निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग प्रपञ्च चूलिका प्रतिपादक तृतीय महाधिकार

इत ऊर्ध्वं मोक्षावाप्तिपुरस्सरं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाभिधाने विशेषव्याख्यानेन चूलिकारूपे तृतीयमहाधिकारे *जीवसहाओ णाणं....* इत्यादिविंशतिगाथा भवंति। तत्र विंशतिगाथासु मध्ये केवलज्ञान-दर्शनस्वभावशुद्धजीवस्वरूपकथनेन जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्ग इति कथनेन च *जीवसहाओ णाणं...* इत्यादि प्रथमस्थले सूत्रमेकं, तदनन्तरं शुद्धात्माश्रितः स्वसमयो, मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणा-माश्रितः परसमय इति प्रतिपादनरूपेण *जीवो सहावणियदो....* इत्यादि सूत्रमेकं, अथ शुद्धात्मश्रद्धानादि-रूपस्वसमयविलक्षणस्य परसमयस्यैव विशेषविवरणमुख्यत्वेन *जो परदव्वंहि* इत्यादि गाथाद्वयं, अथ वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यादिसम्यक्श्रद्धानज्ञानपञ्चमहाव्रताद्यनुष्ठानरूपस्य व्यवहारमोक्षमार्गस्य निरूपणमुख्यत्वेन *धम्मादी सद्दहणं....* इत्यादि पञ्चमस्थले सूत्रमेकं, अथ व्यवहाररत्नत्रयेण साध्यस्या-भेदरत्नत्रयस्वरूपनिश्चयमोक्षमार्गप्रतिपादनरूपेण *णिच्छयणयेण....* इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं यस्यैव शुद्धात्मभावनोत्पन्नमतीन्द्रियसुखमुपादेयं प्रतिभाति स एव भावसम्यग्दृष्टिरिति व्याख्यानमुख्यत्वेन *जेण*

इससे आगे मोक्ष-प्राप्ति के पूर्व निश्चय-व्यवहार नामक ***मोक्षमार्ग के चूलिकारूप तृतीय महाधिकार*** में विशेष व्याख्यान द्वारा ***जीवसहाओ णाणं*** इत्यादि बीस गाथाएँ हैं। उन बीस गाथाओं में से केवल ज्ञान-दर्शन स्वभावी शुद्ध जीव के स्वरूप-कथन से और जीव स्वभाव में नियत चारित्र मोक्षमार्ग है – इस कथन से ***जीवसहाओ णाणं*** इत्यादि प्रथम स्थल में एक सूत्र है; तदनन्तर शुद्धात्मा के आश्रित स्वसमय और मिथ्यात्व-रागादि विभावपरिणामों के आश्रित परसमय है – इस प्रतिपादनरूप से ***जीवो सहावणियदो*** इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् शुद्धात्मा के श्रद्धान आदिरूप स्वसमय से विलक्षण परसमय के ही विशेष विवरण की मुख्यता से ***जो परदव्वं हि*** इत्यादि दो गाथाएँ; तदुपरान्त रागादि विकल्परहित स्वसम्वेदन स्वरूप स्वसमय के ही और भी विशेष विवरण की मुख्यता से ***जो सव्वसंग*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। इसके बाद वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत छह द्रव्य आदि के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान और पञ्च महाव्रत आदि के अनुष्ठानरूप व्यवहार-मोक्षमार्ग के निरूपण की मुख्यता से ***धम्मादीसद्दहणं*** इत्यादि पाँचवें स्थल में एक सूत्र है। तत्पश्चात् व्यवहाररत्नत्रय से साध्यभूत अभेदरत्नत्रय स्वरूप निश्चय-मोक्षमार्ग के प्रतिपादनरूप से ***णिच्छयणयेण*** इत्यादि दो गाथाएँ हैं। तदुपरान्त जिसे शुद्धात्मारूप भावना से उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख ही उपादेय लगता है, वह ही भाव सम्यग्दृष्टि है – इस व्याख्यान की मुख्यता से ***जेण विजाण*** इत्यादि एक सूत्र है। तदनन्तर निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय

विजाण इत्यादि सूत्रमेकं, अथ निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाभ्यां क्रमेण मोक्षपुण्यबंधौ भवत इति प्रतिपादन -मुख्यत्वेन *दंसणणाणचरित्ताणि* इत्याद्यष्टमस्थले सूत्रमेकं, अथ निर्विकल्पपरमसमाधिस्वरूप -सामायिकसंयमे स्थातुं समर्थोऽपि तत्त्यक्त्वा यद्येकान्तेन सरागचारित्रानुचरणं मोक्षकारणं मन्यते तदा स्थूलपरसमयो भण्यते यदि पुनस्तत्र स्थातुमीहमानोऽपि सामग्रीवैकल्येनाशुभवंचनार्थं शुभोपयोगं करोति तदा सूक्ष्मपरसमयो भण्यत इति व्याख्यानरूपेण *अण्णाणादो णाणी* इत्यादि गाथापञ्चकं, तदनंतरं तीर्थकरादिपुराणजीवादिनवपदार्थप्रतिपादकागमपरिज्ञानसहितस्य तद्भक्तियुक्तस्य च यद्यपि तत्काले पुण्यास्रवपरिणामेन मोक्षो नास्ति तथापि तदाधारेण कालांतरे निरास्रवशुद्धोपयोगपरिणाम -सामग्रीप्रस्तावे भवतीति कथनमुख्यत्वेन *सपदत्थं....* इत्यादि सूत्रद्वयं, अथास्य पञ्चास्तिकायप्राभृत -शास्त्रस्य साक्षान्मोक्षकारणभूतं वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति व्याख्यानरूपेण *तम्हा णिव्वुदिकामो* इत्यादि सूत्रमेकं, तदनंतरमुपसंहाररूपेण शास्त्रपरिसमाप्त्यर्थं *मग्गप्पभावणट्ठं....* इत्यादि गाथासूत्रमेकम्।

एवं द्वादशान्तरस्थलैर्मोक्षमार्गविशिष्टव्याख्यानरूपे तृतीयमहाधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा - अथ गाथापूर्वार्धेन तु जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्गो भवतीति च प्रतिपादयति अथवा निश्चयज्ञान -दर्शनचारित्राणि जीवस्वभावो भवतीत्युपदिशति —

द्वारा क्रमशः मोक्ष और पुण्यबन्ध होता है — इस प्रतिपादन की मुख्यता से ***दंसणणाणचरित्ताणि*** इत्यादि आठवें स्थल में एक सूत्र है। तदुपरान्त निर्विकल्प परम समाधि स्वरूप सामायिक संयम में स्थिर रहने / ठहरने के लिए समर्थ होने पर भी उसे छोड़कर यदि एकान्त से सरागचारित्ररूप अनुचरण को मोक्ष का कारण मानता है, तब स्थूल परसमय कहलाता है, तथा यदि वहाँ स्थिर रहने का इच्छुक होने पर भी सामग्री की विकलता होने के कारण, अशुभ से बचने के लिए शुभोपयोग करता है, तब वह सूक्ष्म परसमय कहलाता है — इस व्याख्यानरूप से ***अण्णाणादो णाणी*** इत्यादि पाँच गाथाएँ हैं। तदनन्तर तीर्थङ्कर आदि के पुराण और जीवादि नौपदार्थ प्रतिपादक आगम के परिज्ञानसहित तथा उनकी भक्ति से युक्त के यद्यपि उस समय पुण्यास्रव परिणाम होने से मोक्ष नहीं है; तथापि उसके आधार से कालान्तर में निरास्रवमयी शुद्धोपयोगपरिणाम की सामग्री का प्रसङ्ग होता / बनता है — इस कथन की मुख्यता से ***सपदत्थं*** इत्यादि दो सूत्र हैं। इसके बाद साक्षात् मोक्ष की कारणभूत वीतरागता ही इस पञ्चास्तिकाय शास्त्र का तात्पर्य है — इस व्याख्यानरूप से ***तम्हा णिव्वुदिकामो*** इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् उपसंहाररूप से शास्त्र की परिसमाप्ति के लिए ***मग्गप्पभावणट्ठं*** इत्यादि एक गाथा सूत्र है।

इस प्रकार बारह अन्तरस्थलों द्वारा ***मोक्ष-मोक्षमार्ग के विशिष्ट व्याख्यानरूप तृतीय महाधिकार*** में समुदाय पातनिका है। वह इस प्रकार —

जीवसहाओ णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं। (१५४)
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं॥ १६२॥

जीवसहाओ णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं **जीवस्वभावो भवति। किं कर्तृ ? ज्ञानमप्रति**

गाथा १६२ से १८१ पर्यन्त तृतीय महाधिकार की सारणी

स्थलक्रम	स्थल प्रतिपादित विषय	गाथा कहाँ से कहाँ पर्यन्त	कुल गाथाएँ
१	शुद्ध जीव-मोक्षमार्ग स्वरूप	१६२	१
२	स्वसमय-परसमय	१६३	१
३	पर समय का विवरण	१६४-१६५	२
४	स्वसमय का विशेष विवरण	१६६-१६७	२
५	व्यवहार मोक्षमार्ग	१६८	१
६	निश्चय मोक्षमार्ग	१६९-१७०	२
७	भाव सम्यग्दृष्टि का स्वरूप	१७१	१
८	निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय का फल	१७२	१
९	स्थूल-सूक्ष्म परसमय व्याख्यान	१७३-१७७	५
१०	पुण्यास्रव परिणाम का फल	१७८-१७९	२
११	शास्त्र-तात्पर्य वीतरागता	१८०	१
१२	शास्त्र परिसमाप्ति परक उपसंहार	१८१	१

अब, गाथा-पूर्वार्ध से जीव का स्वभाव और अपरार्ध से जीवस्वभाव में नियत चारित्र मोक्षमार्ग है – ऐसा प्रतिपादित करते हैं; अथवा निश्चय ज्ञान, दर्शन, चारित्र जीव का स्वभाव है – ऐसा उपदेश देते हैं –

आत्मा-स्वभाव अनन्यमय निर्विघ्न दर्शन ज्ञान है।
उनमें नियत निंदारहित, अस्तित्व वह चारित्र है॥ १६२॥

गाथार्थ - अनन्यमय, अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन जीव का स्वभाव है तथा उनमें नियत अस्तित्वमय अनिन्दित चारित्र कहलाता है।

टीकार्थ - ***जीवसहाओ णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं*** जीव का स्वभाव है। कर्तारूप क्या जीव का स्वभाव है ? ज्ञान और अप्रतिहत दर्शन, जीव का स्वभाव है। वह कैसा

-हतदर्शनं च। कथंभूतं ? अनन्यमयमभिन्नं इति पूर्वार्धेन जीवस्वभावः कथितः *चरियं य तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं* चरितं च तयोर्नियतमस्तित्वमनिंदितं भणितं कथितम्। किं ? चरितं च। किं तत् ? अस्तित्वम्। किंविशिष्टं ? तयोर्ज्ञानदर्शनयोर्नियतं स्थितम्। पुनरपि किंविशिष्टं ? रागाद्यभावाद -निंदितं, इदमेव चरितं मोक्षमार्ग इति।

अथवा द्वितीयव्याख्यानं — न केवलं केवलज्ञानदर्शनद्वयं जीवस्वभावो भवति किंतु पूर्वोक्त -लक्षणं चरितं स्वरूपास्तित्वं चेति।

इतो विस्तरः — समस्तवस्तुगतानंतधर्माणां युगपद्विशेषपरिच्छित्तिसमर्थं केवलज्ञानं तथा सामान्य -युगपत्परिच्छित्तिसमर्थं केवलदर्शनमिति जीवस्वभावः। कस्मादिति चेत् ? सहजशुद्धसामान्यविशेष -चैतन्यात्मकजीवास्तित्वात्सकाशात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि द्रव्यक्षेत्रकालभावैरभेदादिति। पूर्वोक्तजीवस्वभावादभिन्नमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिंद्रियव्यापाराभावान्निर्विकारमदूषितं चेत्येवं गुणविशिष्टस्वरूपास्तित्वं जीवस्वभावनियतचरितं भवति। तदपि कस्मात् ? स्वरूपं चरणं चारित्रमिति

है ? अनन्यमय, अभिन्न है — इस प्रकार पूर्वार्ध से जीव का स्वभाव कहा। ***चरियं य तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं*** और चारित्र उन दोनों में नियत, अस्तित्व, अनिन्दित कहा गया है। वह क्या है ? चारित्र है। वह कैसा है ? अस्तित्वमय है। वह किस विशेषतावाला है ? उन ज्ञान-दर्शन में नियत, स्थित है। और किस विशेषतावाला है ? रागादि का अभाव होने से अनिन्दित है; यही चारित्र मोक्षमार्ग है — (ऐसा अर्थ है)।

अथवा द्वितीय व्याख्यान : मात्र केवल ज्ञान-दर्शन — ये दो जीव के स्वभाव नहीं हैं, अपितु पूर्वोक्त लक्षण चारित्र, स्वरूपास्तित्व भी जीव का स्वभाव है।

यहाँ विस्तार करते हैं — समस्त वस्तुओं सम्बन्धी अनन्त धर्मों को युगपत् विशेषरूप से जानने में समर्थ केवलज्ञान है तथा सामान्यरूप से युगपत् जानने (देखने) में समर्थ केवलदर्शन है — ये जीव के स्वभाव हैं। ये जीव के स्वभाव कैसे हैं ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — सहज शुद्ध सामान्य-विशेष चैतन्यात्मक जीव अस्तित्व में संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि भेद होने पर भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा अभेद होने से ये जीव के स्वभाव हैं। पूर्वोक्त जीवस्वभाव से अभिन्न उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक और इन्द्रिय व्यापार का अभाव होने से निर्विकार, अदूषित — इस प्रकार के गुण से विशिष्ट स्वरूपास्तित्वमय जीवस्वभाव में नियत चारित्र है।

वह चारित्र कैसे है ? — 'स्वरूप में चरण / प्रवृत्ति चारित्र है' — ऐसा वचन होने से वह चारित्र है। और वह दो प्रकार का है — स्वयं आचरण नहीं करते हुए भी, पर से अनुभूत इष्ट

-वचनात्। तच्च द्विविधं स्वयमनाचरतोऽपि परानुभूतेष्टकामभोगेषु स्मरणमपध्यानलक्षणमिति तदादिपरभावपरिणमनं परचरितं तद्विपरीतं स्वचरितम्। इदमेव चारित्रं परमार्थशब्दवाच्यस्य मोक्षस्य कारणं न चान्यदित्यजानतां मोक्षाद्भिन्नस्यासारसंसारस्य कारणभूतेषु मिथ्यात्वरागादिषु निरतानामस्माक-मेवानंतकालो गतः; एवं ज्ञात्वा तदेव जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षकारणभूतं निरंतरं भावनीयमिति सूत्रतात्पर्यम्। तथाचोक्तं —

'एमेव गओ कालो असारसंसारकारणरयाणं।
परमट्ठकारणाणं कारण ण हु जाणियं किंपि॥'

एवं जीवस्वभावकथनेन जीवस्वभावनियतचरितमेव मोक्षमार्ग इति कथनेन च प्रथमस्थले गाथा गता॥ १६२॥

अथ स्वसमयोपादानेन कर्मक्षयो भवतीति हेतोर्जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्गो भवत्येवं भण्यते —

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ।(१५५)
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो॥ १६३॥

काम-भोगों में स्मरण, अपध्यान लक्षण इत्यादिरूप परभाव-परिणमन परचारित्र है; तथा उससे विपरीत स्वचारित्र है। यह ही चारित्र परमार्थ शब्द से वाच्य मोक्ष का कारण है; इससे भिन्न कोई दूसरा मोक्ष का कारण नहीं है — ऐसा नहीं जानते हुए, मोक्ष से भिन्न असार संसार के कारणभूत मिथ्यात्व-रागादि में निरत वर्तते हुए, हमारा ही अनन्त काल व्यतीत हो गया — ऐसा जानकर मोक्ष के कारणभूत उस ही जीवस्वभाव में नियत चारित्र निरन्तर भावना करने-योग्य है — ऐसा सूत्र-तात्पर्य है। वैसा ही कहा भी है —

'असार संसार के कारणों में रत जीवों का इसी प्रकार ही (यों ही) समय व्यतीत हो गया; उन्होंने परमार्थ के कारणों का कारण कुछ भी नहीं जाना।'

इस प्रकार जीवस्वभाव के कथन द्वारा और जीवस्वभाव में नियत चारित्र ही मोक्षमार्ग है — इस कथन द्वारा प्रथम स्थल में गाथा पूर्ण हुई॥ १६२॥

अब, स्वसमयरूप उपादान से कर्मक्षय होता है; इस कारण जीवस्वभाव में नियत चारित्र मोक्षमार्ग है; ऐसा कहते हैं —

आतम नियत स्व भाव में, गुण परिणमन अनियत करे।
तो परसमय स्वसमय कर्ता कर्म बंधन से छुटे॥ १६३॥

जीवो सहावणियदो जीवो निश्चयेन स्वभावनियतोऽपि *अणियदगुणपज्जओध परसमओ* **अनियतगुणपर्याय:सन्नथ परसमयो भवति। तथाहि — जीव: शुद्धनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावस्तावत् पश्चाद्व्यवहारेण निर्मोहशुद्धात्मोपलब्धिप्रतिपक्षभूतेनानादिमोहोदयवशेन मतिज्ञानादिविभावगुणनर -नारकादिविभावपर्यायपरिणत: सन् परसमयरत: परचरितो भवति, यदा तु निर्मलविवेकज्योति: समुत्पादकेन परमात्मानुभूतिलक्षणेन परमकलानुभवेन शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानं भावयति, तदा स्वसमय: स्वचरितरतो भवति** ***जदि कुणदि सगं समयं*** **यदि चेत्करोति स्वकं समयं, एवं स्वसमयपरसमय स्वरूपं ज्ञात्वा यदि निर्विकारस्वसंवित्तिरूपस्वसमयं करोति परिणमति** ***पब्भस्सदि कम्मबंधादो*** **प्रभ्रष्टो भवति कर्मबंधात्, तदा केवलज्ञानाद्यनंतगुणव्यक्तिरूपान्मोक्षात्प्रतिपक्षभूतो योऽसौ बंधस्तस्माच्च्युतो भवति। ततो ज्ञायते स्वसंवित्तिलक्षणस्वसमयरूपं जीवस्वभावनियतचरितमेव मोक्षमार्ग इति भावार्थ: ॥ १६३ ॥**

एवं स्वसमयपरसमयभेदसूचनरूपेण गाथा गता।

गाथार्थ - स्वभाव नियत जीव यदि अनियत गुण-पर्यायवाला होता है तो वह परसमय है; तथा यदि वह स्वसमय को करता है, तो कर्मबन्ध से छूट जाता है।

टीकार्थ - ***जीवो सहावणियदो*** जीव निश्चय से स्वभाव में नियत होने पर भी ***अणियदगुणपज्जओध परसमओ*** अनियत गुण-पर्यायवाला होता हुआ परसमय होता है।

वह इस प्रकार - वास्तव में तो जीव, शुद्धनय से विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभावी है। पश्चात् व्यवहार से निर्मोह शुद्धात्मा की उपलब्धि से प्रतिपक्षभूत अनादि मोहोदयवश, मतिज्ञानादि विभाव गुण और मनुष्य-नारकी आदि विभाव पर्यायोंरूप परिणमित होता हुआ परसमयरत परचारित्र होता है; परन्तु जब निर्मल विवेक ज्योति से समुत्पादक परमात्मानुभूति लक्षण परमकला के अनुभव से शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी आत्मा की भावना करता है, तब स्वसमय, स्वचारित्ररत होता है। ***जदि कुणदि सगं समयं*** यदि स्वसमय को करता है तो; - इस प्रकार स्वसमय-परसमय के स्वरूप को जानकर यदि निर्विकार स्वसम्वित्तिरूप स्वसमय को करता है, उसरूप परिणमित होता है, ***पब्भस्सदि कम्मबंधादो*** प्रभ्रष्ट होता है कर्मबन्ध से; तब केवलज्ञान आदि अनन्त गुणों की प्रगटतारूप मोक्ष के प्रतिपक्षभूत जो वह बन्ध है, उससे च्युत होता है। इससे ज्ञात होता है कि स्वसंवित्तिलक्षण स्वसमयरूप जीवस्वभाव में नियत चारित्र ही मोक्षमार्ग है - ऐसा भावार्थ है ॥ १६३ ॥

इस प्रकार स्वसमय-परसमय के भेद-सूचनरूप से गाथा पूर्ण हुई।

अथ परसमयपरिणतपुरुषस्वरूपं पुनरपि व्यक्तीकरोति —

जो परदव्वम्मि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।(१५६)
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो॥ १६४॥

जो परदव्वम्मि सुहं असुहं रायेण कुणदि जदि भावं यः परद्रव्ये शुभमशुभं वा रागेण करोति यदि भावं _सो सगचरित्तभट्ठो_ सः स्वकचरित्रभ्रष्टः सन् _परचरियचरो हवदि जीवो_ परचरित्रचरो भवति जीव इति।

तथाहि — यः कर्ता शुद्धगुणपर्यायपरिणतनिजशुद्धात्मद्रव्यात्परिभ्रष्टो भूत्वा निर्मलात्मतत्त्व -विपरीतेन रागभावेन परिणम्य शुभाशुभपरद्रव्योपेक्षालक्षणाच्छुद्धोपयोगाद्विपरीतः समस्तपरद्रव्येषु शुभमशुभं वा भावं करोति, स ज्ञानानंदैकस्वभावात्मा तत्त्वानुचरणलक्षणात्स्वकीयचारित्राद्भ्रष्टः सन् स्वसंवित्त्यनुष्ठानविलक्षणपरचरित्रचरो भवतीति सूत्राभिप्रायः॥ १६४॥

अथ परचरित्रपरिणतपुरुषस्य बंधं दृष्ट्वा मोक्षं निषेधयति; अथवा पूर्वोक्तमेव परसमयस्वरूपं वृद्धमतसंवादेन दृढयति —

अब, परसमय परिणत पुरुष का स्वरूप और भी व्यक्त करते हैं —

जो राग से परद्रव्य में, करता शुभाशुभ भाव को।
वह स्वचरित से भ्रष्ट करता, परचरित आचार को॥ १६४॥

गाथार्थ - जो (जीव) राग से परद्रव्य में यदि शुभ-अशुभभाव करता है, तो वह जीव स्वचारित्र से भ्रष्ट परचारित्ररूप आचरण करनेवाला होता है।

टीकार्थ - ***जो परदव्व्म्हि सुहं असुहं रायेण कुणदि जदि भावं*** जो परद्रव्य में यदि राग से शुभ या अशुभभाव करता है, ***सो सगचरित्तभट्ठो*** वह स्वचारित्र से भ्रष्ट होता हुआ ***परचरियचरो हवदि जीवो*** जीव परचारित्रचर होता है।

वह इस प्रकार — कर्तारूप जो शुद्ध गुण-पर्यायरूप परिणत निज शुद्धात्म-द्रव्य से परिभ्रष्ट होकर निर्मल आत्मतत्त्व से विपरीत रागभावरूप से परिणमन कर शुभाशुभ परद्रव्य से उपेक्षा लक्षण शुद्धोपयोग से विपरीत समस्त परद्रव्यों में शुभ या अशुभभाव करता है, वह ज्ञानानन्द एक स्वभावी आत्मा, तत्त्व अनुचरण लक्षण अपने चारित्र से भ्रष्ट होता हुआ, स्वसम्वित्ति सम्बन्धी अनुष्ठान से विलक्षण परचारित्ररूप आचरण करनेवाला होता है — ऐसा सूत्राभिप्राय है॥ १६४॥

अब, परचारित्र परिणत पुरुष के बन्ध देखकर मोक्ष का निषेध करते हैं; अथवा पूर्वोक्त ही परसमय के स्वरूप को वृद्धमत-संवाद से (जिनेन्द्र भगवान के कथन से) दृढ़ करते हैं —

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोथ भावेण। (१५७)
सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवेंति॥ १६५॥

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा आस्रवति येन पुण्यं पापं वा येन निरास्रवपरमात्मतत्त्वविपरीतेन सम्यगास्रवति। किं ? पुण्यं पापं वा। येन केन ? *भावेण* परिणामेन। कस्य भावेन ? *अप्पणो* आत्मनः *अथ* अहो *सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवेंति* स जीवो यदि निरास्रवपरमात्मस्वभावाच्च्युतो भूत्वा तं पूर्वोक्तं सास्रवभावं करोति तदा स जीवस्तेन भावेन शुद्धात्मानुभूत्याचरणलक्षणस्वचरित्राद्भ्रष्टः सन् परचरित्रो भवतीति जिनाः प्ररूपयंति। ततः स्थितं सास्रवभावेन मोक्षो न भवतीति॥ १६५॥

एवं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावाच्छुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपनिश्चयमोक्षमार्ग -विलक्षणस्य परसमयस्य विशेषविवरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्।

अथ स्वचरितप्रवृत्तपुरुषस्वरूपं विशेषेण कथयति —

इन पुण्य का या पाप का, आस्रव करे जिस भाव से।
जिनवर कहें वह आत्मा, परचरित हो उस भाव से॥ १६५॥

गाथार्थ - आत्मा के जिस भाव से पुण्य या पाप का आस्रव होता है, वह उससे परचारित्र -वाला होता है — ऐसा 'जिन' प्ररूपित करते हैं।

टीकार्थ - ***आसवदि जेण पुण्णं पावं वा*** जिससे पुण्य या पाप का आस्रव होता है; निरास्रव परमात्मतत्त्व से विपरीत जिससे सम्यक्तया आस्रव होता है। किनका होता है ? पुण्य या पाप का होता है। जिससे किससे होता है ? ***भावेण*** भाव से / परिणाम से होता है। किसके भाव से होता है ? ***अप्पणो*** आत्मा के भाव से होता है। ***अथ*** अहो! ***सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवेंति*** वह जीव यदि निरास्रव परमात्मस्वभाव से च्युत होकर उस पूर्वोक्त आस्रवभाव को करता है, तब वह जीव उस भाव द्वारा शुद्धात्मानुभूतिरूप आचरण लक्षण स्वचारित्र से भ्रष्ट होता हुआ, परचारित्र होता है — ऐसा जिन प्ररूपित करते हैं। इससे यह निश्चित हुआ कि आस्रवसहित भाव से मोक्ष नहीं होता है॥ १६५॥

इस प्रकार विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभावी शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान और अनुभूतिरूप निश्चय मोक्षमार्ग से विलक्षण परसमय के विशेष विवरण की मुख्यता से दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, स्वचारित्र में प्रवृत्त पुरुष का स्वरूप विशेषरूप से कहते हैं —

सब संग मुक्त अनन्यमन, निज आत्मा स्व भाव से।
जो नियत देखे और जाने, स्वचरित्र प्रवृत्त है॥ १६६॥

जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण। (१५८)
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो॥ १६६॥

जो **इत्यादि पदखंडनारूपेण व्याख्यानं क्रियते — *सो* सः कर्ता *सगचरियं चरदि* निजशुद्धात्म -संवित्त्यनुचरणरूपं परमागमभाषया वीतरागपरमसामायिकसंज्ञं स्वचरितं चरति अनुभवति। स कः? *जीवो* जीवः। कथंभूतः? *जो सव्वसंगमुक्को* यः सर्वसंगमुक्तः जगत्त्रयकालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च कृत्वा समस्तबाह्याभ्यंतरपरिग्रहेण मुक्तो रहितः शून्योऽपि निस्संगपरमात्मभावनोत्पन्न -सुंदरानंदस्यंदिपरमानंदैकलक्षणसुखसुधारसास्वादेन पूर्णकलशवत्सर्वात्मप्रदेशेषु भरितावस्थः। पुनरपि किंविशिष्टः? *अणण्णमणो* अनन्यमनाः कापोतलेश्याप्रभृतिदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षादिसमस्तपर -भावोत्पन्नविकल्पजालरहितत्वेनैकाग्रमनाः। पुनश्च किं करोति? *जाणदि* जानाति स्वपरपरिच्छित्त्या -कारेणोपलभते *पस्सदि* पश्यति निर्विकल्परूपेणावलोकयति *णियदं* निश्चितम्। कं? *अप्पणं* निजात्मानम्। केन कृत्वा? *सहावेण* निर्विकारचैतन्यचमत्कारप्रकाशेनेति।**

गाथार्थ - सर्व सङ्ग मुक्त और अनन्यमय जो स्वभाव द्वारा नियत आत्मा को जानता-देखता है, वह जीव स्वचारित्र का आचरण करता है।

टीकार्थ - ***जो*** इत्यादि पद-खण्डनारूप से व्याख्यान करते हैं — ***सो*** कर्तारूप वह ***सगचरियं चरदि*** निजशुद्धात्मा की सम्वित्ति, अनुचरणरूप, परमागम भाषा से वीतराग परम सामायिक नामक स्वचारित्रमय आचरण करता है, अनुभव करता है। ऐसा करनेवाला कौन है? ***जीवो*** वह जीव है। वह कैसा जीव है? ***जो सव्वसंगमुक्को*** जो सर्व सङ्ग से मुक्त है; तीन लोक-तीन काल में भी मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना द्वारा समस्त बाह्य -अभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त, रहित, शून्य होते हुए भी निस्सङ्ग परमात्मा की भावना से उत्पन्न सुन्दर आनन्द स्यंदि परमानन्द एक लक्षण सुख-सुधारस के आस्वाद से पूर्ण भरे हुए कलश के समान सम्पूर्ण आत्मप्रदेशों में भरितावस्थ है। और वह किस विशेषतावाला है? ***अणण्णमणो*** अनन्य मन है; कापोतलेश्या आदि सम्बन्धी दृष्ट, श्रुत, अनुभूत भोगों की आकांक्षा आदि समस्त परभावों से उत्पन्न विकल्पजालों से रहित होने के कारण एकाग्र मनवाला है। ऐसा वह और क्या करता है? ***जाणदि*** जानता है; स्व-पर को परिच्छित्ति के आकार से प्राप्त करता / जानता है। ***पस्सदि*** देखता है; निर्विकल्परूप से अवलोकन करता है। ***णियदं*** निश्चितरूप में। वह किसे जानता-देखता है? ***अप्पणं*** निज आत्मा को जानता-देखता है। उसे किससे जानता-देखता है? ***सहावेण*** स्वभाव से, निर्विकार चैतन्य चमत्काररूप प्रकाश से जानता-देखता है।

ततः स्थितं विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणे जीवस्वभावे निश्चलावस्थानं मोक्षमार्ग इति॥ १६६॥

अथ तमेव स्वसमयं प्रकारांतरेण व्यक्तीकरोति –

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा। (१५९)
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो॥ १६७॥

चरदि चरति। किं ? *चरियं* चरितं। कथंभूतं ? *सगं* स्वकं *सो* स पुरुषः निरुपरागसदानन्दैक -लक्षणं निजात्मानुचरणरूपं जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखनिंदाप्रशंसादिसमताभावनानुकूलं स पुरुषः स्वकीयं चरितं चरति। यः किंविशिष्टः ? *जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा* यः परद्रव्यात्मभावरहितात्मा पञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषममत्वप्रभृतिनिरवशेषविकल्पजालरहितत्वात्समस्तबहिरंगपरद्रव्येषु ममत्वकारण -भूतेषु योगी स्वात्मभाव उपादेयबुद्धिरालंबनबुद्धिर्ध्येयबुद्धिश्चेति तया रहित आत्मस्वभावो यस्य स

इससे यह निश्चित हुआ कि विशुद्ध ज्ञान-दर्शन लक्षण जीवस्वभाव में निश्चल अवस्थान मोक्षमार्ग है॥ १६६॥

अब, उसी स्वसमय को प्रकारान्तर से व्यक्त करते हैं –

पर पदार्थात्मक विभावों से, रहित दृग ज्ञान को।
यदि स्वयं से करता अभिन्न, चरित्र स्व का चरण तो॥ १६७॥

गाथार्थ - परद्रव्यात्मक भावों से रहित स्वरूपवाला जो दर्शन-ज्ञान के विकल्प को आत्मा से अविकल्प / अभिन्नरूप आचरण करता है, वह स्वचारित्र का आचरण करता है।

टीकार्थ - ***चरदि*** आचरण करता है। किसका आचरण करता है ? ***चरियं*** चारित्र का आचरण करता है। वह चारित्र कैसा है ? ***सगं*** स्व का / अपना है। ***सो*** वह पुरुष निरुपराग सदानन्द एक लक्षण निजात्मा के अनुचरणरूप, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, निन्दा -प्रशंसा आदि में समताभावना के अनुकूल अपने चारित्र का / स्वचारित्र का आचरण करता है। जो किस विशेषतावाला है ? ***जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा*** जो परद्रव्यात्मक भाव से रहित स्वरूपवाला है; पञ्चेन्द्रिय विषयों की अभिलाषा, ममत्व आदि सम्पूर्ण विकल्पजाल से रहित होने के कारण ममत्व के कारणभूत समस्त बहिरङ्ग परद्रव्यों में उपादेयबुद्धि, आलम्बनबुद्धि, ध्येयबुद्धिरूप से स्वात्मभाव को जोड़ने / लगानेवाले भाव से रहित है आत्मा अर्थात् स्वभाव जिसका, वह परद्रव्यात्मक भाव से रहित आत्मा है। जो और क्या करता है ? ***दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो*** दर्शन-ज्ञान के विकल्प को आत्मा से अविकल्प, अभिन्नरूप आचरण करता है।

भवति परद्रव्यात्मभावरहितात्मा। पुनरपि किं करोति यः ? *दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो* दर्शनज्ञानविकल्पमविकल्पमभिन्नं चरत्यात्मनः सकाशादिति।

तथाहि – पूर्वं सविकल्पावस्थायां ज्ञाताहं द्रष्टाहमिति यद्विकल्पद्वयं तन्निर्विकल्पसमाधिकालेऽ -नंतज्ञानानंदादिगुणस्वभावादात्मनः सकाशादभिन्नं चरतीति सूत्रार्थः ॥ १६७॥

एवं निर्विकल्पस्वसंवेदनस्वरूपस्य पुनरपि स्वसमयस्यैव विशेषव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयं गतम्।

अथ यद्यपि पूर्वं जीवादिनवपदार्थपीठिकाव्याख्यानप्रस्तावे *सम्मत्तं णाणजुदं* इत्यादि व्यवहार -मोक्षमार्गो व्याख्यातः, तथापि निश्चयमोक्षमार्गस्य साधकोऽयमिति ज्ञापनार्थं पुनरप्यभिधीयते –

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं। (१६०)
चिट्ठा तवं हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गोत्ति॥ १६८॥

धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं भवति, तेषामधिगमो ज्ञानं, द्वादशविधे तपसि चेष्टा चारित्रमिति। इतो विस्तरः – वीतरागसर्वज्ञप्रणीतजीवादिपदार्थविषये सम्यक्श्रद्धानं ज्ञानं चेत्युभयं गृहस्थतपोधनयोः

वह इस प्रकार – पहले सविकल्प अवस्था में 'मैं ज्ञाता हूँ, मैं दृष्टा हूँ' – ये जो दो विकल्प थे, उन्हें निर्विकल्प-समाधि के समय अनन्त ज्ञानानन्द आदि गुणस्वभावी आत्मा से अभिन्नरूप आचरण करता है – ऐसा सूत्रार्थ है॥ १६७॥

इस प्रकार निर्विकल्प स्वसम्वेदन स्वरूप के ही और भी विशेष व्याख्यानरूप दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, यद्यपि पहले जीवादि नव पदार्थों की पीठिका-व्याख्यान के प्रसङ्ग पर ***सम्मत्तं णाणजुदं*** इत्यादि द्वारा व्यवहारमोक्षमार्ग का व्याख्यान किया था; तथापि यह निश्चयमोक्षमार्ग का साधक है - ऐसा बताने के लिए फिर से उसे कहते हैं –

धर्मादि का श्रद्धान सम्यक् ज्ञान पूर्वांगादि का।
चारित्र चेष्टा तपों में व्यवहार है मोक्षमार्ग का॥ १६८॥

गाथार्थ - धर्मादि का श्रद्धान, सम्यक्त्व है; अङ्ग-पूर्वगत-ज्ञान, ज्ञान है और तप में चेष्टा / प्रवृत्ति, चारित्र है – ऐसा व्यवहारमोक्षमार्ग है।

टीकार्थ - धर्मादि का श्रद्धान सम्यक्त्व है, उनका अधिगम ज्ञान है और बारह प्रकार के तपों में चेष्टा चारित्र है। यहाँ इनका विस्तार करते हैं – वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत जीवादि पदार्थ के विषय में सम्यक् श्रद्धान और ज्ञान – ये दोनों गृहस्थ और तपोधन / मुनिराज के समान हैं; परन्तु

समानं, चारित्रं तपोधनानामाचारादिचरणग्रंथविहितमार्गेण प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोग्यं पञ्चमहाव्रतपञ्च-समितित्रिगुप्तिषडावश्यकादिरूपं, गृहस्थानां पुनरुपासकाध्ययनग्रंथविहितमार्गेण पञ्चमगुणस्थान-योग्यं दानशीलपूजोपवासादिरूपं दार्शनिकव्रतिकाद्येकादशनिलयरूपं वा इति व्यवहारमोक्षमार्ग-लक्षणम्।

अयं व्यवहारमोक्षमार्गः स्वपरप्रत्ययपर्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यानु-गम्यमानो भव्यजीवस्य निश्चयनयेन भिन्नसाध्यसाधनभावाभावात्स्वयमेव निजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक-श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण परिणममानस्यापि सुवर्णपाषाणस्याग्निरिव निश्चयमोक्षमार्गस्य बहिरंग-साधको भवतीति सूत्रार्थः॥ १६८॥

एवं निश्चयमोक्षमार्गसाधकव्यवहारमोक्षमार्गकथनरूपेण पञ्चमस्थले गाथा गता।

अथ पूर्वं यद्यपि स्वसमयव्याख्यानकाले *जो सव्वसंगमुक्को...* इत्यादि गाथाद्वयेन निश्चय-मोक्षमार्गो व्याख्यातः, तथापि पूर्वोक्तव्यवहारमोक्षमार्गेण साध्योऽयमिति प्रतीत्यर्थं पुनरप्युपदिश्यते —

चारित्र तपोधनों के आचार आदि चरणानुयोग के ग्रन्थों में बताए गए मार्गानुसार प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान के योग्य पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, तीन गुप्ति, षडावश्यक आदि रूप है; तथा गृहस्थों के उपासकाध्ययन ग्रन्थ में बताए गए मार्गानुसार पञ्चम गुणस्थान के योग्य दान, शील, पूजा, उपवासादिरूप या दार्शनिक, व्रतिक आदि एकादश निलय, स्थान/प्रतिमारूप है। – इस प्रकार व्यवहारमोक्षमार्ग का लक्षण है।

स्व-पर प्रत्ययरूप पर्याय के आश्रित भिन्न साध्य-साधन भावमय व्यवहारनय का आश्रय कर, ज्ञात होने योग्य यह व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चयनय से भिन्न साध्य-साधन भाव का अभाव होने से, स्वयं ही निज शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप से परिणमन करनेवाले भव्य जीव को भी, सुवर्ण-पाषाण को अग्नि के समान निश्चयमोक्षमार्ग का बहिरङ्ग साधक होता है – ऐसा सूत्रार्थ है॥ १६८॥

इस प्रकार निश्चय-मोक्षमार्ग के साधक व्यवहारमोक्षमार्ग के कथनरूप से पाँचवें स्थल में गाथा पूर्ण हुई।

अब, पहले यद्यपि स्वसमय व्याख्यान के समय ***जो सव्वसंगमुक्को*** इत्यादि दो गाथाओं द्वारा निश्चय-मोक्षमार्ग का व्याख्यान किया था; तथापि यह पूर्वोक्त व्यवहारमोक्षमार्ग से साध्य है – ऐसा प्रतीति के लिए और भी उपदेश देते हैं –

उनसे समाहित जीव किंचित्, अन्य को करता नहीं।
वा नहीं छोड़े वास्तव में, मोक्षमार्ग कहा वही॥ १६९॥

णिच्चयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा। (१६१)
ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गोत्ति॥ १६९॥

भणिदो **भणितः कथितः। केन? *णिच्छयणयेण* निश्चयनयेन। स कः? *जो अप्पा* यः आत्मा। कथंभूतः? *तिहि तेहिं समाहिदो य* त्रिभिस्तैर्दर्शनज्ञानचारित्रैः समाहित एकाग्रः। पुनरपि किं करोति यः? *ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि* न करोति किंचिदपि शब्दादात्मनोऽन्यत्र क्रोधादिकं न च मुंचत्यात्माश्रितमनंतज्ञानादिगुणसमूहं *सो* स एवं गुणविशिष्टात्मा। कथंभूतो भणितः? *मोक्खमग्गोत्ति* मोक्षमार्ग इति।**

तथाहि — निजशुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिरूपो निश्चयमोक्षमार्गस्तावत् तत्साधकं कथंचित्स्वसंवित्तिलक्षणाविद्यावासनाविलयाद्भेदरत्नत्रयात्मकं व्यवहारमोक्षमार्गमनुप्रपन्नो गुणस्थान -सोपानक्रमेण निजशुद्धात्मद्रव्यभावनोत्पन्ननित्यानंदैकलक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तिरूपपरम -कलानुभवात् स्वशुद्धात्माश्रितनिश्चयदर्शनज्ञानचारित्रैरभेदेन परिणतो यदा भवति तदा निश्चयनयेन

गाथार्थ - उन तीन से समाहित होता हुआ जो आत्मा, वास्तव में न तो कुछ करता है और न छोड़ता है, वह मोक्षमार्ग है — ऐसा कहा गया है।

टीकार्थ - ***भणिदो*** कहा गया है। किससे कहा गया है? ***णिच्छयणयेण*** निश्चयनय से कहा गया है। वह कौन कहा गया है? ***जो अप्पा*** जो आत्मा है, वह कहा गया है। कैसा आत्मा कहा गया है? ***तिहि तेहिं समाहिदो य*** उन तीन दर्शन-ज्ञान-चारित्र से समाहित, एकाग्र आत्मा कहा गया है। और भी जो क्या करता है? ***ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि*** शब्द से (भाव यह है कि) जो आत्मा से भिन्न क्रोधादि को नहीं करता है तथा आत्माश्रित अनन्त ज्ञानादि गुण-समूह को नहीं छोड़ता है। वह इस प्रकार के गुणों से विशिष्ट आत्मा; कैसा कहा गया है? मोक्षमार्ग है — ऐसा कहा गया है।

वह इस प्रकार — निज शुद्धात्मा की रुचि, परिच्छित्ति / जानकारी, निश्चल अनुभूतिरूप निश्चयमोक्षमार्ग है; अविद्या / अज्ञानजन्य वासना के विलय / समाप्त होने से उस (निश्चय -मोक्षमार्ग) के साधक कथञ्चित् स्वसम्वित्ति लक्षण भेदरत्नत्रयात्मक व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त होता हुआ, गुणस्थान सोपान (वीतरागता की श्रेणिओं के) क्रम से निज शुद्धात्मद्रव्यमय भावना से उत्पन्न नित्यानन्द एक लक्षण सुखामृत रस के आस्वाद से तृप्तिरूप परम कला के अनुभव के कारण स्व-शुद्धात्मा के आश्रित रहनेवाले निश्चयदर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ जब अभेदरूप से परिणत होता है, तब निश्चयनय से भिन्न साध्य-साधन का अभाव होने से यह आत्मा ही मोक्षमार्ग है।

भिन्नसाध्यसाधनस्याभावादयमात्मैव मोक्षमार्ग इति।

ततः स्थितं सुवर्णपाषाणवन्निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गयोः साध्यसाधकभावो नितरां संभवतीति॥ १६९॥

अथाभेदेनात्मैव दर्शनज्ञानचारित्रं भवतीति कथनद्वारेण पूर्वोक्तमेव निश्चयमोक्षमार्गं दृढयति —

जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं।(१६२)
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि॥ १७०॥

हवदि भवति *सो* सः कर्ता। किं भवति? *चारित्तं णाणं दंसणमिदि* चारित्रज्ञानदर्शनत्रितयमिति *णिच्छिदो* निश्चितः। स कः? *जो* यः कर्ता। किं करोति? *चरदि णादि पेच्छदि* चरति स्वसंवित्तिरूपे-णानुभवति जानाति निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेन रागादिभ्यो भिन्नं परिच्छिनत्ति पश्यति सत्तावलोकदर्शनेन निर्विकल्परूपेणावलोकयति अथवा विपरीताभिनिवेशरहितशुद्धात्मरुचिपरिणामेन श्रद्दधाति। कं? *अप्पाणं* निजशुद्धात्मानम्। केन कृत्वा? *अप्पणा* वीतरागस्वसंवेदनज्ञानपरिणतिलक्षणेनान्तरात्मना।

इससे निश्चित हुआ कि सुवर्ण-पाषाण के समान निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग के साध्य-साधकभाव सदा सम्यक्तया होता है॥ १६९॥

अब, अभेद से आत्मा ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र है; इस कथन की मुख्यता से पूर्वोक्त ही निश्चयमोक्षमार्ग को दृढ़ करते हैं —

हो आत्मा से नन्यमय आतम का दर्शन ज्ञान वा।
आचरण निश्चित ज्ञान दर्शन, चरण ही यह जानना॥ १७०॥

गाथार्थ - जो अनन्यमय आत्मा का आत्मा द्वारा आचरण करता है, उसे जानता है, देखता है; वह चारित्र ज्ञान-दर्शनमय है — ऐसा निश्चित है।

टीकार्थ - ***हवदि*** है। ***सो*** कर्तारूप वह है। वह क्या है? ***चारित्तं णाणं दंसणमिदि*** चारित्र-ज्ञान-दर्शन तीनों की एकतामय है, ऐसा ***णिच्छिदो*** निश्चित है। इन रूप वह कौन है? ***जो*** कर्तारूप जो; वह क्या करता है? ***चरदि णादि पेच्छदि*** आचरण करता है, स्वसम्वित्तिरूप से अनुभव करता है; जानता है, निर्विकार स्वसंवेदन-ज्ञान द्वारा रागादि से भिन्न जानता है; देखता है, निर्विकल्परूप सत्तावलोकन दर्शन द्वारा अवलोकन करता है अथवा विपरीत अभिनिवेशरहित शुद्धात्मा की रुचिरूप परिणाम द्वारा श्रद्धान करता है। यह सब किसका करता है? ***अप्पाणं*** यह सब अपने शुद्धात्मा का करता है। यह सब किसके द्वारा करता है? ***अप्पणा*** वीतराग स्वसंवेदन

कथंभूतं ? *अणण्णमयं* नान्यमयं अनन्यमयं मिथ्यात्वरागादिमयं न भवति; अथवानन्यमयमभिन्नं। केभ्यः ? केवलज्ञानाद्यनंतगुणेभ्य इति।

अत्र सूत्रे यतः कारणादभेदविवक्षायामात्मैव दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं भवति, ततो ज्ञायते द्राक्षादि-पानकवदनेकमप्यभेदविवक्षायामेकं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्गो भवतीति भावार्थः। तथाचोक्तमात्माश्रितनिश्चयरत्नत्रयलक्षणं —

'दर्शनं निश्चयः पुंसि बोधस्तद्बोध इष्यते। स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः॥' ॥१७०॥
इति मोक्षमार्गविवरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्।

अथ यस्य स्वाभाविकसुखे श्रद्धानमस्ति स सम्यग्दृष्टिर्भवतीति प्रतिपादयति —

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुभवदि। (१६३)
इदि तं जाणदि भवियो अभव्वसत्तो ण सद्दहदि॥ १७१॥

-ज्ञान परिणति लक्षणमय अन्तरात्मा द्वारा करता है। कैसे आत्मा का करता है ? ***अणण्णमयं*** अन्यमय नहीं, वह अनन्यमय है, मिथ्यात्व-रागादिमय नहीं है; अथवा जो अनन्यमय, अभिन्न है – ऐसे आत्मा का करता है। वह किनसे अभिन्न है ? केवल ज्ञान आदि अनन्त गुणों से अभिन्न है।

यहाँ सूत्र में जिस कारण अभेद विवक्षा से आत्मा ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनमय है; उससे ज्ञात होता है कि द्राक्षा आदि के पानक समान (दाख आदि के मिश्रण से बनाए गए शरबत के समान) अनेक होने पर भी अभेद विवक्षा में एक निश्चयरत्नत्रय लक्षण जीवस्वभाव में नियत चारित्र मोक्षमार्ग है – ऐसा भावार्थ है। वैसा ही आत्माश्रित निश्चयरत्नत्रय का लक्षण कहा गया है –

'आत्मा (के सम्बन्ध) में निश्चय, दर्शन और उसका बोध, ज्ञान स्वीकार किया गया है; उसमें ही स्थिति, चारित्र है; इस प्रकार तीनों का योग शिवाश्रय / मोक्ष का मार्ग है।'॥ १७०॥

अब, जिसका स्वाभाविक सुख में श्रद्धान है, वह सम्यग्दृष्टि है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं –

जिससे सभी जानें व देखें, उसी से सुख अनुभवें।
यह जानता वह भव्य यह, श्रद्धा अभव्य नहीं करे॥ १७१॥

गाथार्थ - जिससे सबको जानता और देखता है, उससे वह सौख्य का अनुभव करता है - ऐसा (जो) जानता है वह भव्य है; अभव्य जीव इसका श्रद्धान नहीं करता है।

टीकार्थ - ***जेण*** कर्तारूप यह जीव लोकालोक को प्रकाशित करनेवाले जिस ज्ञान द्वारा

जेण अयं जीवः कर्ता येन लोकालोकप्रकाशककेवलज्ञानेन *विजाणदि* विशेषेण संशयवि-पर्ययानध्यवसायरहितत्वेन जानाति परिच्छिनत्ति। किं ? *सव्वं* सर्वं जगत्त्रयकालत्रयवर्तिवस्तु-कदम्बकम्। न केवलं जानाति, *पेच्छदि* येनैव लोकालोकप्रकाशककेवलदर्शनेन सत्तावलोकेन पश्यति, *सो तेण सोक्खमणुभवदि* स जीवस्तेनैव केवलज्ञानदर्शनद्वयेनानवरतं ताभ्यामभिन्नं सुखमनु-भवति *इदि तं जाणदि भवियो* इति पूर्वोक्तप्रकारेण तदनंतसुखं जानात्युपादेयरूपेण श्रद्दधाति स्वकीय-स्वकीयगुणस्थानानुसारेणानुभवति च। स कः ? भव्यः। *अभव्वसत्तो ण सद्दहदि* अभव्यजीवो न श्रद्धधाति।

तद्यथा — मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनां यथासंभवं चारित्रमोहस्य चोपशमक्षयोपशमक्षये सति स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेण यद्यपि हेयबुद्ध्या विषयसुखमनुभवति भव्यजीवः तथापि निज-शुद्धात्मभावनोत्पन्नमतीन्द्रियसुखमेवोपादेयं मन्यते, न चाभव्यः। कस्मादिति चेत् ? तस्य पूर्वोक्तदर्शन-चारित्रमोहनीयोपशमादिकं न संभवति ततश्चैवाभव्य इति भावार्थः॥ १७१॥

विजाणदि संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय से रहित होने के कारण विशेषरूप से जानता है, सब ओर से पूर्ण जानकारी करता है। किसे जानता है ? ***सव्वं*** सभी को, तीन लोक-तीन कालवर्ती वस्तुसमूह को जानता है। मात्र जानता ही नहीं है; अपितु **पेच्छदि** लोकालोक को प्रकाशित करनेवाले सत्तावलोकनरूप जिस केवलदर्शन द्वारा देखता है; ***सो तेण सोक्खमणुभवदि*** वह जीव उन्हीं केवलज्ञान-दर्शन — दोनों द्वारा निरन्तर उनसे अभिन्न सुख का अनुभव करता है। ***इदि तं जाणदि भवियो*** इस पूर्वोक्त प्रकार से उस अनन्त सुख को जानता है, उपादेयरूप से उसका श्रद्धान करता है और अपने-अपने गुणस्थान के अनुसार उसका अनुभव करता है। ऐसा करनेवाला वह कौन है ? वह भव्य है। ***अभवियसत्तो ण सद्दहदि*** अभव्य जीव उसका श्रद्धान नहीं करता है।

वह इस प्रकार — मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों का और यथासम्भव चारित्रमोह का उपशम, क्षयोपशम या क्षय होने पर यद्यपि भव्य जीव अपने-अपने गुणस्थानानुसार हेय बुद्धि से विषयसुख का अनुभव करता है; तथापि निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख को ही उपादेय मानता है; परन्तु अभव्य उसे स्वीकार नहीं करता है। वह स्वीकार क्यों नहीं करता है ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो उत्तर देते हैं — उसके पूर्वोक्त दर्शन-चारित्र मोहनीय के उपशमादि सम्भव नहीं हैं; इसलिए वह उसे स्वीकार नहीं करता है तथा उसी कारण वह अभव्य है — ऐसा भावार्थ है॥ १७१॥

[इस गाथा-टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने सुख की कारणता को सहेतुक सिद्ध किया है, जो मूलतः पठनीय है।]

एवं भव्याभव्यस्वरूपकथनमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथा गता।

अथ दर्शनज्ञानचारित्रैः पराश्रितैर्बन्धः स्वाश्रितैर्मोक्षो भवतीति समर्थयतीति —

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि।(१६४)
साधूहिं इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा॥ १७२॥

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि **दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गो भवतीति हेतोः सेवितव्यानि। इदं कैरुपदिष्टं ? *साधूहिं इदं भणिदं* साधुभिरिदं भणितं कथितं *तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा* तैस्तु पराश्रितैर्बंधः स्वाश्रितैर्मोक्षो वेति।**

इतो विशेषः — शुद्धात्माश्रितानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षकारणानि भवन्ति पराश्रितानि बंधकारणानि भवन्ति च। केन दृष्टान्तेनेति चेत् ? यथा घृतानि स्वभावेन शीतलान्यपि पश्चादग्निसंयोगेन दाहकारणानि भवंति तथा तान्यपि स्वभावेन मुक्तिकारणान्यपि पञ्चपरमेष्ठ्यादिप्रशस्तद्रव्याश्रितानि

इस प्रकार भव्य-अभव्य के स्वरूप-कथन की मुख्यता से सातवें स्थल में गाथा पूर्ण हुई।

अब, पराश्रित दर्शन-ज्ञान-चारित्र से बन्ध है और स्वाश्रित से मोक्ष है — ऐसा समर्थन करते हैं —

दृग ज्ञान चारित्र मोक्षमग है, अतः सेवन योग्य ही।
पर साधु ऐसा कहें उनसे, बंध भी है मोक्ष भी॥ १७२॥

गाथार्थ - दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है; अतः वे सेवन करने-योग्य है — ऐसा साधुओं ने कहा है; परन्तु उनसे बन्ध भी होता है और मोक्ष भी।

टीकार्थ - ***दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि*** दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है — इस कारण सेवन करना चाहिए। ऐसा उपदेश किनने दिया है ? ***साधूहिं इदं भणिदं*** साधुओं ने ऐसा उपदेश दिया है / कहा है। ***तेहिं दु बंधो वा मोक्खो वा*** परन्तु उन पराश्रित से बन्ध है और स्वाश्रित से मोक्ष है।

यहाँ विशेष कहते हैं — शुद्धात्मा के आश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मोक्ष के कारण हैं और पराश्रित, बन्ध के कारण हैं। किस दृष्टान्त से ? यदि ऐसा प्रश्न हो तो कहते हैं — जैसे स्वभाव से शीतल होने पर भी घी बाद में अग्नि-संयोग से दाह का कारण होता है; उसी प्रकार स्वभाव से मुक्ति के कारण होने पर भी पञ्च परमेष्ठी आदि प्रशस्त द्रव्य के आश्रित होने पर, वे भी साक्षात् पुण्यबन्ध के कारण होते हैं तथा मिथ्यात्व और विषय-कषाय के निमित्तभूत परद्रव्य

साक्षात्पुण्यबंधकारणानि भवंति, मिथ्यात्वविषयकषायनिमित्तभूतपरद्रव्याश्रितानि पुनः पापबंध -कारणान्यपि भवन्ति। तस्माद् ज्ञायते जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्ग इति॥ १७२॥

एवं शुद्धाशुद्धरत्नत्रयाभ्यां यथाक्रमेण मोक्षपुण्यबन्धौ भवत इति कथनरूपेण गाथा गता।

तदनंतरं सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानसंबंधित्वेन गाथापञ्चकं भवति, तत्रैका सूत्रगाथा, तस्या विवरणं गाथात्रयं, ततश्चोपसंहारगाथैका चेति नवमस्थले समुदायपातनिका।

अथ सूक्ष्मपरसमयस्वरूपं कथयति –

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो।(१६५)
हवदित्ति दुक्खमोक्खो परसमयरदो हवदि जीवो॥ १७३॥

***अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि* शुद्धात्मपरिच्छित्तिविलक्षणादज्ञानात्सकाशात् ज्ञानी कर्ता यदि मन्यते। किं ? *हवदित्ति दुक्खमोक्खो* स्वस्वभावेनोत्पन्नसुखप्रतिकूलदुःखस्य मोक्षो विनाशो**

के आश्रित होने पर पापबन्ध के कारण भी होते हैं। इससे ज्ञात होता है कि जीवस्वभाव में नियत चारित्र मोक्षमार्ग है॥ १७२॥

इस प्रकार शुद्धाशुद्ध रत्नत्रय द्वारा यथाक्रम से मोक्ष और पुण्यबन्ध होता है – इस कथनरूप से गाथा पूर्ण हुई।

तत्पश्चात् सूक्ष्म परसमय के व्याख्यान से सम्बन्धित पाँच गाथाएँ हैं। वहाँ एक सूत्र गाथा, उसका विवरण तीन गाथाओं में और उसके बाद एक उपसंहार गाथा – इस प्रकार नवमें स्थल में समुदाय पातनिका है।

अब, सूक्ष्म परसमय का स्वरूप कहते हैं –

'हो शुद्ध में सम्प्रयोग से, दुख-मोक्ष' यदि अज्ञान से।
है मानता ज्ञानी वही है, परसमय-रत इसी से॥ १७३॥

गाथार्थ - यदि अज्ञान से ज्ञानी ऐसा मानता है कि शुद्ध सम्प्रयोग (शुभभाव) से दुःख -मोक्ष होता है तो वह जीव परसमय-रत है।

टीकार्थ - ***अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि*** शुद्धात्मा की परिच्छित्ति से विलक्षण अज्ञान के कारण कर्तारूप ज्ञानी यदि मानता है। वह क्या मानता है ? ***हवदित्ति दुक्खमोक्खो*** अपने स्वभाव से उत्पन्न सुख से प्रतिकूल दुःख का मोक्ष, विनाश होता है – ऐसा मानता है। वह ऐसा किससे होना मानता है ? ***सुद्धसंपयोगादो*** शुद्धों में, शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव में अथवा

भवतीति। कस्मादिति तत्? *सुद्धसंपयोगादो* शुद्धेषु शुद्धबुद्धैकस्वभावेषु शुद्धबुद्धैकस्वभावाराधकेषु वार्हदादिषु संप्रयोगो भक्तिः शुद्धसंप्रयोगस्तस्मात् शुद्धसंप्रयोगात्। तदा कथंभूतो भवति? *परसमयरदो हवदि* तदा काले परसमयरतो भवति *जीवो* स पूर्वोक्तो ज्ञानी जीव इति।

तद्यथा — कश्चित्पुरुषो निर्विकारशुद्धात्मभावनालक्षणे परमोपेक्षासंयमे स्थातुमीहते तत्राशक्तः सन् कामक्रोधाद्यशुद्धपरिणामबंचनार्थं संसारस्थितिछेदनार्थं वा यदा पञ्चपरमेष्ठिषु गुणस्तवनादिभक्तिं करोति तदा सूक्ष्मपरसमयपरिणतः सन् सरागसम्यग्दृष्टिर्भवतीति, यदि पुनः शुद्धात्मभावनासमर्थोऽपि तां त्यक्त्वा शुभोपयोगादेव मोक्षो भवतीत्येकान्तेन मन्यते तदा स्थूलपरसमयपरिणामेनाज्ञानी मिथ्यादृष्टिर्भवति। ततः स्थितं अज्ञानेन जीवो नश्यतीति। तथा चोक्तं —

'केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिन्नष्टाः प्रमादतः। केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिन्नष्टैश्च नाशिताः।'॥१७३॥

अथ पूर्वोक्तशुद्धसंप्रयोगस्य पुण्यबंधं दृष्ट्वा मुख्यवृत्त्या मोक्षं निषेधयति —

शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव के आराधक अरहन्तादि में सम्प्रयोग, भक्ति-शुद्ध सम्प्रयोग है; उस शुद्ध सम्प्रयोग से मोक्ष होना मानता है। तब वह कैसा होता है? ***परसमयरदो हवदि*** उस समय परसमय रत होता है, ***जीवो*** वह पूर्वोक्त ज्ञानी जीव।

वह इस प्रकार — कोई पुरुष निर्विकार शुद्धात्मभावना लक्षण परम उपेक्षा संयम में स्थित रहने का प्रयत्न करता है। उसमें असमर्थ होता हुआ काम, क्रोध आदि अशुद्ध परिणामों से बचने के लिए अथवा संसार की स्थिति का छेद करने के लिए जब पञ्च परमेष्ठिओं में गुण-स्तवन आदिरूप भक्ति करता है, तब सूक्ष्म पर-समय परिणत होता हुआ सराग सम्यग्दृष्टि होता है और यदि शुद्धात्मभावना में समर्थ होने पर भी, उसे छोड़कर शुभोपयोग से ही मोक्ष होता है — ऐसा मानता है, तब स्थूल परसमय परिणाम के कारण अज्ञानी मिथ्यादृष्टि होता है। — इससे यह निश्चित हुआ कि अज्ञान से जीव का नाश होता है। वैसा ही कहा भी है —

'कुछ अज्ञान के कारण नष्ट हैं, कुछ प्रमाद के कारण नष्ट हैं, कुछ ज्ञान के अवलेप से नष्ट हो रहे हैं और कुछ नष्टों द्वारा नष्ट किए जा रहे हैं।'॥ १७३॥

अब, पूर्वोक्त शुद्ध सम्प्रयोग के पुण्यबन्ध को देखकर मोक्ष का निषेध करते हैं —

जिन सिद्ध प्रवचन चैत्य गुरु, वा ज्ञान की भक्ति करे।
वह बाँधता बहु पुण्य पर, ना कर्म का क्षय कर सके॥ १७४॥

गाथार्थ - अरहन्त, सिद्ध, चैत्य (प्रतिमा), प्रवचन (जिनवाणी), मुनिगण, ज्ञान के प्रति भक्ति सम्पन्न जीव बहुत पुण्य बाँधता है; परन्तु वह कर्म का क्षय नहीं करता है।

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो। (१६६)
बंधदि पुण्णं बहुसो ण दु सो कम्मक्खयं कुणदि॥ १७४॥

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानेषु भक्तिसंपन्नो जीवः बहुशः प्रचुरेण दु स्फुटं पुण्यं बध्नाति *सो* सः *ण कम्मक्खयं कुणदि* नैव कर्मक्षयं करोति। अत्र निरास्रवशुद्धनिजात्मसंवित्त्या मोक्षो भवतीति हेतोः पराश्रितपरिणामेन मोक्षो निषिद्ध इति सूत्रार्थः॥ १७४॥

अथ शुद्धात्मोपलंभस्य परद्रव्य एव प्रतिबंध इति प्रज्ञापयति –

जस्स हिदयेणुमेत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो। (१६७)
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरोवि॥ १७५॥

यस्य हृदये मनसि *अणुमेत्तं वा* परमाणुमात्रोऽपि *परदव्वं* शुभाशुभपरद्रव्यैः *हि* स्फुटं *विज्जदे रागो* रागो विद्यते *सो* सः *ण विजाणदि* न जानाति। किं ? समयम्। कस्य ? *सगस्स* स्वकीयात्मनः। कथंभूतः ? *सव्वागमधरोवि* सर्वशास्त्रपारगोऽपि।

टीकार्थ - अरहन्त, सिद्ध, चैत्य (अरहन्तादि की प्रतिमा), प्रवचन (जिनवाणी), गण / मुनिगण, ज्ञान में भक्ति से सम्पन्न जीव बहुशः प्रचुर मात्रा में ***दु*** स्पष्टरूप से पुण्य बाँधता है; ***सो*** वह ***ण कम्मक्खयं कुणदि*** कर्म का क्षय नहीं करता है।

यहाँ निरास्रवमय शुद्ध निजात्मा की संवित्ति से मोक्ष होता है – इस कारण पराश्रित परिणाम से मोक्ष होने का निषेध किया गया है – ऐसा सूत्रार्थ है॥ १७४॥

अब, शुद्धात्मोपलम्भ के परद्रव्य (मात्र) ही प्रतिबन्ध है; ऐसा प्रज्ञापित करते हैं / प्रकृष्टरूप से ज्ञान कराते हैं –

परद्रव्य प्रति जिसके हृदय में, राग है अणुमात्र भी।
वह सर्व आगम धर भले, पर आत्मा जाने नहीं॥ १७५॥

गाथार्थ - जिसके हृदय में परद्रव्य के प्रति अणुमात्र भी राग विद्यमान है, वह सर्व आगमधर होने पर भी, अपने समय को नहीं जानता है।

टीकार्थ - ***जस्स हिदये*** जिसके हृदय, मन में; ***अणुमेत्तं वा*** परमाणुमात्र भी ***परदव्वं*** शुभाशुभ परद्रव्यों के साथ ***हु*** वास्तव में ***विज्जदे रागो*** राग विद्यमान है; ***सो*** वह ***ण विजाणदि*** नहीं जानता है। वह किसे नहीं जानता है ? ***समयं*** वह समय को नहीं जानता है। वह किसके समय को नहीं जानता है ? ***सगस्स*** अपने आत्मा सम्बन्धी समय को नहीं जानता है ? कैसा होने

तथाहि — निरुपरागपरमात्मनि विपरीतो रागो यस्य विद्यते स स्वकीयशुद्धात्मानुचरणरूपं स्वस्वरूपं न जानाति, ततः कारणात्पूर्वं विषयानुरागं त्यक्त्वा तदनन्तरं गुणस्थानसोपानक्रमेण रागादि -रहितशुद्धात्मनि स्थित्वा चार्हदादिविषयेऽपि रागस्त्याज्य इत्यभिप्रायः ॥ १७५ ॥

अथ सर्वानर्थपरंपराणां राग एव मूल इत्युपदिश्यति —

धरिदुं जस्स ण सक्को चित्तंभामो बिणा दु अप्पाणं।(१६८)
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स॥ १७६ ॥

धरिदुं **धर्तुं** ***जस्स*** **यस्य** ***ण सक्को*** **न शक्यः कर्मतापन्नः** ***चित्तंभामो*** **चित्तभ्रमः अथवा विचित्रभ्रमः आत्मनो भ्रान्तिः। कथं?** ***विणा दु अप्पाणं*** **आत्मानं बिना निजशुद्धात्मभावनामंतरेण** ***रोधो तस्स ण विज्जदि*** **रोधः संवरः तस्य न विद्यते। कस्य संबंधि?** ***सुहासुहकदस्स कम्मस्स*** **शुभाशुभकृतस्य कर्मण इति।**

पर भी उसे नहीं जानता है? ***सव्वागमधरोवि*** सम्पूर्ण शास्त्रों का पारगामी होने पर भी वह उसे नहीं जानता है।

वह इस प्रकार — निरुपराग परमात्मा से विपरीत राग जिसके विद्यमान है, वह अपने शुद्धात्मा में अनुचरणमय स्व-स्वरूप को नहीं जानता है; उस कारण पहले विषयानुराग को छोड़कर, तत्पश्चात् गुणस्थान-सोपान (वीतरागता की वृद्धि के) क्रम से रागादि रहित निज शुद्धात्मा में स्थिति कर, अरहन्त आदि के विषय में राग छोड़ने-योग्य है — ऐसा अभिप्राय है॥ १७५ ॥

अब, राग ही सम्पूर्ण अनर्थ-परम्पराओं का मूल है — ऐसा उपदेश देते हैं —

जो चित्त भ्रम के बिना आतम धारने में शक्य ना।
हो इसी से उसके शुभाशुभ कर्म का भी रोध ना॥ १७६ ॥

गाथार्थ - जो चित्त के भ्रम से रहित आत्मा को धारण करने / रखने में समर्थ नहीं है, उसके शुभाशुभकर्मों का निरोध नहीं होता है।

टीकार्थ - ***धरिदुं जस्स ण सक्को*** कर्मता को प्राप्त जो धरने को / निकालने के लिए समर्थ नहीं है। ***चित्तंभामो*** चित्तभ्रम अथवा विचित्रभ्रम, आत्मा की भ्रान्ति। उसे कैसे निकालने में समर्थ नहीं है? ***बिणा दु अप्पाणं*** आत्मा के बिना, निज शुद्धात्मा की भावना के बिना उसे निकालने में समर्थ नहीं है; ***रोधो तस्स ण विज्जदि*** उसके रोध, संवर नहीं है। उसके किसका संवर नहीं है? ***सुहासुहकदस्स कम्मस्स*** उसके शुभाशुभकृत कर्म का संवर नहीं है।

तद्यथा — योऽसौ नित्यानन्दैकस्वभावनिजात्मानं न भावयति, तस्य मायामिथ्यानिदानशल्यत्रय -प्रभृतिसमस्तविभावरूपो बुद्धिप्रसरो धर्तुं न याति निरोधाभावे च शुभाशुभकर्मणां संवरो नास्तीति। ततः स्थितं समस्तानर्थपरंपराणां रागादिविकल्पा एव मूलमिति॥ १७६॥

ततः तस्मान्मोक्षार्थिना पुरुषेण आस्रवकारणभूतं रागादिविकल्पजालं निर्मूलनाय ग्रहणरहित -त्वान्निःसंगता एवाचरणीया इति सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानमुपसंहरति —

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य भविय पुणो।(१६९)
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पेदि॥ १७७॥

तम्हा **तस्माच्चित्तरागादिविकल्पजालं** ***अण्णाणादो णाणीत्यादि*** **गाथाचतुष्टयेनास्रवकारणं भणितं तस्मात्कारणात्** ***णिव्वुदिकामो*** **निर्वृत्यभिलाषी पुरुषः** ***णिस्संगो*** **निःसंगात्मतत्त्वविपरीतबाह्या -भ्यन्तरपरिग्रहेण रहितत्वान्निःसंगः** ***णिम्ममो*** **रागाद्युपाधिरहितचैतन्यप्रकाशलक्षणात्मतत्त्वविपरीत**

वह इस प्रकार – जो वह नित्यानन्द एक स्वभावी निजात्मा की भावना नहीं करता है, उसे माया–मिथ्या–निदान – तीन शल्यप्रभृति समस्त विभावरूप बुद्धि का प्रसार / विस्तार / फैलाव धरना / रोकना नहीं आता है; और उसके निरोध का अभाव होने पर (उनके नहीं रुक पाने के कारण) शुभाशुभकर्मों का संवर नहीं होता है। इससे यह निश्चित हुआ कि रागादि विकल्प ही समस्त अनर्थ–परम्पराओं के मूल हैं॥ १७६॥

उसके बाद, उस कारण मोक्षार्थी पुरुष द्वारा आस्रव के कारणभूत रागादि विकल्पजाल के निर्मूलन–हेतु, ग्रहण से रहित होने के कारण निःसङ्गता ही आचरणीय है; इस प्रकार से सूक्ष्म परसमय के व्याख्यान का उपसंहार करते हैं –

इसलिए निर्वाण अर्थी, संग बिन ममता रहित।
हो सिद्ध में भक्ति करे, उससे मिले निर्वाण पद॥ १७७॥

गाथार्थ - इसलिए निर्वाण का इच्छुक जीव निःसङ्ग और निर्मम होकर सिद्धों में भक्ति करता है, उससे वह निर्वाण को प्राप्त होता है।

टीकार्थ - ***तम्हा*** इसलिए, ***अण्णाणादो णाणी*** इत्यादि चार गाथाओं द्वारा चित्तगत रागादि विकल्पजाल आस्रव के कारण कहे हैं; उस कारण ***णिव्वुदिकामो*** निर्वृत्ति / मोक्ष का अभिलाषी पुरुष ***णिस्संगो*** निःसङ्ग आत्मतत्त्व से विपरीत बाह्य–अभ्यन्तर परिग्रह से रहित होने के कारण निःसङ्ग ***णिम्ममो*** और रागादि उपाधि से रहित चैतन्यमय प्रकाश लक्षण आत्मतत्त्व से

-मोहोदयोत्पन्नेन ममकाराहंकारादिरूपविकल्पजालेन रहितत्वात् निर्मोहश्च निर्ममः *भविय* भूत्वा *पुणो* पुनः *सिद्धेसु* सिद्धगुणसदृशानंतज्ञानात्मगुणेषु *कुणदु* करोतु ? कां ? *भत्तिं* पारमार्थिकस्वसंवित्ति -रूपां सिद्धभक्तिम्। किं भवति ? *तेण* तेन सिद्धभक्तिपरिणामेन शुद्धात्मोपलब्धिरूपं *णिव्वाणं* निर्वाणं *पप्पोदि* प्राप्नोतीति भावार्थः॥ १७७॥

एवं सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानमुख्यत्वेन नवमस्थले गाथापञ्चकं गतम्।

अथार्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तपुरुषस्य साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेऽपि परंपरया मोक्षहेतुत्वं द्योतयन् सन् पूर्वोक्तमेव सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानं प्रकारान्तरेण कथयति —

सपदत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोचिस्स। (१७०)
दूरयरं णिव्वाणं संजमतवसंपजुत्तस्स॥ १७८॥

दूरयरं णिव्वाणं दूरतरं निर्वाणं भवति। कस्य ? *अभिगदबुद्धिस्स* अभिगतबुद्धेः तद्गतबुद्धेः। कं प्रति ? *सपदत्थं तित्थयरं* जीवादिपदार्थसहिततीर्थकरं प्रति। पुनरपि किंविशिष्टस्य ? *सुत्तरोचिस्स*

विपरीत मोहोदय से उत्पन्न ममकार-अहङ्कार आदिरूप विकल्पजाल से रहित होने के कारण निर्मोह, निर्मम ***भवीय*** होकर **पुणो** फिर ***सिद्धेसु*** सिद्ध गुणों के समान अपने अनन्त ज्ञान आदि गुणों में करो। उनमें क्या करो ? ***भत्तिं*** उनमें पारमार्थिक स्वसंवित्तिरूप सिद्ध भक्ति करो। उससे क्या होता है ? ***तेण*** उस सिद्धभक्तिरूप परिणाम से ***णिव्वाणं*** शुद्धात्मोपलब्धिरूप निर्वाण ***पप्पोदि*** प्राप्त होता है — ऐसा भावार्थ है॥ १७७॥

इस प्रकार सूक्ष्म परसमय-व्याख्यान की मुख्यता से नवमें स्थल में पाँच गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, अरहन्त आदि की भक्तिरूप परसमय में प्रवृत्त पुरुष के साक्षात् मोक्ष-हेतुत्व का अभाव होने पर भी, परम्परा से मोक्ष-हेतुत्व को घोषित / प्रकाशित करते हुए पूर्वोक्त ही सूक्ष्म -परसमय के व्याख्यान को प्रकारान्तर से कहते हैं —

हो युक्त तप संयम तथापि, तीर्थंकर रु पदार्थ में।
बुद्धि लगी व सूत्र रुचते, दूरतर मुक्ति उसे॥ ११८॥

गाथार्थ - संयम-तप संयुक्त होने पर भी जिसकी बुद्धि का आकर्षण पदार्थोंसहित तीर्थङ्कर के प्रति है तथा जिसे सूत्र के प्रति रुचि है, उसे निर्वाण दूरतर है।

टीकार्थ - ***दूरयरं णिव्वाणं*** दूरतर-निर्वाण है। किसके निर्वाण दूरतर है ? ***अभिगदबुद्धिस्स*** अभिगत बुद्धिवाले को, तद्गत बुद्धिवाले को वह दूरतर है। किसके प्रति

श्रुतरोचिन आगमरुचेः। पुनरपि कथंभूतस्य? *संजमतवसंपजुत्तस्स* संयमतपः संप्रयुक्तस्यापीति।

इतो विस्तरः — बहिरंगेन्द्रियसंयमप्राणसंयमबलेन रागाद्युपाधिरहितस्य ख्यातिपूजालाभनिमित्ता-नेकमनोरथरूपविकल्पजालज्वालावलिरहितत्वेन निर्विकल्पस्य च चित्तस्य निजशुद्धात्मनि संयमार्थं स्थितिकरणात्संयतोऽपि अनशनाद्यनेकविधबाह्यतपश्चरणबलेन समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणेना-भ्यन्तरतपसा च नित्यानन्दैकात्मस्वभावे प्रतपनाद्विजयनात्तपस्थोऽपि यदा विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावा-न्निरंतरं तत्र स्थातुं न शक्नोति तदा किं करोति? क्वापि काले शुद्धात्मभावनानुकूलजीवादिपदार्थप्रति-पादकमागमं रोचते कदाचित्पुनर्यथा कोऽपि रामदेवादिपुरुषो देशान्तरस्थसीतादिस्त्रीसमीपादागतानां पुरुषाणां तदर्थं दानसन्मानादिकं करोति तथा मुक्तिश्रीवशीकरणार्थं निर्दोषिपरमात्मनां तीर्थकरपरमदेवानां तथैव गणधरदेवभरतसगररामपांडवादिमहापुरुषाणां चाशुभरागबंचनार्थं शुभधर्मानुरागेण चरित-पुराणादिकं शृणोति, भेदाभेदरत्नत्रयभावनारतानामाचार्योपाध्यायादीनां गृहस्थावस्थायां च पुनर्दान-पूजादिकं करोति च तेन कारणेन यद्यप्यनन्तसंसारस्थितिछेदं करोति कोऽप्यचरमदेहस्तद्भवे कर्मक्षयं

तद्‌गत बुद्धिवाले को वह दूरतर है। ***सपदत्थं तित्थयरं*** जीवादि पदार्थ सहित तीर्थङ्कर के प्रति तद्‌गत बुद्धिवाले को वह दूरतर है। और किस विशेषतावाले को वह दूरतर है? ***सुत्तरोचिस्स*** श्रुतरोची, आगम की रुचिवाले को वह दूरतर है। और कैसे को वह दूरतर है? ***संजमतवसंपजुत्तस्स*** संयम-तपसम्प्रयुक्त को भी वह दूरतर है।

यहाँ विस्तार करते हैं — बहिरङ्ग इन्द्रियसंयम और प्राणसंयम के बल से रागादि उपाधि से रहित तथा ख्याति, पूजा, लाभ के निमित्तभूत अनेक मनोरथरूप विकल्पजालमय ज्वालावलि से रहित होने के कारण निर्विकल्प चित्त के, अपने शुद्धात्मा में संयम के लिए स्थिति करने से संयत होने पर भी अनशन आदि अनेक प्रकार के बाह्य तपश्चरण के बल से और समस्त परद्रव्य सम्बन्धी इच्छा के निरोध लक्षण अभ्यन्तर तप द्वारा नित्यानन्द एक आत्मस्वभाव में प्रतपन, विजयन होने से तप में स्थित होने पर भी, जब विशिष्ट संहनन आदि शक्ति का अभाव होने से निरन्तर वहाँ स्थिर रहने में समर्थ नहीं हो पाता है; तब क्या करता है?

तब किसी समय शुद्धात्मभावना के अनुकूल जीवादि पदार्थों के प्रतिपादक आगम के प्रति रुचि करता है; और कभी जैसे कोई रामदेव आदि पुरुष देशान्तर / अन्य देश में स्थित सीता आदि स्त्री के समीप से आए पुरुषों का उसके लिए दान-सम्मान आदि करता है; उसी प्रकार मुक्तिश्री को वश में करने के लिए, अशुभराग से बचने-हेतु, शुभ धर्मानुराग के कारण निर्दोषी परमात्मा परमदेव तीर्थङ्करों के और उसी प्रकार गणधरदेव, भरत, सगर, राम, पाण्डव आदि

न करोति; तथापि पुण्यास्त्रवपरिणामसहितत्वात्तद्भवे निर्वाणं न लभते भवान्तरे पुनर्देवेन्द्रादिपदं लभते।

तत्र विमानपरिवारादिविभूतिं तृणवद्गणयन् सन् पञ्चमहाविदेहेषु गत्वा समवसरणे वीतराग-सर्वज्ञान् पश्यति निर्दोषपरमात्माराधकगणधरदेवादीनां च तदनन्तरं विशेषेण दृढधर्मो भूत्वा चतुर्थगुण-स्थानयोग्यमात्मभावनापरित्यजन् सन् देवलोके कालं गमयति, ततोऽपि जीवितान्ते स्वर्गादागत्य-मनुष्यभवे चक्रवर्त्यादिविभूतिं लब्ध्वापि पूर्वभवभावितशुद्धात्मभावनाबलेन मोहं न करोति, ततश्च-विषयसुखं परिहृत्य जिनदीक्षां गृहीत्वा निर्विकल्पसमाधिविधानेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजशुद्धात्मनि स्थित्वा मोक्षं गच्छतीति भावार्थः॥ १७८॥

अथ पूर्वसूत्रे भणितं तद्भवे मोक्षं न लभते पुण्यबन्धमेव प्राप्नोतीति तमेवार्थं द्रढयति —

महापुरुषों के चरित्र-पुराणादि को सुनता है तथा गृहस्थ अवस्था में भेद-अभेद रत्नत्रयरूप भावना में रत आचार्य, उपाध्याय आदि को दान देता है, उनकी पूजा आदि करता है; उस कारण यद्यपि अनन्त संसार की स्थिति का छेद करता है; कोई अचरम देहधारी उस भव में कर्मक्षय नहीं करता है, तथापि पुण्यास्त्रव परिणाम से सहित होने के कारण उस भव में निर्वाण प्राप्त नहीं करता है, भवान्तर में देवेन्द्र आदि पद को प्राप्त करता है।

वहाँ विमान, परिवार आदि विभूति को तृणवत् गिनता / मानता हुआ, पाँच महाविदेहों में जाकर समवसरण में वीतराग-सर्वज्ञ को देखता है; उनके तथा निर्दोषी परमात्मा के आराधक गणधरदेवादि के दर्शन करता है। तत्पश्चात् विशेषरूप से धर्म में दृढ़ होकर चतुर्थ गुणस्थान के योग्य आत्मभावना को नहीं छोड़ता हुआ देवलोक में समय व्यतीत करता है। जीवन का अन्त होने पर उस स्वर्ग से भी आकर मनुष्यभव में चक्रवर्ती आदि विभूति को पाकर भी पूर्वभव में भाई हुई शुद्धात्मा की भावना के बल से उसमें मोह नहीं करता और उसके बाद विषयसुख को छोड़कर जिनदीक्षा ग्रहणकर निर्विकल्प समाधि के विधान से विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभावी निज शुद्धात्मा में स्थित होकर मोक्ष जाता है — ऐसा भावार्थ है॥ १७८॥

अब, उस भव में मोक्ष प्राप्त नहीं करता, पुण्यबन्ध को ही प्राप्त होता है — पूर्व सूत्र में कहे गए, उसी अर्थ को दृढ़ करते हैं —

अरहंत सिद्ध रु चैत्य, प्रवचन भक्त जो उत्कृष्टता।
मय तपः-कर्म करे यदि, तो नियम से हो देवता॥ १७९॥

गाथार्थ - अरहन्त, सिद्ध, चैत्य, प्रवचन का भक्त होता हुआ जो उत्कृष्टरूप से तपःकर्म करता है, वह नियम से सुरलोक को प्राप्त होता है।

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण। (१७१)
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि॥ १७९॥

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः सन् परेणोत्कृष्टेन यः कश्चित्करोति। किं ? तपःकर्म स नियमेन सुरलोकं समाददाति प्राप्नोतीत्यर्थः।

अत्र सूत्रे यः कोऽपि शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा आगमभाषया मोक्षं वा व्रततपश्चरणादिकं करोति स निदानरहितपरिणामेन सम्यग्दृष्टिर्भवति, तस्य तु संहननादिशक्त्यभावाच्छुद्धात्मस्वरूपे स्थातु-मशक्यत्वाद्वर्तमानभवे पुण्यबंध एव भवान्तरे तु परमात्मभावनास्थिरत्वे सति नियमेन मोक्षो भवति तद्विपरीतस्य भवान्तरेऽपि मोक्षनियमो नास्तीति सूत्राभिप्रायः॥ १७९॥

इत्यचरमदेहपुरुषव्याख्यानमुख्यत्वेन दशमस्थले गाथाद्वयं गतम्।

अथास्य पञ्चास्तिकायप्राभृतशास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति प्रतिपादयति –

टीकार्थ – जो कोई पर से, उत्कृष्टरूप से अरहन्त, सिद्ध, चैत्य, प्रवचन का भक्त होता हुआ करता है। ऐसा जो क्या करता है ? ऐसा जो तप:कर्म करता है, वह नियम से सुरलोक को प्राप्त करता है – ऐसा अर्थ है।

इस सूत्र में जो कोई भी शुद्धात्मा को उपादेयकर अथवा आगम भाषा की अपेक्षा मोक्ष को उपादेयकर निदानरहित परिणाम से व्रत, तपश्चरण आदि करता है, वह सम्यग्दृष्टि है; परन्तु उसके संहनन आदि शक्ति का अभाव होने से, शुद्धात्मस्वरूप में स्थिर रहने के लिए असमर्थ होने के कारण वर्तमान भव में पुण्यबन्ध ही है; तथापि भवान्तर में परमात्मभावना में स्थिरता होने पर नियम से मोक्ष होता है। उससे विपरीत के भवान्तर में भी मोक्ष नहीं है – ऐसा सूत्र का अभिप्राय है॥ १७९॥

इस प्रकार अचरमदेहधारी पुरुष के व्याख्यान की मुख्यता से दशवें स्थल में दो गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब, इस '**पञ्चास्तिकाय-प्राभृत**' शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता ही है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं –

अतएव करना राग ना, किंचित् कहीं मोक्षार्थिओ।
इससे तरे वह भव्य, भवसागर सदा वीतराग हो॥ १८०॥

गाथार्थ – इसलिए मोक्षाभिलाषी सर्वत्र किञ्चित् भी राग न करे; इससे वह वीतरागी भव्य भवसागर को तिर जाता है / पार कर जाता है।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।(१७२)
सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि॥ १८०॥

तम्हा यस्मादत्र ग्रन्थे मोक्षमार्गविषये वीतरागत्वमेव दर्शितं तस्मात्कारणात् *णिव्वुदिकामो* निर्वृत्त्यभिलाषी पुरुषः *रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि* रागं सर्वत्र विषये करोतु मा किंचित् *सो तेण वीदरागो* स तेन रागाद्यभावेन वीतरागः सन् *भवियो* भव्यजीवः *भवसायरं तरदि* भवसमुद्रं तरतीति।

तद्यथा — यस्मादत्र शास्त्रे मोक्षमार्गव्याख्यानविषये निरुपाधिचैतन्यप्रकाशरूपं वीतरागत्वमेव दर्शितं तस्मात्केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपकार्यसमयसारशब्दाभिधानमोक्षाभिलाषी भव्योऽर्हदादि-विषयेऽपि स्वसंवित्तिलक्षणरागं मा करोतु तेन निरुपरागचिज्ज्योतिर्भावेन वीतरागो भूत्वा अजरामरपदस्य विपरीतं जातिजरामरणादिरूपविविधजलचराकीर्णं वीतरागपरमानन्दैकरूपसुखरसास्वादप्रतिबन्धक-नारकादिदुःखरूपक्षारनीरपूर्णं रागादिविकल्परहितपरमसमाधिविनाशकपञ्चेन्द्रियविषयाकांक्षाप्रभृति-समस्तशुभाशुभविकल्पजालरूपकल्लोलमालाविराजितमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखप्रतिपक्षभूता-कुलत्वोत्पादकनानाप्रकारमानसदुःखरूपवडवानलशिखासंदीपिताभ्यंतरं च संसारसागरमुत्तीर्यानन्त-ज्ञानादिगुणलक्षणमोक्षं प्राप्नोतीति।

टीकार्थ - ***तम्हा*** जिस कारण इस मोक्षमार्ग के विषय में वीतरागता ही दिखाई गई है, उस कारण ***णिव्वुदिकामो*** निर्वृत्ति / मोक्ष का अभिलाषी पुरुष! ***रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि*** राग सर्वत्र, किसी भी विषय में किञ्चित् भी न करे ***सो तेण वीदरागो*** उस रागादि के अभाव से वीतराग होता हुआ वह ***भवियो*** भव्य जीव ***भवसायरं तरदि*** भवसमुद्र को तिरता / पार कर जाता है।

वह इस प्रकार — जिस कारण इस शास्त्र में मोक्षमार्ग-व्याख्यान के विषय में निरुपाधि चैतन्य प्रकाशरूप वीतरागता ही दिखाई है, उस कारण केवलज्ञान आदि अनन्त गुणों की व्यक्तिरूप कार्यसमयसार शब्द से कहे जानेवाले मोक्षमार्ग का अभिलाषी भव्य अरहन्त आदिरूप विषय में भी स्वसंवित्ति लक्षण राग नहीं करे; उस निरुपराग चित् ज्योतिभाव से वीतराग होकर अजर-अमर पद से विपरीत जन्म-जरा-मरण आदिरूप अनेक प्रकार के जलचरों से व्याप्त, वीतराग परमानन्द एकरूप सुखरसमय आस्वाद के प्रतिबन्धक नारक आदि दुःखरूप क्षार / खारे जल से परिपूर्ण / भरे हुए, रागादि विकल्परहित परम समाधि को नष्ट करनेवाले पञ्चेन्द्रिय विषयों की आकांक्षा प्रभृति सम्पूर्ण शुभ-अशुभ विकल्पजालरूप कल्लोलमाला / तरङ्ग-समूह से विराजित/सुशोभित, अनाकुलत्वलक्षण पारमार्थिक सुख से प्रतिपक्षभूत आकुलता को उत्पन्न करनेवाले अनेक प्रकार के मानसिक दुःखरूप अन्दर में प्रज्वलित बड़वानल की शिखामय, संसार-सागर को पारकर अनन्त ज्ञान आदि गुण लक्षण मोक्ष को प्राप्त होता है।

अथैवं पूर्वोक्तप्रकारेणास्य प्राभृतस्य शास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यं ज्ञातव्यं, तच्च वीतरागत्वं निश्चयव्यवहारनयाभ्यां साध्यसाधकरूपेण परस्परसापेक्षाभ्यामेव भवति मुक्तिसिद्ध्ये न च पुनर्निरपेक्षाभ्यामिति वार्तिकम्।

तद्यथा — ये केचन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चय -मोक्षमार्गनिरपेक्षं केवलशुभानुष्ठानरूपं व्यवहारनयमेव मोक्षमार्गं मन्यन्ते, तेन तु सुरलोकादिक्लेश -परंपरया संसारं परिभ्रमंतीति, यदि पुनः शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निश्चयमोक्षमार्गं मन्यंते निश्चयमोक्षमार्गा -नुष्ठानशक्त्यभावान्निश्चयसाधकं शुभानुष्ठानं च कुर्वन्ति तर्हि सरागसम्यग्दृष्टयो भवन्ति परंपरया मोक्षं लभन्ते इति व्यवहारैकान्तनिराकरणमुख्यत्वेन वाक्यद्वयं गतम्।

येऽपि केवलनिश्चयनयावलंबिनः संतोऽपि रागादिविकल्परहितं परमसमाधिरूपं शुद्धात्मान -मलभमाना अपि तपोधनाचरणयोग्यं षडावश्यकाद्यनुष्ठानं श्रावकाचरणयोग्यं दानपूजाद्यनुष्ठानं च दूषयंते तेऽप्युभयभ्रष्टाः संतो निश्चयव्यवहारानुष्ठानयोग्यावस्थान्तरमजानन्तः पापमेव बध्नन्ति। यदि पुनः शुद्धात्मानुष्ठानरूपं मोक्षमार्गं तत्साधकं व्यवहारमोक्षमार्गं मन्यन्ते तर्हि चारित्रमोहोदयात् शक्त्य

अब, इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से इस प्राभृत शास्त्र का वीतरागता ही तात्पर्य जानना चाहिए और मुक्ति की सिद्धि के लिए वह वीतरागता साध्य-साधकरूप से परस्पर सापेक्ष निश्चय-व्यवहार नयों द्वारा ही होती है; निरपेक्षों से नहीं होती है — ऐसा वार्तिक है।

वह इस प्रकार — जो कोई विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावमय शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान -ज्ञान-अनुष्ठानरूप निश्चय मोक्षमार्ग से निरपेक्ष, केवल शुभ अनुष्ठानरूप व्यवहारनय को ही मोक्षमार्ग मानते हैं, वे उससे देवलोक आदि क्लेश / कष्ट / दुःख-परम्परा द्वारा संसार में परिभ्रमण करते हैं; और यदि वे शुद्धात्मानुभूतिलक्षण निश्चय-मोक्षमार्ग को मानते हैं; परन्तु निश्चय -मोक्षमार्ग के अनुष्ठान में शक्ति का अभाव होने से निश्चय के साधक शुभ अनुष्ठान को करते हैं, तो सराग सम्यग्दृष्टि होते हुए परम्परा से मोक्ष को प्राप्त करते हैं — इस प्रकार व्यवहार एकान्त के निराकरण की मुख्यता से दो वाक्य पूर्ण हुए।

और जो केवल निश्चयनय के अवलम्बी होते हुए भी रागादि विकल्परहित परम समाधिरूप शुद्धात्मा को प्राप्त नहीं कर पाने पर भी, तपोधन / मुनिराज के आचरणयोग्य षट् आवश्यक आदि अनुष्ठान को और श्रावक के योग्य दान-पूजा आदि अनुष्ठान को दूषित करते हैं / नष्ट करते हैं; वे भी उभयभ्रष्ट / दोनों ओर से भ्रष्ट होते हुए, निश्चय-व्यवहार अनुष्ठान के योग्य अवस्थान्तर को नहीं जानते हुए, पाप का ही बंध करते हैं; और यदि वे शुद्धात्मा में अनुष्ठानरूप मोक्षमार्ग और उसके साधक व्यवहारमोक्षमार्ग को मानते हैं, तो चारित्र-मोह का उदय होने से शक्ति का

-भावेन शुभाशुभानुष्ठानरहिता अपि यद्यपि शुद्धात्मभावनासापेक्षशुभानुष्ठानरतपुरुषसदृशा न भवन्ति, तथापि सरागसम्यक्त्वादिदानव्यवहारसम्यग्दृष्टयो भवन्ति, परंपरया मोक्षं च लभंते इति निश्चयैकान्त -निराकरणमुख्यत्वेन वाक्यद्वयं गतम्।

ततः स्थितमेतन्निश्चयव्यवहारपरस्परसाध्यसाधकभावेन रागादिविकल्परहितपरमसमाधिबलेनैव मोक्षं लभंते॥ १८०॥

इति शास्त्रतात्पर्योपसंहारवाक्यम्।

एवं वाक्यपञ्चकेन कथितार्थस्य विवरणमुख्यत्वेन एकादशस्थले गाथा गता।

अथ श्रीकुंदकुंदाचार्यदेवः स्वकीयप्रतिज्ञां निर्वाहयन् सन् ग्रन्थं समापयति —

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया। (१७३)
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं॥ १८१॥

अभाव होने के कारण, शक्ति नहीं होने पर शुभ-अशुभ अनुष्ठान से रहित होते हुए यद्यपि शुद्धात्मभावना से सापेक्ष शुभ अनुष्ठान में रत पुरुषों के समान तो नहीं होते हैं; तथापि सराग -सम्यक्त्व आदिमय दान आदि क्रियाओं में प्रवृत्त व्यवहार-सम्यग्दृष्टि होते हैं और परम्परा से मोक्ष प्राप्त करते हैं — इस प्रकार निश्चय एकान्त के निराकरण की मुख्यता से दो वाक्य पूर्ण हुए।

इससे यह निश्चित हुआ कि परस्पर साध्य-साधकरूप निश्चय-व्यवहारमय रागादि विकल्परहित परम समाधि के बल से ही मोक्ष प्राप्त करते हैं॥ १८०॥

[*आचार्य अमृतचन्द्र ने इस गाथा-टीका में प्रस्तुत विषय को अति विस्तार से स्पष्ट किया है, जो मूलतः पठनीय है।*]

इस प्रकार शास्त्र-तात्पर्य के उपसंहाररूप वाक्य हैं।

इस प्रकार कहे गए अर्थ के विवरण की मुख्यतावाले पाँच वाक्यों द्वारा ग्यारहवें स्थल में एक गाथा पूर्ण हुई।

अब, श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करते हुए ग्रन्थ समाप्त करते हैं —

मैं मार्ग उद्योतार्थ प्रवचन, भक्ति से प्रेरित हुआ।
वा सूत्र प्रवचनसारमय, पंचास्तिकाय संग्रह कहा॥ १८१॥

गाथार्थ - प्रवचन की भक्ति से प्रेरित मेरे द्वारा मार्ग-प्रभावना के लिए ***प्रवचन का सारभूत*** यह ***'पंचास्तिकाय-संग्रह'*** सूत्र कहा गया है।

पञ्चास्तिकायसंग्रहं सूत्रम् किंविशिष्टं ? प्रवचनसारम्। किमर्थं ? मार्गप्रभावनार्थमिति। तथाहि — मोक्षमार्गो हि संसारशरीरभोगवैराग्यलक्षणो निर्मलात्मानुभूतिस्तस्याः प्रभावनं स्वयमनुभवनमन्येषां प्रकाशनं वा तदर्थमेव परमागमभक्तिप्रेरितेन मया कर्तृभूतेन पञ्चास्तिकायशास्त्रमिदं व्याख्यातम्। किं लक्षणं ? पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यादिसंक्षेपेण व्याख्यानेन समस्तवस्तुप्रकाशकत्वात् द्वादशांगस्यापि प्रवचनस्य सारभूतमिति भावार्थः॥ १८१॥

इति ग्रंथसमाप्तिरूपेण द्वादशस्थले गाथा गता।

एवं तृतीयमहाधिकारः समाप्तः॥ ३॥

अथ यतः पूर्वं संक्षेपरुचिशिष्यसंबोधनार्थं पञ्चास्तिकायप्राभृतं कथितं, ततो यदा काले शिक्षां गृह्णाति तदा शिष्यो भण्यते इति हेतोः शिष्यलक्षणकथनार्थं परमात्माराधकपुरुषाणां दीक्षाशिक्षा-व्यवस्थाभेदाः प्रतिपाद्यंते। दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थभेदेन षट्काया भवंति।

टीकार्थ - पञ्चास्तिकायसंग्रह सूत्र कहा है। वह किस विशेषतावाला है ? प्रवचन का सारभूत है। उसे किसलिए कहा है ? उसे मार्ग-प्रभावना के लिए कहा है।

वह इस प्रकार — संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य लक्षणमय निर्मल, अनुभूति वास्तव में मोक्षमार्ग है, उसकी प्रभावना अर्थात् स्वयं उसका अनुभव करना अथवा दूसरों को प्रकाशित करना; उसके लिए ही परमागम की भक्ति से प्रेरित कर्ताभूत मेरे द्वारा इस पञ्चास्तिकाय शास्त्र का व्याख्यान किया गया है। वह किस लक्षणवाला है ? पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य आदि का संक्षेप में व्याख्यान करने के कारण समस्त वस्तुओं का प्रकाशक होने से द्वादशाङ्गरूप प्रवचन का भी सारभूत है — ऐसा भावार्थ है॥ १८१॥

इस प्रकार ग्रन्थ-समाप्तिरूप से बारहवें स्थल में गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार तृतीय महाधिकार समाप्त हुआ।

अब, क्योंकि पहले ***संक्षेप रुचिवाले*** शिष्य को सम्बोधित करने के लिए ***पञ्चास्तिकाय प्राभृत*** कहा गया है, इसलिए 'जिस समय शिक्षा ग्रहण करता है, तब शिष्य कहलाता है' — इस हेतु से शिष्य का लक्षण कहने के लिए परमात्मा के आराधक पुरुषों के दीक्षा-शिक्षा-व्यवस्था-भेद प्रतिपादित करते हैं। दीक्षा, शिक्षा, गणपोषण, आत्मसंस्कार, सल्लेखना और उत्तमार्थ के भेद से काल छह होते हैं। वे इस प्रकार —

जब कोई भी आसन्नभव्य भेदाभेद रत्नत्रयात्मक आचार्य को पाकर, आत्माराधना के लिए बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह का परित्यागकर जिनदीक्षा ग्रहण करता है, वह दीक्षा-काल है।

तद्यथा — यदा कोऽप्यासन्नभव्यो भेदाभेदरत्नत्रयात्मकमाचार्यं प्राप्यात्माराधनार्थं बाह्याभ्यंतर -परिग्रहपरित्यागं कृत्वा जिनदीक्षां गृह्णाति स दीक्षाकालः। दीक्षानंतरं निश्चयव्यवहाररत्नत्रयस्य परमात्मतत्त्वस्य च परिज्ञानार्थं तत्प्रतिपादकाध्यात्मशास्त्रेषु यदा शिक्षां गृह्णाति स शिक्षाकालः। शिक्षानंतरं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गे स्थित्वा तदर्थिनां भव्यप्राणिगणानां परमात्मोपदेशेन यदा पोषणं करोति स च गणपोषणकालः। गणपोषणानन्तरं गणं त्यक्त्वा यदा निजपरमात्मनि शुद्धसंस्कारं करोति स आत्मसंस्कारकालः। आत्मसंस्कारानंतरं तदर्थमेव क्रोधादिकषायरहितानंतज्ञानादिगुणलक्षणपरमात्म -पदार्थे स्थित्वा रागादिविकल्पानां सम्यग्लेखनं तनुकरणं भावसल्लेखना, तदर्थं कायक्लेशानुष्ठानं द्रव्यसल्लेखना, तदुभयाचरणं स सल्लेखनाकालः। सल्लेखनानंतरं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मद्रव्य -सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानबहिर्द्रव्येच्छानिरोधलक्षणतपश्चरणरूपनिश्चयचतुर्विधाराधना या तु सा चरमदेहस्य तद्भवमोक्षयोग्या तद्विपरीतस्य भवांतरमोक्षयोग्या चेत्युभयमुत्तमार्थकालः। अत्र कालषट्क -मध्ये केचन प्रथमकाले केचन द्वितीयकाले केचन तृतीयकालादौ केवलज्ञानमुत्पादयंतीति कालषट्क -नियमो नास्ति। अथवा —

दीक्षा के बाद निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय के और परमात्मतत्त्व के परिज्ञान के लिए उनके प्रतिपादक अध्यात्म-शास्त्रों में जब शिक्षा ग्रहण करता है, वह शिक्षा-काल है।

और जब शिक्षा-दीक्षा के बाद निश्चय-व्यवहार मार्ग में स्थित होकर उसके इच्छुक भव्य प्राणी समूह का परमात्मा के उपदेश से पोषण करता है, वह गणपोषण-काल है।

गणपोषण के पश्चात् गण को छोड़कर जब निज परमात्मा में शुद्ध संस्कार करता है, वह आत्मसंस्कार-काल है।

आत्मसंस्कार के बाद में उसके लिए ही क्रोधादि कषायरहित, अनन्त ज्ञान आदि गुण लक्षणवाले परमात्मपदार्थ में स्थित होकर रागादि विकल्पों का सम्यक् लेखन करना, उन्हें क्षीण करना, भावसल्लेखना है और उसके लिए कायक्लेश का अनुष्ठान, द्रव्यसल्लेखना है; इन दोनोंरूप आचरण वह सल्लेखना-काल है।

सल्लेखना के उपरान्त विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभावी आत्मद्रव्य के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान -अनुष्ठान और बाह्य द्रव्यों में इच्छानिरोध लक्षण तपश्चरणरूप जो चार प्रकार की निश्चय आराधना हैं, वे चरम / अन्तिम देहधारी के तो उसी भव में मोक्ष-योग्य हैं; परन्तु उससे विपरीत / अचरम देहधारी के भवान्तर में मोक्ष-योग्य हैं — ये दोनों उत्तमार्थ-काल हैं।

इन छह कालों में से कोई प्रथम काल में, कोई द्वितीय काल में, कोई तृतीय काल इत्यादि में केवलज्ञान उत्पन्न कर लेते हैं — इस प्रकार छह काल का नियम नहीं है।

ध्याता ध्यानं फलं ध्येयं यत्र यस्य यदा यथा।
इत्यष्टांगानि योगानां साधनानि भवंति च॥

अस्य संक्षेपव्याख्यानं –

गुप्तेन्द्रियमना ध्याता ध्येयं वस्तु यदा स्थितं।
एकाग्रचिंतनं ध्यानं फलं संवरनिर्जरे॥

इत्यादितत्त्वानुशासनध्यानग्रन्थादौ कथितमार्गेण जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिधा ध्यातारो ध्यानानि च भवंति। तदपि कस्मात्? तत्रैवोक्तमास्ते द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपा ध्यानसामग्री जघन्यादिभेदेन त्रिधेति वचनात्। अथवातिसंक्षेपेण द्विधा ध्यातारो भवन्ति शुद्धात्मभावनाप्रारंभकाः पुरुषाः सूक्ष्मविकल्पा -वस्थायां प्रारब्धयोगिनो भण्यन्ते, निर्विकल्पशुद्धात्मावस्थायां पुनर्निष्पन्नयोगिन इति संक्षेपेणाध्यात्म -भाषया ध्यातृध्यानध्येयानि संवरनिर्जरासाधकरागादिविकल्परहितपरमानन्दैकलक्षणसुखवृद्धिनिर्विकार

अथवा 'ध्याता, ध्यान, फल, ध्येय, जहाँ, जिसके, जब और जैसे – ये आठ अङ्ग योग के साधन होते हैं।'

इसका संक्षेप में व्याख्यान – 'गुप्तेन्द्रिय-मन / इन्द्रिय और मन को संयमित रखनेवाला ध्याता है, वास्तविक स्वरूपमय वस्तु ध्येय है, एकाग्रचिन्तन ध्यान है तथा संवर और निर्जरा फल है।'

इत्यादि तत्त्वानुशासन नामक ध्यान ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहे गए मार्गानुसार जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से, ध्याता और ध्यान तीन प्रकार के होते हैं। वे तीन प्रकार के कैसे हैं? इसके लिए वहाँ ही कहा है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप ध्यान सामग्री जघन्य आदि तीन प्रकार की है – ऐसा वचन होने से वे तीन प्रकार के हैं।

अथवा अति संक्षेप में ध्याता दो प्रकार के होते हैं – शुद्धात्मभावना को प्रारम्भ करनेवाले पुरुष सूक्ष्म सविकल्प अवस्था में प्रारब्ध योगी कहलाते हैं तथा निर्विकल्प शुद्धात्म-अवस्था में निष्पन्न योगी।

इस प्रकार संक्षेप में अध्यात्मभाषा की अपेक्षा ध्याता, ध्यान, ध्येय; संवर-निर्जरा के साधक रागादि विकल्परहित परमानन्द एक लक्षण सुख में वृद्धि, निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञान में वृद्धि, बुद्धि आदि सात ऋद्धिरूप ध्यान फल के भेद जानना चाहिए।

विशेष यह है कि शिक्षक, प्रारम्भक, कृताभ्यास और निष्पन्नरूप से ध्याता पुरुष का

-स्वसंवेदनज्ञानवृद्धिबुद्ध्यादिसप्तर्द्धिरूपध्यानफलभेदा ज्ञातव्याः। किंच — शिक्षकप्रारंभककृताभ्यास -निष्पन्नरूपेण कैश्चिदन्यत्रापि यदुक्तं ध्यातृपुरुषलक्षणं तदत्रैवांतर्भूतं यथासंभवं द्रष्टव्यमिति।

इदानीं पुनरागमभाषया षट्कालाः कथ्यंते — यदा कोऽपि चतुर्विधाराधनाभिमुखः सन् पञ्चाचारोपेतमाचार्यं प्राप्योभयपरिग्रहरहितो भूत्वा जिनदीक्षां गृह्णाति तदा दीक्षाकालः। दीक्षानंतरं चतुर्विधाराधनापरिज्ञानार्थमाचाराराधनादिचरणकरणग्रंथशिक्षां गृह्णाति तदा शिक्षाकालः। शिक्षानंतरं चरणकरणकथितार्थानुष्ठानेन व्याख्यानेन च पञ्चभावनासहितः सन् शिष्यगणपोषणं करोति तदा गणपोषणकालः।

भावनाः कथ्यंते — तपःश्रुतसत्त्वैकत्वसंतोषभेदेन भावनाः पञ्चविधा भवंति। तद्यथा — अनशनादिद्वादशविधनिर्मलतपश्चरणं तपोभावना, तस्याः फलं विषयकषायजयो भवति। प्रथमानियोग -चरणानियोगकरणानियोगद्रव्यानियोगभेदेन चतुर्विध आगमाभ्यासः श्रुतभावना। तथाहि — त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणव्याख्यानं प्रथमानियोगो भण्यते, उपासकाध्ययनाचाराराधनादिग्रंथैर्देशचारित्र

लक्षण अन्यत्र भी जो किन्हीं ने कहा है, उसका यथासम्भव यहाँ ही अन्तर्भाव देख लेना चाहिए।

अब, यहाँ आगम भाषा से षट्काल कहते हैं — जब कोई भी चार प्रकार की आराधना के सम्मुख होता हुआ, पञ्चाचार से सहित आचार्य को पाकर उभय (अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग) परिग्रह से रहित होकर जिनदीक्षा ग्रहण करता है, वह दीक्षा-काल है।

दीक्षा के बाद चार प्रकार की आराधना के परिज्ञानार्थ आचार, आराधना आदि चरण में सहायक ग्रन्थों की शिक्षा ग्रहण करता है, तब शिक्षा-काल है।

शिक्षा के उपरान्त चरण में सहायक ग्रन्थों में कथित अर्थ के अनुष्ठान और व्याख्यान द्वारा पाँच भावनासहित होता हुआ शिष्यगण का पोषण करता है, वह गणपोषण-काल है।

भावना कहते हैं — तप, श्रुत, सत्त्व, एकत्व और सन्तोष के भेद से भावना पाँच प्रकार की है। वह इस प्रकार — अनशन आदि बारह प्रकार का निर्मल तपश्चरण तपोभावना है; उसका फल विषय-कषाय का जय है।

प्रथमानियोग (प्रथमानुयोग), चरणानियोग (चरणानुयोग), करणानियोग (करणानुयोग), द्रव्यानियोग (द्रव्यानुयोग) के भेद से चार प्रकार के आगम का अभ्यास श्रुतभावना है। वह इस प्रकार — त्रेषठ शलाका पुरुषों का पुराण व्याख्यान प्रथमानियोग है; उपासकाध्ययन, आचार, आराधना आदि ग्रन्थों से देशचारित्र, सकलचारित्र का व्याख्यान चरणानियोग कहलाता है; जिनान्तर, त्रिलोकसार, लोकविभाग, लोकानियोग आदि व्याख्यान करणानियोग है तथा प्राभृतग्रन्थ,

-सकलचारित्रव्याख्यानं चरणानियोगो भण्यते, जिनांतरत्रिलोकसारलोकविभागलोकानुयोगादि -व्याख्यानं करणानियोगो भण्यते, प्राभृततत्त्वार्थसिद्धान्तग्रंथैर्जीवादिषड्द्रव्यादीनां व्याख्यानं द्रव्यानियोग इति। तस्याः श्रुतभावनायाः फलं जीवादितत्त्वविषये संक्षेपेण हेयोपादेयतत्त्वविषये वा संशयविमोह -विभ्रमरहितो निश्चलपरिणामो भवति। उक्तं च –

आत्महितस्थित्यास्त्रवस्य संवरो नवनवश्च संवेगः।
निःकंपता तपोभावना परस्योपदेशनं ज्ञातुः॥

मूलोत्तरगुणाद्यनुष्ठानविषये निर्गहनवृत्तिः सत्त्वभावना, तस्याः फलं घोरोपसर्गपरिषहप्रस्तावेऽपि निर्गहनेन मोक्षं साध्यति, पांडवादिवत्।

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥

इत्येकत्वभावना तस्याः फलं स्वजनपरजनादौ निर्मोहत्वं भवति। तथा चोक्तं –

तत्त्वार्थग्रन्थ, सिद्धान्तग्रन्थों से जीवादि षट् द्रव्य आदि का व्याख्यान द्रव्यानियोग है। संक्षेप से उस श्रुतभावना का फल जीवादि तत्त्व के विषय में अथवा हेयोपादेय तत्त्व के विषय में संशय, विमोह, विभ्रमरहित निश्चल परिणाम होता है। कहा भी है – '**शास्त्र-ज्ञाता को ये छह लाभ होते हैं – आत्महित में स्थिति, आस्त्रव का संवर, नवीन-नवीन धर्मानुराग, निःकम्पता, तपोभावना और दूसरों को उपदेश देने की योग्यता।**'

मूल-उत्तरगुण आदि के विषय में निर्गहनवृत्ति / भयरहित प्रवृत्ति सत्त्वभावना है। उसका फल पाण्डव आदि के समान घोर उपसर्ग-परिषह का प्रसङ्ग आने पर भी निर्गहनरूप से / निर्भय होकर उत्साहपूर्वक मोक्ष को साधते हैं।

'ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला एक शाश्वत आत्मा ही मेरा है। शेष सभी संयोग लक्षणवाले भाव मुझसे बाह्य / भिन्न हैं।'

– इस प्रकार की भावना एकत्वभावना है। उसका फल स्वजन, परजन आदि में निर्मोहता है। वैसा ही कहा है –

'बहिन की विडम्बना को देखकर जिस प्रकार एक (एकत्व की) भावना में चतुर जिन कल्पित मूढ़ नहीं होता है; उसी प्रकार क्षपक भी मोह नहीं करता है।'

मानापमान में समता के बल से, भोजन-पान आदि में यथालाभ से (जितना-जैसा मिला,

भगिनीं विडंब्यमानां यथा विलोक्यैकभावनाचतुरः।
जिनकल्पितो न मूढः क्षपकोऽपि तथा न मुह्येत॥

मानापमानसमताबलेनाशनपानादौ यथालाभेन संतोषभावना। तस्याः फलं रागाद्युपाधिरहित -परमानंदैकलक्षणात्मोत्थसुखतृप्त्या निदानबंधादिविषयसुखनिवृत्तिरिति। गणपोषणानंतरं स्वकीयगणं त्यक्त्वात्मभावनासंस्कारार्थी भूत्वा परगणं गच्छति तदात्मसंस्कारकालः। आत्मसंस्कारानंतरमाचारा -राधनाकथितक्रमेण द्रव्यभावसल्लेखनां करोति तदा सल्लेखनाकालः। सल्लेखनानंतरं चतुर्विधाराधना -भावनया समाधिविधिना कालं करोति तदा स उत्तमार्थकालश्चेति। अत्रापि केचन प्रथमकालादावपि चतुर्विधाराधनां लभंते षट्कालनियमो नास्ति। अयमत्र भावार्थः—

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे॥

एवं प्रभृत्यागमसारादर्थपदानामभेदरत्नत्रयप्रतिपादकानामनुकूलं यत्र व्याख्यानं क्रियते तदध्यात्म

उतने-वैसे में ही सन्तुष्ट रहना) सन्तोष रखना, सन्तोषभावना है। उसका फल रागादि उपाधि से रहित परमानन्द एक लक्षण आत्मा से उत्पन्न सुख से सन्तुष्टि द्वारा निदान बन्ध आदि विषय -सुख से निवृत्ति है।

गणपोषण के बाद अपने गण को छोड़कर आत्मभावना के संस्कार का इच्छुक होकर परगण में जाता है, वह आत्मसंस्कार काल है।

आत्मसंस्कार के उपरान्त आचार, आराधना (ग्रन्थों) में कहे गए क्रम से द्रव्य-भाव सल्लेखना करता है, वह सल्लेखनाकाल है।

सल्लेखना के पश्चात् चार प्रकार की आराधनामय भावना से समाधि-विधि द्वारा काल को (पूर्ण) करता है, तब वह उत्तमार्थकाल है।

यहाँ भी कोई प्रथम काल आदि में भी चार प्रकार की आराधना को प्राप्त होते हैं – इस प्रकार छह काल का नियम नहीं है। यहाँ भावार्थ यह है –

'मेरे ज्ञान में आत्मा है, मेरे दर्शन और चारित्र में आत्मा है, प्रत्याख्यान में आत्मा है, मेरे संवर और योग में आत्मा है।'

इत्यादिरूप में आगम के सार से अभेदरत्नत्रय के प्रतिपादक अर्थपदों के अनुकूल जहाँ व्याख्यान किया जाता है, वह अध्यात्मशास्त्र कहलाता है; उसके आश्रित छह काल पहले संक्षेप

-शास्त्रं भण्यते, तदाश्रिताः षट्कालाः पूर्वं संक्षेपेण व्याख्याताः। वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यादिसम्यक् -श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठानभेदरत्नत्रयस्वरूपं यत्र प्रतिपाद्यते तदागमशास्त्रं भण्यते, तच्चाभेदरत्नत्रया -त्मकस्याध्यात्मानुष्ठानस्य बहिरंगसाधनं भवति, तदाश्रिता अपि षट्काला संक्षेपेण व्याख्याता, विशेषेण पुनरुभयत्रापि षट्कालव्याख्यानं पूर्वाचार्यकथितक्रमेणान्यग्रंथेषु ज्ञातव्यम्।

इति *श्रीजयसेनाचार्य* कृतायां *तात्पर्यवृत्तौ* प्रथमतस्तावदेकादशोत्तरशतगाथाभिरष्टभिरंत -राधिकारैः *पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकनामा प्रथममहाधिकारः*, तदनंतरं पञ्चाशद्गाथाभिर्दशभिरंत -राधिकारैर्नवपदार्थप्रतिपादकाभिधानो *द्वितीयो महाधिकारः*, तदनंतरं विंशतिगाथाभिर्द्वादशस्थलै *र्मोक्षस्वरूपमोक्षमार्गप्रतिपादकाभिधानस्तृतीयमहाधिकारश्*चेत्यधिकारत्रयसमुदायेनैकाशीत्युत्तरशतगाथाभिः *पञ्चास्तिकायप्राभृतः* समाप्तः॥

विक्रमसंवत् १३६९ वर्षेराश्विनशुद्धिः १ भौमदिने समाप्तेयं तात्पर्यवृत्तिः पञ्चास्तिकायस्य॥

से कहे गए हैं। वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत छह द्रव्य आदि के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, व्रत आदि के अनुष्ठानरूप भेदरत्नत्रय का स्वरूप जहाँ प्रतिपादित होता है, वह आगमशास्त्र है; और वह अभेदरत्नत्रयात्मक अध्यात्म-अनुष्ठान का बहिरङ्ग साधन होता है; उसके आश्रित भी छह काल संक्षेप से कहे हैं। विशेषरूप से तो दोनों ही छह कालों का व्याख्यान पूर्वाचार्यों द्वारा कथित क्रम से अन्य ग्रन्थों में जानना चाहिए।

इस प्रकार ***'श्रीजयसेनाचार्य'*** कृत ***'तात्पर्यवृत्ति'*** में सर्व प्रथम आठ अन्तराधिकारों में विभक्त एक सौ ग्यारह गाथाओं द्वारा ***'पञ्चास्तिकाय षट्द्रव्य प्रतिपादक'*** नामक ***प्रथम महाधिकार*** है। तत्पश्चात् दश अन्तराधिकारों में विभक्त पचास गाथाओं द्वारा ***'नवपदार्थ प्रतिपादक'*** नामक ***द्वितीय महाधिकार*** है और तदुपरान्त बारह स्थलों में विभक्त बीस गाथाओं द्वारा ***'मोक्षस्वरूप, मोक्षमार्ग प्रतिपादक'*** नामक ***तृतीय महाधिकार*** है – इस प्रकार तीन अधिकारों के समूह से एक सौ इक्यासी गाथाओं द्वारा ***'पञ्चास्तिकाय प्राभृत'*** पूर्ण हुआ।

विक्रम संवत् – १३६९ वर्ष में आश्विन शुक्ल प्रतिपदा के भौम / मङ्गलवार दिन में यह पञ्चास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति (प्रतिलिपि) समाप्त हुई।

श्री पञ्चास्तिकायसंग्रह गाथाओं की वर्णानुक्रमणिका

वर्णानुक्रम गाथा	गाथा क्र० आचार्य जयसेन	गाथा क्र० आचार्य अमृतचन्द्र	पृष्ठांक
अ			
अगुरुगलघुगेहिं सदा	९१	८४	१७६
अगुरुलहुगा अणंता	३१	३१	९३
अण्णाणादो णाणी	१७३	१६५	२९९
अण्णोण्णं पविसंता	७	७	२९
अत्ता कुणदि सहावं	७१	६५	१४६
अभिवंदिऊण सिरसा	११२	१०५	२०४
अरसमरूवमगंधं	१३५	१२७	२३१
अरहंतसिद्धचेदियपवयणगण	१७४	१६६	२९३
अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो	१७९	१७१	२९९
अरहंतसिद्धसाहुसु	१४४	१३६	२४६
अविभत्तमणण्णत्तं	५१	४५	११७
अंडेसु पवड्ढंता	१२१	११३	२१६
आ			
आगासकालजीवा	१०४	९७	१९२
आगासकालपोग्गल	१३२	१२४	२२९
आगासं अवगासं	९९	९२	१८६
आदेसमत्तमुत्तो	८५	७८	१६५
आभिणिसुदोधिमण	४१	४१	१०५
आसवदि जेण पुण्णं	१६५	१५७	२८१
इ			
इंदसदवंदियाणं	१	१	५
इंदियकसायसण्णा	१४९	१४१	२५२
उ			
उदयं जह मच्छाणं	९२	८५	१७७
उदयेण उवसमेण य	६२	५६	१३४
उद्दंसमसगमक्खिय	१२४	११६	२१८
उप्पत्ती व विणासो	११	११	३८
उवओगो खलु दुविहो	४०	४०	१०४
उवभोज्जमिंदिएहिं	८९	८२	१७३
उवसंतखीणमोहो	७६	७०	१५२
ए			
एक्को चेव महप्पा	७७	७१	१५४
एदे कालागासा	१०९	१०२	१९८
एदे जीवणिकाया देह...	१२८	१२०	२२३
एदे जीवणिकाया पंच	१२०	११२	२१५
एगरसवण्णगंधं	८८	८१	१७२
एवमभिगम्म जीवं	१३१	१२३	२२७
एवं कत्ता भोत्ता	७५	६९	१५१
एवं जिण पण्णते	११४		२०७
एवं पवयणसारं	११०	१०३	२००
एवं भावमभावं	२१	२१	५९
एवं सदो विणासो... णत्थि...	१९	१९	५४
एवं सदो विणासो... होइ...	६०	५४	१३१
ओ			
ओगाढगाढणिचिदो	७०	६४	१४५
ओहिं तहेव घेप्पदु	४६		११०
क			
कम्ममलविप्पमुक्को	२८	२८	८७
कम्मस्साभावेण य	१५९	१५१	२६६
कम्मं कम्मं कुव्वदि	६९	६३	१४४
कम्मं पि सगं कुव्वदि	६८	६२	१४३
कम्मं वेदयमाणो जीवो	६३	५७	१३६
कम्माणं फलमेक्को	३८	३८	१०२
कम्मेण विणा उदयं	६४	५८	१३७
कालो त्ति य ववदेसो	१०८	१०१	१९७
कालो परिणामभवो	१०७	१००	१९५
कुव्वं सगं सहावं	६७	६१	१४२
केचिच्च अणावण्णा	३२	३२	९३
कोधो व जदा माणो	१४६	१३८	२४८
ख			
खंधं सयलसमत्थं	८१	७५	१६०

वर्णानुक्रम गाथा	गाथा क्र० आचार्य जयसेन	गाथा क्र० आचार्य अमृतचन्द्र	पृष्ठांक
खंधा य खंधदेसा	८०	७४	१६०
खीणे पुव्वणिबद्धे	१२७	११९	२२२
ग			
गदिमधिगदस्स देहो	१३७	१२९	२३५
च			
चरियं चरदि सगं	१६७	१५९	२८३
चरिया पमादबहुला	१४७	१३९	२४९
छ			
छक्कावक्कमजुत्तो	७८	७२	१५४
ज			
जदि हवदि गमणहेदू	१०१	९४	१८७
जदि हवदि दव्वमण्णं	५०	४४	११५
जम्हा उवरिट्ठाणं	१००	९३	१८७
जम्हा कम्मस्स फलं	१४१	१३३	२४१
जस्स जदा खलु पुण्णं	१५१	१४३	२५४
जस्स ण विज्जदि रागो... सव्व...	१५४	१४६	२५८
जस्स ण विज्जदि रागो... सव्व...	१५०	१४२	२५३
जस्स हिदयेणुमेत्तं	१७५	१६७	२९३
जह पउमरायरयणं	३३	३३	९५
जह पोग्गलदव्वाणं	७२	६६	१४८
जह हवदि धम्मदव्वं	९३	८६	१७८
जं सुहमसुहमुदिण्णं	१५५	१४७	२६२
जाणदि पस्सदि सव्वं	१३०	१२२	२२५
जादो अलोगलोगो	९४	८७	१७९
जादो सयं स चेदा	२९	२९	८८
जायदि जीवस्सेवं	१३८	१३०	२३५
जीवसहाओ णाणं	१६२	१५४	२७६
जीवा अणाइणिहणा	५९	५३	१३०
जीवाजीवा भावा	११६		
जीवा पोग्गलकाया अण्णो...	७३	६७	१४९
जीवा पोग्गलकाया आगासं....	२२	२२	६२
जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव...	४	४	२३
जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य...	९८	९१	१८५
जीवा पोग्गलकाया सह...	१०५	९८	१९३
जीवा संसारत्था	११७	१०९	२१२

वर्णानुक्रम गाथा	गाथा क्र० आचार्य जयसेन	गाथा क्र० आचार्य अमृतचन्द्र	पृष्ठांक
जीवो त्ति हवदि चेदा	२७	२७	८३
जीवो सहावणियदो	१६३	१५५	२७८
जूगागुंभीमक्कण	१२३	११५	२१७
जे खलु इंदियगेज्झा	१०६	९९	१९४
जेण विजाणदि सव्वं	१७१	१६३	२८८
जेसिं अत्थि सहाओ	५	५	२५
जेसिं जीवसहावो	३५	३५	९८
जो खलु संसारत्थो	१३६	१२८	२३५
जोगणिमित्तं गहणं	१५६	१४८	२६३
जो चरदि णादि पेच्छदि	१७०	१६२	२८७
जो परदव्वम्हि सुहं	१६४	१५६	२८०
जो सव्वसंगमुक्को	१६६	१५८	२८२
जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठ...	१५३	१४५	२५७
जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणो...	१६१	१५३	२७१
ण			
ण कुदोचि वि उप्पण्णो	३६	३६	१००
णत्थि चिरं वा खिप्पं	२६	२६	७१
ण य गच्छदि धम्मत्थी	९५	८८	१८०
ण वियप्पदि णाणादो	४३		१०७
ण हि इंदियाणि जीवा	१२९	१२१	२२५
ण हि सो समवायादो	५५	४९	१२५
णाणं धणं च कुव्वदि	५३	४७	१२१
णाणावरणादीया भावा	२०	२०	५७
णाणं णेयणिमित्तं	४८	४२	११२
णाणी णाणं च सदा	५४	४८	१२३
णिच्चो णाणवकासो	८७	८०	१६९
णिच्छयणयेण भणिदो	१६९	१६१	२८६
णेरइयतिरियमणुआ	६१	५५	१३३
त			
तम्हा कम्मं कत्ता	७४	६८	१५०
तम्हा धम्माधम्मा	१०२	९५	१८८
तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो...	१७७	१६९	२९५
तम्हा णिव्वुदिकामो रागं...	१८०	१७२	३००
ति त्थावरतणुजोगा	११९	१११	२१४
तिसिदं बुभुक्खिदं वा	१४५	१३७	२४७

वर्णानुक्रम गाथा	गाथा क्र० आचार्य		पृष्ठांक
	जयसेन	अमृतचन्द्र	
ते चेव अत्थिकाया	६	६	२७
द			
दवियदि गच्छदि ताइं	९	९	३५
दव्वं सल्लक्खणयं	१०	१०	३६
दव्वेण विणा ण गुणा	१३	१३	४१
दंसणणाणचरित्ताणि	१७२	१६४	२९०
दंसणणाणसमग्गं	१६०	१५२	२६८
दंसणणाणाणि तहा	५८	५२	१२७
दंसणमवि चक्खुजुदं	४२		१०६
देवा चउण्णिकाया	१२६	११८	२२१
ध			
धम्मत्थिकायमरसं	९०	८३	१७५
धम्मादीसद्दहणं	१६८	१६०	२८४
धम्माधम्मागासा	१०३	९६	१८९
धरिदुं जस्स ण सक्को	१७६	१६८	२९४
प			
पज्जयविजुदं दव्वं	१२	१२	४०
पयडिट्ठिदिअणुभाग	७९	७३	१५७
पाणेहिं चदुहिं जीवदि	३०	३०	९२
पुढवी य उदगमगणी	११८	११०	२१३
पुढवी जलं च छाया	८३		१६३
ब			
बादरसुहुमगदाणं	८२	७६	१६२
भ			
भावस्स णत्थि णासो	१५	१५	४६
भावा जीवादीया	१६	१६	४८
भावो कम्मणिमित्तो	६६	६०	१४०
भावो जदि कम्मकदो	६५	५९	१३९
म			
मदिणाणं पुण तिविहं	४४		१०८
मग्गप्पभावणट्ठं	१८१	१७३	३०२
मणुसत्तणेण णट्ठो	१७	१७	५२
मिच्छत्ता अण्णाणं	४९	४३	११४
मुणिदूण एतदट्ठं	१११	१०४	२०१
मुत्तो फासदि मुत्तं	१४२	१३४	२४२
मोहो रागो दोसो	१३९	१३१	२३९
र			
रागो जस्स पसत्थो	१४३	१३५	२४५
व			
वण्णरसगन्धफासा	५७	५१	१२७
ववगदपणवण्णरसो	२४	२४	६५
ववदेसा संठाणा	५२	४६	११९
विउलमदी पुणं णाणं	४७		१११
विज्जदि जेसिं गमणं	९६	८९	१८१
स			
सण्णाओ य तिलेस्सा	१४८	१४०	२५०
सत्ता सव्वपयत्था	८	८	३३
सद्दो खंधप्पभवो	८६	७९	१६७
सपदत्थं तित्थयरं	१७८	१७०	२९६
सब्भावसभावाणं	२३	२३	६३
समओ णिमिसो कट्ठा	२५	२५	६८
समणमुहुग्गदमट्ठं	२	२	१८
समवत्ती समवाओ	५६	५०	१२६
समवाओ पंचण्हं	३	३	२१
सम्मत्तणाणजुत्तं	११३	१०६	२०५
सम्मत्तं सद्दहणं	११५	१०७	२०८
सव्वत्थ अत्थि जीवो	३४	३४	९७
सव्वे खलु कम्मफलं	३९	३९	१०३
सव्वेसिं खंधाणं	८४	७७	१६४
सव्वेसिं जीवाणं	९७	९०	१८३
सस्सदमधमुच्छेदं	३७	३७	१००
संठाणा संघादा	१३४	१२६	२३१
संबुक्कमादुवाहा	१२२	११४	२१७
संवरजोगेहिं जुदो	१५२	१४४	२५६
सिय अत्थि णत्थि उहयं	१४	१४	४३
सुदणाणं पुण णाणी	४५		१०९
सुरणरणारयतिरिया	१२५	११७	२१९
सुहदुक्खजाणणा वा	१३३	१२५	२३०
सुहपरिणामो पुण्णं	१४०	१३२	२४०
सो चेव जादि मरणं	१८	१८	५३
ह			
हेदुमभावे णियमा	१५८	१५०	२६६
हेदू चदुव्वियप्पो	१५७	१४९	२६४

टीकागत उद्धरणों की वर्णानुक्रमणिका

उद्धरण	गाथा-टीका	कहाँ का है
अकर्ता निर्गुणो.....	६५	सांख्यकारिका, पद्य
अज्जवि तिरयणसुद्धा.....	१५४	मोक्षपाहुड़, गाथा ७७
अट्ठविहकम्मवियला...	८२	गो० जीवकाण्ड, गाथा ६८
अंतो णत्थि सुदीणं...	१५४	दोहा पाहुड़ ९९; पञ्चास्तिकाय १४६, समयव्याख्या में उद्धृत
अनाद्यनिधने...	६१	आलाप पद्धति, कारिका
अभिमतफलसिद्धेः...	१	नियमसार, टीका-कलश
आई मंगलकरणे...	१	धवला पुस्तक १, तिलोयपण्णत्ति १, २९
आत्महितास्था...	१८१	
आत्मानमात्मा...	१६०	सिद्धभक्ति, पद्य
आत्मोपादान...	१०७	सिद्धभक्ति, पद्य ७
आदा खु मज्झ...	१८१	नियमसार, गाथा १००
आदौ मध्ये...	१	धवला पुस्तक १, पद्य २२
आधारे थूलाओ....	३१	गो० जीवकाण्ड, गाथा १८४ उत्तरार्ध
आविद्धकुलाल...	१६१	मोक्षशास्त्र, अध्याय १०, सूत्र ७
उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्	२२	मोक्षशास्त्र, अध्याय ५, सूत्र ३०
उपादानकारणसदृशं...	२३	
एकोऽहं निर्ममः शुद्धो...	२०	इष्टोपदेश, पद्य २७
एगो मे सासदो...	१८१	नियमसार, गाथा १०२
एमेवगओ कालो...	१६२	
क्रमप्रवृत्तिर्भारती...	१४	
कर्तृताभोकृता...	२७	
कम्मारिजिणेविणु...	१	
केचिदज्ञानतो...	१७३	
खविदघणघाइ...	१	
गंभीरं मधुरं मनोहरतरं...	२	
गुप्तेन्द्रियमनो ध्याता...	१८१	तत्त्वानुशासन, पद्य ३८
चंडो ण मुयइ...	१२७	गो० जीवकाण्ड, गाथा ५०९
चरितारो न...	१५४	तत्त्वानुशासन, पद्य
छद्दव्वणवपयत्थे...	१	धवला पुस्तक १, पद्य ३५
जह वीयरायसव्वण्हु...	१	
जीवादिषड्द्रव्याणां...	२२	
जेसिं अत्थि सहाओ...	१६	पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा ५
णिग्गमणपवेसम्हि य...	१	
ततं वीणादिकं....	८६	
तत्रादौ प्रभुता...	२७	
तुसमासं घोसंतो...	१५४	भावपाहुड़, गाथा ५३
द्रव्यपर्यायात्मको भावः...	१२	

दर्शनं निश्चय:पुंसि...	१७०	
दीसइ लोयालोओ...	१	
ध्याताध्यानं...	१८१	तत्त्वानुशासन, पद्य ३७
नास्तिक्यपरिहार...	१	
प्रदीपेनार्चयेदर्क...	१	
पज्जयरहियं दव्वं...	१८	पञ्चास्तिकायसंग्रह, गाथा १२
पुग्गलकम्मादीणं...	१३०	द्रव्यसंग्रह, गाथा ८
पुण्णा मणोरहेहिं...	१	
पूर्वप्रयोगादसंग....	१६१	मोक्षशास्त्र, अध्याय १०, सूत्र ६
पोग्गलकरणाजीवा...	२५	पंचास्तिकाय संग्रह, गाथा १०५
बंधं पडि एयत्तं...	१४२	सर्वार्थसिद्धि, अध्याय २, सूत्र ७ की टीकागत
भगिनीं बिडम्बमानां...	१८१	
भरहे दुस्समकाले...	१५४	मोक्षपाहुड़, गाथा ७६
मंगलणिमित्त...	१	धवला पुस्तक, १, पद्य १
मुलुत्तरपयडीणं...	१	
मोक्षं कुर्वन्ति...	६२	
य: सर्वाणि चराचराणि...	१३५	वीरभक्ति, पद्य १
यत्पुनर्वज्रकायस्य...	१५४	तत्त्वानुशासन, पद्य ८४
यत्सर्वात्महितं...	१	
येनाज्ञानतम:....	२	
रयणदीवदिणयर...	२७	योगसार, दोहा ५७
लोक्यन्ते जीवादि...	८२	
लोगागासपदेसे...	१०९	द्रव्यसंग्रह, गाथा २२
वक्तृप्रामाण्याद्...	२७	
वच्छक्खरं भवसारित्थ....	२७	
वयणियमसंजम...	१	
वर्णगन्धरसस्पर्श:...	८२	
विकहा तहा कसाया...	४७	गो०जीवकाण्ड, गाथा ३४
विघ्ना:प्रणश्यन्ति....	१	धवलापुस्तक १, पद्य २२
विवक्षितो मुख्य...	१९	स्वयम्भूस्तोत्र, पद्य
वेयणकसोयवेगुव्विय...	३४	गो० जीवकाण्ड, गाथा ६६७
स्कन्धभेदाद्भवेदाद्य:...	८७	
सकलादेशो प्रमाणाधीनो...	१४	
सदसिवसंखोमक्कडि...	७९	गो०जीवकाण्ड, गाथा ६९
समओ उप्पण्णपद्धंसी...	२७	पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा १०८
सव्वजणणिव्वुदियरा...	१	
सिद्धत्थपुण्णकुंभो...	१	धवलापुस्तक १, पद्य १३
सुदकेवलं च णाणं...	१०६	गो० जीवकाण्ड, गाथा ३६९
सेदोवण्णोझाणं...	१	
सोलसपणवीसणभं...	१४९	गो० कर्मकाण्ड, गाथा ९४
श्रेयोमार्गस्य संसिद्धि:...	१	आप्तपरीक्षा, कारिका